सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१

(१८८४-१८९६)

पब्लिकेशन्स डिवीजन
सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय
भारत सरकार

१५ अगस्त, १९५८ (२४ श्रावण, १८८०)

तीन रुपये

डायरेक्टर, पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली-८ द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद-१४ द्वारा मुद्रित

श्रद्धांजलि

महात्मा गांधीका उद्देश्य किसी जीवन-दर्शनका विकास करना या मान्यताओं अथवा आदर्शोंकी प्रणाली निर्मित करना नहीं था। शायद उन्हें ऐसा करनेकी न तो इच्छा थी, न अवकाश ही था। तथापि, सत्य और अहिंसामें उनका दृढ़ विश्वास था, और जो समस्याएँ उनके सामने आईं उनमें इनके व्यावहारिक प्रयोगको ही उनकी शिक्षा और जीवन-दर्शन कहा जा सकता है।

शायद ही कोई राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, कृषि व श्रम-सम्बन्धी, औद्योगिक या अन्य समस्या ऐसी हो, जिसपर उन्होंने विचार नहीं किया, और जिसे अपने ही निजी ढंगसे, उन सिद्धान्तोंके अन्दर रहकर निवटाया नहीं, जिन्हें वे मूलभूत और तात्त्विक मानते थे। व्यक्तिगत जीवनकी छोटी-छोटी तफसीलों — आहार, पोशाक तथा दैनिक कामकाजसे लेकर जातिप्रथा और अस्पृश्यता-जैसी बड़ी-बड़ी समस्याओं तक, जो शताब्दियोंसे जीवनका न केवल अटूट बल्कि धर्मसम्मत अंग भी बनी हुई थीं, भारतीय जीवनका शायद ही कोई ऐसा पहलू हो, जिसे उन्होंने प्रभावित नहीं किया और अपने सांचेमें ढाला नहीं।

उनके विचारोंमें आश्चर्यजनक ताजगी दिखलाई पड़ती थी। उनमें परम्परा या प्रचलित रीतियोंकी कोई बाधा नहीं होती थी। इसी तरह छोटी और बड़ी समस्याओंको निवटानेकी उनकी पद्धति भी कम अनोखी नहीं थी। दिखाऊ तौरपर वह विश्वासजनक न होती हुई भी अन्ततः सफल थी। स्पष्ट है कि अपने स्वभावसे ही वे कभी कट्टर नहीं हो सकते थे। नये-नये अनुभवोंसे प्राप्त होनेवाले नये ज्ञानसे वे अपने-आपको वंचित नहीं रख सकते थे। और इसी कारण वे ऊपरी पूर्वापर-संगतिके हठी भी नहीं थे। सच तो यह है कि उनके विरोधियों, और कभी-कभी उनके अनुयायियोंको भी, उनके कुछ कार्योंमें जाहिरा तौरपर परस्पर-विरोध दिखलाई पड़ता था। वे समझने और माननेको इतने तैयार रहते थे और उनमें नैतिक साहस इतना असाधारण था कि अगर एक बार उन्हें विश्वास हो जाता कि जो काम उन्होंने किया है वह त्रुटिपूर्ण है तो वे अपनी भूल सुधारने और सार्वजनिक रूपसे घोषित कर देनेमें, कि

उन्होंने भूल की थी, कभी संकोच नहीं करते थे। हमने अक्सर उन्हें अपने निर्णयों और कार्योंकी वस्तुगत तथा निष्पक्ष आलोचना कराते देखा है। इसलिए, क्या आश्चर्य कि उनके कुछ कार्य कभी-कभी उनके ही सराहकोंको पहेली जैसे मालूम होते थे और उनके आलोचकोंको चक्करमें डाल देते थे।

ऐसे पुरुषको ठीक तरहसे समझनेके लिए उनकी शिक्षाओं और जीवन-घटनाओंको व्यापक तथा समग्र रूपमें देखना बिलकुल जरूरी है। उनकी जीवन-कथाकी रूपरेखा मात्रका, या उसके किसी अंशको पृथक् करके उसका ही अध्ययन कर लेना भ्रमोत्पादक सिद्ध हो सकता है, और इससे उस महापुरुषके प्रति उतना ही कम न्याय होगा, जितना कि स्वयं पाठकके प्रति। यही मुख्य कारण है कि इतनी बड़ी मात्रामें गांधीजीके लेखोंके संग्रहका काम उठाना पड़ा। मुझे बताया गया है कि इस ग्रंथमालाके पचाससे अधिक खण्ड होंगे। इसके प्रकाशनका मूल कारण गांधीजीकी इस विशेषतामें ही निहित है।

इस ग्रंथमालाको प्रकाशित करनेका भार उठाकर भारत-सरकारके सूचना और प्रसार मंत्रालयने महात्मा गांधीके — उनकी शिक्षाओं, उनके विश्वासों और उनके जीवन-दर्शनके अध्ययनके लिए नितान्त आवश्यक आधार प्रदान कर दिया है। अब विद्यार्थियों और विचारकोंकी जिम्मेदारी होगी कि वे उस कामको पूरा करें, जिसे करनेका महात्मा गांधीने कभी प्रयत्न ही नहीं किया। इस तरह सारी सामग्री उपलब्ध हो जानेसे वे उनके जीवन-दर्शन, उनकी शिक्षाओं, उनके विचारों व कार्यक्रमों और जीवनमें उठनेवाली अगणित समस्याओंपर उनके विचारोंको, तर्कसंगत तथा दार्शनिक ढंगसे और विभिन्न शीर्षकों तथा श्रेणियोंमें विभाजित करके, प्रबंधके जैसे रूपमें प्रस्तुत करनेमें समर्थ होंगे। उनकी जीवन-योजनामें छोटी और बड़ी बातों, संसारव्यापी महत्त्वकी और परिमित व्यक्तिगत महत्त्वकी समस्याओं — सबके लिए स्थान था। यद्यपि उन्हें जीवन-भर बड़े-बड़े राजनीतिक प्रश्नोंसे उलझे रहना पड़ा, फिर भी उनके लेखोंका एक बहुत बड़ा भाग सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक और भाषा-सम्बन्धी समस्याओंसे सम्बन्ध रखता है।

वे पत्र-व्यवहारमें बहुत नियमित थे। ऐसा पत्र शायद ही कोई हो, जिसके विचारपूर्ण उत्तरकी आवश्यकता रही हो और वह उन्होंने खुद न दिया हो। व्यक्तियोंके नाम पत्र, जिनमें उन व्यक्तियोंकी निजी और वैयक्तिक समस्याओंकी चर्चा होती थी, उनके पत्र-व्यवहारका एक बड़ा भाग थे। और उनके जवाब

वैसी ही समस्याओंवाले दूसरे व्यक्तियोंके मार्ग-दर्शनके लिए मूल्यवान हैं। अपने जीवनमें दीर्घकालतक उन्होंने शीघ्रलिपिक या मुद्रलेखककी मदद नहीं ली। उन्हें जो कुछ लिखना होता था, वे अपने हाथसे लिखते थे। और जब इस तरहकी मदद अनिवार्य हो गई तब भी वे बहुत-सा लेखन अपने हाथसे ही करते रहे। ऐसे मौके आये जब वे अपने दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे लिखनेमें समर्थ नहीं रहे, और जीवनकी उत्तरावस्थामें उन्होंने बायें हाथसे लिखनेकी कलाका अभ्यास किया। यही उन्होंने कातनेमें भी किया। इस तरह, जिस खानगी पत्र-व्यवहारमें उनका बहुत-सा लेखन समाया वह जनसाधारणके दैनिक जीवनकी समस्याओंपर लागू होनेवाली उनकी शिक्षाओंका एक महत्त्वपूर्ण और सारगर्भित अंग बन गया।

अगर कभी कोई ऐसा पुरुष हुआ है जिसने जीवनको सम्पूर्ण रूपमें देखा और जिसने अपने-आपको सम्पूर्ण मानवजातिकी सेवामें निछावर कर दिया, तो वह निश्चय ही गांधीजी थे। अगर उनकी विचारधाराका संबल श्रद्धा और सेवाके उच्च आदर्श थे, तो उनके कार्य और प्रत्यक्ष शिक्षाएँ सदा एकान्त नैतिक और अत्यन्त व्यावहारिक विचारोंसे प्रभावित होती थीं। लोकनेताकी हैसियतसे अपने लगभग साठ वर्षके सारे सेवा-कालमें उन्होंने कभी भी सामयिक सुविधाओंके अनुसार अपने विचारोंको नहीं बदला। दूसरे शब्दोंमें, उन्होंने कभी उचित साध्यके लिए अनुचित साधनोंका प्रयोग नहीं किया। साधन चुननेमें वे इतनी अधिक सूक्ष्मतासे काम लेते थे कि साध्यकी सिद्धि भी साधनोंके गुण-दोषके अधीन हो जाती थी, क्योंकि उनका विश्वास था कि उचित साध्य अनुचित साधनोंसे प्राप्त नहीं किया जा सकता; और अनुचित साधनोंसे जो प्राप्त किया जा सके वह उचित साध्यका विकृत रूपमात्र होगा।

उनके लेखों और भाषणोंके इस संग्रहका महत्त्व स्पष्टतः असन्दिग्ध और स्थायी है। इसमें उस विभूतिके अनुपम मानवीय और अत्यन्त कर्मठ सार्वजनिक जीवनकी छः दशाब्दियोंके शब्द उपलब्ध हैं — ऐसे शब्द, जिन्होंने एक अनोखे आन्दोलनको रूप दिया, परिपुष्ट किया और सफलता तक पहुँचाया; ऐसे शब्द, जिन्होंने संख्यातीत व्यक्तियोंको प्रेरणा दी और प्रकाश दिखाया; ऐसे शब्द, जिन्होंने जीवनका एक नया ढंग खोजा और दिखाया; ऐसे शब्द, जिन्होंने उन सांस्कृतिक मूल्योंपर जोर दिया, जो आध्यात्मिक तथा सनातन हैं, समय और स्थानकी परिधिके परे हैं और सम्पूर्ण मानवजाति तथा सब युगोंकी सम्पत्ति हैं। इसलिए, उनको संचित करनेका प्रयत्न शुभ है।
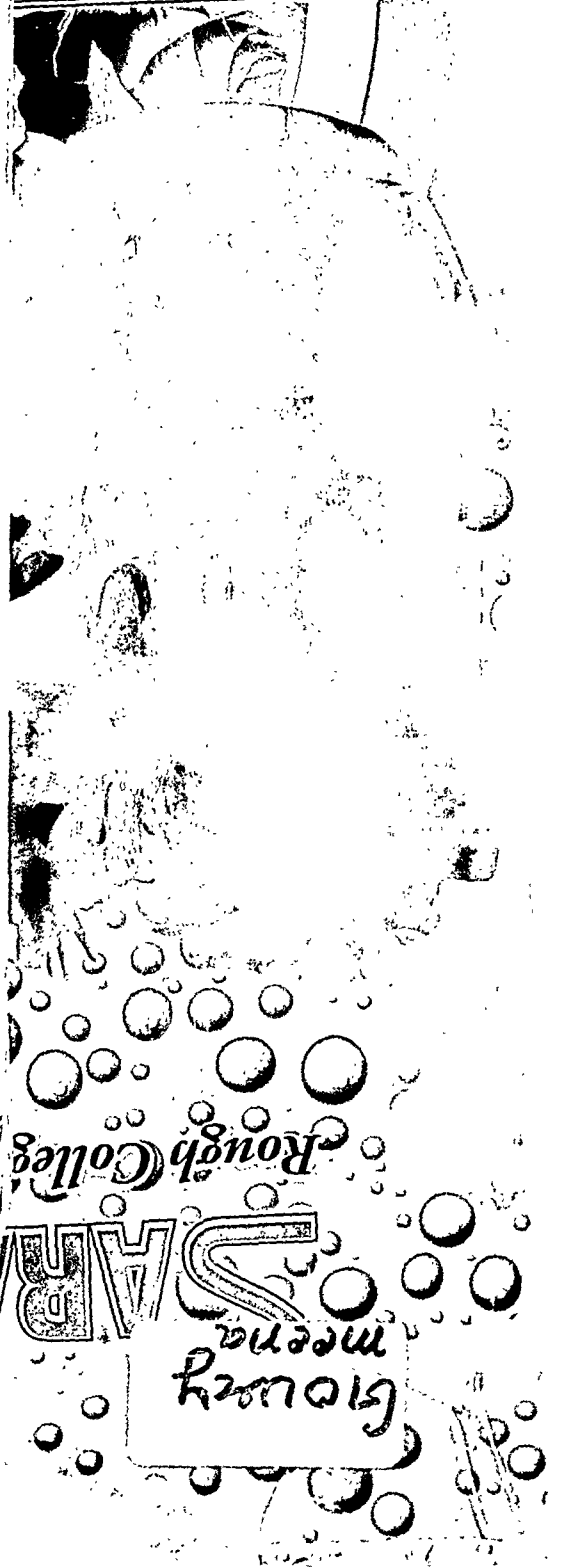
उनकी कार्य-पद्धति आत्माको स्फुरित कर देनेवाली एक घोषणा है — मनुष्यमें मनुष्यके स्थायी विश्वासकी, इस विश्वासकी कि मनुष्यकी आध्यात्मिक सिद्धिमें नैतिक भावना निहित है ही। उनकी कल्पनाकी स्वाधीनता कोरे कानूनों और राजकीय निर्णयोंसे प्राप्त नहीं की जा सकती, न वह केवल वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगतिसे ही प्राप्त हो सकती है। कोई भी समाज सच्चे अर्थमें स्वतंत्र तभी हो सकता है, जब कि वह स्वतंत्रताके लिए संगठित हो। और उस संगठनका आरम्भ व्यक्तिका अपने-आपसे करना आवश्यक है। जहाँतक भारतका राष्ट्रीय जीवन उनके विचारोंसे प्रेरित और उनके विचारोंके साँचेमें ढला रहेगा, वहाँतक वह स्फूर्तिका स्रोत बना रहेगा। जहाँतक स्वतंत्र भारत उनके विचारोंको कार्यान्वित करेगा और उत्तरोत्तर उच्च समन्वय सिद्ध करता जायेगा, वहाँतक वह संस्कृतिकी मर्यादा विस्तृत करने और एक नई परम्परा स्थापित करनेमें सफल होगा।

तथापि, अबतक उनके बहुत-से विचार पूर्णतः आत्मसात नहीं किये गये। यह तो माना जाता है कि किसी भी समाज-व्यवस्थाके उन्मुक्तिकारी स्वरूपका निर्णय इस बातसे किया जाना चाहिए कि वह अपने सदस्योंको किस अंशतक प्रत्यक्ष स्वतंत्रता प्रदान करती है; परन्तु इस वस्तुस्थितिको पर्याप्त मात्रामें समझा नहीं गया कि संगठनका — चाहे वह औद्योगिक हो, चाहे सामाजिक या राजनीतिक — जितना केन्द्रीकरण होता है, उससे उसी हदतक व्यक्तिकी स्वतंत्रता घटती है। उत्तम मध्यमार्ग अभी खोजना और अपनाना शेष है। उनके अर्थशास्त्रको बहुधा दुर्लभताकी स्थितिके साथ न भी हो, तो आत्मनिग्रहकी स्थितिके साथ मिला दिया जाता है। उनके अनुशासनकी नीरस और सौन्दर्यहीन कठोर नैतिकताके साथ खिचड़ी पका दी जाती है। अपनी जरूरतें थोड़ी और सीमित रखकर उन्होंने पूर्ण और समृद्ध जीवन व्यतीत किया और अपने निजके रहन-सहनमें अपने विश्वासोंके सत्यका प्रदर्शन किया, जो क्षीण श्रद्धाकी पृष्ठभूमिपर सत्यसे बहुत अधिक उदात्त प्रतीत होता था। इसी रोशनीमें हमें उनके आश्रमवासियोंके नियमों और व्रतोंको समझना है, जिन्हें प्रतिदिन सुबह-शाम प्रार्थनाके समय दुहराया जाता था और जो ये थे : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, निर्भयता, सर्वधर्म-समभाव, अस्पृश्यता-निवारण और अपने कर्त्तव्यपालनमें स्वदेशीकी भावनाका प्रयोग।

मैं इस आश्वासनके साथ इसे समाप्त करूँगा कि जो भी गांधीजीकी जीवन-सरितामें, जैसी कि वह इस ग्रंथमालामें प्रकट हुई है, डुबकी लगायेगा, वह निराश होकर न निकलेगा; क्योंकि उसमें एक ऐसा खजाना समाया हुआ है, जिससे हरएक व्यक्ति अपनी शक्ति और श्रद्धाके अनुसार, जितना चाहे उतना ले सकता है।

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
जनवरी १६, १९५८

राजेन्द्रप्रसाद

प्रस्तावना

महीने भरमें दस साल पूरे हो जायेंगे, गांधीजीके जीवनका अन्त हुए। वे पकी उम्रके थे, लेकिन उनमें जीवन-शक्ति भरपूर थी और उनकी काम करनेकी शक्ति अपार थी। अचानक एक हत्यारेके हाथों उनका अन्त हुआ। भारतको धक्का पहुँचा और दुनिया दुःखी हुई, और हम लोगोंके लिए, जिनका उनसे ज्यादा निकट सम्बन्ध था, उस धक्के और उस दुःखको सहना कठिन हो गया। फिर भी, शायद यही एक उचित अन्त था ऐसे शानदार जीवनका; और उन्होंने जैसे जीकर वैसे ही मरकर भी उसी कामको पूरा किया, जिसमें अपने-आपको लगा रखा था। उम्रके साथ-साथ शरीर और मनसे उनका धीरे-धीरे ढलना हममें से किसीको अच्छा न लगता। और इस तरह, आशा और सफलताके एक दमकते हुए सितारेकी भाँति, जिस राष्ट्रको उन्होंने आधी सदी तक गढ़ा और सिखाया था, उसके पिताके रूपमें वे जिये और मरे।

उन लोगोंके लिए जिन्हें कि उनके बहुत-से कामोंमें से कुछमें उनके साथ रहनेका सौभाग्य रहा है, वे सदा नौजवानोंकी-सी शक्तिके प्रतीक बने रहेंगे। हम उनकी याद एक बूढ़े आदमीके रूपमें नहीं करेंगे, बल्कि एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें करेंगे, जो वसन्तकी संजीवनी लेकर नये भारतके जन्मका प्रतिनिधि बना। उस नई पीढ़ीके लिए, जिसका उनसे निजी लगाव नहीं हो पाया, वे एक परम्परा बन गये हैं, और उनके नाम और कामके साथ न जाने कितनी कहानियाँ जुड़ गई हैं। जीते समय वे बड़े थे, मरनेपर और भी बड़े हो गये हैं।

मुझे खुशी है कि भारत-सरकार उनके लेखों और भाषणोंका पूरा संग्रह प्रकाशित कर रही है। यह निहायत जरूरी है कि उन्होंने जो कुछ लिखा और कहा है उसका एक पूरा और प्रामाणिक संग्रह तैयार किया जाये। उनके काम अनेक थे, और उन्होंने लिखा भी बहुत है। इसलिए ऐसा संग्रह तैयार करना अपने-आपमें ही बहुत बड़ा काम है। और इसे पूरा करनेमें कई साल लग सकते हैं। लेकिन इसे करना हमारा कर्तव्य है — खुद अपने प्रति और आगे आनेवाली पीढ़ियोंके प्रति।

ऐसे संग्रहमें महत्त्वकी और बिना महत्त्वकी या आकस्मिक चीजोंका मिल-जुल जाना अनिवार्य है। फिर भी, कभी-कभी आकस्मिक शब्द ही आदमीके विचारोंपर ज्यादा रोशनी डालते हैं, बनिस्बत बहुत सोचे-विचारे हुए लेख या कथनके। कुछ हो, चुनाव और छँटाव करनेवाले हम कौन होते हैं? उन्हें अपनी बात आप कहने दें। उनके लिए जिन्दगी एक समूची चीज थी — बहुत-से रंगोंके एक झीने बुने हुए वस्त्रकी भाँति। किसी बच्चेसे दो शब्द बोल लेना, किसी पीड़ितको हल्केसे सहला देना उनके लिए उतनी ही बड़ी बात थी, जितनी कि ब्रिटिश साम्राज्यको चुनौती देनेका कोई प्रस्ताव।

श्रद्धाकी पूरी भावनासे हम इस कामको उठायें, ताकि आगे आनेवाली पीढ़ियोंको कुछ झाँकी मिले हमारे इस प्यारे नेताकी, जिसने अपने प्रकाशसे हमारी पीढ़ीको आलोकित किया; और जिसने हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई, बल्कि हमें एक ऐसी दृष्टि भी दी, जिससे हम उन गहरे गुणोंको पहचानें, जो आदमीको बड़ा बनाते हैं। आनेवाले युगोंके लोग अचरज करेंगे कि किसी जमानेमें एक ऐसे महापुरुषने हमारी भारतभूमिपर पग नापे थे और अपने प्रेम और सेवासे हमारी जनताको ही नहीं, बल्कि सारी मनुष्य-जातिको तर किया था।

मैं यह दार्जिलिंगमें लिख रहा हूँ, और विशाल कंचनजंघा हमारे सामने ऊँचा खड़ा हुआ है। आज सवेरे मैंने गौरीशंकर — एवरेस्ट — की झलक देखी थी। मुझे ऐसा लगा कि गौरीशंकर और कंचनजंघाकी प्रशान्त शक्ति और नित्यता कुछ अंशोंमें गांधीजीमें भी विद्यमान थी।

दार्जिलिंग,
दिसम्बर २७, १९५७

जवाहरलाल नेहरू
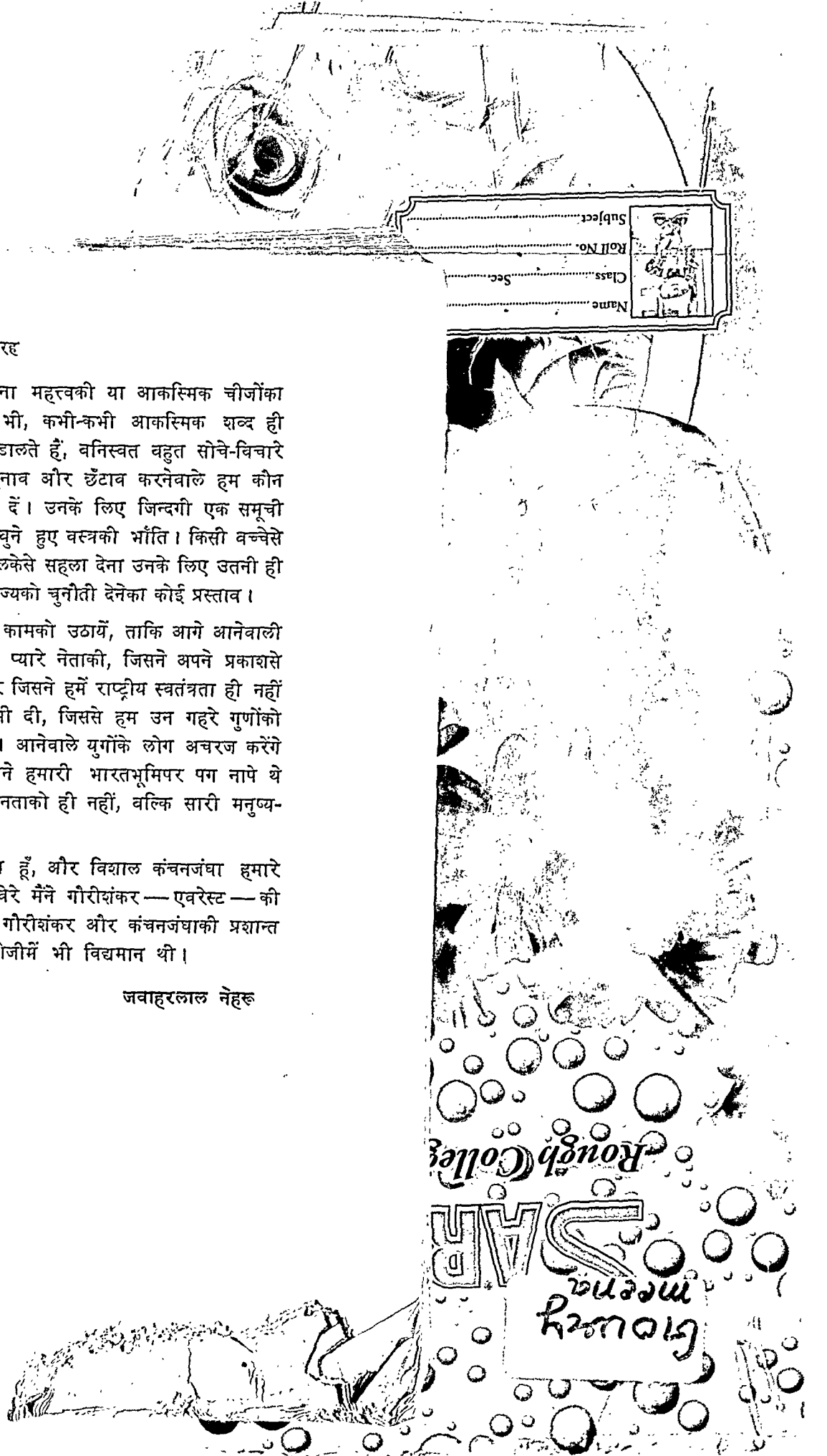
सामान्य भूमिका

भारत-सरकारने सम्पूर्ण गांधी वाङ्मयके प्रकाशनका यह आयोजन राष्ट्र-स्वातन्त्र्य-शिल्पीके प्रति राष्ट्रका ऋण चुकानेकी भावना-मात्रसे नहीं किया, बल्कि इस दृढ़ विश्वाससे किया है कि भावी पीढ़ियोंके लिए उन महात्माके तमाम भाषणों, लेखों और पत्रोंको एक स्थानपर एकत्र करके छाप रखना जरूरी है।

इस ग्रंथमालाका मंशा गांधीजीने दिन-प्रति-दिन और वर्ष-प्रति-वर्ष जो कुछ कहा और लिखा उस सबको एकत्र करना है। उनके सेवाव्रतका विस्तार आधी शताब्दी तक रहा और उसने हमारे देशके अलावा दूसरे अनेक देशोंको भी प्रभावित किया। जीवन-समस्याओंकी जितनी विविधता-पर उन्होंने ध्यान दिया उससे अधिकपर बहुत कम महापुरुषोंने दिया है। जिन लोगोंने उनको सशरीर इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए, प्रत्येक क्षण अपने विश्वासोंको कार्यरूप देते हुए देखा है, उनका कर्तव्य है कि वे आने-वाली पीढ़ियोंको उनकी शिक्षाओंकी समृद्ध विरासत शुद्ध और, जहाँतक हो सके, पूर्ण रूपमें सौंप जायें — उनपर उन पीढ़ियोंका यह ऋण है, जिन्हें उन महात्माकी उपस्थिति और उदाहरणसे शिक्षा लेनेका मौका नहीं मिल सकता।

गांधीजीके लेख, भाषण और पत्र लगभग ६० वर्षके अत्यन्त कर्मठ सार्वजनिक जीवन — १८८८ से १९४८ तकके हैं। वे दुनियाके विभिन्न भागों, खास तौरसे तीन देशों — भारत, इंग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकामें बिखरे हुए हैं।

लेख और भाषण केवल उन थोड़ी-सी पुस्तकोंमें ही नहीं हैं जो उन्होंने लिखी हैं, या जो उनके जीवन-कालमें प्रकाशित हुई थीं। वे धूल खाती हुई फाइलों, सरकारी कागज-पत्रों तथा रिपोर्टों (ब्ल्यू बुक्स) और पुराने अंग्रेजी, गुजराती तथा हिन्दी समाचारपत्रोंके ढेरोंमें भी हैं। उनके पत्र बड़े और छोटे, धनी और गरीब, सब जातियों और धर्मोंके असंख्य व्यक्तियोंके पास सारी दुनियामें फैले हुए हैं। ऐसी सारी सामग्रीको नष्ट हो जाने या खो जानेके पहले ही एकत्र कर लेना जरूरी है।

निस्सन्देह, उनके लेखों और भाषणोंके अनेक संग्रह या, अधिक ठीक कहा जाये तो, संकलन मौजूद हैं। उनका प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय रूपमें नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबादने स्वयं गांधीजीके स्थापित किये हुए न्यास (ट्रस्ट) के अन्तर्गत किया है। ये प्रकाशन बहुमूल्य तो हैं, परन्तु इनमें से अधिकतर गांधीजीके भारतीय कार्यकाल और मुख्यतः उनके *नवजीवन* तथा *यंग इंडिया* और *हरिजन*-कुटुम्बके जैसे साप्ताहिकोंमें प्रकाशित सामग्री तक ही सीमित हैं। इसके अतिरिक्त, वे अधिकतर विषयवार संकलित किये गये हैं। फलतः कभी-कभी उनमें लेखों या भाषणोंके इष्ट विषय-सम्बन्धी अंशमात्र दे दिये गये हैं और अन्य अंशोंको छोड़ दिया गया है।

जहाँतक पत्रोंका सम्बन्ध है, गांधी स्मारक निधिने जितने उसे मिल सके उतने एकत्र करके और उनके फोटो निकलवाकर बहुत बड़ी सेवा की है। परन्तु उन्हें अबतक प्रकाशित नहीं किया गया। उसके एकत्र किये हुए पत्रोंकी संख्या हजारोंतक पहुँच चुकी है। फिर भी अभी बहुत-से और पत्रोंको एकत्र करना और सबको प्रकाशित कर देना शेष है।

इस तरह, गांधीजीके सारे लेखों, भाषणों और पत्रोंको, वे उनके जीवनके किसी भी कालके और कहीं भी उपलब्ध क्यों न हों, एकत्र करने और सबको पूरे-पूरे तथा तिथि-क्रमसे प्रकाशित कर देनेका कोई प्रयत्न अबतक नहीं किया गया। यह कार्य खानगी तौरपर काम करनेवाले व्यक्तियों या संस्थाओंके साधनोंके परे था। फलतः भारत-सरकारने इसे उठा लिया है।

गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकाके आरम्भिक कालमें भी लेखों, भाषणों और पत्रोंके रूपमें जो सामग्री प्रस्तुत की थी उसकी मात्रा भी बहुत बड़ी है। सम्भवतः इस कालसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री लगभग एक दर्जन जिल्दोंमें पूरी होगी। साधारण अनुमानके अनुसार, सम्पूर्ण ग्रंथमाला चार-चार सौ पृष्ठोंके उतने ही खण्डोंकी हो सकती है, जितने गांधीजीके सार्वजनिक जीवनके वर्ष हैं।

इसके अतिरिक्त, उनकी वाणी एक ही भाषा तक सीमित नहीं थी। उन्होंने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी — तीन भाषाओंमें लिखा और भाषण दिये हैं। फलतः सम्पादकोंका काम केवल संग्रह करनेका नहीं है, बल्कि गुजराती और हिन्दीसे अंग्रेजीमें तथा गुजराती और अंग्रेजीसे हिन्दीमें — जिन दो भाषाओंमें ग्रंथमाला प्रकाशित की जायेगी — शुद्ध अनुवाद करनेका भी है। काम इस कारण भी उलझा हुआ है कि गांधीजीके जीवनका जो
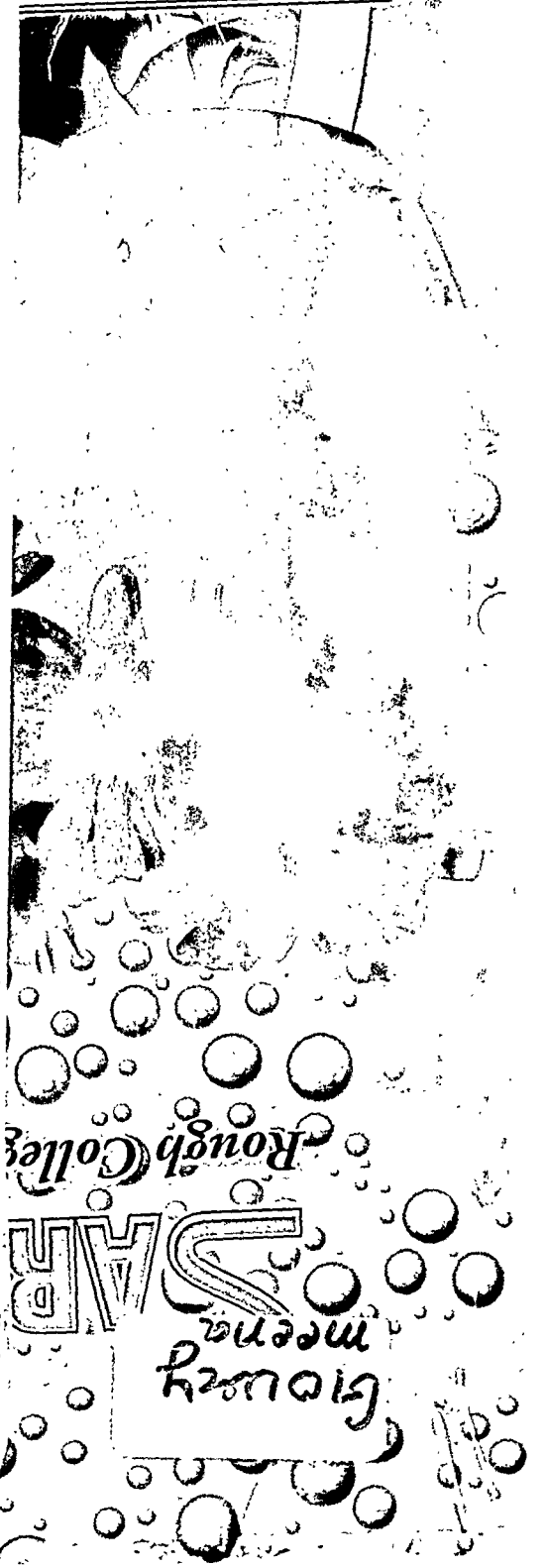
आरम्भिक भाग दक्षिण आफ्रिकामें व्यतीत हुआ था उसकी सामग्री भारतके बाहर — लंदनके औपनिवेशिक कार्यालयके कागज-पत्रोंमें और स्वयं दक्षिण आफ्रिकामें पड़ी हुई है। दक्षिण आफ्रिकाके मूल साधनोंमें पैठ होना अपेक्षाकृत कठिन है। गांधीजीने सरकारी अधिकारियोंको जो कुछ लिखा था, उसके अलावा *इंडियन ओपिनियनमें* भी बहुत लिखा था। *यंग इंडिया*, *नवजीवन* और *हरिजनमें* उनके बादके लेखोंके विपरीत *इंडियन ओपिनियनके* लेखोंमें उनका नाम नहीं छपता था। उनके लेखोंको पहचानने और प्रमाणित करानेमें सम्पादकोंको श्री हेनरी एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीसे बहुमूल्य सहायता मिली है। इन दोनों महानुभावोंका न केवल *इंडियन ओपिनियनसे*, वरन् दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके दूसरे कामोंसे भी घनिष्ठ सम्बन्ध था।

कामके स्वरूपको देखते हुए इस संग्रहको पूर्ण अथवा अन्तिम माननेका दावा नहीं किया जा सकता। आगेकी खोजसे ऐसे कागज-पत्रोंका पता चल सकता है जो अभी प्राप्य नहीं हैं। पूर्णता लानेके लिए अनिश्चित कालतक रुके रहना उचित न होता। इसमें सुधार करनेका कार्य भविष्यके लिए ही छोड़ देना उचित है। फिर भी, हालमें जो भी सामग्री मिल सकती है उस सबको इकट्ठा करने और परखनेका तथा छोटी-छोटी टिप्पणियोंके साथ, ताकि मूलको समझनेमें पाठकोंको मदद मिले, प्रकाशित कर देनेका प्रत्येक प्रयत्न किया जा रहा है। अगर कोई सामग्री बहुत देरीसे मिली, जिससे कि उसे उपयुक्त खण्डमें शामिल करना सम्भव ही न हो, तो उसे अलग प्रकाशित करनेका विचार किया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सामग्रीको तारीखोंके क्रमसे रखा जायेगा। एक तारीखकी सारी सामग्री — वह लेख, भाषण या पत्र, कुछ भी हो — एक साथ दी जायेगी। विभिन्न वर्गकी सामग्रीको विभिन्न ग्रंथ-मालाओंमें प्रकाशित करनेके बदले इस व्यवस्थाको पसन्द करनेका मुख्य कारण यह है कि वैसा पृथक्करण कृत्रिम होगा। गांधीजीने अक्सर किसी एक ही विषयकी चर्चा लेख, भाषण और पत्र — सबमें की है, और यह सब थोड़े ही दिनोंके बीचमें हुआ है। वे जीवनको समूचे रूपमें देखते थे, अलग-अलग विभागोंमें नहीं। अपने विचार प्रकट करनेका जो भी माध्यम — लेख, भाषण या पत्र — उन्होंने चुना, उसके कारण उनके विचारोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। अगर ये सब एक ही पुस्तकमें एक-दूसरेके साथ ठीक तिथि-

क्रमसे रखे जायें तो पाठकोंको अधिक पूर्ण चित्र मिलेगा कि गांधीजी कैसे काम करते थे और कैसे विभिन्न प्रश्नोंको, जैसे-जैसे वे उठते, निबटाया करते थे। ऐसा होनेपर ये पुस्तकें गांधीजीके उस मानसके वैभवको प्रकट करेंगी, जो भारी सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नोंका निर्वाह करते हुए भी व्यक्तियोंकी गहरी निजी समस्याओंमें कम निरत नहीं रहता था। व्यक्तिगत पत्रोंको सार्वजनिक प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीके बीच रखनेसे गांधीजीके व्यक्तित्वकी छवि उन्हें एक स्वतन्त्र ग्रंथमालामें प्रकाशित कर देनेकी अपेक्षा अधिक सच्चे और पूर्ण रूपमें प्राप्त होती है।

ग्रंथमालाका उद्देश्य यह है कि जहाँतक सम्भव हो, गांधीजीके मूल शब्द ही प्रकाशित किये जायें। इसलिए उनके भाषणों, मुलाकातों और चर्चाओंकी वे रिपोर्टें छोड़ दी गई हैं, जो प्रामाणिक नहीं मालूम हुईं। उनके कथनोंकी परोक्त (इंडायरेक्ट) रिपोर्टें भी शामिल नहीं की गईं। तथापि, जहाँतक भाषणोंका सम्बन्ध है, उनकी ऐसी रिपोर्टें ले ली गई हैं, जिनकी प्रामाणिकता सन्देहके परे थी। यदि किसी भाषणकी स्वयमुक्त (डायरेक्ट) रिपोर्ट छापी ही नहीं गई या यदि किसीसे ऐसी जानकारी मिलती है जो दूसरे रूपमें उपलब्ध है ही नहीं, तो उसकी भी परोक्त रिपोर्ट शामिल कर ली गई है। गांधीजीने जो कागजात या पत्र खालिस तौरपर अपने पेशेके सिलसिलेमें बैरिस्टरकी हैसियतसे लिखे थे और जो कागज-पत्र बिलकुल नित्य जीवनके ढर्रेके थे तथा जिनका जीवनचरित-सम्बन्धी कोई महत्त्व नहीं था, उन्हें भी छोड़ दिया गया है। विश्वस्त रूपके पत्रों और ऐसे पत्रोंको भी शामिल नहीं किया गया जिनको प्रकाशित करनेसे किसी जीवित व्यक्तिको परेशानी हो सकती थी।

हिन्दी तथा गुजरातीसे अंग्रेजीमें और अंग्रेजी तथा गुजरातीसे हिन्दीमें अनुवाद सावधानीसे चुने हुए अनुभवी अनुवादक कर रहे हैं। शैलीको समान रखनेके लिए एक खण्डकी सामग्रीका अनुवाद यथासम्भव एक ही अनुवादक करता है।

सामग्रीको उद्धृत करनेमें मूलका दृढ़ताके साथ अनुसरण करनेका प्रयत्न किया गया है। छपाईकी स्पष्ट भूलोंको सुधार दिया गया है, और मूलमें जिन शब्दोंको संक्षेपमें लिखा गया था उन्हें पूरा कर दिया गया है।

लिखनेकी तारीख सब जगह एक समान ऊपरके दाहिने कोनेपर दे दी गई है, जैसी कि पत्रोंमें देनेकी साधारण प्रथा है। यदि कुछ रचनाओंमें वह अन्तमें थी तो उसे भी ऊपर कर दिया गया है। जहाँ मूलमें कोई
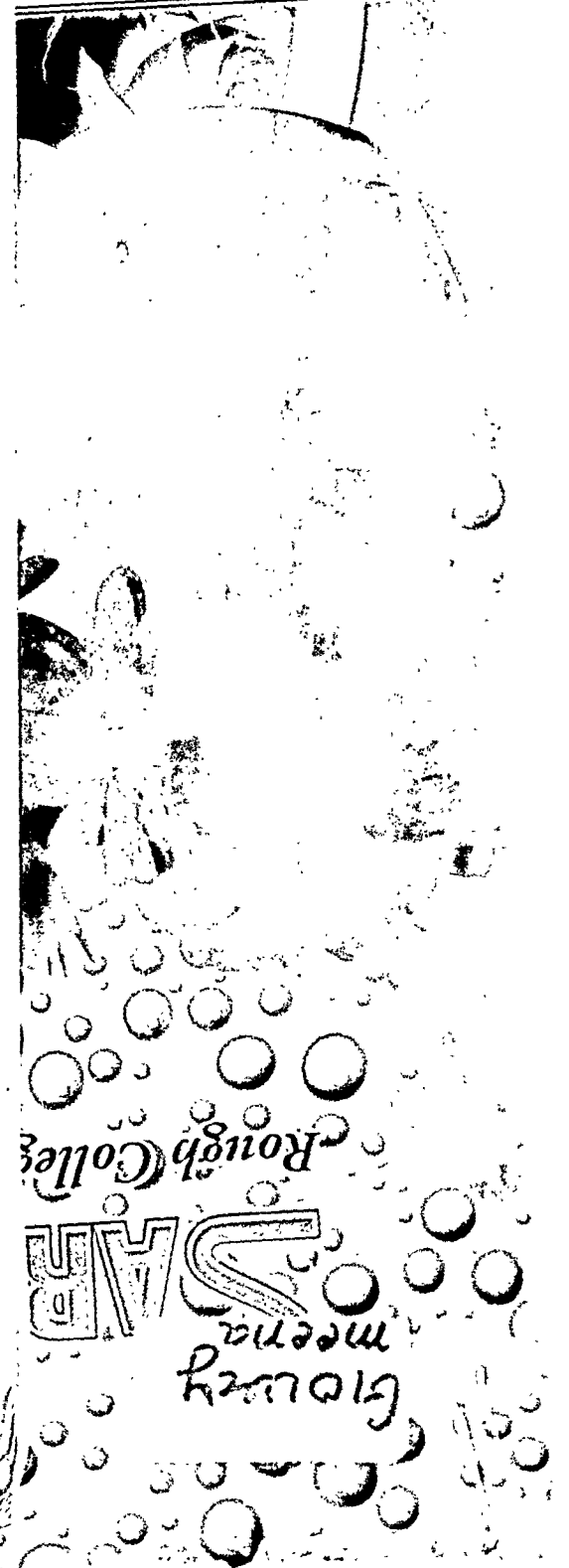
तारीख नहीं थी वहाँ चौकोर कोष्ठकोंके अन्दर आसपासकी तारीख दे दी गई है और, जहाँ जरूरी हुआ है, ऐसी तारीख देनेके कारण भी बता दिये गये हैं। अन्तमें दी हुई तारीख प्रकाशनकी है। व्यक्तिगत पत्रोंमें, जिनको वे लिखे गये हैं उन व्यक्तियोंके नाम समान रूपसे ऊपर दे दिये गये हैं। जो सामग्री जिस साधनसे मिली है उसका उल्लेख उसके अन्तमें कर दिया गया है।

मूलका परिचय करानेके लिए जो सामग्री छोटे अक्षरोंमें दी गई है, वह सम्पादकोंकी लिखी हुई है। पाद-टिप्पणियों और पाठके बीचमें चौकोर कोष्ठकोंमें दी हुई सब सामग्री भी ऐसी ही है।

अनुवादमें जहाँ-कहीं कुछ शब्दोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए दूसरे शब्दोंका उपयोग किया गया है वहाँ उन दूसरे शब्दोंको भी चौकोर कोष्ठकोंमें रख दिया गया है। गोल कोष्ठकोंका उपयोग मूलके अनुसार ही किया गया है।

मूलमें जहाँ गांधीजीने दूसरे सूत्रोंसे या, कभी-कभी, अपने ही लेखों, वक्तव्यों अथवा रिपोर्टोंसे उद्धरण दिये हैं, वहाँ उन उद्धरणोंको पृथक् अनुच्छेदों और काले अक्षरोंमें ज्यादा हाशिया छोड़कर छापा गया है।

पाद-टिप्पणियोंको कमसे कम कर देनेके लिए, पुस्तकके अन्तमें व्यक्तियों, स्थानों, कानूनों और बड़े-बड़े सन्दर्भों पर टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। प्रत्येक खण्डमें उसके कालसे सम्बन्ध रखनेवाला तिथिवार जीवन-क्रम और सामग्रीके साधन-सूत्रोंका परिचय भी शामिल कर दिया गया है।
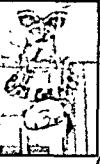
इस आयोजनका आरम्भ फरवरी १९५६ में किया गया था। इसके सूत्रपातका श्रेय श्री पुरुषोत्तम मंगेश लाडको है, जो उस समय भारत सरकारके सूचना और प्रसार मंत्रालयके सचिव थे और जिन्होंने, मार्च १९५७ में अपनी असामयिक मृत्युके पूर्व, इस कार्यकी नींव रखनेमें मदद की थी।

ग्रंथमालाका नियन्त्रण और निर्देशन एक परामर्श-मण्डलके अधीन है, जिसके प्रथम सदस्य थे: श्री मोरारजी र० देसाई (अध्यक्ष), श्री काकासाहब कालेलकर, श्री देवदास गांधी, श्री प्यारेलाल नैयर, श्री मगनभाई प्र० देसाई, श्री जी० रामचन्द्रन्, श्री श्रीमन्नारायण, श्री जीवनजी डा० देसाई और श्री पुरुषोत्तम मंगेश लाड। इस मण्डलके बनाये जानेका उद्देश्य यह था कि योजनाको गांधीजीके जीवन और कार्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियोंके परामर्श और अनुभवका लाभ मिले।

सामग्री एकत्र करनेके कामकी व्यवस्था करने और ग्रंथोंका सम्पादन करनेका कार्य एक प्रधान सम्पादकको सौंपा गया है। श्री भारतन् कुमारप्पा प्रधान सम्पादक नियुक्त किये गये थे। बादमें वे परामर्श-मण्डलके सदस्य भी नियुक्त कर दिये गये थे। उन्होंने, जून १९५७ में अपने देहान्तके समय तक, अनन्य निष्ठाके साथ काम किया था। जब पहला खण्ड छपनेके लिए जाने ही वाला था उस समय, उनके देहान्तके बाद, परामर्श-मण्डलने श्री जयरामदास दौलतरामको प्रधान सम्पादक बननेके लिए आमन्त्रित किया, और उन्हें परामर्श-मण्डलका सदस्य भी नियुक्त किया गया।

सम्पादकोंकी एक टोली प्रधान सम्पादकको सहायता प्रदान करती है। उनके सदस्य ये हैं: श्री उल्लाल रत्नाकर राव, लेखोंके लिए; श्री रामचन्द्र कृष्ण प्रभु, भाषणोंके लिए; श्री पाण्डुरंग गणेश देशपाण्डे, पत्रोंके लिए; श्री सीताचरण दीक्षित, हिन्दीके लिए; और श्री मनुभाई कल्याणजी देसाई तथा श्री रतिलाल मेहता, गुजरातीके लिए।

इस खण्डकी भूमिका

इस खण्डमें गांधीजीके जीवनके प्रथम कालकी सामग्री दी जा रही है। यह काल सम्पादकोंके लिए सबसे कठिन था। इसके अधिक प्रवृत्तिमय उत्तर भागमें गांधीजी विदेशोंमें रहे थे। इंग्लैंडमें वे पढ़ते थे और दक्षिण आफ्रिकामें शुरू-शुरूमें बैरिस्टरकी हैसियतसे गये थे। फलतः इस कालकी मूल सामग्री भी मुख्यतः इन्हीं दोनों देशोंमें उपलब्ध थी।

सौभाग्यसे गांधीजीने इस कालकी कुछ सामग्री सुरक्षित रखी थी और उसे वे भारत ले आये थे। उसमें निम्नलिखित वस्तुएँ थीं: उनके पत्र-व्यवहारकी कार्बन-नकलें, पत्रों और स्मरणपत्रोंके हस्तलिखित मसविदे, प्रार्थनापत्रों और उनके प्रकाशित किये हुए पत्रकोंकी टाइप की हुई या छपी प्रतियाँ, दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंकी कतरनें और दक्षिण आफ्रिकाकी कुछ सरकारी रिपोर्टें (ब्ल्यू बुक्स) जिनमें उनके कुछ पत्र, प्रार्थनापत्र और वक्तव्य छपे थे।

फिर भी, गांधीजीने अपनी लिखी हुई सब वस्तुएँ सुरक्षित नहीं रखी थीं। उन्होंने हिन्दू धर्मके मूल तत्त्वोंपर कुछ लिखा था। उसकी चर्चा करते हुए अपनी गुजराती पुस्तक *दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास* (१९५०, पृष्ठ २७८) में उन्होंने कहा है: "ऐसी तो कितनी ही चीजें मैंने अपने जीवनमें फेंक दी हैं, या जला डाली हैं। इन वस्तुओंका संग्रह करनेकी जरूरत जैसे-जैसे मुझे कम मालूम होती गई और जैसे-जैसे मेरी प्रवृत्तियाँ बढ़ती गईं, वैसे-वैसे मैं इन्हें नष्ट करता गया। इसका मुझे पछतावा नहीं है। इन वस्तुओंका संग्रह मेरे लिए भार-रूप और बहुत खर्चीला हो जाता। मुझे इनको संचित करनेके साधन जुटाने पड़ते। यह मेरी अपरिग्रही आत्माके लिए असह्य होता।"

लंदन और दक्षिण आफ्रिकामें जो सरकारी तथा अन्य कागज-पत्र उपलब्ध हैं, उनसे अनुसन्धान-सहायक हमारे लिए सामग्री एकत्र कर रहे हैं। गांधीजी स्वयं अपने साथ दक्षिण आफ्रिकासे जो सामग्री ले आये थे उसमें जो कुछ कमी थी उसे इस सामग्रीसे पूरा कर लिया गया है।

दक्षिण आफ्रिकासे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीमें अनेक प्रार्थनापत्र और स्मरणपत्र सम्मिलित हैं, जो गांधीजीने वहाँके भारतीय समाजकी ओरसे भेजे

थे। उन पर गांधीजीके हस्ताक्षर नहीं हैं, बल्कि समाजके प्रतिनिधि नेताओं या नेटाल भारतीय कांग्रेस अथवा ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन-जैसी संस्थाओंके पदाधिकारियोंके हस्ताक्षर हैं। फिर भी उनके मसविदे गांधीजीके ही बनाये हुए हैं। उनके २५ सितम्बर, १८९५ के पत्रसे (जो इस खण्डमें पृष्ठ २५१ पर दिया गया है) यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उसमें उन्होंने कहा है: " . . . . अनेकानेक प्रार्थनापत्रोंका मसविदा बनानेकी जिम्मेदारी पूरी-पूरी मुझपर है।" लार्ड रिपनको जुलाई १८९४ में भेजे गये प्रार्थनापत्रके बारेमें इसका प्रमाण भी मौजूद है। उसपर गांधीजीने नहीं, दूसरोंने हस्ताक्षर किये हैं। परन्तु गांधीजीने अपनी आत्मकथा (गुजराती, १९५२, पृष्ठ १४२) में कहा है: "इस प्रार्थनापत्रके पीछे मैंने बहुत मेहनत उठाई। इस विषयका जो-जो साहित्य मेरे हाथ लगा वह सब मैंने पढ़ डाला।"

यद्यपि गांधीजी १८९४ से कुछ वर्षों तक नेटालमें रहे थे, फिर भी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यसे, जिसे बादमें ट्रान्सवाल कहा जाने लगा, भेजे गये कुछ प्रार्थनापत्र भी इस खण्डमें शामिल कर दिये गये हैं। इन्हें गांधीजीके लिखे हुए माननेका कारण यह है कि उन्होंने अपने दक्षिण आफ्रिकावासका पहला वर्ष — अर्थात् १८९३ और १८९४ का कुछ-कुछ भाग — ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामें बिताया था। और उन्हें वहाँके भारतीयों तथा उनकी समस्याओंका अच्छा परिचय हो गया था। उन्होंने अपनी आत्मकथा (गुजराती, १९५२, पृष्ठ १२६) में लिखा है: "अब प्रिटोरियामें शायद ही कोई भारतीय ऐसा रहा होगा, जिसे मैं जानता न होऊँ, या जिसकी परिस्थितिसे मैं परिचित न होऊँ।" उन्होंने यह भी कहा है (आत्मकथा, गुजराती, पृष्ठ १२३): "मैंने सुझाया कि एक मण्डल स्थापित करके भारतीयोंके कष्टोंका इलाज अधिकारियोंसे मिलकर, अर्जी आदि देकर करना चाहिए। और यह वादा भी किया कि मुझे जितना समय मिलेगा उतना बिना किसी वेतनके इस कार्यके लिए दूँगा।" इसलिए, यद्यपि गांधीजी इसके बाद नेटालमें रहे फिर भी बिलकुल सम्भव है कि ट्रान्सवालके भारतीयोंने अपने प्रार्थनापत्र उनसे ही लिखवाये होंगे। वे नेटालमें रहे हों या ट्रान्सवालमें, सारे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी समस्याओंमें उनकी गहरी दिलचस्पी थी; और उन्होंने ऑरेंज फ्री स्टेट तथा केप प्रदेश-जैसे दूसरे हिस्सोंके और, यहाँतक कि, रोडेशियाके भी भारतीयोंकी समस्याओंके बारेमें लगातार लिखा है, हालाँकि वे इन देशोंमें रहे कभी नहीं।

तथापि, यह कह देना जरूरी है कि भारतीयोंके भेजे सभी प्रार्थनापत्र गांधीजीके लिखे हुए नहीं हैं। कुछ प्रार्थनापत्र तो वे गांधीजीके दक्षिण आफ्रिका पहुँचनेके पहले ही भेज चुके थे। स्पष्ट है कि ये प्रार्थनापत्र यूरोपीय वकीलोंने पेशेके तौरपर उनके लिए लिख दिये होंगे। ऐसा होते हुए भी, बिलकुल सम्भव है कि जैसे ही गांधीजी उनकी समस्याओंमें गहरी दिलचस्पीके साथ रंगभूमिपर आये वैसे ही भारतीयोंने अपने सारे प्रार्थनापत्र उनसे ही लिखवाने शुरू कर दिये। श्री हेनरी एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीका भी यही मत है। ये दोनों महानुभाव सन् १९०४ के आसपाससे दक्षिण आफ्रिकामें रहकर गांधीजीके साथ काम करते थे। जितने दिन गांधीजी वहाँ रहे, ये भी उनके साथ ही थे।

दो कागजात और भी हैं, जिन्हें गांधीजीके हस्ताक्षर न होनेपर भी इस खण्डमें शामिल कर दिया गया है। वे हैं — नेटाल भारतीय कांग्रेसका विधान और उसकी पहली कार्यवाही। नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापना गांधीजीने ही की थी और वे उसके पहले मन्त्री थे। उसके विधानका मसविदा गांधीजीके ही हस्ताक्षरोंमें लिखा प्राप्त हुआ है।

उपलब्ध प्रमाणोंके अनुसार, गांधीजीने पहला प्रार्थनापत्र १८९४ में लिखा था। बादमें तो, मालूम होता है, उन्होंने प्रार्थनापत्र लिखनेका ताँता ही बाँध दिया। अपने सार्वजनिक कार्यकी इस प्रारम्भिक अवस्थामें गांधीजीने अन्यायको दुरुस्त करानेके लिए सच्ची स्थितिको प्रकाशित करने और तर्कोंके द्वारा अन्यायीकी सद्बुद्धि तथा अन्तरात्माको प्रभावित करनेका तरीका अपनाया था। दक्षिण आफ्रिकामें बारह वर्ष तक इस पद्धतिका प्रयोग करनेके बाद ही वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि जब निहित-स्वार्थवाले लोग तर्कको माननेसे इनकार करें तब सत्याग्रह या सीधी कार्रवाई करना जरूरी है।

पाठकोंको स्मरण रहे कि इस खण्डमें जिस कालकी प्रवृत्तियाँ दी गई हैं उसमें गांधीजी अपनी उम्रकी बीसीमें ही थे। उनके लेखों और भाषणोंसे उल्लेखनीय आत्मसंयम तथा सौम्यता, कठोर सत्य-परायणता और विरोधीके दृष्टिकोणके प्रति पूर्ण न्याय करनेकी इच्छाका परिचय मिलता है। उनके ये लाक्षणिक गुण सारे जीवन उनके साथ रहे।

दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीने १८९३ से १९१४ तक जो काम किया उसके सम्बन्धमें सामान्य सन्दर्भके लिए इस खण्डमें दक्षिण आफ्रिकाके वैधानिक तन्त्रपर एक टिप्पणी, वहाँका संक्षिप्त इतिवृत्त, ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका

परिचय और दो नक़्शे — एक नेटालका और दूसरा दक्षिण आफ्रिकाका — दे दिये गये हैं।

गांधीजीकी संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करना इस ग्रंथमालाकी मर्यादाके अन्दर नहीं है। इसलिए इस खण्डमें गांधीजीके जीवन और कार्यका तारीखवार वृत्तान्त दे दिया गया है। उसमें प्रयत्न यह किया गया है कि जन्मसे लेकर इस खण्डके अन्तिम वर्ष तक गांधीजीके जीवनकी झाँकी पाठकोंको मिल जाये।

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम गांधी स्मारक निधि, नई दिल्लीके आभारी हैं। उसने हमें अपने ग्रंथालय और संग्रहालयका, जिसमें उपयोगी पुस्तकों तथा गांधीजीके पत्रों और अन्य अप्रकाशित कागजातकी फोटो-नकलोंका संग्रह किया गया है, मुक्त रूपसे उपयोग करने दिया है। हम साबरमती आश्रम संरक्षण व स्मारक ट्रस्ट, अहमदाबादके भी ऋणी हैं, जिसने हमें दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंकी कतरनों तथा सरकारी रिपोर्टों (ब्ल्यू बुक्स)-जैसी मूल्यवान सामग्रीका उपयोग करनेकी अनुमति दी। गांधीजीके पत्रोंका और उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें समय-समयपर जो चीजें प्रकाशित कीं उनका उपयोग करनेकी भी अनुमति उसने हमें दी।

लंदनके औपनिवेशिक कार्यालय, ब्रिटिश म्यूजियम और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटीके कार्यालय भी हमारे धन्यवादके पात्र हैं। उन्होंने हमारे लंदन-स्थित अनुसंधान-सहायकको अपने पुस्तकालयों तथा कागजपत्र-घरोंमें आवश्यक सामग्रीकी खोज करनेकी सुविधाएँ प्रदान कीं।

राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता, और कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासके समाचारपत्र-कार्यालयोंने हमें सामग्री एकत्र करनेकी जो सुविधाएँ दीं उनके लिए हम उनके भी आभारी हैं।

गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय, अहमदाबाद, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय तथा भारतीय विश्वकार्य परिषद पुस्तकालय, नई दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय (आफ्रिकी अध्ययन विभाग), यूनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन सर्विस पुस्तकालय, दिल्ली और बम्बई, विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा एशियाटिक सोसाइटी पुस्तकालय, बम्बईने हमें पुस्तकोंकी सहायता लेनेकी सुविधाएँ प्रदान कीं। हम उनके कृतज्ञ हैं।

इस खण्डमें प्रकाशित संख्या ३, ५, ६ और १३की सामग्री तथा नेटाल भारतीय कांग्रेसके संस्थापकोंके चित्रके लिए हम श्री डी० जी० तेन्दुलकर व *महात्मा*के प्रकाशकों, और फोटो-नकलोंके लिए गांधी स्मारक निधिके ऋणी हैं।
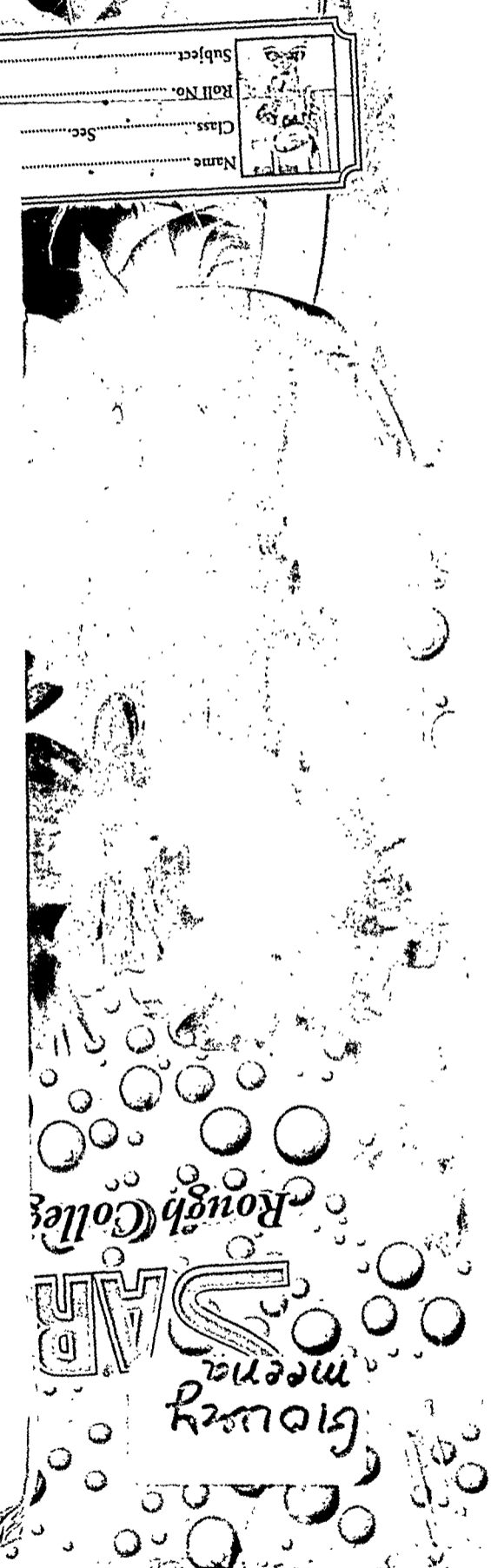
दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समस्याकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जब सन् १८९३ में गांधीजी दक्षिण आफ्रिका पहुँचे उस समय वहाँ चार उपनिवेश थे — नेटाल, केप-प्रदेश, ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री स्टेट। इन उपनिवेशोंमें उन यूरोपीयोंके वंशजोंका राज्य था, जिन्होंने कथा-कहानियोंमें वर्णित भारतकी खोजमें जाते-जाते शुद्ध संयोगसे दक्षिण आफ्रिकाका पता पा लिया था। वे वहाँ बस गये थे, और पहले-पहल तो उन्होंने पूर्व और पश्चिमके बीचोंबीच एक सुविधाजनक पड़ावके तौरपर उसका विकास किया था, बादमें अपने स्थायी निवासस्थानके रूपमें।

सन् १८९३ में वहाँ जिन गोरे लोगोंका प्रभुत्व था वे डच या बोअर और अंग्रेज थे। ट्रान्सवाल तथा आरेंज फ्री स्टेटमें डचोंका और नेटाल तथा केप-प्रदेशमें अंग्रेजोंका आधिपत्य था। अंग्रेजोंके रंगभूमिपर आने और १८०६ में केप-प्रदेश और तथा १८४३ में नेटालपर कब्जा कर लेनेके पहले डच लोग लगभग दो सौ वर्षोंसे उस देशमें प्रायः निर्विघ्न राज्य करते आ रहे थे। इन प्रदेशोंके हाथसे निकल जानेपर वे अन्दरकी ओर खिसक गये और उन्होंने ट्रान्सवाल तथा आरेंज फ्री स्टेटपर कब्जा किया। इस सबके बावजूद, ब्रिटिश लोग डच उपनिवेशोंमें और डच लोग ब्रिटिश उपनिवेशोंमें भी बने रहे।

इन दोनों समुदायोंके बीच लगातार संघर्ष होता रहता था। दोनों ही अपना-अपना प्रभुत्व देशपर स्थापित करना चाहते थे। आखिर वह संघर्ष बोअर-युद्ध (१८९९–१९०२) में परिणत हुआ, जिसके फलस्वरूप साराका सारा दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बन गया। ब्रिटिशोंका कहना था कि युद्ध करनेमें उनका मुख्य उद्देश्य डच क्षेत्रोंमें बसे हुए ब्रिटिश और भारतीय प्रजाजनोंको उनके समुचित अधिकार प्राप्त कराना था।

जब गांधीजी दक्षिण आफ्रिका पहुँचे, उस समय चारों उपनिवेश एक-दूसरेसे स्वतन्त्र थे। वे अपनी-अपनी स्वतन्त्र नीतिके अनुसार अपना काम-काज चलाते थे। उस समय लंदन-स्थित ब्रिटिश सरकार अपने प्रजाजनोंके

हितोंकी रक्षाके लिए इन उपनिवेशोंमें अपने प्रतिनिधि रखती थी और कुछ हदतक इन सरकारोंकी नीतियोंका नियन्त्रण भी किया करती थी। परन्तु सन् १९१० में इन सब उपनिवेशोंने मिलकर ब्रिटिश झण्डेकी छत्रछायामें दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यकी स्थापना करके पूर्ण स्वायत्त-शासन प्राप्त कर लिया। इस समयसे ब्रिटिश सरकार भी इन उपनिवेशों और इनकी संयुक्त-सरकारके प्रति निर्हस्तक्षेपी नीतिका अनुसरण करने लगी। उसका कहना था कि दक्षिण आफ्रिका अब एक अधिराज्य (डोमिनियन) बन गया है इसलिए वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलका एक स्वशासित सदस्य है, जिसे अपना काम-काज अपनी इच्छाके अनुसार चलानेकी स्वतन्त्रता है। अब ब्रिटिश साम्राज्यके एशियाई प्रजाजनोंकी शिकायतोंपर विचार करना दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यके सपरिषद गवर्नर-जनरलका विषय बन गया और इस सम्बन्धमें दक्षिण आफ्रिकी सरकारकी नीतिको प्रभावित करनेकी ब्रिटिश सरकारकी शक्ति नामशेष हो गई। परन्तु गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकामें रहते हुए अधिकांश समय ऐसी स्थिति नहीं थी।

कृषिके विकास और देशकी खनिज सम्पत्तिका लाभ उठानेके लिए इन उपनिवेशोंके गोरोंको मजदूरोंकी आवश्यकता हुई। आफ्रिकी लोगोंको उन्होंने स्थिर और निर्भर करने योग्य मजदूर नहीं पाया, क्योंकि वे अपनी भूमिसे जो कुछ मिलता था उसपर निर्वाह करके सन्तुष्ट रहते थे। और इसलिए उनमें से अधिकतर अर्थोपार्जनके लिए मजदूरी करनेको उत्सुक नहीं थे। अतएव ब्रिटिश उपनिवेशियोंने भारतके अंग्रेज शासकोंके साथ मिलकर भारतीय मजदूरोंको गिरमिट-प्रथा अथवा इकरारनामेके आधारपर दक्षिण आफ्रिकामें लानेका प्रबन्ध किया। इस तरहके मजदूरोंका पहला जत्था सन् १८६० में दक्षिण आफ्रिका पहुँचा। इन मजदूरोंको अधिकार था कि इकरारनामेकी अवधि समाप्त हो जानेपर वे चाहें तो भारत लौट जायें, या दक्षिण आफ्रिकामें ही रहकर पाँच वर्षकी दूसरी अवधिके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो जायें, अथवा सरकार वहीं उन्हें वापसी-किरायेके मूल्यकी भूमि दे दे और वे उसपर स्वतन्त्र नागरिकोंकी हैसियतसे बस जायें।

आम तौरपर ये मजदूर भारतके सबसे गरीब वर्गोंके लोग थे। इनको आरोग्यके नियमोंके अनुसार रहनेकी आदतें नहीं सिखाई गई थीं और ये अनेक दृष्टियोंसे पिछड़े हुए थे। इनके बाद, बहुत जल्दी ही, इनकी जरूरतोंको
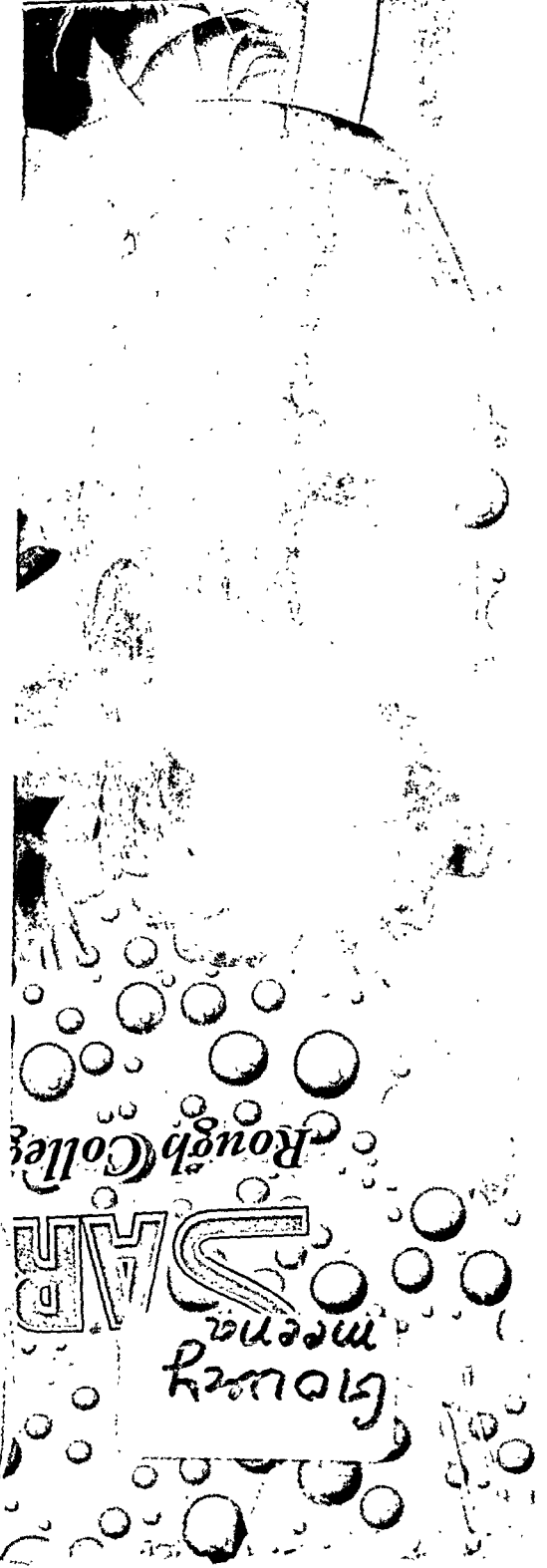
पूरा करनेके लिए भारतीय व्यापारी भी आ पहुँचे। यही दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय आबादीका आरम्भ था।

इस प्रकारके और मजदूरोंको भेजनेका इकरारनामा फिरसे नया करनेके पहले १८६९ में भारत सरकारने साफ-साफ शर्तें कर ली थीं कि इकरारनामेकी अवधिके बाद मजदूरोंको बराबरीका दर्जा दिया जाये, उन्हें देशके साधारण कानूनके अनुसार रखा जाये और उनके साथ कोई कानूनी या प्रशासनिक भेद-भाव न किया जाये। नेटाल-सरकारने, जिसने ऐसे मजदूरोंकी माँग की थी, इन शर्तोंको स्वीकार किया था और बादमें, लंदन-स्थित ब्रिटिश सरकारने भी १८७५ में इनकी पुष्टि कर दी थी। इसके अलावा, ब्रिटिश महारानीने अपनी १८५८ की घोषणाके द्वारा "हमारे भारतीय साम्राज्यके निवासियों"को उन्हीं अधिकारोंका आश्वासन दिया था, जो "हमारी अन्य सब प्रजाओंको" प्राप्त हैं।

तथापि डच लोग भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें रहने देनेके सदा विरोधी रहे। वे चाहते थे कि एशियाई मजदूरोंको (चीनियोंके समेत) एक निश्चित अवधिके लिए लाया जाये और उसके बाद तुरन्त वापस भेज दिया जाये। उनकी इच्छा थी कि उनके उपनिवेश सिर्फ गोरोंके लिए रहें, जिनमें आफ्रिकी लोग अपने लिए अलग किये गये क्षेत्रोंमें निवास करें।

स्थानिक अंग्रेजोंकी भी यही इच्छा थी जिन्होंने, दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे यूरोपीय व्यापारियोंके समान ही, भारतीयोंको कृषि और व्यापार दोनोंमें अपना भयानक प्रतियोगी पाया था। भारतीय किसानोंने नये-नये फल और शाक-सब्जियाँ बोईं, और सस्ती तथा भारी मात्रामें पैदा कीं। इस तरह उन्होंने गोरे किसानोंके भावोंको गिरा दिया। भारतीय व्यापारी कम खर्चमें गुजारा करते थे, नौकरों और साज-सामानपर नामचारको ही खर्च करते थे, और सरलतासे डच तथा ब्रिटिश व्यापारियोंकी अपेक्षा सस्ते भावोंपर माल बेच सकते थे। इसलिए गोरोंको भय था कि अगर भारतीयोंको मुक्त रूपसे देशमें आने दिया गया और उन्हें उनकी इच्छाके अनुसार भूमिपर या व्यापारमें बस जाने दिया गया, तो वे हमें निगल जायेंगे।

फलतः भारतीयोंपर अनेकानेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। इनमें से सबसे पहला डच उपनिवेश ट्रान्सवालमें १८८५ का अधिनियम ३ था। उसके द्वारा घोषित किया गया था कि एशियाई लोग डच नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं

कर सकते। उसके द्वारा जरूरी कर दिया गया कि "स्वच्छताके कारणोंसे" भारतीय उन बस्तियोंमें रहें, जो उनके लिए खास तौरसे अलग कर दी गई हैं; वे उन बस्तियोंके अलावा दूसरी बस्तियोंमें अचल सम्पत्ति न रखें; और उनमें से जो लोग व्यापारके लिए आये हों वे शुल्क देकर सरकारी दफ्तरमें अपने नाम दर्ज करायें और परवाना प्राप्त करें।

यह कानून ट्रान्सवाल डच गणराज्य और सम्राटके प्रतिनिधियोंके बीच १८८४ के लंदन समझौतेकी धारा १४ के सरासर विरुद्ध था। उक्त धारामें घोषणा की गई थी कि "आदिमजातियोंके परे" सब लोगोंको ट्रान्सवाल गणराज्यके किसी भी भागमें प्रवेश करने, यात्रा करने, निवास करने, जमीन-जायदाद खरीदने और व्यापार करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होगी और उनसे कोई ऐसा कर वसूल नहीं किया जायेगा, जो डच नागरिकोंसे वसूल न किया जाता हो। उपनिवेशमें निवास करनेवाले ब्रिटिश प्रजाजनोंके हितोंकी देख-रेख करनेके लिए ट्रान्सवालमें ब्रिटिश उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) मौजूद था। परन्तु ट्रान्सवालके सभी गोरे — चाहे वे डच हों या ब्रिटिश — उपनिवेशमें "एशियाइयोंके आक्रमणके खतरे"की चीख-पुकार मचाकर आन्दोलन कर रहे थे। ब्रिटिश उच्चायुक्तने आन्दोलनके जोरके कारण ब्रिटिश सरकारको सलाह दी कि वह उक्त कानूनका विरोध न करे। इसपर लंदन-स्थित ब्रिटिश सरकारने अपना यह फैसला घोषित कर दिया कि वह इस भारतीय-विरोधी कानून पर कोई आपत्ति नहीं करेगी।

सम्राज्ञी-सरकारने अपनी पहलेकी घोषणाओंके बावजूद, कि भारतीयोंको दूसरे ब्रिटिश प्रजाजनोंके बराबर ही अधिकार प्राप्त होंगे, जो यह नीति पलटी उससे भारतीयोंके विरुद्ध भेद-भावके कानूनोंकी बाढ़का मार्ग खुल गया। यह हालत सिर्फ डचोंके ट्रान्सवालमें ही नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके नेटालमें भी हुई। और यह सब ऐसे समयपर हुआ जब कि ब्रिटिश सरकारको डच तथा ब्रिटिश उपनिवेशोंमें अपने प्रजाजनोंके संरक्षणका पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था।

सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके खिलाफ प्रजातीय (रेशियल) भेद-भाव बरता जाने लगा। रेल-गाड़ियाँ, बसें, स्कूल और होटल, कोई भी स्थान भेद-भावसे मुक्त नहीं रहा। उन्हें एक उपनिवेशसे दूसरे उपनिवेशमें परवानेके बिना जानेका अधिकार नहीं था। अंग्रेजोंके उपनिवेश नेटालमें, जहाँ भारतीयोंकी संख्या सबसे अधिक थी, १८९४ में भारतीयोंका मताधिकार छीन लेनेका और
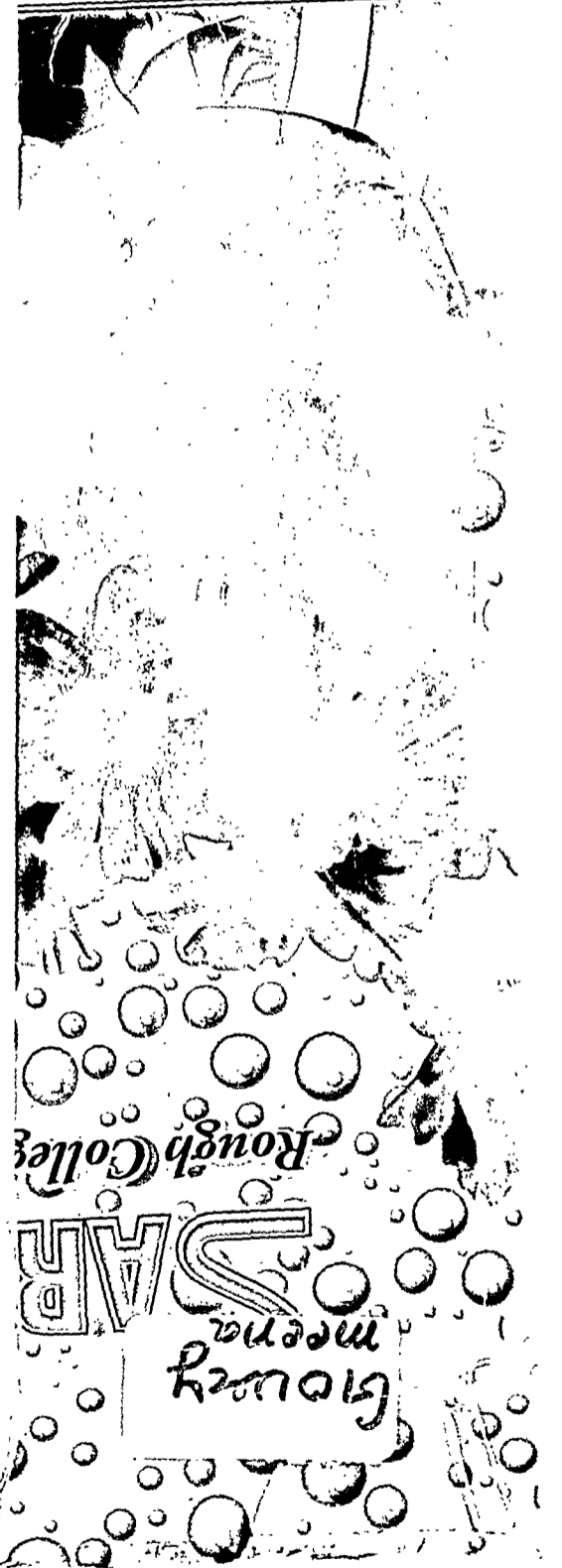
इस तरह उनकी मान-मर्यादा गिरा देने तथा उन्हें राजनीतिक अधिकारोंका प्रयोग करनेसे वंचित कर देनेका एक विधेयक करीब-करीब स्वीकार होने पर आ गया था।

गांधीजी १८९३ के मई मासमें बैरिस्टरकी हैसियतसे अपने पेशे-सम्बन्धी कार्यके लिए दक्षिण आफ्रिका आये थे। १८९४ में जब वे अपना कानूनी कार्य समाप्त करके भारतको लौटने ही वाले थे, उन्होंने समाचारपत्रोंमें इस विधेयककी चर्चा पढ़ी। उन्होंने अपने देशभाइयोंको, जिनमें से अधिकतर अशिक्षित थे, समझाया कि उनपर इस विधेयकका क्या असर पड़ेगा। इसपर भारतीयोंने उन्हें वहाँ रुककर उनकी मदद करनेके लिए राजी किया। इस अन्यायको और भारतीयोंकी अन्य शिकायतोंको दूर करानेके कार्यने उन्हें २१ वर्षसे अधिक, अर्थात् १९१४ तक, दक्षिण आफ्रिकामें रोके रखा।

विषय-सूची

चित्र-सूची

नक़शे

१. पत्र : पिताको

यह गांधीजीके एक सवसे पहले पत्रका हवाला है। मूल पत्र उपलब्ध न होनेके कारण, उनकी आत्मकथामें उनकी ही लिखी हुई जो विवरणी मिलती है वह यहाँ उद्धृत की गई है। जब वे १५ वर्षके थे, उन्होंने अपने भाईका थोड़ा-सा कर्ज पटानेके लिए उनके हाथके कड़ेसे कुछ सोना निकाल लिया था। बादमें उन्हें अपने इस कामसे इतनी वेदना हुई कि उन्होंने अपने पिताके सामने बातको कबूल कर लेनेका निश्चय किया। पिताने मूक अश्रुओंके रूपमें उन्हें क्षमा प्रदान की। इस घटनाका उनके मन पर स्थायी प्रभाव पड़ा। उनके अपने ही शब्दोंमें, यह उनके लिए अहिंसाकी शक्तिका एक पदार्थ-पाठ था।

[१८८४]

मैंने पत्र लिखकर अपने हाथसे उन्हें दिया। पत्रमें सब दोष स्वीकार किया और उसका दण्ड माँगा। यह विनती की कि मेरे अपराधके लिए वे स्वयं दण्ड न भोगें। साथ-साथ मैंने प्रतिज्ञा भी की कि भविष्यमें फिर कभी ऐसा अपराध न करूँगा।

[गुजरातीसे]
आत्मकथा, १९५२, पृष्ठ २६।

२. आल्फ्रेड हाई स्कूल राजकोटमें

जब गांधीजी बैरिस्टरीकी शिक्षाके लिए इंग्लैंड जा रहे थे उस समय उनके साथी-विद्यार्थियोंने आल्फ्रेड हाई स्कूल, राजकोटमें एक विदाई-समारोहका आयोजन किया था। वह समारोह ४ जुलाई, १८८८को हुआ था। उसमें दिया हुआ भाषण ही शायद गांधीजीका सबसे पहला भाषण था। उसके सम्बन्धमें उन्होंने अपनी *आत्मकथा*में कहा है: "जवाबके लिए मैं कुछ लिखकर ले गया था। उसे भी मैं मुश्किलसे पढ़ सका। सिर चकराता था, शरीर काँपता था — बस, इतना ही मुझे याद है" (पृष्ठ ३८)। उस समय वे १८ वर्षके थे। उनके भाषणकी जो रिपोर्ट एक समाचारपत्रमें प्रकाशित हुई थी, वह नीचे दी जा रही है।

जुलाई ४, १८८८

मुझे आशा है कि दूसरे भी मेरा अनुसरण करेंगे और इंग्लैंडसे लौटनेके बाद हिन्दुस्तानमें सुधारके बड़े-बड़े काम करनेमें सच्चे दिलसे लग जायेंगे।

[गुजरातीसे]

काठियावाड़ टाइम्स, १२–७–१८८८

३. पत्र : लक्ष्मीदास गांधीको

लंदन
नवंबर ९, १८८८; शुक्रवार

कृपासागर, आदरणीय बड़े भाई श्री मुरब्बी लक्ष्मीदास करमचन्द गांधीकी सेवामें से० मोहनदास करमचन्दकी शिर-साष्टांग दण्डवत स्वीकार हो।

दो या तीन हफ्ते हो गये, आपका कोई पत्र नहीं आया। यह बड़े ताज्जुबकी और खेदजनक बात है। कारण कुछ समझमें नहीं आता। शायद बीचमें थोड़े दिन मेरे पत्र न पहुँचनेसे ऐसा हुआ हो। तो, लंदन पहुँचने तक मेरा कोई पक्का मुकाम नहीं था, इसलिए पत्र लिखकर डाल नहीं सका। परन्तु इस कारण आपका पत्र न लिखना तो ताज्जुबकी बात है। इस दूर देशमें सिर्फ पत्रसे ही मिलाप होता है। इसलिए आपको यह क्या सूझा, समझमें नहीं आता। बहुत चिन्ता है। घरकी खैर-कुशल सुननेका मौका हफ्तेमें एक बार आता है। वह भी न मिले तो कोई कम दुःखकी बात नहीं है। जब सारे दिन बेकार बैठा रहता हूँ, तब दिन इसी फिक्रमें बीतता है। आशा है कि आगे आप ऐसा हर्गिज नहीं करेंगे। हफ्तेमें एक कार्ड लिख देनेकी कृपा करेंगे तो भी बस होगा। परन्तु अगर इस तरह आप बिलकुल लिखेंगे ही नहीं, तो मेरी क्या दशा होगी, कह नहीं सकता। आपको ठिकाना मालूम न होता तो मुझे बिलकुल चिन्ता न होती। परन्तु आपके दो पत्र मिले, फिर बन्द हो गये — यह खेदजनक है। मंगलवारको मैं इनर टेम्पलमें भरती हो गया। अगले हफ्तेमें आपका पत्र आयेगा, यह सोचकर इस सप्ताह मैंने विस्तारपूर्वक पत्र नहीं लिखा। आपका पत्र पढ़कर सारा समाचार दूँगा। ठंड बहुत सख्त पड़ रही है। इससे ज्यादा पड़नेकी सम्भावना नहीं है। अलबत्ता, ज्यादा पड़ती तो है, मगर कभी-कभी। परन्तु इस सख्त ठंडमें ईश्वरकी

कृपासे मांस-मदिराकी जरूरत मालूम नहीं होती। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी तबीयत बहुत अच्छी है। बस, हाल इतना ही है। मातुश्रीकी सेवामें शिर-साष्टांग दण्डवत पहुँचाइएगा। मेरी भाभीको दण्डवत।

डी० जी० तेन्दुलकर: *महात्मा*, खंड १; मूल गुजराती पत्रकी फोटो-नकलसे।

४. लंदन-दैनन्दिनीसे

जब गांधीजीके सम्बन्धी और साथी श्री छगनलाल गांधी १९०९ में पहली बार लंदन जा रहे थे, उस समय गांधीजीने उन्हें अपनी लंदनमें लिखी हुई दैनन्दिनी दे दी थी। उनका खयाल था कि शायद श्री छगनलाल गांधीको उसमें दिलचस्पी होगी और उससे उन्हें कुछ व्यावहारिक मदद मिलेगी।

दैनन्दिनी लगभग १२० पृष्ठोंकी थी। श्री छगनलालने १९२० में वह श्री महादेव देसाईको दे दी थी। परन्तु देनेके पहले उन्होंने एक बहीमें नीचे दी हुई सामग्रीकी हू-ब-हू नकल कर ली थी। यह मूल दैनन्दिनीके लगभग बीस पृष्ठोंमें थी। शेष १०० पृष्ठोंमें इन बीस पृष्ठोंके समान सिलसिलेवार सामग्री नहीं थी, बल्कि १८८८ से १८९१ तकके लंदनवासमें दिन-प्रतिदिन जो घटनाएँ होती थीं उनका उल्लेखमात्र था।

अब मूल प्रतिका पता नहीं चलता। श्री छगनलालकी नकल प्रकाशित करनेमें संपादकोंने सिर्फ जहाँ-कहीं हिज्जेकी गलतियाँ रह गई थीं उन्हें ठीक कर दिया है। कहीं-कहीं विरामचिह्न लगा दिये हैं, एक-आध शब्द जोड़ दिया है और पढ़नेमें सरलता हो इसलिए कहीं-कहीं लम्बी सामग्रीको अनुच्छेदोंमें बाँट दिया है।

गांधीजीने दैनन्दिनी अंग्रेजीमें लिखी थी। उसे लिखनेके समय वे केवल १९ वर्षके थे और उनका अंग्रेजी भाषाका ज्ञान विकसित हो ही रहा था।

लंदन
नवम्बर १२, १८८८

इंग्लैंड आनेका इरादा किन कारणोंसे हुआ? घटना-पटल अप्रैलके लगभग अन्तमें खुलता है। अध्ययनके लिए लंदन आनेके इरादेने जब प्रत्यक्ष रूप ग्रहण किया उसके पहले ही मेरे मनमें यहाँ आने और लंदन देखकर अपनी जिज्ञासा तृप्त करनेका गुप्त मंसूबा मौजूद था। जब मैं भावनगर कालेजमें पढ़ रहा था, जयशंकर बूचसे मेरी मामूली बातें हुई थीं। बातोंके दौरानमें उन्होंने मुझे सलाह दी थी कि तुम तो सोरठके निवासी हो, इसलिए जूनागढ़ राज्यको लंदन जानेके

लिए छात्रवृत्तिकी अर्जी दो। उस दिन मैंने उन्हें क्या जवाब दिया था, यह अब अच्छी तरह याद नहीं आता। ऐसा लगता है कि मैंने छात्रवृत्ति पाना असम्भव समझा होगा। उस [समय]से मेरे मनमें इस भूमिकी यात्रा करनेका इरादा जम गया था। मैं इस ध्येयको पूर्ण करनेके साधन खोजता रहा।

तेरह अप्रैल, १८८८ को मैं भावनगरसे छुट्टियाँ मनानेके लिए राजकोट गया। पन्द्रह दिनकी छुट्टियोंके वाद मेरे वड़े भाई और मैं पटवारी[1]से मिलने गये। लौटने पर मेरे भाईने कहा: "चलो, मावजी जोशी[2]से मिल आयें।" इसलिए हम उनके यहाँ गये। मावजी जोशीने साधारण कुशल-प्रश्न करनेके वाद भावनगरमें मेरी पढ़ाईकी वावत कुछ पूछ-ताछ की। मैंने उन्हें साफ-साफ वताया कि मेरा पहले वर्षमें परीक्षा पास हो जाना मुश्किल ही है। मैंने यह भी कहा कि मुझे पाठ्यक्रम वहुत कठिन मालूम होता है। यह सुनकर उन्होंने मेरे भाईको सलाह दी कि वे, जैसे भी सम्भव हो, मुझे बैरिस्टरी पढ़नेके लिए लंदन भेज दें। उन्होंने वताया कि खर्च सिर्फ ५,००० रुपये आयेगा। "यह अपने साथ थोड़ी उड़दकी दाल ले जाये। वहाँ अपने लिए खुद कुछ खाना वना लिया करेगा। इससे कोई धार्मिक आपत्ति न होगी। यह वात किसीको वताओ मत। कोई छात्रवृत्ति पानेका प्रयत्न करो। जूनागढ़ और पोरवन्दर दोनों राज्योंको अर्जी भेज दो। मेरे लड़के केवलराम[3]से मिल लो और अगर तुम्हें आर्थिक सहायता पानेमें सफलता न मिले, और तुम्हारे पास भी रुपया न हो, तो अपना साज-सामान (फर्नीचर) वेच डालो। परन्तु किसी भी तरह मोहनदासको लंदन तो भेज ही दो। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे स्वर्गवासी पिताकी प्रतिष्ठा वनाये रखनेका एकमात्र उपाय यही है।" मावजी जोशी जो-कुछ भी कहते हैं उस पर हमारे परिवारके सभी लोगोंको वड़ा भरोसा रहता है। और मेरे भाई तो स्वभावसे ही वड़े भोले हैं। उन्होंने मावजी जोशीसे मुझे लंदन भेजनेका वादा कर दिया। अव मेरे प्रयत्नोंकी वारी आई।

मेरे भाईने वातको गुप्त रखनेका जो वचन दिया था उसके वावजूद उसी दिन खुशालभाई[4]से सव-कुछ कह दिया। वेशक, खुशालभाईने वात पसन्द की। शर्त इतनी ही थी कि मैं अपने धर्मका पालन कर सकूँ। उसी दिन

१. एक सज्जनका नाम।

२. गांधी-कुटुम्बके मित्र, पुरोहित और सलाहकार।

३. काठियावाड़के प्रमुख वकील।

४. गांधीजीके चचेरे भाई और श्री छगनलाल गांधी व श्री मगनलाल गांधीके, जिन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके साथ काम किया था, पिता।

मेघजीभाई[1]को भी बता दिया गया। वे प्रस्तावसे बिलकुल सहमत हो गये और उन्होंने मुझे ५,००० रुपये देनेकी तैयारी भी दिखाई। मुझे उनकी बात पर कुछ भरोसा हो गया था; परन्तु जब बात मेरी प्यारी माँके सामने प्रकट की गई तो उन्होंने मेरे इतने भोलेपन पर मुझे फटकार सुनाते हुए कहा कि समय आने पर तुम्हें उनसे कुछ भी रुपया न मिलेगा। उनका खयाल तो यह था कि वह समय ही कभी नहीं आयेगा।

उस दिन मुझे केवलरामभाईके पास [जाना] था। मैं उनसे मिला। वहाँ मेरी बातचीत सन्तोषजनक नहीं रही। उन्होंने मेरे लक्ष्यको तो पसन्द किया परन्तु कहा यह कि "तुम्हें वहाँ कमसे कम दस हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे।" मेरे लिए तो यही एक बड़ा धक्का था, परन्तु उन्होंने आगे और कहा — "अगर तुम्हारे मनमें कोई धार्मिक आग्रह हों तो उनको तुम्हें छोड़ देना होगा। तुम्हें मांस खाना पड़ेगा, शराब पिये बिना भी काम न चलेगा। उसके बिना वहाँ तुम जी नहीं सकते। जितना ज्यादा खर्च करोगे उतने ही ज्यादा होशियार बनोगे। यह बात बहुत महत्त्वकी है। मैं तुमसे साफ-साफ कहता हूँ। बुरा न मानना। पर देखो, तुम अभी बहुत छोटे हो। लंदनमें प्रलोभन बहुत हैं। तुम उनके फंदेमें फँस जाओगे।" मुझे इस बातचीतसे कुछ खिन्नता हुई। परन्तु मैं एक बार इरादा कर लेने पर उसे सरलतासे छोड़ देनेवाला आदमी नहीं हूँ। उन्होंने अपनी बात कहते हुए श्री गुलाम मोहम्मद मुनशीका उदाहरण दिया। मैंने उनसे पूछा कि क्या आप मुझे छात्रवृत्ति पानेमें कोई सहायता कर सकते हैं? उन्होंने नकारात्मक जवाब दिया और कहा — इसके अलावा और सब-कुछ बहुत खुशीसे करूँगा। मैंने अपने भाईको सब बातें बता दीं।

अब मुझे अपनी प्यारी माँकी अनुमति प्राप्त करनेका काम सौंपा गया। मैं मानता था कि यह मेरे लिए कोई बहुत कठिन काम नहीं है। एक-दो दिन बाद मैं और मेरे भाई श्री केवलरामसे मिलने गये। उस समय वे बहुत कार्य-व्यस्त थे, फिर भी हमसे मिले। एक-दो दिन पहले मेरी उनके साथ जैसी बातें हुई थीं, वैसी ही बातें फिर हुईं। उन्होंने मेरे भाईको सलाह दी कि मुझे पोरबन्दर भेजें। प्रस्ताव मान लिया गया। फिर हम लौट आये। मैंने हँसी-हँसीमें अपनी माँके सामने बात छेड़ी। हँसी देखते-देखते सच्ची बातमें बदल गई। फिर मेरे पोरबन्दर जानेके लिए दिन तय किया गया।

१. गांधीजीके चचेरे भाई।

दो या तीन वार मैंने जानेकी तैयारी की, परन्तु कुछ-न-कुछ कठिनाई मार्गमें आती गई। एक वार मैं झवेरचन्दके साथ जानेवाला था, परन्तु रवाना होनेके एक घंटे पहले एक गम्भीर आकस्मिक दुर्घटना हो गई। मैं हमेशा अपने मित्र शेख महताव[1]से झगड़ता रहता था। रवाना होनेके दिन मैं झगड़े-सम्बन्धी विचारोंमें विलकुल डूवा हुआ था। रातको भजन-संगीतका कार्यक्रम था। मुझे उसमें वहुत मजा नहीं आया। साढ़े दस वजे रातके लगभग कार्यक्रम समाप्त हुआ और हम सव मेघजीभाई और रामीसे मिलने गये। रास्तेमें चलता-चलता एक ओर तो मैं लंदनकी धुनमें डूवा हुआ था, दूसरी ओर शेख महतावके खयालोंमें। इस धुनमें मैं अजाने एक गाड़ीसे टकरा गया। मुझे कुछ चोट आई। फिर भी, चलनेमें मैंने किसीका सहारा नहीं लिया। मुझे लगता है, मेरा सिर चकरा रहा था और आँखोंके सामने विलकुल अँधेरा छाया हुआ था। फिर हम मेघजीभाईके घरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ फिरसे अजाने मैं एक पत्थरसे ठोकर खा गया और मुझे चोट आई। मैं विलकुल वेहोश हो गया था। उस [समय]के वाद क्या-क्या हुआ, इसका पता मुझे नहीं चला। उन्होंने मुझे वताया कि उसके वाद कुछ कदम चलने पर मैं जमीन पर लोट-पोट हो गया था। पाँच मिनट तक मुझे कोई होश नहीं था। उन्होंने समझा कि मैं मर गया। परन्तु भाग्यवश जहाँ पर मैं गिरा था वहाँकी जमीन विलकुल सपाट थी। आखिर मुझे होश आया और सवको खुशी हुई। माँको वुलाया गया। उन्हें मुझे देखकर वहुत दुःख हुआ और यद्यपि मैंने तो कहा कि मैं विलकुल अच्छा हूँ, फिर भी यह मेरे लिए देरीका कारण वन गया। कोई मुझे जाने देनेको तैयार न हुआ। वादमें मालूम हुआ कि मेरी साहसी और अत्यन्त प्यारी माँने तो मुझे जाने दिया होता, परन्तु उनको लोकापवादका डर था। अन्तमें वड़ी कठिनाईसे कुछ दिन वाद मुझे राजकोटसे पोरवन्दर जानेकी इजाजत मिली। रास्तेमें भी मुझे कुछ कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा।

आखिर मैं पोरवन्दर पहुँच गया, और सवको वहुत खुशी हुई। लालभाई[2] और करसनदास[3] मुझे घर ले जानेके लिए खाड़ी-पुल पर आये थे। अव,

१. गांधीजीका वचपनका मित्र, जिसे सुधारनेका प्रयत्न उन्होंने वर्षों तक किया, परन्तु सफल नहीं हुए।

२. गांधीजीके चचेरे भाई।

३. गांधीजीके वड़े भाई।

पोरबन्दरमें पहले तो मुझे अपने चाचाकी अनुमति प्राप्त करनी थी; दूसरे, श्री लेली[1]को अर्जी देनी थी कि मुझे कुछ आर्थिक सहायता दी जाये; और अन्तमें, अगर राज्यसे छात्रवृत्ति न मिले तो, परमानन्दभाई[2]से कहना था कि वे मुझे कुछ रुपया दें। सबसे पहले मैंने चाचासे भेंट की और उनसे पूछा कि उन्हें मेरा लंदन जाना पसन्द है या नहीं। स्वाभाविक था, जैसी कि मैंने अपेक्षा भी की ही थी, कि चाचाने मुझसे लंदन जानेके फायदे गिनानेको कहा। मैंने अपनी शक्तिके अनुसार फायदे गिना दिये। तब उन्होंने कहा — "बेशक, इस पीढ़ीके लोग इसे बहुत पसन्द करेंगे, परन्तु जहाँतक मेरी बात है, मैं पसन्द नहीं करता। फिर भी, हम बादमें विचार करेंगे।" इस प्रकारके उत्तरसे मुझे निराशा नहीं हुई। कमसे कम मुझे इतना तो सन्तोष हुआ कि कुछ भी हो, दिलसे वे बातको पसन्द करते हैं। और उनके कामोंसे सिद्ध हो गया कि मैंने जो सोचा था वह ठीक था।

मेरे दुर्भाग्यसे श्री लेली पोरबन्दरमें नहीं थे। सच ही है कि विपत्तियाँ कभी अकेली नहीं आतीं। श्री लेली जिलेके दौरे पर गये थे और वहाँसे लौटने पर वे तुरन्त छुट्टी पर चले जानेवाले थे। मेरे चाचाने मुझे अगले रविवार तक उनकी प्रतीक्षा करनेकी सलाह दी। उन्होंने कहा कि अगर वे तबतक न लौटे तो जहाँ-कहीं भी होंगे, वहाँ उनके पास तुम्हें भेज दूँगा। परन्तु मुझे यहाँ यह लिखते बहुत प्रसन्नता है कि वे रविवारको जिलेके दौरेसे लौट आये। फिर यह तय हो गया कि मैं उनसे सोमवारको मिलूँ। ऐसा ही हुआ। अपने जीवनमें पहली बार मैंने एक अंग्रेज सज्जनसे मुलाकात की। इसके पहले मैंने अंग्रेजोंके सामने जानेका साहस कभी नहीं किया था। परन्तु लंदनके विचारोंने मुझे साहसी बना दिया था। मैंने गुजरातीमें उनके साथ थोड़ी-सी बातें कीं। वे बहुत जल्दीमें थे। वे मुझसे अपने बँगलेके ऊपरी खंडके जीने पर चढ़ते-चढ़ते मिले थे। उन्होंने कहा कि पोरबन्दर रियासत बहुत गरीब है, इसलिए वह तुम्हें कोई आर्थिक सहायता नहीं दे सकती। फिर भी, उन्होंने कहा : पहले तुम भारतमें स्नातक (ग्रैजुएट) बन जाओ; फिर मैं सोचूँगा कि तुम्हें कोई आर्थिक सहायता दे सकता हूँ या

१. ब्रिटिश एजेंट, जो राजकुमारकी नाबालिगीके समय पोरबन्दर राज्यका प्रबन्ध करता था।

२. गांधीजीके चचेरे भाई।
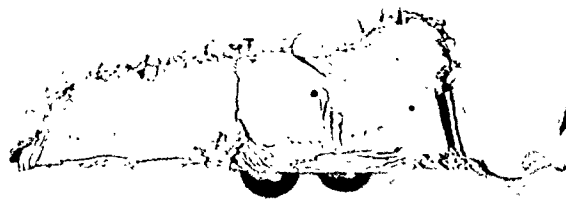
नहीं। उनके ऐसे उत्तरसे मैं सचमुच बिलकुल मायूस हो गया। मैंने उनसे ऐसे जवाबकी अपेक्षा नहीं की थी।

अब मेरा काम यह था कि परमानन्दभाईसे पाँच हजार रुपये माँग लूं। उन्होंने कहा, अगर तुम्हारे चाचा तुम्हारा लंदन जाना पसन्द करें तो मैं खुशीसे रुपये दे दूंगा। मैंने इसे जरा कठिन ही समझा। परन्तु मैं चाचाकी अनुमति निकाल लेने पर तुला हुआ था। मैं जब उनसे मिला उस समय वे किसी काममें व्यस्त थे। मैंने उनसे कहा — "चाचाजी, अब बताइए, आप मेरे लंदन जानेके बारेमें सचमुच क्या सोचते हैं? मेरा यहाँ आनेका मुख्य उद्देश्य आपकी अनुमति हासिल करना ही है।" उन्होंने उत्तर दिया — "मैं अनुमति नहीं दे सकता। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं तीर्थ-यात्रा पर जा रहा हूँ? फिर अगर मैं कहूँ कि मुझे लोगोंका लंदन जाना पसन्द है, तो क्या यह मेरे लिए शरमकी बात न होगी? तो भी, तुम्हारी माता और भाईको पसन्द है तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है।" मैंने कहा — "परन्तु आप जानते नहीं कि मुझे लंदन जानेकी इजाजत न देकर आप परमानन्दभाईको मेरी आर्थिक सहायता करनेसे रोक रहे हैं।" मैंने ये शब्द कहे ही थे कि उन्होंने गुस्सा-भरी आवाजमें कहा — "ऐसी बात है? तू क्या जाने, छोकरे, कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा है। वे जानते हैं कि मैं तुझे जानेकी अनुमति कभी नहीं दूंगा। इसीलिए उन्होंने यह बहाना बनाया है। सच बात यह है कि वे कभी तुझे वैसी मदद नहीं करेंगे। मैं उन्हें मदद करनेसे रोकता नहीं।" इस प्रकार हमारी बात समाप्त हो गई। फिर मैं खुश होकर परमानन्द-भाईके पास दौड़ा गया और मैंने उन्हें अपने और चाचाके बीच जो बात हुई थी वह शब्दशः कह सुनाई। उसे सुनकर वे भी बहुत नाराज हुए। लेकिन साथ-साथ उन्होंने मुझे ५,००० रुपये देनेका वादा भी किया। जब उन्होंने यह वादा किया तो मैं खुशीसे फूला नहीं समाया। मुझे इस बातसे और भी ज्यादा खुशी हुई कि उन्होंने अपने बेटेकी शपथ खाकर यह वादा किया। अब, उस दिनसे मैं सोचने लगा कि मैं जरूर ही लंदन जाऊँगा। थोड़े दिन पोरबन्दरमें ठहरा। मैं जितना ज्यादा ठहरा उतना ही ज्यादा यह वादा पक्का होता गया।

अब, मेरी गैरहाजिरीमें राजकोटमें जो-कुछ हुआ, वह इस प्रकार है। मेरा दोस्त शेख महताब, मैं कहूँ, बड़ा करिश्मेबाज है। उसने मेघजीभाईको उनके वादेकी याद दिलाई और मेरे दस्तखतसे एक जाली पत्र तैयार किया,

पोरबन्दरका मकान, जिसमें गांधीजीका जन्म हुआ था
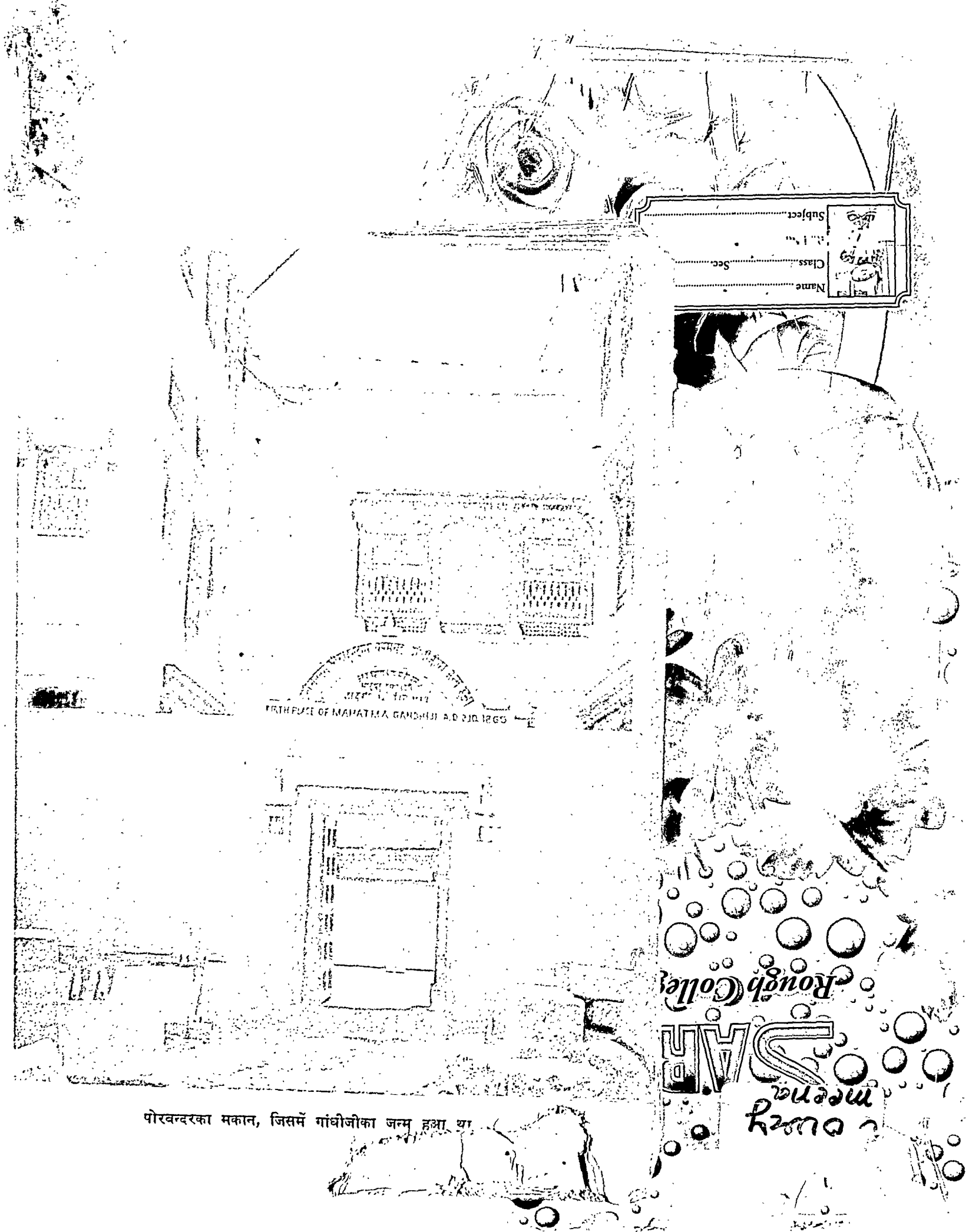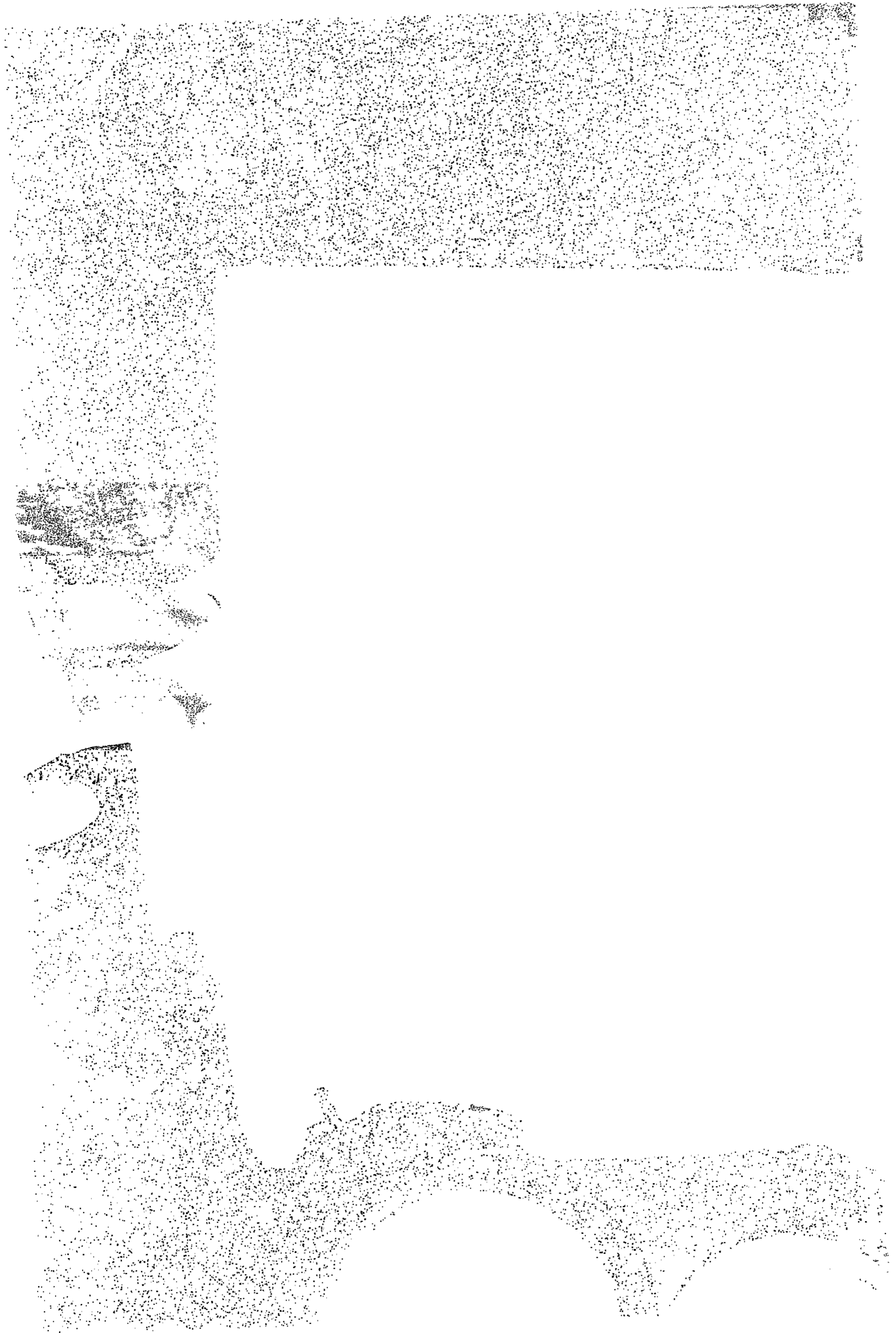
जिसमें उसने लिखा कि मुझे ५,००० रुपयोंकी आवश्यकता है — आदि। वह पत्र उन्हें दिखलाया गया और वह सचमुच मेरा लिखा हुआ मान लिया गया। इस पर वे घमंडसे फूल उठे और उन्होंने मुझे ५,००० रुपये देनेका गंभीरताके साथ वादा किया। मुझे इसकी कोई सूचना राजकोट पहुँचने तक नहीं दी गई।

अब फिर पोरबन्दरकी बात। आखिर मेरी वापसीके लिए एक दिन निश्चित किया गया और मैं कुटुम्बके लोगोंसे विदा लेकर अपने भाई करसनदास और मेघजीके पिताके साथ — जो, सचमुच, कृपणताके अवतार ही थे — राजकोटके लिए रवाना हुआ। राजकोट जानेके पहले मैं मेज-कुर्सी आदि साजसज्जा बेच देने और घरके किरायेका सिलसिला तोड़ देनेके लिए भावनगर गया। मैंने यह सब सिर्फ एक दिनमें कर लिया। अपने पड़ोसके मित्रों और दयालु घर-मालकिनसे मैं जुदा हुआ तो उनकी आँखोंसे आँसू ढले बिना न रहे। मैं उनकी, अनोपरामकी और दूसरे लोगोंकी आत्मीयता कभी भूल नहीं सकता। यह सब करके मैं राजकोट पहुँचा।

परन्तु, तीन वर्षके लिए बाहर जानेके पहले मुझे कर्नल वाट्सन[१]से तो मिलना ही था। वे १९ जून, १८८८को राजकोट आनेवाले थे। मेरे लिए तो यह समय बहुत लम्बा था, क्योंकि मैं मईके आरम्भमें राजकोट पहुंच गया था। परन्तु लाचारी थी। मेरे भाईको कर्नल वाट्सनसे बहुत बड़ी आशा थी। सचमुच ये दिन बड़े कठिन गुजरे। रातको मैं अच्छी तरह सो नहीं सकता था। हमेशा स्वप्नोंके आक्रमण होते रहते थे। कुछ लोग मुझे लंदन न जानेके लिए समझाते थे, कुछ जानेकी सलाह देते थे। कभी-कभी मेरी माँ भी न जानेको कहतीं। और बड़ी अजीब बात तो यह थी कि मेरे भाई भी अक्सर अपना मन बदलते रहते थे। इसलिए मैं त्रिशंकुकी स्थितिमें था। परन्तु सब लोग जानते थे कि एक बार किसी चीजको शुरू करके मैं छोड़ूँगा नहीं। इसलिए वे सब शान्त रहे। इसी बीच मेरे भाईने मेघजीभाईके वादेके बारेमें उनका मन टटोलनेकी बात मुझसे कही। परिणाम अवश्य ही बिलकुल निराशाजनक हुआ और उस समयसे वे सदा शत्रुवत् व्यवहार करते रहे। वे हर-किसीके सामने मेरी बुराई करते थे। परन्तु मैं उनके तानोंकी पूरी तरह उपेक्षा करता रहा। मेरी अत्यन्त प्यारी माँ इसके लिए उन पर बहुत नाराज थीं और कभी-कभी बेचैन भी हो उठती

१. राजकोटमें नियुक्त काठियावाड़के पोलिटिकल एजेंट।
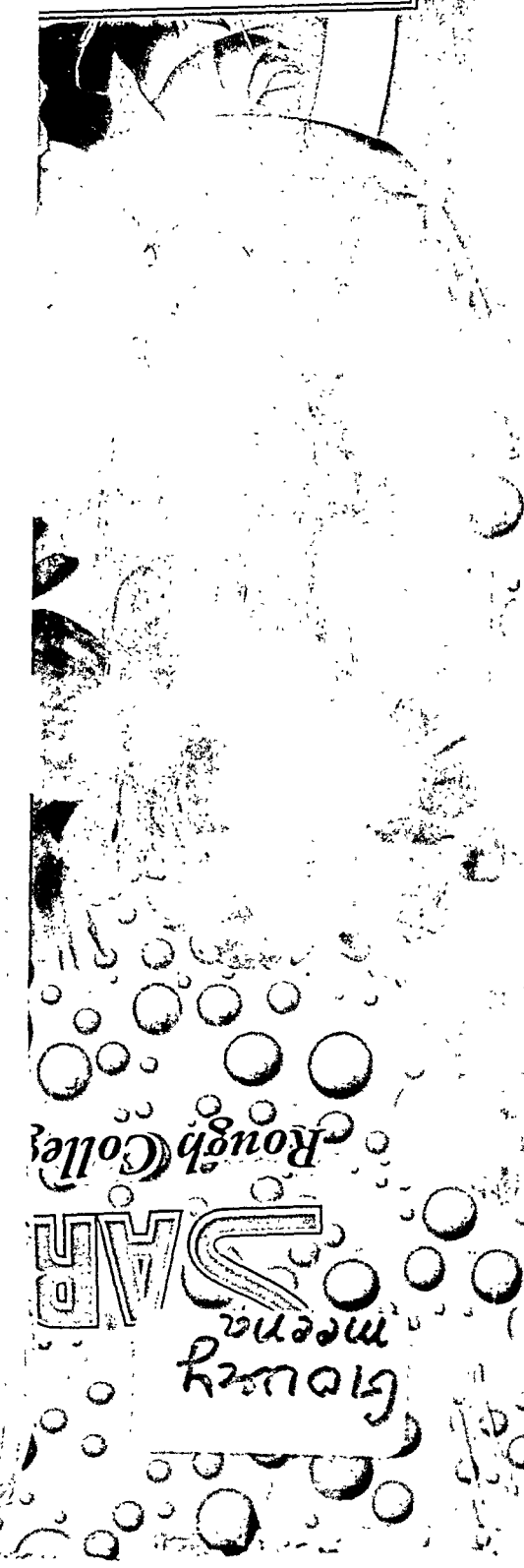
थीं। परन्तु मैं सरलतासे उनको धैर्य बँधा सकता था। और मुझे यह महसूस करके सन्तोष है कि मैंने अक्सर उनका समाधान करनेमें सफलता पाई है; और जब वे, मेरी प्यारी-प्यारी माँ, मेरे लिए आँसू बहाती होतीं, तब अक्सर मैं उन्हें दिलसे हँसा सका हूँ। आखिर कर्नल वाट्सन आये। मैं उनसे मिला। उन्होंने कहा — "मैं इस बारेमें सोचूँगा।" मगर मुझे उनसे कभी कोई मदद नहीं मिली। यह कहते मुझे अफसोस है कि उनके पाससे परिचयकी एक चिट्ठी पाना भी मेरे लिए कठिन हुआ था। उन्होंने बड़े दर्प-भरे स्वरमें कहा था कि उसका मूल्य तो एक लाख रुपये है। अब तो सचमुच उसे याद करके मुझे हँसी आती है।

तो, मेरी विदाईके लिए एक दिन निश्चित कर दिया गया। पहले वह चार अगस्तका दिन था। अब सारा मामला नाजुक स्थितिमें पहुँच चुका था। मैं इंग्लैंड जानेवाला हूँ, इसका समाचार अखबारोंमें छप गया था। कुछ लोग मेरे भाईसे मेरे जानेके बारेमें हमेशा पूछा करते थे। अब समय आया जब कि भाईने जानेका इरादा छोड़ देनेके लिए मुझसे कहा। मगर मैं तो माननेवाला नहीं था। तब वे राजकोटके ठाकुरसाहब[1]से मिले और उन्होंने उनसे कुछ आर्थिक सहायता देनेका अनुरोध किया। परन्तु उनसे कोई सहायता नहीं मिली। फिर मैंने ठाकुरसाहब और कर्नल वाट्सनसे आखिरी बार मुलाकात की। पहलेसे एक फोटो प्राप्त हुई, दूसरेसे परिचयकी एक चिट्ठी। यहाँ लिखे बिना काम न चलेगा कि इस समय मुझे जो पक्की खुशामद करनी पड़ी उससे मेरे मनमें गुस्सा भर गया था। अगर मुझे अपने भोले-भाले भाईका खयाल न होता तो मैंने ऐसी घोर खुशामदका आश्रय कदापि न लिया होता। आखिर १० अगस्तका दिन आया और मेरे भाई, शेख महताब, श्री नाथूभाई, खुशालभाई और मैं रवाना हुए।

मैं राजकोटसे बम्बईके लिए रवाना हुआ। वह शुक्रवारकी रात थी। मुझे मेरे स्कूलके साथियोंने एक मान-पत्र[2] दिया था। जब मान-पत्रका उत्तर देने खड़ा हुआ उस समय मैं बहुत उद्विग्न था। मुझे जो-कुछ बोलना था उसे आधा बोलनेके बाद मैं काँपने लगा। आशा है कि भारत लौटनेके बाद फिर वैसा न होगा। मुझे चाहिए कि भाषण देनेके पहले उसे लिख लिया करूँ। उस रातको मुझे विदा करनेके लिए बहुत-से लोग आये थे। सर्वश्री

१. राजकोटके राजा।
२. देखिए, पृष्ठ १।

केवलराम, छगनलाल (पटवारी), व्रजलाल, हरिशंकर, अमूलख, मानेकचन्द, लतीब, पोपट, भानजी, खीमजी, रामजी, दामोदर, मेघजी, रामजी कालिदास, नारणजी, रणछोड़दास, मणिलाल उन लोगोंमें शामिल थे। जटाशंकर, विश्वनाथ आदिको भी उनमें शामिल किया जा सकता है। पहला स्टेशन था— गोंडल। वहाँ डाक्टर भाऊसे भेंट हुई और हमने कपूरभाईको अपने साथ ले लिया। नाथूभाई जेतपुर तक आये। ढोलामें हमें उस्मानभाई मिले और वे वढ़वाण तक आये। वहाँ सर्वश्री नारणदास, प्राणशंकर, नरभेराम, आनन्दराय और व्रजलाल विदाई देने आये थे।

मुझे २१ ता० को बम्बई छोड़नी थी। परन्तु बम्बईमें जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं वे अवर्णनीय हैं। मेरी जातिके लोगोंने मुझे आगे जानेसे रोकनेकी भरसक कोशिश की। उनमें लगभग सभी विरोधी थे। और अन्तमें मेरे भाई खुशालभाई और स्वयं पटवारीने भी मुझे न जानेकी सलाह दी। परन्तु मैं उनकी सलाह माननेको तैयार नहीं था। फिर समुद्री मौसमका बहाना बना, जिससे मेरे जानेमें देरी हुई। इसके बाद मेरे भाई और दूसरे लोग मेरे पाससे चले गये। परन्तु मैं अकस्मात् ४ सितम्बर, १८८८ को बम्बईसे रवाना हो गया। इस समय मैं सर्वश्री जगमोहनदास, दामोदरदास और बेचरदासका बहुत आभारी था। शामलजीका भी निस्सन्देह मैं बहुत आभारी हूँ और रणछोड़लाल[1]का क्या ऋण मुझ पर है, मैं जानता नहीं। वह केवल आभारसे तो कुछ बड़ी चीज है। सर्वश्री जगमोहनदास, मानशंकर, बेचरदास, नारायणदास पटवारी, द्वारकादास, पोपटलाल, काशीदास, रणछोड़लाल, मोदी, ठाकुर, रविशंकर, फीरोजशाह, रतनशाह, शामलजी और कुछ अन्य लोग मुझे विदाई देनेके लिए *क्लाइड* जहाजके अन्दर आये। इनमें से पटवारीने मुझे पाँच रुपये, शामलजीने भी उतने ही, मोदीने दो, काशीदासने एक, नारणदासने दो रुपये दिये। कुछ और लोगोंने भी दिये, परन्तु उनकी मुझे याद नहीं आती। श्री मानशंकरने मुझे चाँदीकी एक जंजीर दी और फिर वे सब तीन वर्षके लिए विदाई देकर चले गये। इस प्रसंगको समाप्त करनेके पहले मुझे इतना तो लिखना ही चाहिए कि जिस स्थितिमें मैं था, उसमें अगर कोई दूसरा आदमी होता तो वह इंग्लैंड न देख सकता। जिन कठिनाइयोंका

१. रणछोड़लाल पटवारीके साथ गांधीजीकी बड़ी घनिष्ठता थी। उनके साथ गांधीजीका पत्र-व्यवहार था और उनके पिताने गांधीजीको लंदन जानेके लिए आर्थिक सहायता दी थी।
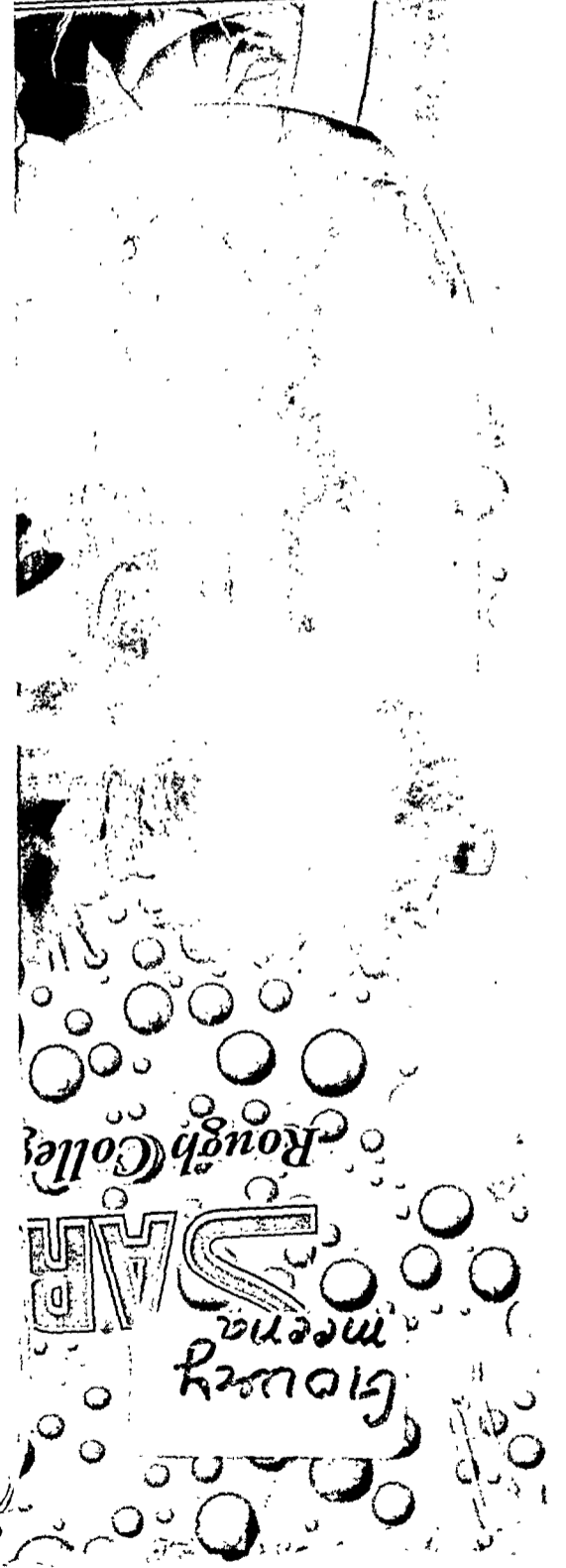
सामना मुझे करना पड़ा उनसे इंग्लैंड मेरे लिए साधारण स्थितिमें जैसा होता उससे अधिक प्यारा बन गया है।

सितम्बर ४, १८८८। समुद्र-यात्रा। जहाजने लगभग ५ बजे शामको लंगर उठाया। यात्राके बारेमें मुझे बहुत आशंका थी, परन्तु सौभाग्यसे वह मेरे अनुकूल पड़ी। सारी यात्रामें मुझे प्रवास-जन्य कष्ट नहीं हुआ और न उलटियाँ हुईं। मैंने अपने जीवनमें पहली ही बार भापके जहाज द्वारा यात्रा की थी। मुझे यात्रामें खूब मजा आया। लगभग ६ बजे ब्यालूकी घंटी बजी। स्ट्यूअर्डने मुझे मेज पर जानेकी सूचना दी। परन्तु मैं गया नहीं। अपने साथ जो कुछ लाया था वही मैंने खा लिया। श्री मजमूदारने पहली ही रातको जिस स्वच्छन्दतासे मेरे साथ बरताव किया उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मेरे साथ ऐसे ढंगसे बातें कीं, मानो हमारी पहचान बहुत पुरानी हो। उनके पास काला कोट नहीं था, इसलिए ब्यालूके लिए मैंने उन्हें अपना कोट दे दिया। वे मेज पर गये। उस रातसे मैं उन्हें बहुत चाहने लगा। उन्होंने अपनी चाबियाँ मुझे सौंप दीं और मैंने उसी रातसे उन्हें अपने बड़े भाईके समान मानना शुरू कर दिया। अदन तक हमारे साथ एक मराठा डाक्टर था। कुल मिलाकर वह एक अच्छा आदमी मालूम होता था। सो, दो दिनतक मैं उन फलों और मिठाइयों पर रहा जो मेरे पास जहाजमें थीं। बादमें श्री मजमूदारने जहाजके कुछ लड़कोंके साथ यह प्रबन्ध कर लिया कि वे हमारे लिए भोजन बना दिया करें। मैं तो कभी भी ऐसा प्रबन्ध न कर सका होता। एक अब्दुल मजीद थे, जो पहले दर्जेमें यात्रा कर रहे थे। हम सलून-यात्री थे। छोकरेका बनाया हुआ शामका भोजन हम खूब स्वादसे खाते थे।

अब थोड़ा-सा जहाजके बारेमें। मुझे जहाजकी व्यवस्था बहुत पसन्द आई। जब हम कोठरियों या सलूनोंमें बैठते हैं तो हमें यह भान नहीं रहता कि ये कोठरियाँ और सलून जहाजके हिस्से हैं। कभी-कभी हमें जहाजका चलना महसूस ही नहीं होता। मजदूरों और खलासियोंका कौशल तो सराहनीय है। जहाजमें बाजे थे। मैं अक्सर पियानो बजाया करता था। ताश, शतरंज, और ड्राफ्टकी जोड़ियाँ भी थीं। यूरोपीय यात्री रातको हमेशा ही कोई खेल खेला करते थे। छत (डेक) यात्रियोंके लिए बड़ी राहतकी चीज होती है। कोठरियोंमें बैठे-बैठे अक्सर मन ऊब उठता है। छत पर खुली हवा मिलती है। अगर आप निःसंकोची हों और जरूरी लियाकत रखते हों तो साथी-

यात्रियोंसे मिल-जुल सकते हैं और उनसे बातचीत कर सकते हैं। जब आसमान साफ होता है तब समुद्रका दृश्य बड़ा सुहावना होता है। एक रातको, जब चाँदनी छिटकी हुई थी, मैं समुद्रका अवलोकन कर रहा था। चन्द्रका प्रतिबिम्ब पानी पर पड़ रहा था। लहरोंके कारण चन्द्रमा ऐसा दिखलाई पड़ता था मानो वह इधर-उधर डोलता हो। एक अँधेरी रातको, जब आसमान साफ था, तारोंके प्रतिबिम्ब पानी पर दिखलाई पड़े। उस समय हमारे चारों ओरका दृश्य बड़ा सुन्दर था। पहले-पहल तो मैं अनुमान ही नहीं कर सका कि यह सब क्या है। ऐसा लगता था मानो इतने-सारे हीरे बिखरे हुए हों। परन्तु यह तो मैं जानता ही था कि हीरे तैर नहीं सकते। फिर मैंने सोचा कि ये कोई कीड़े होंगे, जो रातको ही दीख पड़ते हैं। इन्हीं विचारोंमें डूबे हुए मैंने आसमानकी ओर देखा और फिर मैं समझा कि ये तो और कुछ नहीं, तारोंके प्रतिबिम्ब हैं। मैं अपनी भूल पर हँस पड़ा। तारोंकी ये परछाइयाँ आतिशबाजीकी कल्पना कराती हैं। जरा कल्पना कीजिए कि आप किसी बँगलेकी छत पर खड़े हुए हैं और अपने सामने छूटनेवाली आतिशबाजियाँ देख रहे हैं। मैं अक्सर इस दृश्यका आनन्द लिया करता था।

कुछ दिनों तक मैंने साथी-यात्रियोंसे बिलकुल बातचीत नहीं की। मैं हमेशा सुबह आठ बजे सोकर उठता था और दाँत धोकर, शौच आदिसे निबट कर स्नान करता था। विलायती पाखानोंकी व्यवस्था भारतीय यात्रियोंको ताज्जुबमें डालनेवाली थी। वहाँ पानी नहीं होता, कागजके टुकड़ोंसे काम चलाना पड़ता है।

लगभग पाँच दिन तक समुद्र-यात्राका आनन्द लेनेके बाद हम अदन पहुँचे। इस बीच हमें कहीं भूमि या पर्वतोंका एक टुकड़ा भी दिखाई नहीं दिया। हम सब समुद्र-यात्राके नीरस एक-सुरेपनसे ऊब गये थे और जमीन देखनेको आतुर थे। आखिर छठवें दिनके सवेरे हमें भूमि दिखलाई पड़ी। सब आनन्दित और प्रफुल्ल दीखने लगे। ग्यारह बजे सुबहके लगभग जहाजने अदनमें लंगर डाला। कुछ लड़के छोटी-छोटी नावें लेकर आ गये। वे बड़े अच्छे तैराक थे। कुछ यूरोपीयोंने पानीमें पैसे फेंक दिये। इन लड़कोंने गहरी डुबकियाँ लगाकर उन पैसोंको निकाल लिया। काश, मैं भी इस तरह तैर सकता! वह दृश्य बड़ा सुहावना था। लगभग आधे घंटे तक उसका आनन्द लेनेके बाद हम अदन देखने गये। मैं कह दूँ कि हमने उन
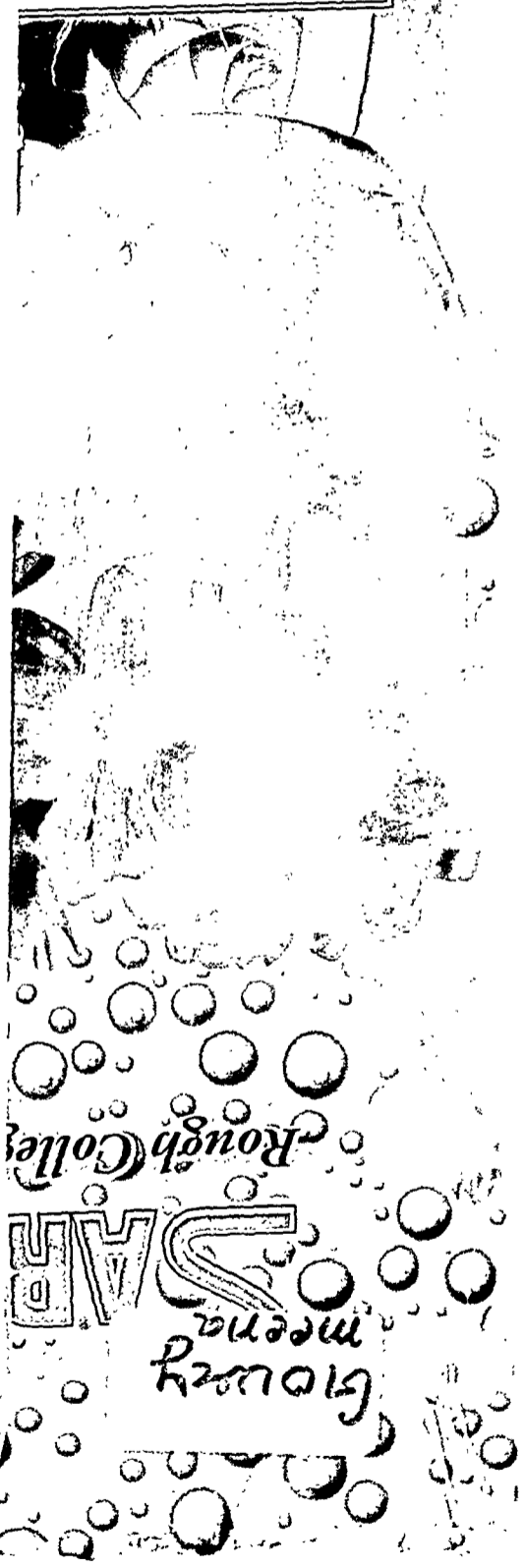
लड़कोंको पैसे निकालते हुए सिर्फ देखा; खुद हमने एक पाई भी नहीं फेंकी। इस दिनसे हमें इंग्लैंडके खर्चकी कल्पना होने लगी। हम तीन व्यक्ति थे, और नावका भाड़ा दो रुपये देना पड़ा। किनारा तो मुश्किलसे शायद एक मील रहा होगा। हम १५ मिनटमें किनारे पर पहुँच गये। बादमें हमने एक गाड़ी की। हम अदनकी एक-मात्र देखने लायक चीज पानीघर देखने जाना चाहते थे; परन्तु दुर्भाग्यसे समय हो गया और हम जा नहीं सके। हमने अदनका कैम्प देखा। अच्छा था। इमारतें अच्छी थीं। आम तौर पर दुकानें ही थीं। इमारतोंकी बनावट सम्भवतः वही थी जो राजकोटके बँगलोंकी और खास तौर पर पोलिटिकल एजेंटके नये बँगलेकी है। मैंने कोई कुआँ या ताजे पानीका कोई दूसरा स्थान नहीं देखा। मुझे भय है कि, शायद ताजा पानी सिर्फ तालाबोंसे आता है। धूप बड़ी तेज थी। मैं पसीनेमें डूबा हुआ था। इसका कारण यह था कि हम लाल सागरसे बहुत दूर नहीं थे। मैंने एक भी पेड़ या हरा पौधा नहीं देखा और इससे मुझे और भी आश्चर्य हुआ। लोग खच्चरों या गधों पर सवारी करते थे। अगर हम चाहते तो खच्चर किराये पर ले सकते थे। कैम्प पहाड़ पर है। जब हम लौटे तो नाववालोंने बताया कि जिन लड़कोंके बारेमें मैंने ऊपर लिखा है वे कभी-कभी घायल हो जाते हैं। समुद्रके जानवर कभी किसीके पैर और कभी किसीके हाथ काट लेते हैं। परन्तु फिर भी, वे लड़के इतने गरीब हैं कि अपनी छोटी-छोटी नावों पर बैठ कर आ ही जाते हैं। हम तो उन नावों पर बैठनेका साहस ही नहीं कर सकते। हममें से हरएकको एक-एक रुपया गाड़ी-भाड़ा देना पड़ा। लंगर १२ बजे दुपहरको उठा और हम अदनसे रवाना हो गये। परन्तु उस दिनसे हमें रोज ही धरतीका कोई-न-कोई हिस्सा दिखलाई देता रहा।

शामको हम लाल सागरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ गर्मी महसूस होने लगी। मगर बम्बईमें कुछ लोग जैसी बताते हैं, वैसी भून देनेवाली गर्मी, मेरे खयालसे, वह नहीं थी। बेशक कोठरियोंमें वह असह्य थी। आप धूपमें रह नहीं सकते, कोठरीमें कुछ मिनट भी रहना पसन्द नहीं करेंगे; मगर छत पर हों तो आपको ताजी हवाके सुखद झकोरे जरूर मिलेंगे। कमसे कम मुझे तो मिले। करीब-करीब सभी यात्री छत पर सोते थे, और मैं भी ऐसा ही करता था। प्रभात-सूर्यकी गर्मी भी आप सह नहीं सकते। छत पर आप हमेशा सुरक्षित रहते हैं। यह गर्मी लगभग तीन दिनतक रही।

वादमें, चौथी रातको हम स्वेज नहरमें दाखिल हुए। स्वेजके दीप हम बहुत दूरसे देख सकते थे। लाल सागर कहीं तो बहुत चौड़ा था, कहीं बहुत सँकरा — इतना सँकरा कि हम दोनों ओरकी भूमि देख सकते थे। स्वेज नहरमें दाखिल होनेके पहले हम 'हेल्सगेट' [नरक-द्वार] से गुजरे। 'हेल्सगेट' एक बहुत सँकरा जलभाग है, जो दोनों ओर पहाड़ोंसे बँधा हुआ है। उसे 'नरक-द्वार' इसलिए कहा जाता है कि बहुत-से जहाज वहाँ टकराकर नष्ट हो जाते हैं। हमने लाल सागरमें एक नष्ट हुआ जहाज देखा था। स्वेजमें हम लगभग आधा घंटा ठहरे। अव कहा जाने लगा कि हमें ठंड झेलनी होगी। कुछ लोगोंने कहा था कि अदनसे रवाना होनेके वाद तुम्हें शरावकी जरूरत पड़ेगी। मगर यह गलत निकला। अव मैंने सह-यात्रियोंसे थोड़ी-थोड़ी वातचीत शुरू कर दी थी। उन्होंने कहा था कि अदनके आगे तुम्हें मांसकी जरूरत पड़ेगी, मगर ऐसा नहीं हुआ। अपने जीवनमें पहली वार मैंने अपने जहाजके आगे विजलीकी रोशनी देखी। वह चाँदनी जैसी दिखाई पड़ती थी। उससे जहाजका सामनेका हिस्सा वड़ा सुन्दर लगता था। मुझे लगता है कि जो आदमी इसे किसी दूसरी जगहसे देखता होगा उसे यह और भी सुन्दर दिखलाई पड़ती होगी। यह वात ठीक वैसी ही है जैसे कि हम अपने शरीरके सौन्दर्यका इतना आनन्द नहीं ले सकते, जितना कि दूसरे ले सकते हैं; अर्थात्, हम उसे सराहक दृष्टिसे देख नहीं सकते। स्वेज नहरकी रचना मेरी समझमें नहीं आई। सचमुच वह अद्‌भुत है। जिस आदमीने इसका निर्माण किया है उसकी प्रतिभाकी कल्पना मैं नहीं कर सकता। पता नहीं कैसे उसने यह किया होगा। कहना विलकुल ठीक ही है कि उसने प्रकृतिसे होड़ की है। दो समुद्रोंको जोड़ देना कोई सरल काम नहीं है। नहरसे एक समय पर सिर्फ एक जहाज निकल सकता है। इसके लिए कुशल मार्ग-दर्शनकी आवश्यकता होती है। जहाज वहुत धीमी चालसे चलता है। हमें उसके चलनेका कोई भान नहीं होता। नहरका पानी विलकुल गँदला है। मुझे उसकी गहराईकी याद नहीं। चौड़ी वह उतनी ही है जितनी रामनाथके पास आजी नदी[1] है। दोनों ओर आप आदमियोंको चलते-फिरते देख सकते हैं। नहरके पासकी जमीन ऊसर है। नहर फ्रांसीसियोंकी है। जहाजको मार्ग दिखानेके लिए इस्माइलियासे दूसरा मार्ग-दर्शक (पाइलट) आता है। फ्रांसीसी लोग नहरसे गुजरनेवाले हर जहाजसे कुछ रुपया वसूल

१. राजकोटके पास।
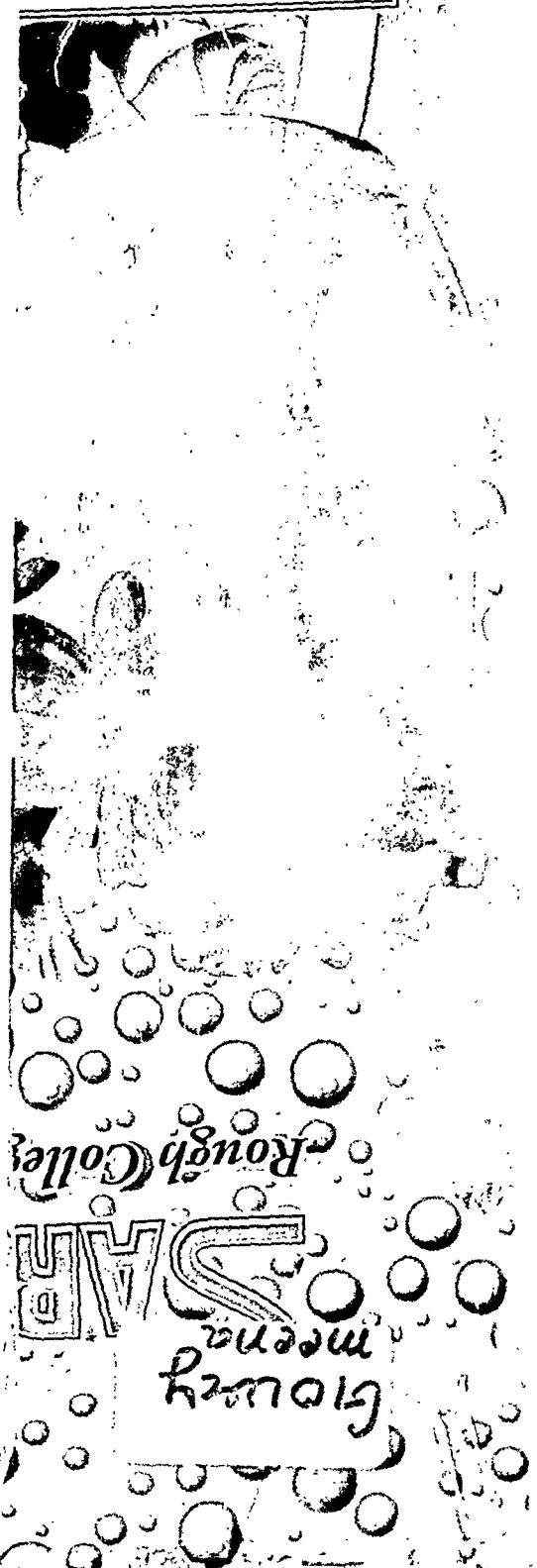
करते हैं। यह आमदनी बहुत बड़ी होगी। जहाजके बिजलीके दीपकके अलावा लगभग २० फुटकी दूरी पर दोनों ओर और भी चिराग दिखाई देते हैं। ये चिराग अलग-अलग रंगोंके हैं। जहाज चिरागोंकी इन कतारोंको पार करके निकलता है। नहर पार करनेमें लगभग २४ घंटे लगते हैं। इस दृश्यकी खूबसूरती बखानना मेरी ताकतके बाहर है। उसे देखे बिना आप उसका आनन्द नहीं पा सकते। पोर्ट सईद इस नहरके अन्तिम सिरेका बन्दरगाह है। पोर्ट सईदका अस्तित्व ही स्वेज नहरके कारण है। हमारा जहाज शामको वहाँ रुका। वह एक घंटे ही वहाँ रुकनेवाला था, मगर एक घंटा उस बन्दरगाहको देखनेके लिए बिलकुल काफी था। वहाँ ब्रिटिश सिक्कोंका प्रचलन था। भारतीय सिक्के बिलकुल बेकार हो गये। नावका भाड़ा ६ पेंस फी-सवारी था। एक पेंस एक आनेके बराबर होता है। पोर्ट सईदकी इमारतोंकी रचना फ्रांसीसी है। वहाँ फ्रांसीसी जीवनकी झलक मिल जाती है। हमने कुछ काफी-घर देखे। एकको देखकर पहले-पहल तो मैंने सोचा कि कोई नाटक-घर है, मगर वह तो काफी-घर निकला। उसमें एक ओर काफी, सोडा, चाय या कोई भी दूसरे पेय-पदार्थ मिलते हैं, दूसरी ओर गाना-बजाना होता है। कुछ स्त्रियाँ चिकारों (फिडल्स)का वृन्द-वादन कर रही थीं। बम्बईमें लेमनेडकी जो बोतल एक आनेसे भी कममें मिलती है उसकी कीमत इन काफी-घरोंमें — जिन्हें 'काफे' कहा जाता है — १२ आने (१२ पेंस) होती है। कहा जाता है कि ग्राहकोंको गाना-बजाना मुफ्तमें सुननेको मिलता है। मगर सचमुच बात यह नहीं है। जैसे ही गाना-बजाना खत्म हुआ कि एक स्त्री रूमालसे ढँकी हुई एक तश्तरी लेकर हर एक ग्राहकके पास जाती है। मतलब यह होता है कि उसे कुछ दिया जाये और हम कुछ देनेके लिए बाध्य हो जाते हैं। हम 'काफे' में गये और उस स्त्रीको हमने ६ पेंस दिये। पोर्ट सईद विलासके केन्द्रके अलावा कुछ नहीं है। वहाँके स्त्री और पुरुष बड़े चालाक हैं। दुभाषिये आपको रास्ता दिखानेके लिए पीछे लग जायेंगे। मगर आप उनसे साफ-साफ कह दें कि हमें आपकी जरूरत नहीं है। पोर्ट सईद मुश्किलसे राजकोटके 'परा'[1] के बराबर होगा। हम सात बजे शामको पोर्ट सईदसे रवाना हुए।

हमारे सह-यात्रियोंमें से एक श्री जेफरीज़ मुझ पर बड़े मेहरबान थे। वे हमेशा मुझसे मेज पर जाने और कुछ खानेको कहा करते थे। मगर मैं

१. गुजरातीमें, उपनगर।

नहीं जाता था। उन्होंने कहा कि ब्रिंडिसी पहुँचनेके वाद तुम्हें ठंड मालूम पड़ेगी। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। तीन दिन वाद हम रातको ब्रिंडिसी पहुँचे। ब्रिंडिसीका वन्दरगाह वड़ा सुन्दर है। जहाज किनारे तक गया और हम लोग एक सीढ़ीसे — जो इसीलिए लगा दी गई थी — किनारे पर उतर गये। [अँधेरा] होनेके कारण मैं ब्रिंडिसीमें ज्यादा-कुछ नहीं देख सका। वहाँ सव लोग इतालवी भाषा वोलते हैं। सड़कें पत्थरोंसे पटी हुई हैं। गलियाँ उतार-चढ़ाववाली हैं और उनपर भी पत्थरोंकी फर्शी है। दीपकोंके लिए गैसका उपयोग किया जाता है। हमने ब्रिंडिसीका स्टेशन देखा। वह उतना सुन्दर नहीं था, जितने सुन्दर वम्वई-वड़ोदा और सेंट्रल इंडिया रेलवेके स्टेशन हैं। परन्तु रेलके डिव्वे हमारे डिव्वोंसे वहुत वड़े थे। यातायात वहाँ अच्छा है। अगर आप काले आदमी हैं तो जैसे ही ब्रिंडिसीमें उतरेंगे, कोई आदमी आपके पास आयेगा और कहेगा: "साहव, मेरे साथ आइए। एक वड़ी खूवसूरत लड़की है, साहव,— १४ वरसकी। मैं आपको उसके पास ले चलूँगा। भाव वहुत महँगा नहीं है, साहव!" आप एकदम चकरा जायेंगे। लेकिन शान्तिसे काम लीजिए और दृढ़ताके साथ उसको जवाव दे दीजिए कि हमें उस लड़कीकी जरूरत नहीं है। और उस आदमीसे चले जानेको कह दीजिए, तो आप सकुशल रहेंगे। अगर आप किसी कठिनाईमें पड़ जायें तो फौरन पासमें पुलिसका जो आदमी हो उससे कहिए। या, तुरन्त किसी एक वड़ी इमारतमें, जो आपको दिखलाई देगी ही, घुस जाइए। हाँ, घुसनेके पहले इमारत पर लिखा हुआ नाम पढ़ लीजिए और यह निश्चय कर लीजिए कि वह सवके लिए खुली हुई है। यह आप तुरन्त समझ सकेंगे। वहाँके अरदलीको वताइए कि आप कठिनाईमें हैं। वह तुरन्त आपको उससे निकलनेका रास्ता वतायेगा। अगर आपमें काफी हिम्मत हो तो अरदलीसे कहिए कि वह आपको मुख्य अधिकारीके पास ले जाये और आप उसको सव वात वताइए। वड़ी इमारतसे मेरा मतलव है कि वह टामस कुक, हेनरी किंग या ऐसे ही किन्हीं दूसरे एजेंटोंकी हो। वे आपकी हिफाजत करेंगे। उस समय कंजूसी न करें। अरदलीको कुछ दे दें। परन्तु इस जरियेका सहारा तभी लेना चाहिए जव कि आप अपने-आपको खतरेमें समझते हों। मगर ये इमारतें आपको सिर्फ समुद्र-तट पर ही मिलेंगी। अगर आप तटसे वहुत दूर हों तो पुलिसके आदमीको खोजिए। अगर वह न मिले तो फिर आपका अन्तरात्मा ही आपका सवसे अच्छा मार्ग-दर्शक होगा। हम तड़के ब्रिंडिसीसे रवाना हुए।
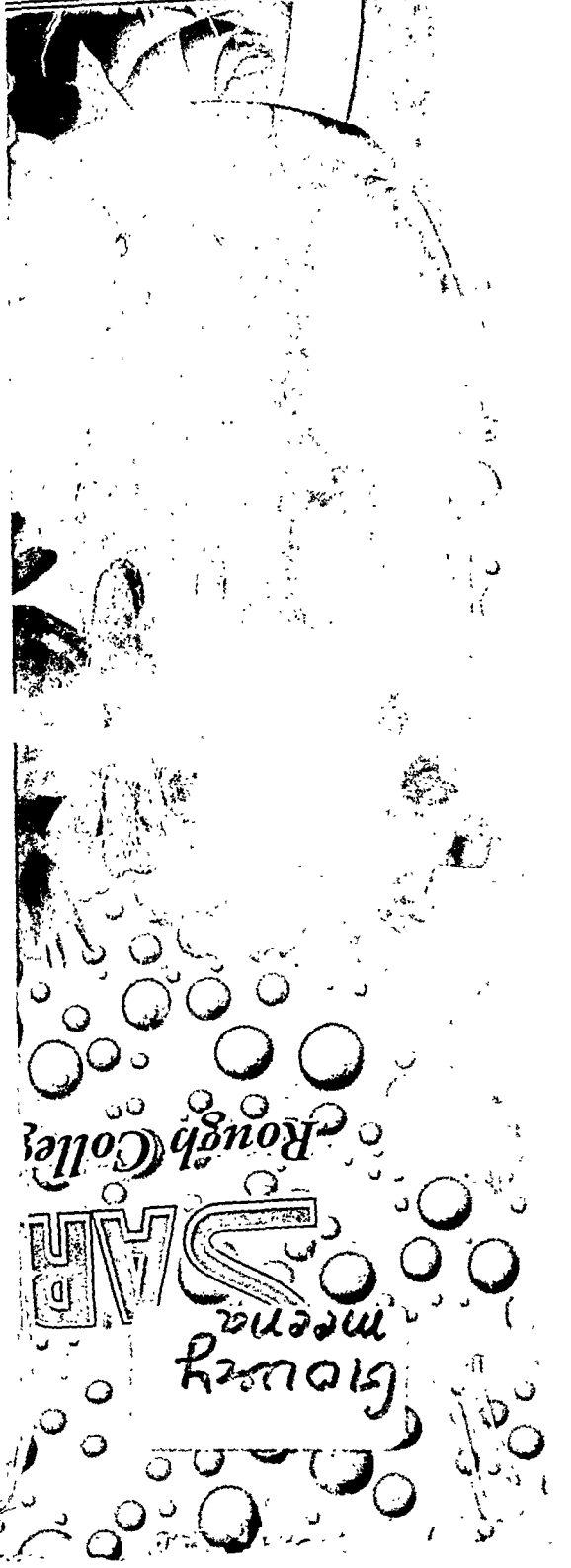
लगभग तीन दिन बाद हम माल्टा पहुँचे। जहाजने कोई दो बजे दुपहरको लंगर डाला। वहाँ वह लगभग चार घंटे ठहरनेवाला था। श्री अब्दुल मजीद हमारे साथ बाहर जानेवाले थे। परन्तु किसी कदर उन्हें बहुत देरी हो गई। मैं जानेको बिलकुल अधीर था। श्री मजमूदारने कहा — "क्या श्री मजीदकी राह न देखें, हम अकेले चले चलें?" मैंने जवाब दिया — "जैसा आप ठीक समझें। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" फिर हम दोनों ही चले गये। हमारे लौटने पर अब्दुल मजीदने कहा — "मुझे बहुत अफसोस है कि आप लोग चले गये।" इस पर श्री मजमूदारने जवाब दिया — "ये गांधी ही अधीर हो गये थे। इन्होंने ही मुझसे कहा था कि आपके लिए न ठहरें।" मुझे श्री मजमूदारके इस तरहके बरतावसे सचमुच बहुत चोट लगी। मैंने उस आरोपको धो डालनेकी कोई कोशिश नहीं की, बल्कि चुपचाप उसे मंजूर कर लिया। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सारा आरोप अब्दुल मजीदसे सिर्फ इतना इशारा करके सरलतासे धोया जा सकता था कि अगर श्री मजमूदार सचमुच ही आपके लिए ठहरना चाहते थे तो बेहतर होता कि वे मेरे कहनेके अनुसार न करते। और मैं समझता हूँ कि श्री अब्दुल मजीदको विश्वास दिला देनेके लिए कि इस काममें मेरा हाथ नहीं था, इतना ही काफी होता। मगर उस समय ऐसा कुछ करनेका मेरा इरादा नहीं था। फिर भी, उस दिनसे श्री मजमूदारके बारेमें मेरा खयाल बहुत नीचा हो गया और उनके लिए मेरे दिलमें कोई सच्चा आदर नहीं रहा। इसके अलावा भी दो-तीन बातें हुईं, जिनसे मजमूदार दिन प्रतिदिन मुझे कम भाते गये।

माल्टा एक दिलचस्प जगह है। वहाँ देखने लायक बहुत-सी चीजें हैं। मगर हमारे पास समय काफी नहीं था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, श्री मजमूदार और मैं तट पर गये थे। वहाँ एक बड़ा ठग हमें मिला। हमें बहुत हानि उठानी पड़ी। हमने नावका नम्बर ले लिया और शहर देखनेके लिए एक गाड़ी की। ठग हमारे साथ था। लगभग आधा घंटा चलनेके बाद हम सेंट जान गिरजेमें पहुँचे। गिरजाघर बड़ा सुन्दर बना था। वहाँ हमने कुछ प्रतिष्ठित लोगोंके अस्थिपंजर देखे। वे बहुत पुराने थे। जिस साथीने हमें गिरजाघर दिखाया था उसको हमने एक शिलिंग दिया। गिरजेके ठीक सामने सेंट जानकी प्रतिमा थी। वहाँसे हम शहरको चले। सड़कें फर्शदार थीं और उनके दोनों ओर लोगोंके पैदल चलनेके लिए फर्शदार पटरियाँ बनी थीं। टापू बहुत सुन्दर है। उसमें बहुत-सी शानदार इमारतें हैं। हम शस्त्रास्त्र-भवन देखने गये। यह भवन बड़ी सुन्दरतासे सजा था। वहाँ हमने बहुत पुराने चित्र देखे। वे सिर्फ रंगसे बने हुए नहीं थे,

बल्कि कशीदाकारीके थे। परन्तु किसी अनजान आदमीको किसीके बताये बिना मालूम नहीं होता कि वे कशीदाकारीके हैं। वहाँ पुराने योद्धाओंके शस्त्रास्त्र रखे हुए थे। उनमें सभी देखने लायक हैं। मैंने लिख नहीं रखा, इसलिए मुझे उन सबकी याद नहीं है। परन्तु एक फौजी टोप (हेल्मेट) था, जिसका वजन तीस पौंड था। नेपोलियन बोनापार्टकी गाड़ी बड़ी सुन्दर थी। जिस आदमीने हमें भवन दिखाया उसे ६ पेंस इनाम देकर हम लौट पड़े। गिरजाघर और शस्त्रास्त्र-भवन देखते समय आदर-प्रदर्शनके लिए हमें अपने टोप उतार लेने पड़े थे। फिर हम उस ठगकी दूकान पर गये। उसने जबरन कुछ चीजें हमारे मत्थे मढ़ देनेका प्रयत्न किया। मगर हम कोई चीज खरीदनेको तैयार नहीं थे। आखिर श्री मजमूदारने २ शिलिंग ६ पेंसके माल्टाके चित्र खरीद लिये। यहाँ ठगने हमारे साथ एक दुभापियेको कर दिया और वह खुद नहीं आया। दुभापिया बहुत अच्छा आदमी था। वह हमें संतरा-बाग (आरेंज गार्डेन्स) में ले गया। हमने बाग देखा। मुझे वह बिलकुल पसन्द नहीं आया। मुझे हमारा राजकोटका सार्वजनिक पार्क उससे ज्यादा अच्छा लगता है। अगर मुझे कुछ देखने लायक मालूम हुआ तो वह था एक छोटे-से कुंडमें सुनहली और लाल मछलियाँ। वहाँसे हम शहरको लौटे और एक होटलमें गये। श्री मजमूदारने कुछ आलू खाये और चाय पी। रास्तेमें हमारी भेंट एक भारतीयसे हुई। श्री मजमूदार बड़े बेधड़क आदमी थे, इसलिए उन्होंने उस भारतीयसे बातें कीं। ज्यादा बातें करने पर मालूम हुआ कि वह माल्टाके एक दूकानदारका भाई है। हम फौरन उस दूकानमें गये। श्री मजमूदारने दूकानदारसे खूब बातें कीं। हमने वहाँ कुछ चीजें खरीदीं और दो घंटे उस दूकानमें ही बिता दिये। इससे हम माल्टाका बहुत-सा भाग देख नहीं पाये। हमने एक और गिरजाघर देखा। वह भी बहुत सुन्दर और देखने लायक था। हमें संगीत-नाटकघर (आपेरा हाउस) देखना था, पर उसके लिए समय नहीं बचा। उन सज्जनने श्री मजमूदारको अपने लंदनवासी भाईके नाम अपना कार्ड दिया और हम उनसे विदा लेकर वापस लौटे। लौटते समय वह ठग हमें फिर मिला और ६ बजे शामको हमारे साथ हो लिया। तट पर पहुँचने पर हमने उसे, उस अच्छे दुभापियेको और गाड़ीवानको पैसा दे दिया। नाववालेसे भाड़ेके बारेमें हमारी कुछ कहा-सुनी हो गई। नतीजा अलबत्ता उसके ही पक्षमें रहा। यहाँ हम खूब ठगे गये।

क्लाइड जहाज ७ बजे शामको रवाना हुआ। तीन दिनकी यात्राके बाद हम १२ बजे रातको जिब्राल्टर पहुँचे। जहाज सारी रात वहाँ रुका रहा। मेरी

जिब्राल्टर देखनेकी वहुत इच्छा थी, इसलिए मैं सुबह जल्दी उठा और मैंने श्री मजमूदारको जगाकर उनसे पूछा कि वे मेरे साथ तट पर जायेंगे या नहीं। उन्होंने कहा कि जायेंगे। तब श्री मजीदके पास जाकर मैंने उन्हें जगाया। हम तीनों तट पर गये। हमारे पास सिर्फ डेढ़ घंटेका समय था। तड़का होनेके कारण सब दूकानें बन्द थीं। कहा जाता है कि जिब्राल्टर तट-करसे मुक्त बन्दरगाह है, इस-लिए वहाँ सिगरेट आदि धूम्रपानकी वस्तुएँ बहुत सस्ती मिलती हैं। जिब्राल्टर एक पहाड़ी पर बना हुआ है। शिखर पर किला है। मगर हम उसे देख नहीं पाये, इसका वहुत अफसोस रहा। मकान कतारोंमें हैं। पहली क़तारसे दूसरी कतारमें जानेके लिए कुछ सीढ़ियाँ चढ़ना जरूरी होता है। मुझे वह बहुत पसन्द आया। रचना वहुत ही सुन्दर है। सड़कें पटी हुई हैं। समय न होनेसे हम जल्दी लौटनेके लिए लाचार थे। जहाज साढ़े आठ बजे सुबह रवाना हो गया।

तीन दिन बाद हम ११ बजे रातको प्लीमथ पहुँच गये। अब ठीक सर्दीका समय आ गया था। हर एक यात्री कहता था कि तुम लोग मांस और शराबके विना मर जाओगे। मगर ऐसा हुआ तो नहीं। ठंड तो सचमुच वहुत थी। हमें तूफानकी सूचना भी दी गई थी, मगर हम उसे नहीं देख पाये। दर-असल मैं उसे देखनेको वहुत उत्सुक था, मगर देख नहीं सका। रात होनेके कारण हम प्लीमथमें कुछ भी देख नहीं सके। कुहरा घना था। आखिरकार जहाज लंदनके लिए रवाना हो गया। २४ घंटोंमें हम लंदन पहुँचे। जहाज छोड़कर हम टिलवरी रेलवे स्टेशनसे २८ अक्तूवर, १८८८ के ४ बजे सायंकाल विक्टोरिया होटलमें पहुँच गये।

शनिवार, २८ अक्तूबर, १८८८ से शुक्रवार, २३ नवम्बर

श्री मजमूदार, श्री अब्दुल मजीद और मैं विक्टोरिया होटलमें पहुँचे। श्री अब्दुल मजीदने विक्टोरिया होटलके आदमीसे कुछ शान दिखाते हुआ कहा कि वह हमारे गाड़ीवालेको मुनासिब किराया दे दे। श्री अब्दुल मजीद अपने-आपको वहुत बड़ा समझते थे, लेकिन मैं यहाँ लिख दूं कि वे जो कपड़े पहने हुए थे वे शायद होटलके उस छोकरेके कपड़ोंसे भी खराब थे। उन्होंने सामानकी भी कोई पर-वाह नहीं की और, जैसे कि लंदनमें वहुत दिनोंसे रह रहे हों, वे होटलके अन्दर चले गये। होटलके ठाट-बाट देखकर मैं चकरा गया। मैंने अपनी जिन्दगीमें इतनी शान-शौकत कभी नहीं देखी थी। मेरा काम चुपचाप अपने दोनों मित्रोंके पीछे-पीछे चलना भर था। सभी जगहोंमें विजलीकी वत्तियाँ थीं। हमें एक

कमरेमें ले जाया गया। श्री मजीद एकदम अन्दर चले गये। मैनेजरने उसी समय उनसे पूछा कि आपको दूसरा खंड पसन्द होगा या नहीं। श्री मजीदने रोजाना भाड़ेके बारेमें पूछताछ करना अपनी शानके खिलाफ समझकर कह दिया — हाँ। मैनेजरने फौरन प्रत्येकके नाम ६ शिलिंग रोजका बिल काटकर एक छोकरेको हमारे साथ भेज दिया। मैं सारे समय मन ही मन हँसता रहा। अब हमें एक 'लिफ्ट' के जरिये दूसरे खंडमें जाना था। मैं नहीं जानता था कि लिफ्ट क्या है। छोकरेने कोई चीज छुई जो, मैंने सोचा, दरवाजेका ताला होगा। परन्तु, जैसा कि मुझे बादमें मालूम हुआ, वह एक घंटी थी, जो उसने लिफ्टके छोकरेको यह जतानेके लिए बजाई थी कि वह लिफ्ट ले आये। दरवाजा खोला गया और मैंने सोचा कि यह कोई कमरा है, जिसमें हमें कुछ देर ठहरना होगा। लेकिन हमें उससे दूसरे खंडमें ले जाया गया और इस पर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

[अपूर्ण]

५. पत्र : श्री लेली[1]को

लंदन
दिसम्बर, १८८८

श्रीमन्,

आप मेरा वह पत्र देखकर मुझे पहचान जायेंगे, जो मैंने आपसे मिलनेका अवसर पाने पर आपको दिया था। आपने उसे सुरक्षित रखनेका वादा किया था।

उस समय मैंने इंग्लैंड आनेके लिए आपसे कुछ आर्थिक सहायता माँगी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश आप जानेकी जल्दीमें थे। इसलिए मुझे जो-कुछ कहना था वह सब कहनेके लिए काफी समय नहीं मिला।

मैं, उस समय, इंग्लैंड आनेके लिए बहुत अधीर था। इसलिए मेरे पास जो थोड़ा-बहुत पैसा था उसे लेकर मैं ४ सितम्बर, १८८८ को भारतसे रवाना

१. श्री लेलीके नाम एक पत्रका मसविदा, जो गांधीजीने अपने बड़े भाई लक्ष्मीदास गांधीके पास उनकी सम्मतिके लिए भेजा था।

हो गया। मेरे पिता हम तीनों भाइयोंके लिए जो-कुछ छोड़ गये थे वह तो बहुत थोड़ा था। मेरे भाई बहुत कठिनाईसे मेरे लिए लगभग ६६६ पौंड निकाल सके। मैंने माना कि इतनी रकम लंदनमें तीन वर्ष रहनेके लिए काफी होगी। और मैं इंग्लैंडमें कानूनका अध्ययन करनेके लिए भारतसे रवाना हो गया। भारतमें रहते हुए मुझे मालूम हो गया था कि लंदनमें रहना और शिक्षा प्राप्त करना बहुत खर्चीला होता है। परन्तु यहाँ दो माह रहकर मैंने अनुभव किया है कि वह भारतमें जितना मालूम हुआ था उससे भी ज्यादा खर्चीला है।

यहाँ आरामसे रहने और अच्छी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए मुझे ४०० पौंडकी और जरूरत होगी। मैं पोरबन्दरका निवासी हूँ। ऐसी हालतमें वही एक स्थान है, जिससे मैं इस प्रकारकी सहायताकी अपेक्षा कर सकता हूँ।

महाराणा साहबके भूतपूर्व शासनमें शिक्षाको बहुत कम प्रोत्साहन दिया जाता था। परन्तु अब हमारा यह अपेक्षा करना स्वाभाविक ही है कि अंग्रेजोंके शासन-प्रबंधमें शिक्षाको प्रोत्साहन मिलेगा। मैं उन लोगोंमें हूँ जो ऐसे प्रोत्साहनका लाभ उठा सकते हैं।

इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे कुछ आर्थिक सहायता देनेकी कृपा करेंगे और इस तरह मेरी बहुत बड़ी जरूरत पूरी करके मुझे आभारी बनायेंगे।

मैंने अपने भाई लक्ष्मीदास गांधीको [वह मदद] ले लेनेके लिए लिखा है। मैं उन्हें एक पत्र भेज रहा हूँ कि अगर जरूरी हो तो वे खुद आपसे मिल लें।

मुझे विश्वास है कि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करनेकी कृपा करेंगे।

परम आदरके साथ—

आपका

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इस तरह मैंने तीन हफ्ते हुए लिख रखा है, और विचार कर रहा हूँ। परन्तु विचार करते इस पत्रका जवाब आ जायेगा ऐसा मानकर यह मसविदा आपको भेजा है। इसमें मैंने पूरी मददकी माँग नहीं की, क्योंकि वह अनुचित मानी जायेगी। साथ ही, वे यह भी सोचेंगे कि अगर हमारी आशा पर गया होता, तब तो मदद मिले बिना न जाता। परन्तु यहाँ आनेके बाद यह सोचकर कि ज्यादा पैसेकी जरूरत होगी, बाकी पैसेकी मदद माँगी है। बन्धन आदि स्वीकार करनेकी बात लिखी ही नहीं, क्योंकि वह लिखनेकी

कोई जरूरत नहीं थी। थोड़ी मददके लिए बंधन स्वीकार करना ठीक नहीं। इसी तरह, यदि ...[1]

[अपूर्ण]

महात्मा, खंड १; एक फोटो-नकलसे।

६. पत्र : कर्नल वाट्सनको

[दिसम्बर, १८८८]

सेवामें
कर्नल जे० डब्ल्यू० वाट्सन
पोलिटिकल एजेंट, काठियावाड़

श्रीमन्,

मुझे इस देशमें आये लगभग छः या सात सप्ताह हुए हैं। इस बीचमें मैं यहाँ ठीक तरहसे जम गया हूँ और मैंने अपनी पढ़ाई काफी अच्छी तरह शुरू कर दी है। मैं अपनी कानूनी शिक्षाके लिए इनर टेम्पलमें भरती हुआ हूँ। आप भलीभाँति जानते हैं कि इंग्लैंडमें रहन-सहन बहुत खर्चीला है। मुझे जो थोड़ा-सा अनुभव हुआ है उससे मैं देखता हूँ कि भारतमें रहते हुए मैंने जितना समझा था उससे भी वह ज्यादा खर्चीला है। आप जानते ही हैं कि मेरे साधन बहुत सीमित हैं। मेरा खयाल है कि मैं किसीकी सहायताके बिना तीन वर्षका पाठ्यक्रम पूरा नहीं कर सकूँगा। जब मैं याद करता हूँ कि आपको मेरे पिताजीसे बहुत स्नेह था और आपने उन्हें अपना मित्र बनाया था तो मुझे बहुत कम सन्देह होता है कि आप उनसे सम्बन्ध रखने-वाली बातोंमें भी वही दिलचस्पी रखेंगे। मुझे विश्वास है कि आप मुझे कोई ऐसी अच्छी मदद दिला देनेकी भरसक कोशिश करेंगे, जिससे इस देशमें मुझे अपनी पढ़ाई पूरी करनेमें सहूलियत हो। इस तरह आप मेरी भारी जरूरत पूरी करके मुझे बहुत आभारी बनायेंगे।

१. गुजरातीमें लिखा हुआ यह संदेश श्री लक्ष्मीदास गांधीके नाम था। उपर्युक्त मसविदा इसके ही साथ भेजा गया था।

कुछ दिन हुए मैंने डाक्टर बटलरसे भेंट की थी। वे मुझ पर बहुत मेहरबान हैं और उन्होंने वादा किया है कि वे जो भी मदद कर सकेंगे, सब करेंगे। अबतक मौसम बहुत उग्र नहीं रहा। मैं बहुत मजेमें हूँ।

परम आदरके साथ —

आपका विश्वस्त
मो० क० गांधी

महात्मा, खण्ड १; एक अंग्रेजी फोटो-नकलसे।

७. भारतीय अन्नाहारी

सम्भवतः ये गांधीजीके लिखे हुए सबसे पहले लेख हैं। इनका प्रकाशन *वेजिटेरियन*-में हुआ था। ये अंग्रेजीमें थे।

१

भारतमें ढाई करोड़ (२५ मिलियन)[1] लोग निवास करते हैं। वे भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मोंके हैं। इंग्लैंडके जो लोग भारत नहीं गये, या जिन्होंने भारतीय मामलोंमें बहुत कम दिलचस्पी ली है, उनका सामान्य विश्वास यह है कि सारे भारतीय जन्मसे ही अन्नाहारी — अथवा निरामिष-आहारी — हैं। यह केवल आंशिक रूपमें सही है। भारतके निवासी तीन मुख्य वर्गोंमें बँटे हुए हैं। वे वर्ग हैं — हिन्दू, मुसलमान और पारसी।

हिन्दू और भी चार मुख्य वर्णोंमें बँटे हुए हैं — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन सबमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो केवल ब्राह्मण और वैश्य ही शुद्ध अन्नाहारी हैं, परन्तु व्यवहारमें प्रायः सभी भारतीय अन्नाहारी हैं। कुछ लोग तो स्वेच्छासे अन्नका आहार करनेवाले हैं, परन्तु शेषके लिए अन्नाहार अनिवार्य है। इनमें से दूसरे वर्गके लोग मांस खानेके इच्छुक तो हमेशा रहते हैं, परन्तु वे गरीब इतने हैं कि मांस खरीद नहीं सकते। भारतमें हजारों लोगोंको केवल एक पैसा ($\frac{1}{3}$ पेंस) रोज पर गुजारा करना पड़ता है। यह वस्तु-

१. मूल अंग्रेजीमें '२५० मिलियन' की जगह '२५ मिलियन' दिया है, जो स्पष्टतः छपाईकी भूल है।

स्थिति मेरे कथनकी पुष्टि करनेवाली होगी। ये लोग सिर्फ रोटी और भारी कर-लदे नमक पर निर्वाह करते हैं; क्योंकि भारत जैसे दरिद्रता-ग्रस्त देशमें भी एक पैसेमें खाने योग्य मांस मिल जाना अगर बिलकुल असम्भव नहीं तो बहुत कठिन जरूर होगा।

अब इस प्रश्नका निर्णय हो जानेके बाद कि भारतमें अन्नाहारी लोग कौन हैं, स्वाभाविक प्रश्न यह उठेगा कि वे जिस अन्नाहार-सिद्धान्तका पालन करते हैं वह क्या है? पहले तो, भारतीयोंके अन्नाहारका अर्थ शाक-सब्जी, अंडों और दूधका आहार नहीं है।[1] भारतीय — अर्थात् भारतीय अन्नाहारी — मांस, मछली और मुर्गीके अलावा अंडे खानेसे भी परहेज करते हैं। उनका तर्क यह है कि अंडा खाना जीवहत्या करनेके बराबर है, क्योंकि यदि अंडेको छेड़ा न जाये तो स्पष्ट है कि उससे बच्चा पैदा होगा। परन्तु जिस तरह यहाँके कट्टर अन्नाहारी दूध और मक्खनसे भी परहेज करते हैं, वैसा भारतीय अन्नाहारी नहीं करते। उलटे, वे तो उन्हें फलाहार — उपवास — के दिनोंमें सेवन करने योग्य पवित्र वस्तुएँ मानते हैं। ये फलाहारके दिन हर पखवारेमें आते हैं और ऊँची जातियोंके हिन्दू सामान्य रूपसे इनका पालन करते हैं। उनका कहना है कि हम गायका दूध लेकर उसकी हत्या नहीं करते। गो-दोहनको तो भारतमें काव्य और चित्र-कलाका विषय बना लिया गया है और, निश्चय ही, उससे कोमलतम भावनाओंको भी धक्का नहीं पहुँच सकता, जैसा कि गो-वधसे पहुँचता है। यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि हिन्दू लोग गायको पूजनीय मानते हैं और वधके हेतु गायोंका जो निर्यात किया जाता है उसे रोकनेके लिए एक आन्दोलन तेजीके साथ जोर पकड़ रहा है।

वेजिटेरियन, ७–२–१८९१

२

साधारणतः भारतीय अन्नाहारियोंका भोजन उनके अपने-अपने प्रदेशके अनुसार भिन्न होता है। इस तरह बंगालका मुख्य आहार चावल है, जब कि बम्बई प्रदेशका गेहूँ है।

१. मूल अंग्रेजीमें 'वी० ई० एम० डायट' दिया है, जिसका पूरा रूप है 'वेजिटेबल्स, एग्ज़ एंड मिल्क डायट'।
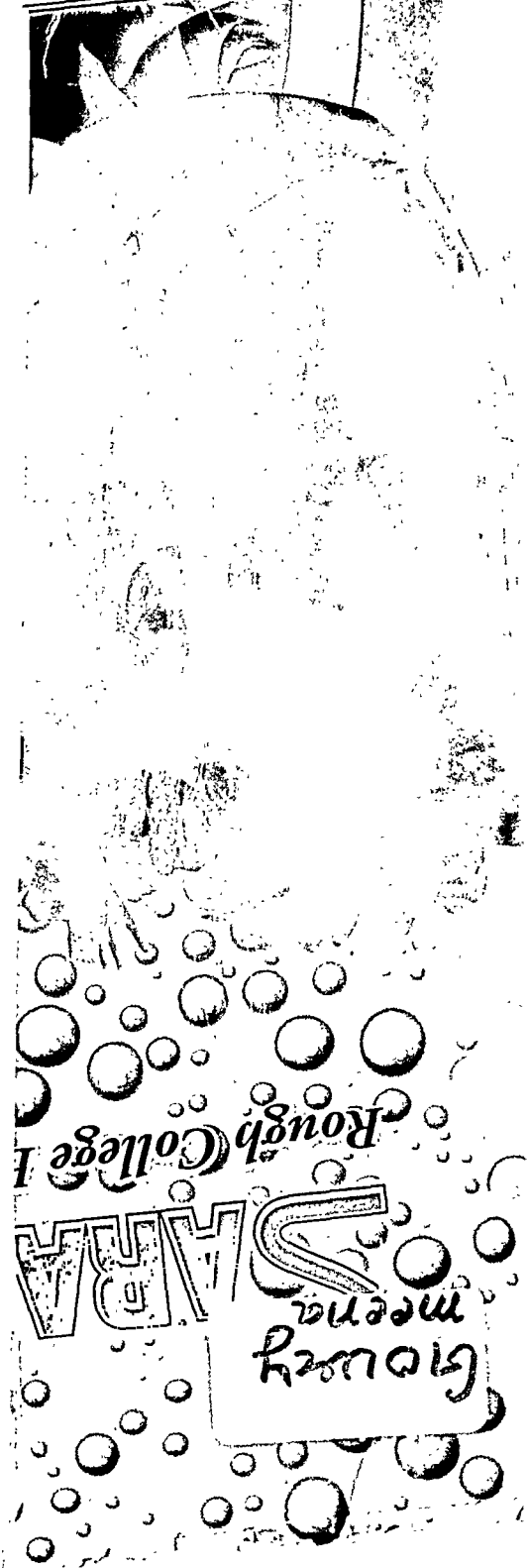
आम तौर पर सारे भारतीय — और विशेषतः प्रौढ़ लोग और उनमें भी ऊँची जातियोंके हिन्दू — दिनमें दो बार भोजन करते हैं। दोनों बारके भोजनके बीच जब-कभी प्यास लगती है, वे एक-दो गिलास पानी पी लेते हैं। पहली बारका भोजन वे लगभग दस बजे सुबह करते हैं। यह इंग्लैंडके शामके मुख्य भोजन (डिनर)के जैसा होता है। दूसरी बारका भोजन रातको लगभग आठ बजे किया जाता है। जहाँतक नामका सम्बन्ध है, वह इंग्लैंडकी व्यालू (सपर) के समान होता है। परन्तु वह हलका आहार नहीं, भरपूर भोजन होता है। साधारणतः भारतके लोग छः बजे और इससे भी जल्दी चार या पाँच बजे सुबह जागते हैं। यह देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि उन्हें कलेवाकी जरूरत पड़ती होगी। परन्तु, जैसा कि ऊपरके विवरणसे स्पष्ट हो गया होगा, वे कलेवा नहीं करते और न दुपहरका साधारण भोजन ही करते हैं। पर निस्संदेह कुछ पाठकोंको आश्चर्य होगा कि वे अपने पहले भोजनके बाद नौ घंटों तक कुछ भी खाये बिना कैसे रहते हैं। इसके दो उत्तर हो सकते हैं — पहला तो यह कि आदत दूसरा स्वभाव है। कुछ लोगोंका धर्म आदेश देता है और कुछ लोगोंके धंधे तथा रीति-रिवाज बाध्य करते हैं कि वे दिनमें दो बारसे ज्यादा भोजन न करें। दूसरे, कुछ स्थानोंको छोड़कर सारे भारतकी आबहवा बहुत गर्म है। यह उपर्युक्त आदतका कारण हो सकता है; क्योंकि इंग्लैंडमें भी देखा जाता है कि सर्दीके मौसममें भोजनकी जितनी मात्रा आवश्यक होती है उतनी ही गर्मीके मौसममें आवश्यक नहीं होती। इंग्लैंडमें जिस तरह भोजनका प्रत्येक पदार्थ अलग-अलग ग्रहण किया जाता है, वैसा भारतीय नहीं करते। वे अनेक पदार्थोंको एक-साथ मिला लेते हैं। कुछ हिन्दुओंमें तो सब पदार्थोंको एक-साथ मिला लेना धार्मिक विधि होता है। इसके अतिरिक्त, भोजनका प्रत्येक पदार्थ बड़े आडम्बरके साथ बनाया जाता है। सच तो यह है कि भारतीय सादी उबली हुई शाक-सब्जियोंके सिद्धान्तमें विश्वास नहीं करते, बल्कि उन्हें अच्छी-खासी मात्रामें नमक, मिर्च, हल्दी, राई, लौंग और तरह-तरहके दूसरे मसाले डाल कर स्वादिष्ट बना लेते हैं। अंग्रेजीमें उन सारे मसालोंके नाम दवाइयोंके नामोंमें ही मिल सकते हैं; उनके बाहर पाना कठिन है।

पहले भोजनमें साधारणतः रोटियाँ या चपातियाँ — जिनके बारेमें बादमें अधिक लिखा जायेगा — थोड़ी-सी दाल, जैसे अरहर या सेम आदिकी, और अलग-अलग या एक-साथ पकी हुई दो या तीन हरी सब्जियाँ होती हैं।

इसके बाद पानीमें पकी हुई और मसालोंसे स्वादिष्ठ बनी दाल और चावल खाते हैं। अन्तमें कुछ लोग दूध या चावल या केवल दूध या दही या, विशेषतः गर्मीके दिनोंमें, छाँछ भी लेते हैं।

दूसरे भोजन या ब्यालूमें अधिकतर पहले भोजनके ही पदार्थ होते हैं। परन्तु उनकी मात्रा और शाक-सब्जियोंकी संख्या कम होती है। दूधका उपयोग अधिक मात्रामें किया जाता है। यहाँ पाठकोंको याद दिला दूँ कि यही भारतवासियोंका निश्चित भोजन नहीं है। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि यही पदार्थ सारे भारतके और सब वर्गोंके आहारके नमूने हैं। उदाहरणके लिए, नमूनेके इन आहारोंमें मिठाई नहीं गिनाई गई, जब कि सम्पन्न वर्गोंमें हफ्तेमें एक बार तो मिठाई जरूर ही खाई जाती है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बम्बई प्रदेशमें चावलसे अधिक गेहूँ खाया जाता है, बंगालमें गेहूँसे अधिक उपयोग चावलका होता है। यही बात तीसरे अपवादके बारेमें भी है, जिससे कि नियम सिद्ध हो जाना चाहिए — मजदूर-वर्गका आहार उपर्युक्त आहारसे भिन्न है। यदि सब प्रकारके आहारोंकी चर्चा की जाये तो बहुत विस्तार हो जायेगा और वैसा करनेसे, भय है, लेखकी सारी रोचकता मारी जायेगी।

रसोईके कामोंमें मक्खन या, यों कहिए कि, घीका जितना उपयोग इंग्लैंड या सम्भवतः सारे यूरोपमें किया जाता है उससे भारतमें कहीं अधिक होता है। और, इस विषयमें कुछ अधिकार रखनेवाले एक डाक्टरके कथनानुसार, इंग्लैंडकी जैसी ठंडी आबहवामें मक्खनका बहुत उपयोग जैसा हानिकारक हो सकता है वैसा भारतकी जैसी गर्म आबहवामें नहीं हो सकता, फिर भले ही वह गुणकारी भी न हो।

शायद पाठक महसूस करेंगे कि आहारके उपर्युक्त नमूनोंमें फलोंका — हाँ, सर्वमहत्त्वपूर्ण फलोंका — अभाव खेदजनक और खटकनेवाला है। इसके अनेक कारणोंमें से कुछ ये हैं कि भारतीय फलोंका उचित महत्त्व नहीं जानते, गरीब लोगोंमें अच्छे फल खरीदनेका सामर्थ्य नहीं है और बड़े-बड़े शहरोंको छोड़कर शेष सारे भारतमें अच्छे फल प्राप्य नहीं हैं। हाँ, कुछ ऐसे फल जरूर हैं जो यहाँ नहीं पाये जाते और जिनका उपयोग भारतके सब वर्गोंके लोग करते हैं। परन्तु खेदकी बात है कि उनका सेवन ऊपरी चीजोंके रूपमें किया जाता है, भोजनके रूपमें नहीं। रासायनिक दृष्टिसे उनके गुणोंकी जानकारी किसीको नहीं है, क्योंकि उनके विश्लेषणका कष्ट कोई नहीं उठाता।

वेजिटेरियन, १४–२–१८९१
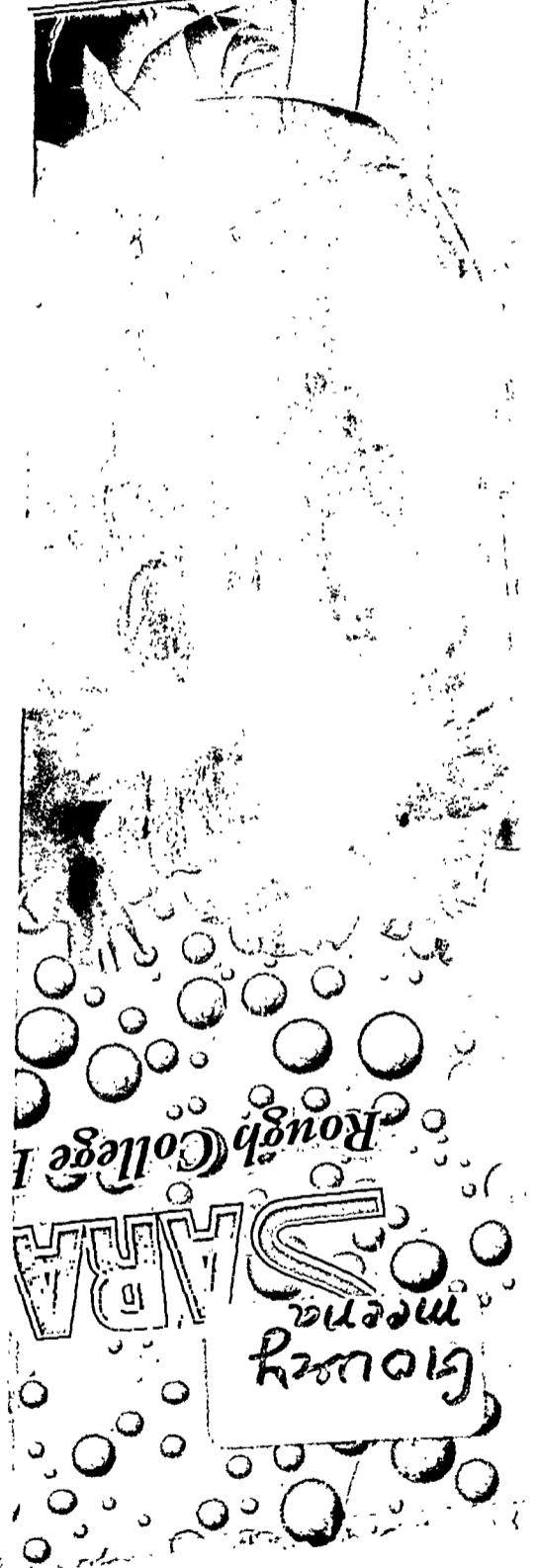
पिछले लेखमें चपातियों या रोटियोंकी बावत "बादमें अधिक" लिखनेका वादा किया गया था। ये रोटियाँ आम तौर पर गेहूँके आटेकी बनाई जाती हैं। पहले गेहूँको हाथ-चक्कीमें पीस लिया जाता है। हाथ-चक्की गेहूँ पीसनेका बिलकुल सादा उपकरण होती है, यंत्रसे चलनेवाली मिल नहीं। गेहूँका यह आटा मोटी चलनीसे चाला जाता है, जिससे मोटा-मोटा चोकर अलग हो जाता है। हाँ, गरीब वर्गोंमें चालनेकी यह क्रिया नहीं की जाती। यह आटा ठीक वही तो नहीं होता जिसका उपयोग यहाँके अन्नाहारी करते हैं; फिर भी यहाँ बुरी तरहसे काममें आनेवाली 'सफेद डबल रोटी' के आटेसे कहीं अच्छा होता है। लगभग आधा सेर आटेमें चायका चम्मचभर शुद्ध किया हुआ, अर्थात्, उबाल और छानकर ठंडा किया हुआ मक्खन [घी] मिला दिया जाता है, यद्यपि जब मक्खन बिलकुल शुद्ध हो तब यह क्रिया व्यर्थ होती है। फिर काफी पानी डालकर आटेको हाथोंसे तबतक माड़ा जाता है जबतक कि उसका एक समरस लोंदा नहीं बन जाता। बादमें इस लोंदेकी टैंजियरके संतरेके बराबर छोटी-छोटी, समान आकारकी, लोइयाँ बनाई जाती हैं। । इन लोइयोंको इसी कामके लिए खास तौरसे बने हुए लकड़ीके बेलनसे बेला जाता है और लगभग ६-६ इंच व्यासकी पतली, गोलाकार चकतियाँ [चपातियाँ] बनाई जाती हैं। प्रत्यक चपाती तवे पर अलग-अलग अच्छी तरह सेंकी जाती है। इस प्रकार एक चपातीको सेंकनेमें पाँचसे लेकर सात मिनट तक लगते हैं। यह चपाती या रोटी मक्खन [घी]के साथ गर्म-गर्म खाई जाती है और बड़ी स्वादिष्ठ होती है। इसे बिलकुल ठंडी हो जाने पर भी खाया जा सकता है, और खाया जाता है। अंग्रेजोंके लिए जैसा मांस है, भारतीयोंके लिए वैसी ही रोटी है — फिर भले ही भारतीय अन्नाहारी हों या मांसाहारी। लेखकके खयालसे, भारतमें मांसाहारी लोग भी मांसको स्वतंत्र आहारके रूपमें आवश्यक नहीं समझते, बल्कि यों कहें कि, रोटियाँ खानेमें मदद देनेवाली वस्तुके रूपमें, शाक-सब्जी [सालन]के तौर पर, खाते हैं।

यह है खुशहाल भारतीयोंके साधारण आहारकी रूप-रेखा — और रूप-रेखा मात्र। अब एक सवाल पूछा जा सकता है — "क्या ब्रिटिश शासनसे भारतीयोंकी आदतोंमें कोई फर्क नहीं पड़ा?" जहाँतक भोजन और पेयोंका सम्बन्ध है, "हाँ" और "नहीं"। "नहीं," क्योंकि साधारण स्त्री-पुरुषोंने अपने मूल आहार और आहारोंकी संख्या कायम रखी है। "हाँ," क्योंकि जिन

लोगोंने थोड़ी-सी अंग्रेजी सीख ली है उन्होंने इक्के-दुक्के अंग्रेजी विचार ग्रहण कर लिये हैं। परन्तु यह परिवर्तन भी बहुत दिखलाई नहीं पड़ता। और, यह परिवर्तन अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय करनेका काम पाठकोंके लिए ही छोड़ना होगा।

यह वर्ग कलेवाकी जरूरतको मानने लगा है। कलेवामें मामूली तौर पर एक-दो प्याले चाय ही होती है। इससे हम "पेयों" के प्रश्न पर आ जाते हैं। तथाकथित शिक्षित भारतीयोंमें, मुख्यतः ब्रिटिश शासनके कारण, चाय-काफीका जो प्रचार हुआ है उसका कम-से-कम जिक्र करके हम आगे बढ़ सकते हैं। चाय-काफी तो अधिकसे अधिक इतना ही कर सकती है कि थोड़ा-सा फालतू खर्च बढ़ा दे, और बहुत ज्यादा पीने पर स्वास्थ्यमें सामान्य कमजोरी पैदा कर दे। मगर ब्रिटिश शासनकी जिन बुराइयोंको सबसे ज्यादा महसूस किया गया है, उनमें से एक है शरावका — मानव जातिके उस शत्रु का, सभ्यताके उस अभिशापका — विभिन्न रूपोंमें भारतमें आगमन। दूसरोंसे सीखी हुई इस आदतकी बुराईका अन्दाजा तब लगेगा जब पाठक जान लें कि धार्मिक निषेधके बावजूद यह शत्रु भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक फैल गया है; क्योंकि मुसलमान तो, अपने धर्मके मुताबिक, शरावकी बोतल छू लेने मात्रसे ही नापाक हो जाता है और हिन्दुओंके धर्मने हर एक रूपमें शरावके उपयोगका कठोर निषेध किया है। फिर भी, अफसोस! ऐसा मालूम होता है कि सरकार उसे रोकनेके बजाय उसके प्रचारमें मदद और प्रोत्साहन दे रही है। भारतके गरीब लोग, जैसा कि सभी जगह होता है, इससे सबसे अधिक पीड़ित हैं। अपनी थोड़ी-सी कमाईको अच्छा भोजन और जरूरतकी दूसरी चीजें खरीदनेके बदले शराव पर खर्च कर देनेवाले वे ही हैं। वे अभागे गरीब ही हैं, जिन्हें पी-पी कर अपने-आपको बरबाद करने और अकाल मृत्यु मर जानेके लिए अपने कुटुम्बको भूखों मारना पड़ता है, और अगर उनके कोई बाल-बच्चे हों तो उनकी देख-रेख करनेके पवित्र कर्तव्यका भंग करना पड़ता है। यहाँ वैरोके भूतपूर्व सदस्य मि० केनकी प्रशंसामें यह कहा जा सकता है कि वे इस बुराईके फैलावके खिलाफ अब भी अपना धर्मयुद्ध अविचल रूपसे जारी किये हुए हैं। परन्तु एक उदासीन और सोई हुई सरकारकी अकर्मण्यताके खिलाफ एक मनुष्यकी शक्ति, फिर वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, क्या कर सकती है?

वेजिटेरियन, २१-२-१८९१

४

अब पाठकोंको मालूम हो चुका है कि भारतमें अन्नाहारी कौन हैं और आम तौर पर वे क्या खाते हैं। इसके बाद, नीचे लिखी हकीकतोंसे वे निर्णय कर सकेंगे कि अन्नाहारी हिन्दुओंके शरीर कमजोर होनेके बारेमें कुछ लोग जो तर्क करते हैं वे कितने निराधार और पोचे हैं।

भारतीय अन्नाहारियोंके बारेमें जो एक बात अक्सर कही जाती है सो यह है कि वे शारीरिक दृष्टिसे बहुत दुर्बल हैं और, इसका अर्थ है कि, अन्नाहार शारीरिक शक्तिके साथ मेल नहीं खाता।

अब, अगर यह सिद्ध किया जा सके कि भारतमें अन्नाहारी लोग भारतीय मांसाहारियोंसे — और यों कहिये कि, अंग्रेजोंसे भी — अधिक हृष्ट-पुष्ट नहीं तो उनके बराबर जरूर हैं और, इसके अलावा, जहाँ-कहीं दुर्बलता देखनेमें आती है वहाँ उसका कारण निरामिष आहार नहीं, बल्कि कुछ और ही है, तो उपर्युक्त दलीलका सारा आधारभूत ढाँचा ही ढह जायेगा।

आरंभमें यह स्वीकार करना ही होगा कि हिन्दू लोग साधारणतः इतने दुर्बल हैं कि वे अपनी दुर्बलताके लिए कु-ख्यात हो गये हैं। परन्तु कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति — भले ही वह मांसाहारी हो — जो भारत और उसके लोगोंको जरा भी जानता है, बता सकेगा कि इस लोक-विश्रुत दुर्बलताके अन्य अनेक कारण हैं, जो लगातार अपना काम करते रहते हैं।

बाल-विवाहकी दुर्भाग्यपूर्ण प्रथा और उससे पैदा होनेवाली बुराइयाँ ऐसा ही एक कारण है। यह अगर अपने-आपमें सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं, तो सबसे महत्त्वपूर्ण कारणोंमें एक जरूर है। आम तौर पर जब बच्चे नौ बरसकी 'महान्' आयु प्राप्त करते हैं, उन पर विवाहित जीवनकी बेड़ियोंका भार लाद दिया जाता है। बहुत-से तो और भी छोटी उम्रमें व्याह दिये जाते हैं और कुछकी सगाई उनके जन्मके पहले ही कर दी जाती है। अर्थात्, एक स्त्री दूसरी स्त्रीसे वादा कर देती है कि यदि मेरे लड़का और तुम्हारे लड़की हुई या मेरे लड़की और तुम्हारे लड़का हुआ तो हम दोनोंका विवाह कर देंगे। अलबत्ता, अन्तको इन दोनों हालतोंमें विवाहकी रस्म बच्चोंके १०-११ वर्ष पूरे कर लेने तक अदा नहीं की जाती। ऐसे मामलोंके उल्लेख मिलते हैं जिनमें १२ वर्षकी पत्नीके १६-१७ वर्षके पतिसे सन्तानोत्पत्ति हुई है। क्या बलवानसे बलवान शरीर पर भी इन विवाहोंका बुरा असर नहीं पड़ेगा?

अब जरा कल्पना कीजिए कि इस प्रकारके विवाहोंसे उत्पन्न सन्तति कितनी दुर्बल होगी। फिर खयाल कीजिए उन चिन्ताओंका, जो ऐसे दम्पतीको ढोनी पड़ेंगी। मान लीजिए कि किसी ११ वर्षके बालकका विवाह लगभग उसी उम्रकी बालिकाके साथ कर दिया जाता है। अब, लड़का तो जानता ही नहीं कि पति बननेका अर्थ क्या है, उसे जानना चाहिए भी नहीं; फिर भी उसके एक पत्नी हो जाती है, जो जबरन उसके गले मढ़ दी गई है। वह अपने स्कूल तो जाता ही है और स्कूलकी बेगारके साथ-साथ उसे अपनी बाल-पत्नीकी देखभाल भी करनी पड़ती है। उसका भरण-पोषण तो नहीं करना पड़ता, क्योंकि भारतमें विवाहित लड़कोंका अपने माता-पितासे अलग हो जाना जरूरी नहीं होता। हाँ, आपसमें बनती न हो तो बात अलग होती है। परन्तु भरण-पोषण छोड़कर उन्हें अपनी पत्नियोंके लिए सब-कुछ करना पड़ता है। फिर विवाहके लगभग छः वर्ष बाद, मान लीजिए, उसको लड़का हो गया। शायद उस समय तक उसकी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई। और उसे सिर्फ अपने ही नहीं, बल्कि अपनी पत्नी और बच्चेके भी भरण-पोषणके लिए रुपया कमानेकी चिन्ता लग गई, क्योंकि वह अपना सारा जीवन अपने पिताके साथ व्यतीत करनेकी आशा तो नहीं कर सकता। और मान लिया जाये कि वह पिताके आश्रयमें रहता ही है, तो भी उससे इतनी अपेक्षा तो की ही जायेगी कि वह अपनी पत्नी और बच्चेके भरण-पोषणमें कुछ हाथ बँटाये। तब क्या अपने कर्तव्यका ज्ञान-मात्र ही उसके मनको खा-खाकर स्वास्थ्य को कमजोर न कर देगा? क्या कोई यह कहनेका साहस कर सकता है कि इससे तगड़ेसे तगड़ा शरीर भी बरबाद न हो जायेगा? परन्तु यह तर्क बखूबी किया जा सकता है कि अगर इस उदाहरणका लड़का मांसाहारी होता तो जितना पुष्ट रहा उससे अधिक पुष्ट रहता। इस दलीलका उत्तर उन क्षत्रिय राजाओंके जीवनसे मिल सकेगा, जो कि मांसाहार करते हुए भी व्यभिचारके कारण बहुत दुर्बल पाये जाते हैं।

फिर भारतके ग्वाले इस बातके अच्छे उदाहरण हैं कि जहाँ दूसरे प्रतिकूल तत्त्व काम नहीं करते वहाँ भारतीय अन्नाहारी कितने मजबूत हो सकते हैं। भारतका ग्वाला भीमसेनी शरीर-यष्टिका और बहुत अच्छे गठनवाला होता है। अपनी मोटी, मजबूत लाठीसे वह किसी भी तलवारवाले साधारण यूरोपीयका सामना कर सकता है। ग्वालोंकी ऐसी कहानियोंके उल्लेख मिलते हैं जिनमें उन्होंने अपनी लाठियोंसे ही शेरों और बाघोंको मारा या भगाया है। एक मित्रने एक दिन कहा था — "परन्तु यह उदाहरण तो उन लोगोंका है जो

असभ्य और प्राकृतिक अवस्थामें रहते हैं। समाजकी वर्तमान नितान्त कृत्रिम अवस्थामें आपको सिर्फ गोभी और मटरसे कुछ अधिककी जरूरत है। आपका ग्वाला तो बुद्धिहीन है, वह किताबें नहीं पढ़ता, आदि।" इसका एकमात्र जवाब यह था, और है, कि अन्नाहारी ग्वाला मांसाहारी ग्वाले या गड़रियेसे अधिक मजबूत नहीं तो उसके बराबर तो होगा ही। इस प्रकार एक वर्गके अन्नाहारी और उसी वर्गके मांसाहारीके बीच तुलना हो जाती है। यह तुलना शक्तिके साथ शक्तिकी है, शक्तिके साथ शक्ति और बुद्धिकी नहीं; क्योंकि मैं तो हालमें सिर्फ यह गलत सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि भारतीय अन्नाहारी अपने अन्नाहारके कारण शारीरिक दृष्टिसे कमजोर हैं।

कोई चाहे जो आहार ग्रहण करे, शारीरिक और मानसिक शक्तिका एक-साथ बराबर विकास होना तो असंभव मालूम होता है। हाँ, इसमें विरले अपवाद भले ही हों। क्षतिपूर्तिके नियमकी माँग होगी कि मानसिक शक्तिमें जितनी बढ़ती होती है, शारीरिक शक्तिमें उतनी घटती हो। सैमसन जैसा शरीर-बली ग्लैडस्टन जैसा मेधावी नहीं हो सकता। और अगर यह दलील मान ली जाये कि समाजकी वर्तमान अवस्थामें अन्न या शाक-सब्जीके बदले किसी दूसरे आहारकी जरूरत है ही, तो क्या यह अन्तिम रूपसे साबित हो चुका है कि वह दूसरा आहार मांस ही है?

फिर, क्षत्रियोंका, भारतकी तथाकथित योद्धाजातिका उदाहरण ले लीजिए। वे तो निस्सन्देह मांसाहारी हैं, और उनमें कितने कम लोग ऐसे हैं, जिन्होंने कभी तलवार चलाई है! मैं यह नहीं कहूँगा कि वे प्रजाति (रेस)-गतरूपमें बहुत कमजोर हैं। बहुत पुराने जमानेमें क्यों जायें, जबतक पृथुराज और भीम और उनके जैसे सब लोगोंकी याद बनी है, तबतक कोई मूर्ख ही विश्वास कराना चाहेगा कि उनकी प्रजाति कमजोर है। परन्तु अब तो यह खेदजनक बात सच है कि उनका ह्रास हो गया है। सचमुच युद्ध-कुशल लोग तो, अन्य लोगोंके साथ-साथ पश्चिमोत्तर प्रदेश[1]के लोग हैं, जिन्हें 'भैया' कहा जाता है। वे गेहूँ, दाल और शाक-सब्जियों पर निर्वाह करते हैं। वे शान्तिके संरक्षक हैं। देशी सेनाओंमें उनकी संख्या बहुत बड़ी है।

१. नार्थ–वेस्टर्न प्राविन्स, जो वर्तमान उत्तर प्रदेश और आसपासके प्रदेशोंके कुछ हिस्से मिलाकर बनाया गया था।

उपर्युक्त तथ्योंसे आसानीसे समझा जा सकता है कि अन्नाहार हानिकारक तो है ही नहीं, उलटे शारीरिक स्वास्थ्यको बढ़ानेवाला है। और जो यह कहा जाता है कि हिन्दुओंकी शारीरिक दुर्बलताका कारण अन्नाहार है, वह केवल भ्रान्तिमूलक है।

वेजिटेरियन, २८–२–१८९१

५

पिछले लेखमें हमने देखा कि हिन्दू अन्नाहारियोंकी शारीरिक कमजोरीका कारण उनका आहार नहीं, कुछ और ही है। हमने यह भी देखा कि जो ग्वाले अन्नाहारी हैं वे मांसाहारियोंके बराबर ही ताकतवर हैं। ग्वाला अन्नाहारियोंका एक बहुत अच्छा नमूना है, इसलिए उसके रहन-सहनका अवलोकन कर लेना लाभदायक होगा। परन्तु पहले पाठकोंको बता दिया जाये कि जो-कुछ आगे लिखा जा रहा है वह भारतके सब ग्वालों पर नहीं, एक अमुक हिस्सेके ही ग्वालों पर लागू होता है। जिस तरह स्काटलैंडके निवासियोंकी आदतें इंग्लैंडके निवासियोंकी आदतोंसे भिन्न हैं, ठीक वैसे ही भारतके एक हिस्सेमें रहनेवाले लोगोंकी आदतें दूसरे हिस्सेमें रहनेवाले लोगोंकी आदतोंसे भिन्न हैं।

तो, भारतीय ग्वाला आम तौर पर पाँच बजे सुबह सोकर उठता है। अगर वह भक्ति-भाववाला हो तो सबसे पहले ईश्वरकी प्रार्थना करता है। फिर हाथ-मुँह धोता है। यहाँ मैं पाठकोंको उस 'ब्रश' का परिचय दे देनेके लिए, जिससे भारतीय अपने दाँत साफ करते ह, थोड़ा-सा विषयान्तर कर लूँ। वह 'ब्रश' और कुछ नहीं, 'बबूल' नामके एक काँटेदार पेड़की टहनी होता है। टहनीके लगभग एक-एक फुटके टुकड़े काट लिये जाते हैं। सब काँटे तो छील दिये ही जाते हैं। भारतीय उसके एक सिरेको चाबकर उसकी दाँत साफ करने लायक नरम कूँची बना लेते हैं। इस प्रकार वे रोजाना अपने लिए एक नया और घरमें बना 'ब्रश' तैयार कर लेते हैं। जब वे अपने दाँतोंको घिसकर मोती जैसे उज्ज्वल कर लेते हैं, तब उस टहनी [दतौन] को चीरकर दो फाँकें करते हैं और एक फाँकको मोड़कर उससे अपनी जीभ खरोंचते या साफ करते हैं। शायद औसत दर्जेके भारतीयोंके दाँत मजबूत और सुन्दर होनेका कारण सफाईकी यह क्रिया ही है। कदाचित् यह कहना अनावश्यक होगा

कि वे किसी दन्त-मंजनका उपयोग नहीं करते। बूढ़े लोग, जब उनके दाँत दतौनको कुचलने लायक नहीं रहते, छोटी-सी हथौड़ी काममें लाते हैं। इस सारी क्रियामें २०-२५ मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगता।

तो, अब फिर ग्वालेकी ओर लौटें। बादमें वह बाजरा (एक अनाज, जिसे आंग्ल-भारतीय भाषामें 'मिलेट' कहा जाता है और जिसका गेहूँके बदले या उसके अलावा बहुत उपयोग होता है) की मोटी रोटी, घी और गुड़का नाश्ता करता है। लगभग आठ-नौ बजे सुबह वह उन सब जानवरोंको लेकर, जो उसकी देखभालमें दिये जाते हैं, चराने चला जाता है। चरागाह आम तौर पर उसके कस्बेसे दो या तीन मील दूर और पहाड़ी प्रदेशके किसी भू-खंडमें होती है। उस पर लहलहाती हुई घास-पत्तियोंका हरा गलीचा बिछा होता है। इस प्रकार उसे प्राकृतिक दृश्योंके बीच ताजीसे ताजी हवाका आनन्द लेनेका अनुपम अवसर मिलता है। जब जानवर इधर-उधर घूमते होते हैं, वह अपना समय गानेमें या अपने साथीसे गप-शप करनेमें बिताता है। साथी उसकी पत्नी हो सकती है, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी भी हो सकता है। वह लगभग बारह बजे भोजन करता है, जो वह हमेशा अपने साथ ले जाता है। उसमें हमेशा मौजूद रहनेवाली रोटियाँ, मक्खन [घी], एक सब्जी, या थोड़ी-सी दाल, या उसके बदले अथवा उसके अलावा, कुछ अचार और तत्काल गायके थनसे दुहा हुआ ताजा दूध होता है। फिर दो या तीन बजेके लगभग अक्सर वह किसी छायादार पेड़के नीचे कोई आधे घंटे नींद लेता है। यह थोड़ी-सी नींद उसे सूर्यकी कड़ी धूपसे कुछ राहत देती है। छः बजे वह घर लौटता है। सात बजे व्यालू करता है, जिसमें कुछ गरम रोटियाँ और दाल या सब्जी होती है। व्यालूकी समाप्ति चावल और दूध या चावल और छाँछसे की जाती है। फिर घरका कुछ काम-धाम करनेके बाद, जिसका मतलब अक्सर तो अपने परिवारके लोगोंके साथ हँसी-खुशीकी बातें करना ही होता है, लगभग १० बजे रातको वह सो जाता है। वह या तो खुली जगहमें सोता है या किसी झोंपड़ीमें। झोंपड़ीमें कभी-कभी बहुत भीड़ होती है। उसका आश्रय वह सर्दी या वर्षामें ही लेता है। यह उल्लेखनीय है कि ये झोंपड़ियाँ देखनेमें तो बड़ी दीन-हीन मालूम पड़ती हैं और अक्सर इनमें खिड़कियाँ भी नहीं होतीं, फिर भी ये बन्द हवाकी नहीं होतीं। ये ग्रामीण ढंगसे बनाई जाती हैं, इसलिए इनके दरवाजे हवा या आँधीसे रक्षाके लिए नहीं, बल्कि चोरोंसे बचनेके लिए बनाये जाते हैं। तथापि, इन झोंपड़ियोंमें सुधारकी बहुत गुंजाइश है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

तो, एक खुशहाल ग्वालेका रहन-सहन इस प्रकारका होता है। अनेक दृष्टियोंसे उसके रहन-सहनका तरीका आदर्श है। उसको जबरन अपनी आदतोंमें नियमित रहना पड़ता है। वह अपना ज्यादा समय घरके बाहर बिताता है। और जब वह बाहर रहता है, तब शुद्धतम वायुका सेवन करता है, उचित मात्रामें व्यायाम पाता है, अच्छा और पौष्टिक भोजन करता है। और अन्तिम बात, परन्तु महत्त्वमें अन्तिम नहीं, यह है कि वह उन अनेक चिन्ताओंसे मुक्त रहता है, जो अक्सर शरीरको कमजोर कर देती हैं।

वेजिटेरियन, ७-३-१८९१

६

ग्वालेके रहन-सहनमें एक ही दोष पाया जाता है, और वह है स्नानकी कमीका। गरम आबहवामें स्नान बहुत गुणकारी होता है। मगर जब कि ब्राह्मण दिनमें दो बार और वैश्य दिनमें एक बार स्नान करता है, ग्वाला एक सप्ताहमें सिर्फ एक बार नहाता है। भारतीय किस तरह स्नान करते हैं, यह बतानेके लिए मैं यहाँ फिर थोड़ा विषयान्तर करूँगा। आम तौर पर भारतीय अपने गाँवके पासकी नदीमें स्नान करते हैं। मगर यदि कोई इतना आलसी हो कि नदी तक जाये ही नहीं, या उसे डूब जानेका डर मालूम होता हो, या अगर उसके गाँवके पास कोई नदी न हो, तो वह घरमें स्नान करता है। नहानेके लिए कोई स्नान-कुंड या नहानेकी गंगाल नहीं होती, जिसमें डूबकर स्नान किया जा सके। भारतीयोंका विश्वास होता है कि जैसे ही कोई बन्द पानीमें कूदा वैसे ही वह पानी अशुद्ध हो जाता है और आगेके लिए उपयोगी नहीं रहता। इसलिए वे किसी बड़े बर्तनमें पानी भरकर अपने पास रख लेते हैं और लोटेमें ले-लेकर अपने शरीर पर डालते हैं। इसी कारण वे चिलमचीमें हाथ भी नहीं धोते, बल्कि किसी दूसरेसे हाथों पर पानी डलवा लेते हैं, या दोनों हाथोंकी कलाइयोंके सहारे लोटेको पकड़ कर खुद ही डाल लेते हैं।

परन्तु हम मुख्य विषय पर लौटें। ऐसा मालूम होता है कि स्नानकी कमीसे ग्वालेके स्वास्थ्य पर कोई खास बुरा असर नहीं पड़ता। दूसरी ओर यह भी साफ है कि यदि कोई ब्राह्मण एक दिन भी स्नान किये बिना रह जाये तो उसे बड़ी बेचैनी मालूम होगी, और यदि वह थोड़े ज्यादा समय तक स्नान करना बन्द रखे तो वह बहुत जल्दी बीमार पड़ जायेगा।

मैं मान लेता हूँ कि यह उन अनेक बातोंका एक उदाहरण है, जिनका अन्यथा स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता और इसीलिए जिनको आदतका परिणाम बताया जा सकता है। इसी तरह, जब कि एक भंगी अपना धंधा करता हुआ अपना स्वास्थ्य अच्छा रखता है, तब यदि कोई साधारण आदमी वैसा ही करनेका प्रयत्न करे तो उसे मौतका खतरा झेलना पड़ेगा। यदि कोई सुकुमार प्रकृतिका लार्ड ईस्ट एंड [लंदनके कारखाना-क्षेत्र] के मजदूरोंकी नकल करनेका प्रयत्न करे तो मौत शीघ्र ही उसका दरवाजा खटखटाने लगेगी।

मैं यहाँ एक कहानी लिख देनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। वह इस विषयमें बिलकुल ठीक बैठती है। एक राजा एक दतौन बेचनेवाली स्त्रीके प्रेममें पड़ गया। वह स्त्री सुन्दरतामें मानो साक्षात् मोहिनी ही थी। फिर क्या था, आदेश दे दिया गया कि उसे राजाके महलमें रख दिया जाये। इससे सचमुच तो वह प्रत्यक्ष वैभवकी गोदमें पहुँच गई। उसे उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र और, संक्षेपमें, सब उत्तम वस्तुएँ प्राप्त हो गईं। परन्तु आश्चर्य! जितना ही वैभव, उतना ही उसका स्वास्थ्य गिरता गया। बीसियों वैद्योंने उपचार किया, औषधियाँ अत्यन्त नियमपूर्वक दी गईं, परन्तु लाभ कुछ न हुआ। इस बीच एक चतुर वैद्यने बीमारीका असली कारण ताड़ लिया। उसने कहा कि इसे भूत-प्रेतोंकी बाधा है। अतएव भूत-प्रेतोंको तुष्ट करनेके लिए उसने उस स्त्रीके सब कमरोंमें बासी रोटियोंके टुकड़े और फल रखा दिये। उसने कहा कि जितने कमरे हैं उतने ही दिनोंमें भूत-प्रेत भाग जायेंगे और उनके जानेके साथ ही बीमारी भी दूर हो जायेगी। और यही हुआ। अलबत्ता, रोटियाँ तो उस बेचारी रानीने ही खाई थीं।

इस कहानीसे मालूम होता है कि आदत मनुष्यों पर कैसा अधिकार कर लेती है। मैं समझता हूँ कि इसी कारण स्नानकी कमी ग्वालेको बहुत हानि नहीं पहुँचाती।

इस प्रकारके रहन-सहनका परिणाम हम आंशिक रूपसे पिछले लेखमें देख चुके हैं। वह परिणाम यह है कि, अन्नाहारी ग्वालेका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। वह दीर्घजीवी भी होता है। मैं एक ग्वालिनको जानता हूँ, जो १८८८ में सौ वर्षसे अधिककी थी। पिछली बार जब मैंने उसे देखा था तब उसकी नजर बहुत अच्छी थी। स्मरणशक्ति भी ताजी थी। उसे अपने बचपनमें देखी हुई चीजोंकी याद बनी थी। वह एक लाठीके सहारे चल सकती थी। मुझे आशा है कि वह अब भी जीवित होगी।

इस सबके अलावा, ग्वालेका शरीर सुडौल होता है। उसके शरीरमें कोई ऐब शायद ही मिलता है। वह शेरके समान भयावना न होता हुआ भी ताकतवर और बहादुर होता है। और सीधा भी इतना होता है, जैसे कि मेमना। उसका कद आतंक पैदा करनेवाला न होता हुआ भी प्रभावोत्पादक होता है। समग्रतः भारतका ग्वाला अन्नाहारियोंका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। और जहाँ तक शारीरिक बलका सम्बन्ध है, वह किसी भी मांसाहारीकी तुलनामें बहुत अच्छा ठहर सकता है।

वेजिटेरियन, १४–३–१८९१

८. कुछ भारतीय त्योहार

१

ईस्टरके इस अवसर पर मैंने उस त्योहारके बारेमें कुछ लिखना पसन्द किया होता, जो समयके खयालसे ईस्टरकी जोड़ीका है। परन्तु उसके साथ कुछ दुःखदायी बातें जुड़ी हुई हैं और वह सबसे बड़ा हिन्दू त्योहार भी नहीं है। इसलिए उसे छोड़कर दिवालीके त्योहारको लिया जा सकता है, जो उससे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण और भव्य है।

दिवालीके त्योहारको हिन्दू क्रिसमस कहा जा सकता है। वह हिन्दू वर्षके अन्तमें, अर्थात् नवम्बर महीनेमें पड़ता है। वह सामाजिक त्योहार भी है और धार्मिक भी। और लगभग एक मास तक चलता है। आश्विन (हिन्दू वर्षके बारहवें मास) का प्रथम दिन इस भव्य त्योहारके आगमनका सूचक होता है। उस दिन बच्चे पहले-पहल पटाखे छोड़ते हैं। पहले नौ दिनोंको 'नव-रात्रि' कहा जाता है। ये दिन 'गरबी' [गरबा-नृत्य] के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं। बीस-तीस या इससे भी ज्यादा लोग एक घेरा बनाते हैं। बीचमें एक बड़ा दीप-स्तम्भ रखा जाता है। वह बड़ा सुन्दर बनाया जाता है और उसके चारों ओर बत्तियाँ जलती हैं। बीचमें ढोलक लिये हुए एक आदमी भी बैठता है। वह कोई लोकगीत गाता है। घेरेके लोग हाथसे ताल दे-देकर उस गीतको दुहराते हैं। गाते-गाते और झूम-झूमकर नाचते हुए

वे दीपककी परिक्रमा करते हैं। अक्सर इन गरबियोंको सुननेमें बड़ा आनंद आता है।

यह कह देना आवश्यक है कि लड़कियाँ — और खास तौरसे स्त्रियाँ — इनमें कभी शामिल नहीं होतीं। अलबत्ता, वे अपनी गरबियाँ अलग रचा सकती हैं, जिनमें पुरुषोंको शामिल नहीं किया जाता। कुछ परिवारोंमें अर्ध-उपवासकी प्रथा होती है। उसमें परिवारके एक सदस्यका उपवास कर लेना काफी होता है। उपवास करनेवाला केवल एक बार और वह भी शामको भोजन करता है। इसके अलावा, उसके लिए गेहूँ, बाजरा, दाल आदि अनाज खाना वर्जित होता है। उसका आहार फल, दूध और आलू आदिके समान कन्दों तक ही सीमित रहता है।

महीनेका दसवाँ दिन 'दशहरा' कहलाता है। उस दिन मित्र आपसमें मिलते हैं और एक-दूसरेकी दावत करते हैं। मित्रों और खासकर मालिकों और बड़े लोगोंको भेंटमें मिठाई भेजनेकी भी प्रथा प्रचलित है। दशहराके दिनको छोड़कर मनोरंजनके सारे कार्यक्रम रातमें होते हैं। दिनके समय दैनिक जीवनके साधारण काम-धंधे किये जाते हैं। दशहराके बाद लगभग एक पखवारे तक अपेक्षाकृत शान्ति रहती है। केवल महिलाएँ आगे आनेवाले भव्य दिनके लिए मिठाइयाँ, पकवान आदि बनानेमें व्यस्त रहती हैं, क्योंकि भारतमें ऊँचेसे ऊँचे वर्गकी महिलाएँ भी भोजन बनानेसे एतराज नहीं करतीं। वास्तवमें यह एक गुण है, और माना जाता है कि प्रत्येक स्त्रीमें यह होता ही है।

इस प्रकार, संध्याओंको दावतों और गाने-बजानेमें बिताते हुए हम आश्विन कृष्ण तेरस पर पहुँचते हैं। (भारतमें प्रत्येक मासके दो पक्ष होते हैं — कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष। इनका प्रारंभ पूर्णिमा और अमावस्यासे होता है। पूर्णिमाके बादका दिन कृष्णपक्षका पहला दिन होता है। इसी तरह दूसरे, तीसरे आदि पंद्रहवें दिन तककी गणना की जाती है)। तेरहवाँ दिन और उसके बादके तीन दिन पूरी तरहसे उत्सवमें बिताये जाते हैं। तेरहवें दिनको 'धनतेरस' कहा जाता है, जिसका अर्थ है — धनकी देवी लक्ष्मीके पूजनके लिए निश्चित किया हुआ तेरहवाँ दिन। धनी लोग तरह-तरहके रत्न और सिक्के आदि एकत्रित करके सावधानीके साथ एक सन्दूकमें रखते हैं। इनका उपयोग पूजाके अलावा और किसी कामके लिए नहीं किया जाता। हर वर्ष इस संग्रहमें कुछ वृद्धि की जाती है। फिर उसकी पूजा होती है। अपने हृदयमें तो धनकी कामना या, दूसरे शब्दोंमें, पूजा कुछ गिने-चुने लोगोंको छोड़कर

कौन नहीं करता? परन्तु यहाँ पूजा — अर्थात् बाह्यपूजा — के रूपमें उस द्रव्यको पानी और दूधसे स्नान कराया जाता है, बादमें उस पर फूल चढ़ाये जाते हैं और कुंकुम लगाया जाता है।

चौदहवें दिनको 'काली चौदस' [नरक चौदस] कहा जाता है। परन्तु उस दिन लोग तड़के उठते हैं और आलसीसे आलसी आदमीको भी अच्छी तरह स्नान करना पड़ता है। माँ अपने छोटे-छोटे बच्चोंको भी स्नान करनेके लिए बाध्य करती है, हालाँकि वह मौसम ठंडका होता है। ऐसा माना जाता है कि काली चौदसकी रातको श्मशानमें भूतोंके जुलूस निकलते हैं। भूतों पर विश्वासका दिखावा करनेवाले लोग अपने भूत-मित्रोंसे मिलनेके लिए श्मशानोंमें जाते हैं। परन्तु डरपोक लोग भूत दिखाई देनेके डरसे घरोंके बाहर पैर नहीं रखते।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २८-३-१८९१

२

और यह लीजिए, अब पन्द्रहवें दिनका प्रातःकाल — ठीक दिवालीका दिन आ पहुँचा! दिवालीके दिन खूब पटाखे छोड़े जाते हैं। उस दिन कोई आदमी अपना धन किसीको देनेके लिए राजी नहीं होता। कर्ज न तो कोई लेता है, न देता है। जो-कुछ भी खरीदना हो, पहले ही दिन खरीद लिया जाता है।

अब आप एक आम सड़कके नुक्कड़के पास खड़े हैं। उस ग्वालेको देखिए, जो दूध जैसे सफेद कपड़े पहने — जिन्हें उसने पहली ही बार पहना है — और अपनी लम्बी दाढ़ी चेहरेके दोनों ओर ऊपरको फेरकर पगड़ीके नीचे बाँधे, कुछ अधूरे गाने गाता हुआ आ रहा है। उसके पीछे-पीछे गायोंका झुंड चल रहा है, जिसमें गायोंके सींग लाल-हरे रंगे और चाँदीसे मढ़े हुए हैं। उनके पीछे-पीछे आप छोटी-छोटी लड़कियोंकी वह भीड़ देखते हैं। लड़कियोंके सिरों पर गिंडुरियों पर रखी हुई छोटी-छोटी मटकियाँ हैं। आपको कौतूहल हो रहा है कि उन मटकियोंमें क्या है। मगर उस असावधान बालिकाकी मटकीसे थोड़ा-सा दूध छलक जाता है और आपका कौतूहल शीघ्र ही मिट जाता है। अब आप उस ऊँचे-पूरे, तगड़े, सफेद मूछोंवाले आदमीको देखिए, जो अपने सिर पर बड़ा-सा सफेद दुपट्टा बाँधे है। उसके दुपट्टेमें लम्बी भरूँची कलम खुँसी हुई है। अपनी कमरमें वह एक लम्बा दुपट्टा लपेटे है जिसमें एक चाँदीकी दावात खुँसी हुई है। आपको जानना चाहिए कि वह

एक बड़ा साहूकार है। इस तरह आपने तरह-तरहके लोगोंको देखा, जो हर्ष और उल्लाससे भरे हुए मजेके साथ घूम-फिर रहे हैं।

अब रात आ गई। सड़कें आँखोंको चौंधिया देनेवाली रोशनीसे दमक रही हैं — हाँ, चौंधिया देनेवाली उसके लिए, जिसने कभी रीजेंट स्ट्रीट या आक्सफर्डको नहीं देखा। परन्तु अगर बम्बई जैसे बड़े-बड़े शहरोंको छोड़ दिया जाये तो क्रिस्टल-महलमें जिस पैमाने पर रोशनी होती है, उससे तो इस रोशनीकी कोई तुलना नहीं होगी। स्त्री, पुरुष और बच्चे उत्तम-उत्तम वस्त्र पहने हैं— और करीब-करीब सभी वस्त्र अलग-अलग रंगके हैं। उनकी अद्भुत बहु-रंगी छवि इन्द्र-धनुषकी छवि प्रस्तुत कर रही है। आजकी रात विद्याकी देवी सरस्वतीके पूजनकी रात भी है। व्यापारी लोग पहली मद दर्ज करके अपने नये बही-खाते भी आज रातको शुरू करते हैं। पूजा करानेवाला पुरोहित — वह सर्वत्र विद्यमान ब्राह्मण — कुछ मंत्र गुनगुनाता है और देवीका आवाहन करता है। पूजाके अन्तमें बिलकुल अधीर बने बच्चे पटाखे सुलगाते हैं और चूँकि यह पूजा सब जगह एक निश्चित समय पर होती है, सड़कें पटाखोंके धड़ाकों, पटपटाहट और सुरसुराहटसे गूँज उठती हैं। बादमें धार्मिक वृत्तिके लोग मंदिरोंमें जाते हैं। परन्तु वहाँ भी हर्ष और उल्लास, चकाचौंधकारी प्रकाश और भव्यताके सिवा कुछ दिखलाई नहीं देता।

दूसरा दिन, अर्थात् नव-वर्ष-दिन[1], लोगोंसे भेंट करनेका होता है। उस दिन घरोंमें चूल्हे नहीं जलते और लोग पिछले दिन बना हुआ बासा और ठंडा भोजन करते हैं। परन्तु कोई खाऊ व्यक्ति भूखा नहीं रहता, क्योंकि खानेकी चीजें इतनी होती हैं कि उसके बार-बार खाने पर भी बहुत-सा भोजन बच रहता है। खुशहाल लोग हर प्रकारकी शाक-सब्जी और धान्य खरीदते तथा पकाते हैं, और नव-वर्ष दिवसके उपलक्ष्यमें उन सबको चखते हैं।

नव-वर्षका दूसरा दिन अपेक्षाकृत शान्त होता है। उस दिन चूल्हे फिर जलते हैं। आम तौर पर पिछले दिनके गरिष्ठ भोजनके बाद हलका भोजन ग्रहण किया जाता है। नटखट बच्चोंको छोड़कर अब कोई पटाखे और आतिशबाजियाँ नहीं छोड़ता। रोशनी भी कम हो जाती है। दूसरे दिन दिवालीका उत्सव लगभग समाप्त हो जाता है।

१. गुजरातमें विक्रम संवत्के अनुसार नये वर्षका आरम्भ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को माना जाता है।

अब हम देखें कि इन उत्सवोंका समाज पर क्या असर पड़ता है और इनके द्वारा लोग अनजाने कितने अभीष्ट काम पूरे कर डालते हैं। साधारणतः परिवारके सब लोग उत्सवके दिनोंमें अपने मुख्य घरमें एकत्र होनेका प्रयत्न करते हैं। पति अपने कामके कारण भले ही सारे वर्ष दूर रहा हो, इन दिनों वह फिरसे अपनी पत्नीके पास घर पहुँचनेका प्रयत्न करता है। पिता लम्बी यात्रा करके भी अपने बच्चोंसे मिलनेके लिए आ जाता है। पुत्र यदि दूर पढ़ता होता है तो वह अपने स्कूलसे घर आता है और इस तरह हमेशा सारे परिवारका पुनर्मिलन होता रहता है। फिर, जो समर्थ होते हैं वे सब नये कपड़े बनवाते हैं। धनी लोग खास तौरसे इस अवसरके लिए जेवर भी खरीदते हैं। विभिन्न परिवारोंके पुराने-पुराने झगड़े भी मिटा लिये जाते हैं। ऐसा करनेका गम्भीरताके साथ प्रयत्न तो कम-से-कम किया ही जाता है। घरोंकी मरम्मत और सफेदी की जाती है। बँधी पड़ी हुई साज-सज्जा निकाल कर साफ की जाती है और उससे कमरोंको सजाया जाता है। यदि कोई पुराना कर्ज हो तो उसे सम्भवतः पटा दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्तिसे नव-वर्षके लिए कोई-न-कोई नई चीज खरीदनेकी अपेक्षा रखी जाती है। और वह चीज आम तौर पर बर्तन या इसी तरहकी कोई दूसरी चीज होती है। भिक्षा खुले हाथों दी जाती है। जो लोग प्रार्थना करने और मन्दिर जानेमें अधिक आस्था नहीं रखते वे भी इन दिनों ये दोनों काम करते हैं।

त्योहारोंके दिन कोई आदमी किसी दूसरेसे लड़ाई-झगड़ा नहीं करता और न किसीको कोसता है। कोसनेकी नाशकारी आदत खास तौरसे निम्न वर्गके लोगोंमें बहुत फैली हुई है। संक्षेपमें, प्रत्येक बात शान्तिमय और आनन्दमय होती है। जीवन भाररूप होनेके बजाय पूर्णतः आनन्द मनानेके योग्य होता है। यह समझ लेना कठिन नहीं कि इस तरहके त्योहारोंका परिणाम अच्छा और दूर तक प्रभाव डालनेवाला हुए बिना नहीं रह सकता। कुछ लोग इन त्योहारोंको अंधविश्वास और उचक्केपनका प्रतीक बताते हैं। परन्तु सचमुच तो ये मानव जातिके लिए वरदान-रूप हैं और कठोर परिश्रम करनेवाले करोड़ों लोगोंको जीवनके नीरस ढर्रेमें बहुत हद तक राहत पहुँचाते हैं।

यद्यपि दिवालीका उत्सव सारे भारतमें मनाया जाता है, उसे मनानेकी पद्धति भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न-भिन्न है। इसके अलावा, यह तो हिन्दुओंके इस सबसे बड़े त्योहारका एक कच्चा, अपूर्ण वर्णन मात्र है। परन्तु ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि इस उत्सवका कोई दुरुपयोग नहीं होता। सब दूसरी

वातोंके समान इस त्योहारका भी कलुषित पहलू हो सकता है, और शायद है भी। परन्तु उसे छोड़ देना ही अच्छा होगा। इतना निश्चय है कि इससे जो भलाई होती है वह तौलमें बुराईसे बहुत ज्यादा है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ४-४-१८९१

३

दिवालीके त्योहारके बाद सबसे ज्यादा महत्त्वका त्योहार होली है, जिसका संकेत २८ मार्चके *वेजिटेरियन*में किया गया था।

स्मरण होगा कि होलीका त्योहार समयकी दृष्टिसे ईस्टरका जोड़ीदार है। होली हिन्दू वर्षके पाँचवें महीने फाल्गुनकी पूर्णिमाको मनाई जाती है। यह ठीक वसन्तका मौसम होता है। पेड़-पौधे फूलते हैं। गरम कपड़े छोड़ दिये जाते हैं। महीन कपड़ोंका शौक चल जाता है। जब हम मन्दिरोंमें दर्शन करने जाते हैं तो और भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि वसन्त-ऋतुका आगमन हो गया है। किसी मंदिरमें प्रविष्ट होते ही (और उसमें प्रविष्ट होनेके लिए आपका हिन्दू होना जरूरी है) आपको मधुर पुष्पोंकी सुवास ही सुवास मिलेगी। भक्तजन, सीढ़ियों पर बैठे हुए, ठाकुरजीके लिए मालाएँ बनाते दिखलाई पड़ेंगे। फूलोंमें आपको चमेली, मोगरा आदिके सुन्दर फूल देखनेको मिलेंगे। जैसे ही दर्शनके लिए पट खोले गये कि आपको पूरे वेगसे फुहार छोड़ते हुए फुहारे दिखाई देंगे; मन्द-सुगन्ध पवनका आनन्द मिलेगा। ठाकुरजी मृदुल रंगोंके हलके वस्त्र धारण किये होंगे। सामने फूलोंकी राशियाँ और गलेमें मालाओंके पुंज उन्हें आपकी दृष्टिसे लगभग छिपाये होंगे। वे इधरसे उधर झुलाये जाते होंगे और उनका झूला भी सुगन्धित जल छिड़की हुई हरी पत्तियोंसे सजा होगा।

मंदिरके बाहरका दृश्य बहुत आह्लादकारी नहीं होता। वहाँ आपको होलीके एक पखवारे पहलेसे अश्लील भाषाके सिवा कुछ नहीं मिलेगा। छोटे-छोटे गाँवोंमें तो स्त्रियोंका बाहर निकलना ही कठिन होता है — उन पर कीचड़ फेंक दिया जाता है और अश्लील आवाजकशी की जाती है। यही व्यवहार पुरुषोंके साथ भी होता है और इसमें छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं माना जाता। लोग छोटी-छोटी टोलियाँ बना लेते हैं और फिर एक टोली दूसरी टोलीके साथ अश्लील

भाषाके प्रयोग और अश्लील गीत गानेमें स्पर्धा करती है। सभी पुरुष और बच्चे इन घृणास्पद स्पर्धाओंमें शामिल होते हैं। केवल स्त्रियाँ शामिल नहीं होतीं।

सच बात यह है कि इस पर्वमें अश्लील शब्दोंका प्रयोग बुरी रुचिका परिचायक नहीं माना जाता। जहाँके लोग अज्ञानमें डूबे हुए हैं, उन स्थानोंमें एक-दूसरे पर कीचड़ आदि भी फेंका जाता है। लोग दूसरोंके कपड़ों पर भद्दे शब्द छाप देते हैं। और कहीं आप सफेद कपड़े पहनकर वाहर निकल गये, तो अवश्य ही आपको कीचड़से सनकर वापस आना होगा। होलीके दिन यह सब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। आप अपने घरमें हों या वाहर हों, अश्लील शब्द तो आपके कानोंको पीड़ा पहुँचायेंगे ही। अगर आप कहीं किसी मित्रके घर चले गये तो जैसा भी मित्र होगा उसके अनुसार आप गंदे या खुशबूदार पानीसे जरूर ही नहला दिये जायेंगे।

संध्या-समय लकड़ियों या उपलोंका भारी ढेर लगाकर जलाया जाता है। ये ढेर अक्सर वीस-वीस फुटके या इससे भी ऊँचे होते हैं। लकड़ियोंके ठूँठ इतने मोटे होते हैं कि उनकी आग सात-सात आठ-आठ रोज तक नहीं वुझती।

दूसरे दिन लोग इस आग पर पानी गर्म करके उससे स्नान करते हैं। अवतक तो मैंने यही वताया है कि इस उत्सवका दुरुपयोग किस प्रकार किया जाता है। परन्तु संतोपकी वात है कि अव शिक्षाकी उन्नतिके साथ-साथ ये प्रथाएँ धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे मिट रही हैं। जो जरा धनी और सुसंस्कृत होते हैं, वे लोग इस त्योहारको वहुत सुन्दर ढंगसे मनाते हैं। उनमें कीचड़की जगह रंगके पानी और सुवासिक जलका उपयोग किया जाता है। लोटे भर-भरकर पानी फेंकनेके वदले पानी छिड़कना भर काफी होता है। वसन्ती रंगका इन दिनोंमें सवसे ज्यादा उपयोग होता है। वह नारंगी रंगके टेसूके फूलोंको उवाल कर वनाया जाता है। समर्थ लोग गुलावका जल भी काममें लाते हैं। मित्र और सम्वन्धी एक-दूसरेसे मिलते हैं, उनकी दावतें करते हैं और इस प्रकार उल्लासके साथ वसन्तका आनन्द लेते हैं।

होलीके ज्यादातर 'अन-होली' [अपावन] त्योहारसे दिवालीके त्योहारमें अनेक दृष्टियोंसे सुन्दर भेद है। दिवालीका पर्व वर्षाके वाद ही शुरू हो जाता है। वर्षाकाल उपवासोंका काल भी होता है, इसलिए उसके वाद दिवालीके दिनोंके अच्छे-अच्छे भोजन तथा दावतें और भी अधिक आनन्दकारी वन जाती हैं। इसके विपरीत, होलीका त्योहार आता है उस शीतकालके वाद, जो कि सव प्रकारके पौष्टिक आहार करनेका मौसम होता है। होलीके

दिनोंमें ऐसे भोजन छोड़ दिये जाते हैं। दिवालीके अत्यन्त पवित्र गीतोंके वाद होलीकी अश्लील भाषा सुनाई देती है। फिर दिवालीमें लोग सर्दीके कपड़े पहनना शुरू करते हैं, जब कि होलीमें उन्हें छोड़ देते हैं। दिवाली आश्विनकी अमावसको होती है, फलतः उस दिन खूब रोशनी की जाती है; परन्तु होली पूर्णिमाको होनेके कारण उस दिन रोशनी अशोभन ही होगी।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, २५–४–१८९१

९. भारतके आहार

*वेजिटेरियन*के ६ मई, १८९१ के अंकमें निम्नलिखित उल्लेख पाया जाता है: "शनिवार, २ मई, ब्लूम्सवरी हाल, हार्ट स्ट्रीट, ब्लूम्सवरी . . .। श्रीमती हैरिसनके वाद श्री मो० क० गांधी (वम्बई प्रदेशके एक ब्राह्मण) खड़े हुए। उन्होंने पूर्व-व्याख्यात्रीको वधाई दी और अपने 'भारतके आहार' शीर्षक लिखित भाषणके सम्बन्धमें क्षमा-याचना करनेके वाद उसे पढ़ना शुरू किया। आरम्भमें वे कुछ घवड़ा गये थे।" यहाँ दिया गया मूलपाठ उस लिखित भाषणका है जो वेजिटेरियन सोसाइटीकी पोर्ट्समथकी वैठकमें दुवारा पढ़ा गया था और जून १, १८९१ के *वेजिटेरियन मेसेंजर*में प्रकाशित हुआ था।

अपने अभिभाषणके विषय पर आनेके पहले मैं आपको वता देना चाहता हूँ कि इस कार्यके लिए मेरी योग्यता क्या है। जव मिलने "भारतका इतिहास" लिखा, उसने अपनी अत्यन्त रोचक प्रस्तावनामें वताया था कि भारतकी यात्रा कभी न करने पर भी और भारतीय भाषाओंका ज्ञान न रखने पर भी कैसे वह उस पुस्तकको लिखनेका अधिकारी है। इसलिए मैं समझता हूँ कि उसके उदाहरणका अनुकरण करना मेरे लिए उचित ही होगा। वेशक, किसी कामके लिए अपनी योग्यताका उल्लेख करनेकी कल्पना स्वयं ही व्याख्याता या लेखकमें किसी-न-किसी प्रकारकी अयोग्यता वतानेवाली होती है, और मैं मंजूर करता हूँ कि मैं "भारतके आहारों" पर वोलनेके लिए पूर्णतः उपयुक्त व्यक्ति नहीं हूँ। मैंने अपने ऊपर यह कार्य इसलिए नहीं लिया कि मैं इस विषय पर वोलनेके लिए विलकुल योग्य हूँ; वल्कि इसलिए लिया है कि ऐसा करके मैं उस प्रयोजनकी सिद्धिमें सहायक हूँगा, जो मेरे और आपके — दोनोंके दिलोंमें वसा है। मैं जो-कुछ कहनेवाला हूँ उसका मुख्य आधार मेरा वम्वई प्रदेशका अनुभव होगा। अव,

जैसा कि आप जानते हैं, भारत एक विशाल प्रायद्वीप है। उसकी आबादी २८,५०,००,००० है। वह रूसको छोड़कर समूचे यूरोपके बराबर है। ऐसे देशमें विभिन्न भागोंके आचार-व्यवहारमें भिन्नता होना स्वाभाविक ही है। इसलिए, अगर भविष्यमें कभी आपको मेरे कहनेसे कुछ भिन्न बातें सुननेको मिलें तो मेरा निवेदन है कि आप उपर्युक्त वस्तुस्थितिको भूल न जायें। सामान्य रूपसे मेरा कथन सारे भारत पर लागू होगा।

मैं अपने विषयके तीन हिस्से कर लूँगा। पहले तो मैं उन आहारों पर निर्वाह करनेवाले लोगोंके विषयमें प्रारम्भिक परिचयके तौर पर कुछ कहूँगा। दूसरे, आहारोंका वर्णन करूँगा और तीसरे, उनका उपयोग आदि बताऊँगा।

आम तौर पर माना जाता है कि भारतके सब लोग अन्नाहारी हैं। परन्तु यह सही नहीं है। यहाँतक कि सब हिन्दू भी अन्नाहारी नहीं हैं। परन्तु यह कहना तो बिलकुल सही होगा कि भारतवासियोंकी भारी बहुसंख्या अन्नाहारी है। उनमें से कुछ तो अपने धर्मके कारण अन्नाहारी हैं, अन्य लोग अन्नाहार पर निर्वाह करनेको बाध्य हैं, क्योंकि वे इतने गरीब हैं कि मांस खरीद ही नहीं सकते। इसे बिलकुल स्पष्ट करनेके लिए मैं बता दूँ कि भारतमें दसियों लाख लोग केवल एक पैसे — अर्थात् एक-तिहाई पेनी — रोजाना पर गुजर करते हैं। और उस जैसे दरिद्रताके मारे देशमें भी इतनी रकममें खाने लायक मांस नहीं मिल सकता। इन गरीबोंको दिनमें सिर्फ एक बार भोजन मिलता है। वह भी होता है बासी रोटी तथा नमकका — और नमक एक ऐसी वस्तु है, जिस पर भारी कर लगा हुआ है। परंतु भारतीय अन्नाहारी और मांसाहारी इंग्लैंडके अन्नाहारियों तथा मांसाहारियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। भारतीय मांसाहारी इंग्लैंडके मांसाहारियोंकी तरह ऐसा नहीं मानते कि वे मांसके बिना मर जायेंगे। जहाँतक मुझे ज्ञान है, भारतीय मांसाहारी मांसको जीवनके लिए आवश्यक वस्तु नहीं, केवल एक विशेष भोजनकी वस्तु मानते हैं। अगर उन्हें उनकी रोटी — आम तौर पर भारतमें 'ब्रेड' को 'रोटी' कहते हैं — मिल जाये तो मांसके बिना उनका काम मजेमें चल जाता है। परन्तु हमारे अंग्रेज मांसाहारियोंको देखिए। वे मानते हैं कि मांस उनके लिए *अनिवार्य* है। रोटी उन्हें मांस खानेमें मदद भर करती है। दूसरी ओर, भारतीय मांसाहारी मानता है कि मांस उसे रोटी खानेमें मदद करेगा।

हालमें ही एक दिन मैं एक अंग्रेज महिलासे आहारके नीतिशास्त्र पर बातें कर रहा था। जब मैं उसे बताने लगा कि वह भी कितनी सरलतासे

अन्नाहारी बन सकती है तो वह एकदम बोल उठी : "आप कुछ भी कहें, मैं तो मांस खाऊँगी ही। मुझे वह बहुत प्यारा है। और मुझे बिलकुल निश्चय है कि मैं उसके बिना जी नहीं सकती!" "मगर, देवीजी!" मैंने कहा : "मान लीजिए कि आपको बिलकुल अन्नाहार पर रहनेके लिए *बाध्य कर दिया जाता* है तो फिर आप क्या करेंगी?" उसने कहा : "ओह! ऐसा मत कहिए। मैं जानती हूँ मुझे इसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। और अगर बाध्य किया जाये तो मुझे बहुत कष्ट होगा।" बेशक, उस महिलाको ऐसा कहनेके लिए कोई दोष नहीं दे सकता। इस समय समाजकी स्थिति ही ऐसी है कि किसी भी मांसाहारीके लिए सरलतासे मांसाहार छोड़ देना असंभव है।

इसी तरह, भारतीय अन्नाहारी भी अंग्रेज अन्नाहारियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। भारतीय तो सिर्फ किसी जीवकी या सम्भाव्य जीवकी हत्यासे परहेज करते हैं, इससे आगे वे नहीं जाते। इसीलिए वे अंडा भी नहीं खाते। वे मानते हैं कि अंडा खानेसे उनके जरिए सम्भाव्य जीवकी हत्या होगी। (मुझे कहते खेद है कि मैं लगभग डेढ़ माससे अंडे खा रहा हूँ।) परन्तु उन्हें दूध और मक्खनका सेवन करनेमें कोई संकोच नहीं होता। वे इन प्राणिज पदार्थोंका सेवन फलाहारके दिनोंमें भी करते हैं। फलाहारका दिन प्रत्येक पखवारेमें एक बार आता है। इन दिनोंमें गेहूँ, चावल आदिका आहार वर्जित होता है। परन्तु दूध और मक्खन यथेष्ट मात्रामें लिया जा सकता है। यहाँ, जैसा कि हम जानते हैं, कुछ अन्नाहारी मक्खन और दूधसे परहेज करते हैं, कुछ भोजनको पकाना भी छोड़ देते हैं और कुछ फलों तथा कवची मेवों पर भी निर्वाह करनेका प्रयत्न करते हैं।

अब मैं विभिन्न प्रकारके आहारोंका वर्णन करूँगा। परन्तु मैं मांसके आहारोंकी कोई चर्चा नहीं करूँगा; क्योंकि ये जहाँ उपयोगमें आते भी हैं, वहाँ भोजनके मुख्य पदार्थ नहीं हैं। भारत सबसे पहले एक कृषि-प्रधान देश है। और वह बहुत विशाल है। इसलिए उसमें पैदावारें भी अनेकानेक और भाँति-भाँतिकी होती हैं। यद्यपि भारतमें ब्रिटिश शासनकी नींव सन् १७४६ ई० में पड़ गई थी और यद्यपि भारत अंग्रेजोंको इसके बहुत पहलेसे ज्ञात था, फिर भी भारतीय आहारोंके बारेमें इंग्लैंडमें इतनी कम जानकारी है — यह एक दयनीय बात है। कारण जाननेके लिए हमें बहुत दूर जानेकी जरूरत नहीं। भारत जानेवाले लगभग सभी अंग्रेज अपना रहन-सहनका तरीका कायम रखते हैं। वे उन चीजोंको पानेका आग्रह रखते हैं जो उन्हें इंग्लैंडमें सुलभ होती हैं। इतना ही नहीं, उन्हें उसी तरीकेसे पकवाते भी हैं। इन सब बातोंके कारणों

तथा आशयोंकी मीमांसा करना मेरा काम नहीं है। खयाल तो यह था कि वे, भले केवल जिज्ञासावश ही क्यों न हो, लोगोंकी आदतोंको समझेंगे। परंतु उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। फलतः उनकी अड़ियल उपेक्षाका परिणाम यह देखनेको मिलता है कि बहुत-से अंग्रेज भारतीय आहारोंके अध्ययनके उत्तमोत्तम अवसर खो बैठे हैं। भोजनके पदार्थोंके विषय पर लौटें तो भारतमें पैदा होनेवाले अनेक प्रकारके अनाज ऐसे हैं जिनका ज्ञान यहां बिलकुल नहीं है।

फिर भी गेहूंका महत्त्व, बेशक, यहांके समान वहां भी सबसे अधिक है। फिर बाजरा (जिसे आंग्ल-भारतीय लोग 'मिलेट' कहते हैं), ज्वार, चावल आदि हैं। इनको मुझे रोटीका अनाज कहना चाहिए, क्योंकि ये मुख्यतः रोटी बनानेके काममें आते हैं। गेहूं निस्सन्देह बड़े पैमाने पर काममें आता है। परन्तु वह अपेक्षाकृत महंगा है, इसलिए गरीब लोग उसकी जगह बाजरा और ज्वार काममें लाते हैं। दक्षिणी और उत्तरी प्रदेशोंमें ऐसा बहुत ज्यादा है। दक्षिणी प्रदेशोंके बारेमें सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटरने अपने भारतीय इतिहासमें लिखा है: "साधारण लोगोंका आहार मुख्यतः ज्वार, बाजरा और रागी है।" उत्तरके बारेमें वे कहते हैं: "आखिरी दो (अर्थात् ज्वार और बाजरा) जनसाधारणके आहार हैं। चावल सिर्फ आबपाशीवाले खेतोंमें ही बोया जाता है और उसे धनी लोग खाते हैं।" ऐसे लोगोंका मिलना जरा भी गैर-मामूली नहीं होता, जिन्होंने कभी ज्वार चखी ही नहीं। ज्वारके साथ, गरीबोंका आहार होनेके कारण, एक प्रकारका आदर जुड़ गया है। विदाईके अभिवादनके तौर पर "गुडबाई"[१] कहनेके बजाय भारतमें गरीब लोग 'ज्वार' कहते हैं। विस्तार और अनुवाद किया जाये तो, मेरा खयाल है, इसका अर्थ होगा — "आपको ज्वारका अभाव कभी न हो!"[२] चावलकी भी, खास तौरसे बंगालमें, रोटियां बनाई जाती हैं। बंगाली लोग गेहूंसे ज्यादा चावल काममें लाते हैं। दूसरे प्रदेशोंमें चावलका उपयोग रोटी बनानेके लिए शायद ही कभी किया जाता है। चनेका भी गेहूंके साथ मिलाकर या बिना मिलाये कभी-कभी वही उपयोग किया जाता है। अंग्रेज लोग उसे 'ग्राम' कहते हैं। वह स्वाद और आकारमें बहुत-कुछ मटरसे मिलता-जुलता है। इससे मैं अनेक प्रकारकी दालोंके विषय पर आ जाता हूं। दालें

१. ईश्वर तुम्हारे साथ हो! खुदा हाफिज!

२. मालूम होता है, गांधीजीने 'ज्वार' (अनाज) और 'जुहार' (कुछ भारतीय भाषाओंके अभिवादन-शब्द)को मिला दिया है।

शोरवा [या सालन] बनानेके काम आती हैं। चना, मटर, मसूर, सेम, अरहर, मूंग, मोट और उड़द सालनके काम आनेवाली मुख्य दालें हैं। इनमें से, मेरा खयाल है, अरहर सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। ये दोनों प्रकारके अन्न मुख्यतः पककर सूख जाने पर काममें आते हैं। अब मैं हरी शाक-सब्जी पर आता हूँ। आपको सभी शाक-सब्जियोंके नाम बताना तो बेकार होगा। उनकी संख्या इतनी बड़ी है कि मैं ही बहुतोंको नहीं जानता। भारतकी मिट्टी इतनी उपजाऊ है कि उसमें आप जो चाहें वही शाक-सब्जी पैदा हो सकती है। इसलिए हम निर्विवाद कह सकते हैं कि कृषिका उचित ज्ञान होने पर भारतकी जमीनमें दुनियाकी कोई भी शाक-सब्जी उपजाई जा सकती है।

अब रहे फल और कच्ची मेवे। मुझे यह कहते खेद है कि भारतमें फलोंके महत्त्वका उचित ज्ञान नहीं है। फलोंका उपयोग तो खूब होता है, परंतु उन्हें विशेष भोजनके पदार्थोंके तौर पर ही ज्यादा खाया जाता है। ज्यादातर उन्हें स्वास्थ्यके लिए नहीं, स्वादके लिए खाया जाता है। इसलिए हम संतरे, सेब आदि जैसे गुणकारी फल बहुत नहीं पैदा करते। फलतः वे धनिकोंको ही उपलब्ध हैं। परन्तु मौसमी फल तथा सूखे मेवे बहुत होते हैं। दूसरे सब स्थानोंके समान भारतमें भी गर्मीका मौसम पहले प्रकारके फलोंके लिए सबसे अच्छा होता है। इन फलोंमें आम सबसे ज्यादा महत्त्वका है। मैंने अबतक जो फल चखे हैं, उनमें वह सबसे स्वादिष्ठ है। कुछ लोगोंने अनन्नासको सबसे अच्छा बताया है। परंतु जिन्होंने आमका स्वाद चखा है उनमें से ज्यादातर लोग तो उसके ही पक्षमें हाथ उठाते हैं। आम मौसममें तीन महीने उपलब्ध रहता है। सस्ता भी बहुत होता है। फलतः धनी और गरीब दोनों उसका रसास्वादन कर सकते हैं। मैंने तो यहाँतक सुना है कि कुछ लोग सिर्फ आम पर ही उदर-निर्वाह करते हैं — अलबत्ता सिर्फ मौसममें। परन्तु दुर्भाग्यसे आम ऐसा फल है, जो बहुत दिनों तक अच्छा नहीं रहता। स्वादमें वह आड़ू जैसा और गुठलीवाला फल होता है। बहुधा वह छोटे खरबूजेके बराबर होता है। इससे हम खरबूजे पर आते हैं। ये भी गर्मीमें खूब होते हैं। यहाँ जो खरबूजे मिलते हैं उनसे वे बहुत अच्छे होते हैं। परन्तु अब मुझे और फलोंके नाम गिनाकर आपको उकताना नहीं चाहिए। इतना कहना काफी होगा कि भारतमें असंख्य किस्मोंके मौसमी फल पैदा होते हैं, जो बहुत दिनों तक नहीं टिकते। ये सब फल गरीबोंको उपलब्ध हैं। दयाकी बात यही है कि वे कभी इनको आहारके रूपमें छककर नहीं खाते। आम तौर पर हम मानते हैं कि फलोंसे बुखार, दस्त आदिकी बीमारी

होती है। गर्मीके दिनोंमें, जब हमेशा हैजेका डर रहता है, सरकारी अधिकारी खरबूजे और इसी प्रकारके दूसरे फलोंकी बिक्री रोक देते हैं। और अनेक मामलोंमें यह ठीक ही होता है। जहाँतक सूखे फलोंका सम्बन्ध है, जितने प्रकारके फल यहाँ मिलते हैं वे सब वहाँ उपलब्ध हैं। कवची मेवोंकी कुछ ऐसी किस्में होती हैं, जो यहाँ नहीं पाई जातीं। दूसरी ओर यहाँकी कुछ किस्में भारतमें नहीं देखी जातीं। कवची फल आहारके तौर पर काममें नहीं लाये जाते। इस-लिए, ठीक कहें तो, उन्हें 'भारतके आहारों' में शामिल नहीं करना चाहिए। अब, अपने विषयके आखिरी हिस्से पर आनेके पहले, मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप मेरे बताये हुए ये आहार-विभाग याद रखें: पहला, रोटी बनानेके अनाज, अर्थात् गेहूँ, ज्वार आदि; दूसरा, सालन या शोरवा बनानेके लिए दालें; तीसरा, हरी शाक-सब्जियाँ; चौथा, फल; और पाँचवाँ तथा आखिरी, कवची मेवे।

बेशक, मैं आपको विविध प्रकारके भोजन बनानेके नुस्खे बतानेवाला नहीं हूँ। यह मेरे बशकी बात नहीं। मैं सामान्य तरीका बताऊँगा, जिससे वे उचित उपयोगके लिए पकाये जाते हैं। आहार-चिकित्सा या आहारके आरोग्य-शास्त्रकी खोज इंग्लैंडमें अपेक्षाकृत हालमें हुई है। भारतमें हम इसका प्रयोग स्मरणा-तीत कालसे करते चले आ रहे हैं। वहाँके वैद्य और हकीम दवाओंका उपयोग तो करते हैं, परन्तु वे अपनी बताई हुई दवासे ज्यादा आहारके असर पर निर्भर करते हैं। कुछ बीमारियोंमें वे आपसे नमक न खानेको कहेंगे, अनेकमें आपसे खट्टी चीजों आदिका परहेज करायेंगे। क्योंकि, प्रत्येक आहार औषधिके रूपमें अपना विशेष गुण रखता है। जहाँतक रोटी बनानेके अनाजका सम्बन्ध है, वह आहारकी सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है। सुविधाके लिए मैंने आटेसे बननेवाली चीजको 'ब्रेड' [रोटी] कहा है, परन्तु उसे 'केक' [चपाती या टिकिया] नाम देना ज्यादा अच्छा होगा। मैं चपाती बनानेकी सारी प्रक्रियाका वर्णन नहीं करूँगा। सिर्फ इतना कह दूँ कि हम चोकरको फेंकते नहीं। ये चपातियाँ हमेशा ताजी बनाई जाती हैं और आम तौर पर शुद्ध किये हुए मक्खन [घी] के साथ गरम-गरम खाई जाती हैं। भारतीयोंके लिए ये वही हैं, जो अंग्रेजोंके लिए मांस है। आदमीकी खुराकका अन्दाजा इससे लगाया जाता है कि वह कितनी रोटियाँ खाता है। दाल और शाक-सब्जीका हिसाब नहीं किया जाता। बिना दालके, बिना शाक-सब्जीके तो आपका भोजन हो सकता है, परन्तु रोटियोंके बिना नहीं हो सकता। विभिन्न प्रकारके अनाजोंसे और भी अनेक प्रकारकी वस्तुएँ बनाई जाती हैं, परन्तु वे सब रोटीके ही दूसरे रूप हैं।
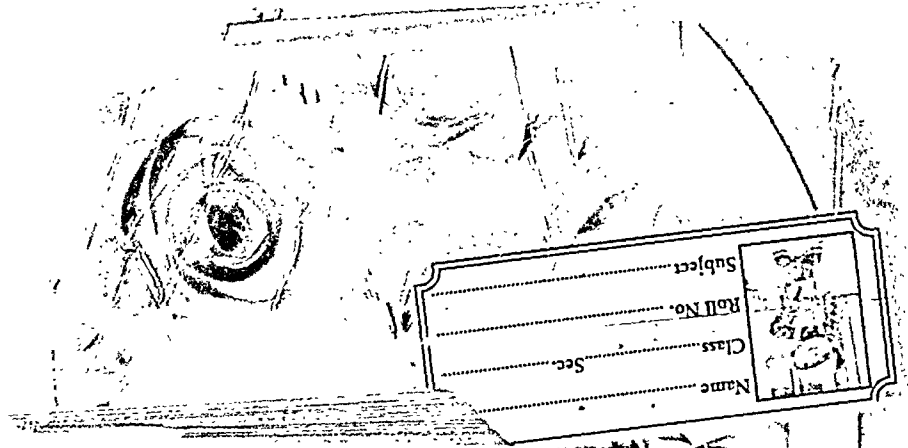
शोरवा या सालन वनानेकी दाल — जैसे मटर, मसूर आदि — पानीमें सिर्फ उवालकर वना ली जाती है। परन्तु वहुत-से मसाले डालनेके कारण वह अत्यन्त स्वादिष्ठ वन जाती है। इन आहारोंमें पकानेकी कलाका पूरा-पूरा प्रयोग होता है। मैंने नमक, मिर्च, हल्दी, लौंग, दालचीनी आदि मसाले पड़ी हुई दाल खाई है। दालका ठीक उपयोग रोटी खानेमें मदद करना है। वैद्यककी दृष्टिसे वहुत ज्यादा दाल खाना अच्छा नहीं माना जाता। यहाँ चावलके वारेमें दो शब्द कह देना अनुपयुक्त न होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, चावल खास तौर से वंगालमें रोटी वनानेके काम आता है। कुछ डाक्टरोंका कहना है कि वंगालियोंके अक्सर मधुमेहके शिकार हो जानेका मूल कारण यही है। भारतमें चावलको पौष्टिक आहार कोई नहीं मानता। वह धनियोंका, अर्थात् उन लोगोंका भोजन है, जो काम नहीं करना चाहते। कड़ी मेहनत करनेवाले लोग कभी-कभी ही चावलका उपयोग करते हैं। वैद्य लोग अपने वुखारके मरीजोंको चावलकी खुराक पर रखते हैं। मैं वुखारका शिकार हुआ हूँ (और, जैसाकि डाक्टर ऐलिन्सन कहते थे, निस्सन्देह आरोग्यके नियमोंका भंग करनेसे) और चावल तथा मूंगके पानी पर रखा गया हूँ। मुझे इतनी शीघ्रतासे स्वास्थ्य-लाभ हुआ था, मानो कोई चमत्कार हो गया हो।

अव हरी शाक-सब्जी। इन्हें वहुत-कुछ दालोंकी तरह ही वनाया जाता है। तेल और मक्खन [घी] शाक-सब्जी वनानेमें वड़े महत्त्वकी वस्तुएँ होती हैं। वहुधा सब्जियोंके साथ वेसन मिला लिया जाता है। सिर्फ उवली हुई शाक-सब्जी कभी नहीं खाई जाती। मैंने भारतमें कभी लोगोंको उवले हुए आलू खाते नहीं देखा। अक्सर अनेक शाक-सब्जियोंको एक-साथ मिला दिया जाता है। कहना अनावश्यक है कि स्वादिष्ठ शाक-सब्जी वनानेमें भारत फ्रांसको भारी मात दे सकता है। उनका ठीक उपयोग वहुत-कुछ दाल जैसा ही होता है। महत्त्वमें वे दालके वाद आती हैं। वे कम-ज्यादा रूपमें विशेष भोजनकी वस्तुएँ मानी जाती हैं। आम तौर पर लोग उन्हें वीमारियोंका मूल समझते हैं। गरीव लोगोंको हफ्तेमें एक या दो वार मुश्किलसे एक सब्जी मिलती है। वे रोटी और दाल खाकर गुजर करते हैं। कुछ शाक-सब्जियोंमें उत्तम औषधि-गुण होते हैं। एक शाकको तांदलजा [चौलाई] कहा जाता है। उसका स्वाद पालकके स्वादसे वहुत मिलता-जुलता है। वैद्य लोग उन मरीजोंको यह शाक देते हैं जिनकी आँखें वहुत ज्यादा लाल मिर्च खानेसे विगड़ जाती हैं।

इसके बाद फलोंकी बारी आती है। वे मुख्यतः 'फलाहारके दिनों'[१] में खाये जाते हैं। साधारण भोजनके बाद तो अगर खाये भी गये तो छठे-छमाहे खाये जाते हैं। आम तौर पर लोग उन्हें कभी-कभी खाते हैं। आमके मौसममें आमका रस बहुत खाया जाता है। लोग उसे रोटी या चावलके साथ खाते हैं। पके फलोंको हम कभी उबालते या भापमें पकाते नहीं। कच्चे फलोंका, मुख्यतः आमोंका, जब वे खट्टे रहते हैं, अचार-मुरब्बा बनाया जाता है। औषधोपचारकी दृष्टिसे माना जाता है कि ताजे और आम तौर पर खट्टे फलोंकी तासीर बुखार लानेकी होती है। सूखे फल बच्चे बहुत खाते हैं और खारिक तो खास तौरसे कहने लायक हैं। हम उन्हें पुष्टिकारक मानते हैं। इसलिए, शीतकालमें, जब हम पौष्टिक पाक आदिका सेवन किया करते हैं, उन्हें दूध तथा अन्य अनेक वस्तुओंके साथ पकाकर आधी छटाँक रोज खाते हैं।

अन्तमें, कवची मेवोंका स्थान वही है जो इंग्लैंडमें मिठाइयोंका है। बच्चे चीनीमें पगे कवची मेवे खूब खाते हैं। 'फलाहारके दिनों' में भी उनका उपयोग बड़ी मात्रामें किया जाता है। हम उन्हें घीमें तलते हैं और दूधमें उबालते हैं। बादामको दिमागके लिए बहुत अच्छा माना जाता है। नारियलका उपयोग हम जिन विविध तरीकोंसे करते हैं उनमें से एकका उल्लेख-मात्र मैं कर दूं। नारियलकी गरीको पहले बारीक किसा जाता है, फिर उसमें घी और शक्कर मिलाई जाती है। उसका स्वाद बहुत बढ़िया होता है। आशा है, आपमें से कुछ लोग अपने घरोंमें नारियलके मीठे लड्डू कहलानेवाली इस वस्तुका स्वाद चख कर देखेंगे। महिलाओ और सज्जनो, यह है भारतके आहारोंकी एक रूपरेखा —एक नितान्त अपूर्ण रूपरेखा। आशा है, आपको उनके बारेमें ज्यादा जानकारी हासिल करनेकी प्रेरणा होगी। और मुझे निश्चय है, ऐसा करनेसे आप लाभान्वित होंगे। अन्तमें, मैं यह भी आशा करता हूँ कि एक समय ऐसा आयेगा जब इंग्लैंडकी मांसाहारकी आदतों और भारतकी अन्नाहारकी आदतोंका भारी भेद मिट जायेगा। और उसके साथ ही कुछ दूसरे भेद भी मिट जायेंगे, जो कहीं-कहीं उस एकता तथा सहानुभूतिमें बाधा डालते रहते हैं, जो दोनों देशोंके बीच रहनी चाहिए। मुझे आशा है, भविष्यमें हम प्रथाओंकी और हृदयोंकी भी एकता स्थापित करनेकी वृत्ति रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन मेसेंजर, १-६-१८९१

१. धार्मिक उपवासके दिन—एकादशी आदि।

१०. लंदनके बैंड आफ़ मर्सीके समक्ष भाषण

अपर नारवुड। जैसा कि पहलेसे प्रबंध कर लिया गया था, कुमारी सीकोम्बके सौजन्यसे. . . श्रीमती मैकडुआल. . . बैंड आफ मर्सी[1]के सदस्योंके सम्मुख भाषण देनेवाली थीं। परन्तु उनके बीमार हो जानेके कारण श्री गांधी (भारतके एक हिन्दू) से विनती की गई और उन्होंने कृपापूर्वक भाषण देना मंजूर कर लिया। श्री गांधी कोई पन्द्रह मिनट तक दया-धर्मके दृष्टिविन्दुसे अन्नाहार-पद्धति पर बोले। उन्होंने इस बातका आग्रह किया कि बैंड आफ मर्सीके सदस्योंके लिए युक्तिसंगत तो यही है कि वे अन्नाहारी बन जायें। उन्होंने अपना भाषण शेक्सपियरका एक वचन पढ़कर समाप्त किया।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ६–६–१८९१

११. हालबर्नमें विदाईका भोज

जून ११, १८९१

यद्यपि वह एक प्रकारका विदाई-भोज था, फिर भी वहाँ दुःखका कोई चिह्न नहीं था; क्योंकि, सब यही अनुभव कर रहे थे कि यद्यपि श्री गांधी भारत लौट रहे हैं, वे अन्नाहारके पक्षमें और भी बड़ा काम करनेके लिए जा रहे हैं। और इस समय अधिक उचित यह है कि व्यक्तिगत विछोह पर शोक प्रकट करनेके बजाय उन्हें कानूनी अध्ययनकी समाप्ति और सफलता पर बधाई दी जाये। . . . .

समारोहकी समाप्ति पर श्री गांधीने एक सुसंस्कृत भाषण द्वारा उपस्थित सज्जनोंका स्वागत किया, हालाँकि भाषण देते समय वे कुछ घबड़ा रहे थे। उन्होंने कहा कि इंग्लैंडमें मांस-त्यागकी बढ़ती हुई वृत्ति देखकर उन्हें हर्ष हो रहा है। उन्होंने यह बताते हुए कि लंदनकी वेजिटेरियन सोसायटी [अन्नाहारी मण्डल] के सम्पर्कमें वे किस प्रकार आये, हृदयस्पर्शी भाषामें कहा कि श्री ओल्ड-फील्ड[2]के वे कितने ऋणी हैं। . . . .

१. पशुओंके प्रति क्रूरता निवारण करनेवाला संघ।
२. *वेजिटेरियन*के सम्पादक डा० जोशाया ओल्डफील्ड।
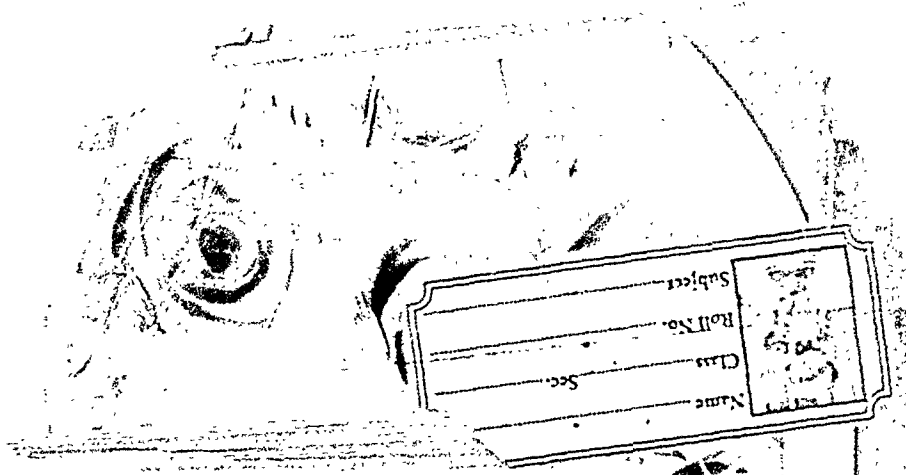
उन्होंने यह आशा भी प्रकट की कि फेडरल यूनियन [संयुक्त संघ] का कोई अगला अधिवेशन भारतमें किया जायेगा ।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, १३-६-१८९१

१२. इंग्लैंड क्यों गये ?

*वेजिटेरियन*के एक प्रतिनिधिने गांधीजीसे अनेक प्रश्न पूछ कर उनके विस्तृत उत्तर माँगे थे। उद्देश्य यह था कि इंग्लैंडके लोग उन कठिनाइयोंको समझ सकें, जो अध्ययनके लिए इंग्लैंड जानेके इच्छुक हिन्दुओंको झेलनी पड़ती हैं। दूसरा उद्देश्य उन हिन्दुओंको यह बताना भी था कि किस तरीकेसे कठिनाइयोंको पार करना सम्भव हो सकता है। उक्त प्रश्न और उत्तर नीचे दिये जा रहे हैं।

१

श्री गांधीसे पहला प्रश्न यह किया गया — इंग्लैंड जाने और कानूनी पेशा अख्तियार करनेकी प्रेरणा सबसे पहले आपको किस बातसे मिली ?

एक शब्दमें — महत्त्वाकांक्षासे । मैंने सन् १८८७ में बम्बई विश्वविद्यालयसे मैट्रिककी परीक्षा पास की। बादमें भावनगर कालेजमें दाखिल हुआ। कारण यह था कि जबतक कोई बम्बई विश्वविद्यालयका स्नातक (ग्रैजुएट) नहीं हो जाता, उसे समाजमें प्रतिष्ठा नहीं मिलती। यदि कोई उसके पहले ही नौकरी करना चाहे तो उसे तबतक अच्छे वेतन और आदर-मानकी नौकरी नहीं मिलती जबतक कोई बहुत प्रभावशाली व्यक्ति उसका पृष्ठ-पोषक न हो। परन्तु मैंने देखा कि स्नातक बननेके लिए मुझे कमसे कम तीन वर्ष खर्च करने पड़ेंगे। इसके अलावा, मुझे हमेशा सिर-दर्द और नाकसे खून बहनेकी शिकायत रहा करती थी, जिसका कारण गरम आबहवा मानी जाती थी। और, आखिर, स्नातक बनकर भी तो मैं बहुत बड़ी आमदनीकी आशा नहीं कर सकता था। मैं लगातार इन चिन्ताओंमें डूबा रहने लगा। ऐसे ही अवसर पर मेरे पिताके एक पुराने मित्र मुझसे मिले और उन्होंने मुझे इंग्लैंड आने और बैरिस्टरी पास करनेकी सलाह दी। मानो, उन्होंने मेरे अन्दर जलती हुई आगको धौंक दिया। मैंने
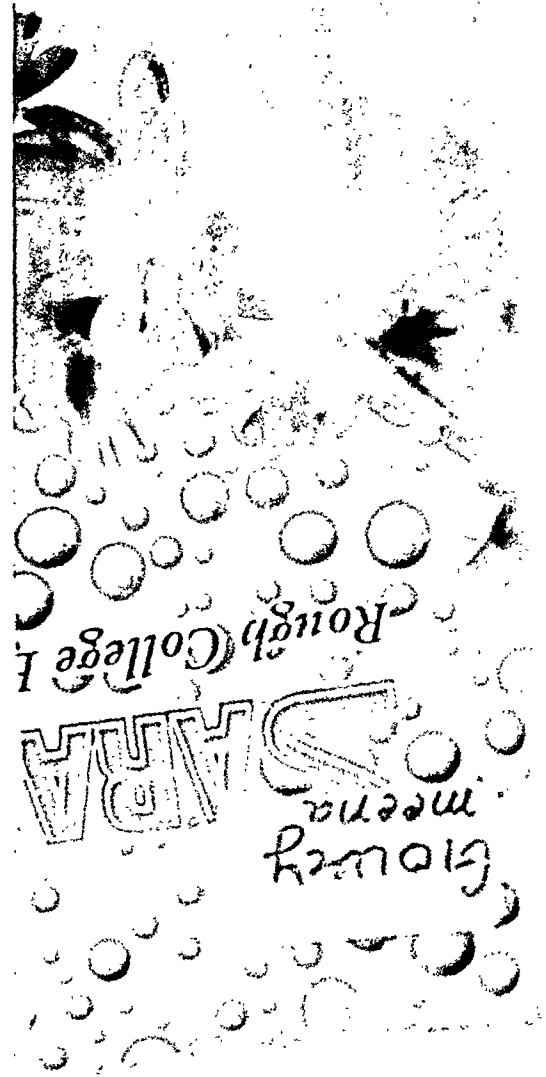
मनमें सोचा — "अगर मैं इंग्लैंड चला जाऊँ तो न सिर्फ वैरिस्टर बन जाऊँगा (जिसको मैं बहुत बड़ी चीज समझता था), बल्कि दार्शनिकों और कवियोंकी भूमि, सभ्यताके साक्षात् केन्द्र-स्थल इंग्लैंडको भी देख सकूँगा।" मेरे बुजुर्गों पर इन सज्जनका बहुत प्रभाव था, इसलिए मुझे इंग्लैंड भेजनेके लिए उन्हें समझानेमें ये सफल हो गये।

मेरे इंग्लैंड आनेके कारणोंका यह बहुत संक्षिप्त बयान है। परन्तु यह मेरे आजके विचारोंका द्योतक नहीं है।

आपके इस महत्त्वाकांक्षी आयोजन पर आपके सब मित्र तो खुश ही हुए होंगे?

नहीं नहीं, सब नहीं। मित्र तो अलग-अलग तरहके होते हैं। जो मेरे सच्चे मित्र और मेरी ही उम्रके थे, उन्हें यह सुनकर बहुत खुशी हुई कि मैं इंग्लैंड जानेवाला हूँ। कुछ मित्र — या यों कहिए कि शुभाकांक्षी — उम्रमें बड़े थे। उनका सच्चा विश्वास था कि मैं अपने-आपको बरबाद करने जा रहा हूँ और इंग्लैंड जाकर मैं अपने परिवारके लिए कलंकरूप बन जाऊँगा। दूसरे लोगोंने केवल ईर्ष्या-द्वेषके कारण विरोध किया। उन्होंने कुछ ऐसे वैरिस्टरोंको देखा था, जिनकी आमदनी अपार थी। उन्हें डर था कि मैं भी वैसी ही कमाई करने लगूँगा। फिर कुछ लोग ऐसे थे जो समझते थे कि अभी मेरी उम्र बहुत छोटी है (इस समय मैं लगभग २२ वर्षका हूँ), या मैं इंग्लैंडकी आवहवाको बरदाश्त नहीं कर सकूँगा। सारांश यह कि कोई भी दो लोग ऐसे नहीं थे जिन्होंने एक ही कारणसे मेरे आनेका समर्थन या विरोध किया हो।

आपने अपने इरादोंको पूर्ण करनेके लिए क्या-क्या किया? अगर कष्ट न हो तो कृपया बताइए कि आपको क्या-क्या कठिनाइयाँ हुईं और आपने उन्हें कैसे पार किया?

मैं आपको अपनी कठिनाइयोंकी कहानी बतानेका प्रयत्न भी करूँ तो आपका मूल्यवान पत्र पूराका पूरा भर जायेगा। वह तो एक दुःख और दर्दकी कहानी है। उन कठिनाइयोंकी तुलना तो बखूबी रावण — हिन्दुओंके द्वितीय[1] महान कथा-ग्रंथ रामायणके राक्षस-प्रतिनायक, जिसे रामायणके चरितनायक रामने

१. अन्य महान कथा-ग्रंथ है — महाभारत।
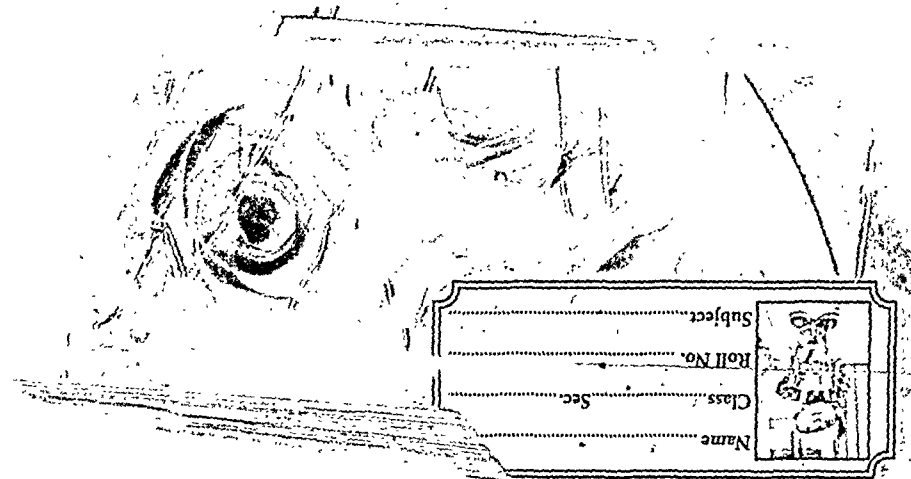
युद्ध करके हराया था — के सिरोंसे की जा सकती है, जो बहुत-से थे और कटते
ही फिर उग आते थे। उन्हें चार मुख्य शीर्षकोंमें बाँटा जा सकता है — धन, मेरे
बुजुर्गोंकी सहमति, सम्बन्धियोंसे जुदाई और जाति-बंधन।

पहले धनकी बात ले लें। यद्यपि मेरे पिता एकसे ज्यादा देशी रियासतोंके
दीवान रहे थे, उन्होंने कभी धन-संग्रह नहीं किया। उन्होंने जो कुछ कमाया,
सब अपने बच्चोंकी शिक्षा, विवाहों और धर्मार्थ कार्योंमें खर्च कर डाला। फलत:
हमारे लिए बहुत पैसा नहीं बचा। वे कुछ अचल सम्पत्ति छोड़ गये थे और वही
सब-कुछ थी। जब उनसे पूछा जाता था कि आपने अपने बच्चोंके लिए कुछ
बचाकर क्यों नहीं रखा तो वे जवाब देते थे कि मेरे बच्चे ही मेरी सम्पत्ति हैं,
और अगर मैं बहुत-सा रुपया जमा कर लूंगा तो बच्चे बिगड़ जायेंगे। इस-
लिए रुपयेकी कठिनाई मेरे सामने छोटी नहीं थी। मैंने राज्यसे कुछ छात्रवृत्ति
पानेकी कोशिश की, मगर मैं उसमें असफल रहा। एक जगह तो मुझसे कहा
गया कि पहले स्नातक (ग्रैजुएट) बनकर अपनी योग्यता सिद्ध करो, फिर छात्र-
वृत्तिकी अपेक्षा करना। अनुभव मुझे बताता है कि जिन सज्जनने यह बात कही
थी, उन्होंने ठीक ही कहा था। परन्तु मैं किसी बातसे विचलित नहीं हुआ।
मैंने अपने सबसे बड़े भाईसे अनुरोध किया कि जो-कुछ भी धन बच गया है
वह सब इंग्लैंडमें मेरी शिक्षाके लिए दे दें।

भारतमें प्रचलित कुटुम्ब-प्रणालीका परिचय देनेके लिए यहाँ थोड़ा-सा विष-
यान्तर किये बिना काम न चलेगा। भारतमें, इंग्लैंडके विपरीत, लड़के हमेशा
माता-पिताके साथ ही रहते हैं; लड़कियाँ विवाह तक रहती हैं। वे जो-कुछ
कमाते हैं वह पिताके हाथोंमें जाता है। इसी तरह जो-कुछ खोते हैं वह भी
पिताका ही नुकसान होता है। हाँ, भारी झगड़ा आदिकी जैसी विशेष
परिस्थितियोंमें तो लड़के भी अलग हो ही जाते हैं। परन्तु ये अपवाद हैं। मेनकी
कानूनी भाषामें "पश्चिममें सम्पत्ति साधारणत: व्यक्तिगत होती है; पूर्वमें
साधारणत: संयुक्त होती है।" सो, मेरे पास अपनी कोई सम्पत्ति नहीं थी।
सब-कुछ मेरे भाईके हाथमें था और हम सब एक-साथ रहते थे।

तो, फिर धनकी बात। मेरे पिता जो थोड़ा-सा धन मेरे लिए छोड़ सके थे
वह मेरे भाईके हाथमें था। वह उनकी अनुमतिसे ही निकल सकता था। इसके
अलावा, वह रुपया काफी नहीं था, इसलिए मैंने कहा कि सारी पूंजी मेरी
शिक्षामें लगा दी जाये। आपसे मैं पूछता हूँ कि क्या यहाँ कोई भाई ऐसा
करेगा? भारतमें भी ऐसे भाई बहुत कम हैं। उनसे कहा गया था कि पश्चिमी

विचार ग्रहण करके मैं एक नालायक भाई सावित हो सकता हूँ। और मुझसे रुपया तो तभी वापस मिल सकेगा जब मैं जीवित भारत लौट सकूँ, जिसमें बहुत सन्देह व्यक्त किया गया था। परन्तु मेरे भाईने ये सब उचित और सदाशयपूर्ण चेतावनियाँ सुनी-अनसुनी कर दीं। मेरे प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिए केवल एक शर्त रखी गई। वह शर्त यह थी कि मैं अपनी माता और चाचाकी अनुमति प्राप्त कर लूँ। मेरे भाई जैसे भाई वहुत लोगोंके हों! फिर मैं अपने हिस्सेके काममें लगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह काम वड़ा दुःसाध्य था। सौभाग्यसे मैं अपनी माँका दुलारा था। उन्हें मुझ पर वहुत विश्वास था। इसलिए मैं उनका अन्धविश्वास दूर करनेमें तो सफल हो गया; परन्तु मैं तीन वर्षकी जुदाईके लिए उनकी अनुमति कैसे प्राप्त कर सकता था? तथापि, इंग्लैंड आनेके फायदोंको अतिरंजित करके वताने पर मैंने उनको राजी कर लिया। फिर भी वे अनिच्छापूर्वक राजी हुईं। अव रही चाचाकी वात। वे वनारस तथा अन्य तीर्थोंको जानेके लिए तैयार थे। तीन दिन लगातार समझाने और मनानेके वाद मैं उनसे यह उत्तर पा सका:

"मैं तो तीर्थयात्राके लिए जा रहा हूँ। तुम जो-कुछ कह रहे हो वह ठीक हो सकता है; परन्तु मैं तुम्हारे अधार्मिक प्रस्ताव पर राजी-खुशीसे 'हाँ' कैसे कह सकता हूँ? मैं तो सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि अगर तुम्हारी माताको जाने पर कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे दखल देनेका कोई अधिकार नहीं।"

इसका अर्थ 'हाँ' लगा लेना कठिन नहीं हुआ। परन्तु मुझे इन दो व्यक्तियोंको ही राजी नहीं करना था। भारतमें कोई कितना ही दूरका संवंधी क्यों न हो, हरएक समझता है कि उसे दूसरेके मामलोंमें दखल देनेका एक हक है। परन्तु जव मैंने इन दो से इनकी सम्मति निचोड़ ली (क्योंकि वह 'निचोड़ने' के अलावा और कुछ न था), तव आर्थिक कठिनाइयाँ लगभग मिट गईं।

दूसरे शीर्षककी कठिनाइयोंकी आंशिक चर्चा ऊपर हो चुकी है। आपको शायद यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं विवाहित हूँ। (विवाह वारह वर्षकी उम्रमें हुआ था।) इसलिए अगर मेरी पत्नीके माता-पिताने सोचा कि उन्हें —केवल अपनी लड़कीके हितके लिए ही सही—मेरे मामलेमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार है, तो उनका क्या दोष? मेरी पत्नीकी देख-भाल करनेवाला कौन था? वह तीन वर्ष कैसे काटेगी? आई मेरे भाई पर—वे उसकी देख-भाल करेंगे! वेचारे भाई! अगर श्वसुरकी नाराजगीका असर मेरी माँ और मेरे

भाई पर पड़नेवाला न होता तो अपने उस समयके विचारोंके अनुसार मैं उनकी न्यायोचित आशंकाओं और गुर्राहटकी परवाह न करता। अपने श्वशुरके साथ एकके बाद एक रात बैठना, उनकी आपत्तियाँ सुनना और उनका सफलतापूर्वक जवाब देना कोई सरल काम नहीं था। परन्तु "धीरज और परिश्रमसे पहाड़ भी कट जाता है"—यह पुरानी कहावत मुझे इतनी अच्छी तरह सिखाई गई थी कि मैं पीछे हटनेवाला नहीं था।

जब मुझे रुपया और आवश्यक अनुमति मिल गई तब मैं सोचने लगा—"यह सब जो मुझे इतना प्यारा है और मेरे इतने नजदीक है, इससे जुदा होनेके लिए अपने मनको कैसे समझाऊँ?" हम भारतीय जुदा होना पसन्द नहीं करते। जब मुझे थोड़े ही दिनोंके लिए घरसे जाना पड़ा था तभी मेरी माँ रोया करती थीं। तो अब मैं अपने आवेगसे मुक्त रहकर ये हृदय-विदारक दृश्य कैसे देखूँगा? मेरे मनको जो वेदना सहनी पड़ी उसका वर्णन करना असंभव है। जब विदाईका दिन नजदीक आया तो मैं करीब-करीब बेहाल हो उठा। परन्तु मैंने बुद्धिमत्ता की कि अपने परम प्रिय मित्रोंको भी यह बात नहीं बताई। मैं जानता था कि मेरा स्वास्थ्य जवाब दे रहा है। सोते, जागते, खाते, पीते, चलते, दौड़ते, पढ़ते, मैं इंग्लैंडके ही स्वप्न देखता, उसके ही विचारमें डूबा रहता और सोचता रहता कि विदाईके उस गुरुतम दिन मैं क्या करूँगा। आखिर वह दिन आ पहुँचा। एक ओर मेरी माँ अपनी आँसूभरी आँखोंको हाथोंमें छिपाये थीं, परन्तु उनके सिसकनेकी आवाज साफ सुनाई पड़ रही थी; दूसरी ओर मैं करीब-करीब पचास मित्रोंके बीचमें था। मैंने मनमें कहा—"अगर मैं रोया तो ये लोग मुझे बहुत दुर्बल समझेंगे; शायद मुझे इंग्लैंड जाने भी न देंगे।" इसलिए, यद्यपि मेरा हृदय फट रहा था, मैं रोया नहीं। अन्तमें अपनी पत्नीसे विदा लेनेका मौका आया। यह मौका अन्तमें भले ही आया हो, किन्तु महत्त्वमें अन्तिम नहीं था। मित्रोंकी उपस्थितिमें पत्नीसे बातचीत करना चालके विरुद्ध होता। इसलिए मुझे उससे एक अलग कमरेमें मिलना पड़ा। निस्सन्देह उसने बहुत पहलेसे ही सिसकना शुरू कर दिया था। मैं उसके पास गया और क्षण भरके लिए गूंगी प्रतिमाके समान उसके सामने खड़ा रहा। मैंने उसका चुम्बन किया और उसने कहा—"जाओ मत!" इसके बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन करनेकी जरूरत नहीं। यह सब तो हो गया, मगर मेरी चिन्ताओंका अन्त नहीं हुआ। यह तो अन्तका आरम्भमात्र था। विदा लेनेका काम सिर्फ आधा निबटा था। माँ और पत्नीसे तो राजकोटमें ही (जहाँ मैंने शिक्षा पाई थी) विदा ले चुका था, मगर

मेरे भाई और दूसरे लोग मुझे विदा करनेके लिए बम्बई तक आये थे। वहाँ जो दृश्य उपस्थित हुआ, वह कम मर्मस्पर्शी नहीं था।

बम्बईमें मेरे जाति-भाइयोंके साथ जो टक्करें हुईं, उनका वर्णन करना दु:साध्य है, क्योंकि बम्बई उनका मुख्य अड्डा है। राजकोटमें मुझे ऐसे किसी नामलायक विरोधका सामना नहीं करना पड़ा था। बम्बईमें दुर्भाग्यवश मुझे शहरके बीचमें रहना पड़ा। वहीं उनकी सबसे ज्यादा बस्ती थी। इसलिए मैं चारों ओरसे घिरा हुआ था। किसी न किसीके घूरने और अँगुली उठानेसे बचकर मेरा बाहर निकलना भी संभव नहीं था। एक बार तो, जब मैं टाउनहालके पाससे गुजर रहा था, लोगोंने मुझे घेर लिया था और मुझ पर हू-हाकी बौछार की थी। बेचारे मेरे भाईको चुपचाप यह सब दृश्य देखना पड़ा। पराकाष्ठा तब हुई जब जातिके मुख्य प्रतिनिधियोंने एक विराट सभाका आयोजन किया। जातिके हर आदमीको सभामें बुलाया गया और जो न आये उसे पाँच आने जुर्मानेकी धमकी दी गई। यहाँ मैं बता दूँ कि इस कार्रवाईका निश्चय करनेके पहले उनके कई शिष्टमंडलोंने आ-आकर मुझे परेशान किया था। परन्तु वे असफल रहे थे। इस विशाल सभामें मुझे श्रोताओंके बीचोंबीच बैठाया गया। जातिके प्रतिनिधियोंने, जिन्हें 'पटेल' कहा जाता है, मुझे खूब सख्त-सुस्त सुनाई। मेरे पिताजीके साथ अपने संबंधोंकी याद भी दिलाई। मैं कह सकता हूँ कि यह सब मेरे लिए एक अनोखा अनुभव था। उन्होंने अक्षरशः मुझे एकान्त स्थानसे घसीटकर सबके बीचमें बैठाया था, क्योंकि मैं तो ऐसी बातोंका अभ्यस्त नहीं था। इसके अलावा, परले दर्जेके शरमीले स्वभावके कारण मेरी स्थिति और भी संकटापन्न हो गई थी। आखिर, यह देखकर कि डाँट-फटकारका मुझ पर कोई असर नहीं हुआ, मुख्य पटेलने मुझसे इस आशयकी बातें कहीं — "तुम्हारे पिता हमारे दोस्त थे, इसीलिए हमें तुम पर दया आती है। तुम जानते हो, जातिके मुखियोंके नाते हममें कितनी शक्ति है। हम ठीक-ठीक जानते हैं कि इंग्लैंडमें तुम्हें मांस खाना पड़ेगा, और दारू पीनी पड़ेगी। इसके अलावा, तुम्हें समुद्र पार जाना है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यह सब हमारे जाति-नियमोंके खिलाफ है। इसलिए हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि अपने फैसले पर फिरसे सोच-विचार कर लो। नहीं तो, तुम्हें भारीसे भारी सजा दी जायेगी। तुम्हें क्या कहना है?"

मैंने इन शब्दोंमें जवाब दिया — "आपकी ताकीदोंके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मगर अफसोस है कि मैं अपना फैसला बदल नहीं सकता। मैंने इंग्लैंडके बारेमें जो-कुछ सुना है वह आप जो-कुछ कह रहे हैं उससे बिलकुल

भिन्न है। वहाँ जरूरी नहीं कि मांस-मदिराका सेवन करना ही पड़े। और जहाँतक समुद्र पार करनेकी वात है, अगर हमारे भाई-वन्द अदन जा सकते हैं तो मैं इंग्लैंड क्यों नहीं जा सकता? मुझे पक्का यकीन हो गया है कि इन सव आपत्तियोंके पीछे ईर्ष्या काम कर रही है।"

लायक पटेलने गुस्सेसे जवाव दिया—"तो, ठीक है। तुम अपने वापके वेटे नहीं हो।" फिर श्रोताओंकी ओर मुख करके उसने कहा—"इस लड़केने अपना होश खो दिया है। हम हरएकको आज्ञा देते हैं कि इसके साथ कोई वास्ता न रखा जाये। जो इसको किसी भी तरहसे मदद करेगा, या इसे विदा करने जायेगा उसे जातिसे निकाल दिया जायेगा। और अगर यह लड़का कभी लौट-कर आ सके तो इसे वता दिया जाये कि यह फिरसे कभी जातिमें नहीं लिया जायेगा।"

ये शब्द लोगों पर वज्र जैसे पड़े। अब तो उन थोड़े-से चुने हुए लोगोंने भी मुझे छोड़ दिया, जो गाढ़े समयमें भी मेरा साथ देते आये थे। मेरा वड़ा मन था कि उस छुकरपनकी धमकीका जवाव दूँ, मगर मेरे भाईने मुझे रोक लिया। इस तरह मैं उस अग्नि-परीक्षासे सकुशल निकल तो आया, मगर मेरी स्थिति पहलेसे भी वदतर हो गई। स्वयं मेरे भाईका मन भी डाँवाडोल होने लगा, हालाँकि यह क्षण भरके लिए ही था। उनको यह धमकी याद आई कि वे मुझे जो धनकी सहायता करेंगे उससे उन्हें अपना पैसा ही नहीं, वल्कि विरादरी भी खो देनी पड़ेगी। इसलिए, उन्होंने रू-व-रू मुझसे तो कुछ नहीं कहा, मगर अपने कुछ मित्रोंसे कहा कि वे मुझे या तो अपने निर्णय पर फिरसे विचार करनेको या क्षोभ ठंडा पड़ने तकके लिए उसे स्थगित कर देनेको समझायें। मेरा जवाव तो सिर्फ एक ही हो सकता था। और उसके वाद उन्होंने कभी पसोपेश नहीं किया। और, सचमुच तो, उन्हें जाति-वहिष्कृत भी नहीं किया गया। मगर वात यहाँ खत्म नहीं हुई। जातिवालोंकी कारस्तानियाँ वरावर चलती रहीं। इस वार वे करीव-करीव सफल हो गये, क्योंकि उन्होंने मेरा जाना एक पखवारेके लिए मुल्तवी करा दिया। यह उन्होंने इस तरह किया: हम एक जहाज कम्पनीके कप्तानसे मिलने गये। उससे यह कह देनेका अनुरोध किया गया था कि समुद्रमें तूफानी मौसम होनेके कारण उस समय—अगस्तमें—रवाना होना मुनासिव न होगा। मेरे भाई सव वातें माननेको तैयार थे, मगर तूफानी मौसममें रवाना होने देनेको तैयार न थे। दुर्भाग्यसे मेरे लिए यह पहली ही समुद्र-यात्रा थी। इसलिए यह भी कोई नहीं जानता था कि मैं आरामसे
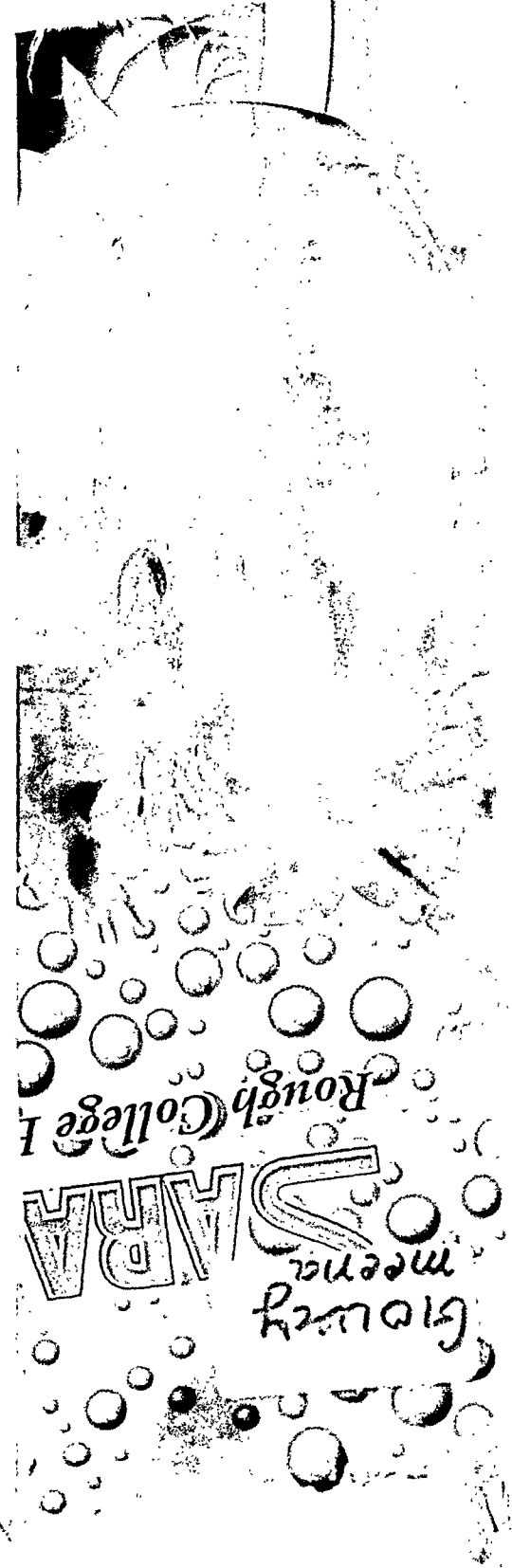
समुद्र-यात्रा कर सकता हूँ या नहीं। इस तरह मैं लाचार हो गया। अपनी इच्छाके बहुत खिलाफ मुझे अपनी रवानगी स्थगित कर देनी पड़ी। मुझे तो लगा कि सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायेगा। मेरे भाई अपने एक मित्रके नाम एक चिट्ठी छोड़ कर, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि समय आने पर मुझे किरायेका पैसा दे दें, वापस चले गये। जुदाईका दृश्य वैसा ही था, जैसा ऊपर वर्णन किया गया है। अब मैं बम्बईमें अकेला रह गया। जहाजके किरायेके लिए पैसा नहीं था। वहाँ मुझे जितना ठहरना पड़ा, उसका एक-एक घंटा एक-एक वर्ष जैसा मालूम होता था। इसी बीच मैंने सुना कि एक और भारतीय सज्जन[1] भी इंग्लैंड जा रहे हैं। यह तो मेरे लिए ईश्वर-प्रेरित समाचार था। मैंने सोचा, अब मुझे जाने दिया जायेगा। मैंने उस चिट्ठीका उपयोग किया, परन्तु भाईके मित्रने मुझे रुपया देनेसे इनकार कर दिया। मुझे चौबीस घंटोंके अन्दर तैयारी करनी थी। इसलिए मैं भयानक बेचैनीमें था। रुपयेके बिना ऐसा महसूस करता था मानो मैं पंखहीन पक्षी होऊँ। ऐसे समयमें एक मित्र मददको आ गये और उन्होंने मार्ग-व्यय दे दिया। उन्हें तो मैं हमेशा ही धन्यवाद दूँगा। मैंने टिकट खरीद लिया, अपने भाईको तार दे दिया और ४ सितंबर, १८८८ को मैं इंग्लैंडके लिए रवाना हो गया। इस तरहकी थीं मेरी मुख्य कठिनाइयाँ, जो लगभग पाँच माह तक चलती रहीं। वह समय भयानक चिन्ता और मनस्तापका था। कभी आशा और कभी निराशाके बीच, हमेशा अधिकसे अधिक प्रयत्न करता हुआ, और इष्ट लक्ष्य दिखानेके लिए ईश्वर पर निर्भर होकर, मैं अपना गाड़ा खींचता रहा।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, १३–६–१८९१

२

इंग्लैंड पहुँचने पर तो आपको मांसाहारकी समस्याका प्रत्यक्ष सामना करना पड़ा होगा; आपने उसको कैसे हल किया?

मैं बेमाँगे उपदेशोंके भारसे दब गया था। सदाशयी किन्तु अनजान मित्र अपनी सलाहें अनिच्छुक श्रवण-पुटोंमें ठूंसते रहे थे। उनमें से ज्यादातरने तो

१. मजमूदार, देखिए पृष्ठ १२।

यह कहा था कि ठंडी आबहवामें तुम्हारा काम मांसके बिना नहीं चलेगा। तुम्हें क्षय-रोग हो जायेगा। श्री 'ज़ेड' इंग्लैंड गये थे और वे अपनी मूर्खतापूर्ण वीरताके कारण क्षय-रोगके शिकार हो गये थे। दूसरे लोगोंने कहा कि तुम मांसके बिना तो रह सकते हो, मगर शराबके बिना घूम-फिर नहीं सकते। सर्दीसे जकड़ जाओगे। एकने तो यहांतक उपदेश दे डाला कि तुम व्हिस्कीकी आठ बोतलें साथ रख लो, क्योंकि अदनसे आगे जानेके बाद तुम्हें उनकी जरूरत पड़ सकती है। एक अन्य सज्जनने धूम्र-पानकी सलाह दी, क्योंकि उनका मित्र इंग्लैंडमें धूम्र-पानके लिए बाध्य हो गया था। इंग्लैंड होकर आये हुए डाक्टर तक यही कहानी सुनाते थे। मैंने जवाब दिया कि मैं इन सब चीजोंको टालनेकी ज्यादासे ज्यादा कोशिश करूंगा। परन्तु यदि ये बिलकुल जरूरी ही मालूम हुईं तो मैं नहीं जानता क्या करूंगा। मैं यहां कह दूं कि उस समय मांससे मुझे इतनी चिढ़ नहीं थी, जितनी कि आज है। जिन दिनों मैंने अपने लिए सोचनेका अधिकार अपने मित्रोंको दे रखा था, उन दिनों मैं छः या सात बार मांस खानेके चक्करमें पड़ भी चुका था। परन्तु जहाजमें मेरे विचार बदलने लगे थे। मैंने सोचा कि मुझे किसी भी कारणसे मांस नहीं खाना चाहिए। मेरी मांने मुझे यहां आनेकी अनुमति देनेके पूर्व मुझसे मांस न खानेका वचन ले लिया था। और कुछ नहीं तो उस वचनसे ही मैं मांस न खानेको बंधा हुआ था। जहाजके सह-यात्री हमें (मुझे और मेरे साथके मित्रको) सलाह देने लगे कि जरा परीक्षा करके तो देखो।

उनका कहना था कि तुम्हें अदन छोड़नेके बाद उसकी जरूरत पड़ेगी। जब यह गलत सिद्ध हो गया तो फिर बताया गया कि लाल समुद्र पार करनेके बाद जरूरत होगी। और जब यह भी झूठा हुआ तो एक यात्रीने कहा — "अभीतक मौसम बहुत उग्र नहीं रहा, परन्तु बिस्केकी खाड़ीमें आपको मौत और मांस-मदिरामें से एकको पसन्द करना होगा।" वह संकटका मौका भी सकुशल बीत गया। लंदनमें भी मुझे ऐसी डांट-फटकारें सुननी पड़ी थीं। महीनों तक मेरी भेंट किसी अन्नाहारीसे नहीं हुई। मैंने एक मित्रके साथ अन्नाहारकी पर्याप्तताके विषयमें बहस करते हुए कई दिन चिन्तामें बिताये। परन्तु उस समय अन्नाहारके पक्षमें मुझे जीव-दयाकी दलीलोंको छोड़कर और किन्हीं दलीलोंका ज्ञान नहीं था। दूसरी ओर, मेरे मित्रने ऐसी बहसोंमें जीव-दयाके विचारको तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर दिया। अतएव मुझे हार

खानी पड़ी। आखिरकार मैंने यह कहकर उसका मुँह बन्द किया कि मैं मर जाना पसन्द करूँगा, परन्तु अपनी माताको दिया हुआ वचन नहीं तोड़ूँगा। "छि:!" उसने कहा, "बचपन! घोर अन्धविश्वास! परन्तु यहाँ आने पर भी तुममें इतना अन्धविश्वास कायम है कि तुम इन बेवकूफियोंमें विश्वास करते हो, तो अब मैं तुम्हारी ज्यादा मदद नहीं कर सकता। काश! तुम इंग्लैंड आये ही न होते!"

बादमें, शायद एक बारको छोड़कर उसने फिर कभी उस बात पर गंभीरतासे जोर नहीं दिया, हालाँकि तबसे उसने कभी भी मुझे मूर्खसे बेहतर नहीं माना। इसी बीच मुझे याद आया कि एक बार मैं एक अन्नाहारी जलपान-गृहके पाससे निकला था (वह "पारिज बाउल" था)। मैंने एक आदमीसे वहाँका रास्ता पूछा, मगर वहाँ पहुँचनेके बदले, मैंने "सेंट्रल" जलपान-गृह देखा और वहाँ जाकर पहली बार थोड़ा-सा दलिया खाया। वह तो मुझे अच्छा नहीं लगा, मगर दूसरे परोसेमें जो 'पाई' [आटेकी पतली परतोंके बीच कुचले हुए फलोंकी मोटी परत भरकर सेंकी गई मीठी रोटी] दी गई, वह मुझे पसन्द आई। वहींसे सबसे पहले कुछ अन्नाहारी साहित्य लाया। उसमें एक प्रति एच० एस० साल्ट कृत '*ए प्ली फार वेजिटेरियनिज्म*' [अन्नाहारकी हिमायत] की भी थी। उसे पढ़नेके बाद मैंने अन्नाहारको सैद्धान्तिक रूपमें स्वीकार कर लिया।

तबतक मैं मांसको वैज्ञानिक दृष्टिसे ज्यादा अच्छा आहार समझता था। इसके अलावा, उसी जलपान-गृहमें मुझे मालूम हुआ था कि मैंचेस्टरमें एक अन्नाहारी संघ है। परन्तु मैंने उसमें कोई सक्रिय दिलचस्पी नहीं ली। मैं कभी-कभी *वेजिटेरियन मेसेंजर* पढ़ लिया करता था, इससे अधिक कुछ नहीं। *वेजिटेरियन*की जानकारी तो मुझे एक-डेढ़ वर्षसे ही है। ऐसा कहा जा सकता है कि लंदनके अन्नाहारी संघकी जानकारी मुझे अन्तर्राष्ट्रीय अन्नाहारी कांग्रेसमें हुई थी। कांग्रेसकी बैठककी सूचना मुझे श्री जोशाया ओल्डफील्डके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी। उन्होंने एक मित्रसे मेरे बारेमें सुना था और मुझसे कांग्रेसमें शामिल होनेको कहा था। अन्तमें मुझे कहना होगा कि इंग्लैंडमें लगभग तीन वर्ष रहकर मैंने कई काम नहीं किये, और कई काम ऐसे किये हैं, जिन्हें शायद न करता तो अच्छा होता। फिर भी मुझे यह एक महान संतोष है कि मैंने शराब और मांसका सेवन नहीं किया;
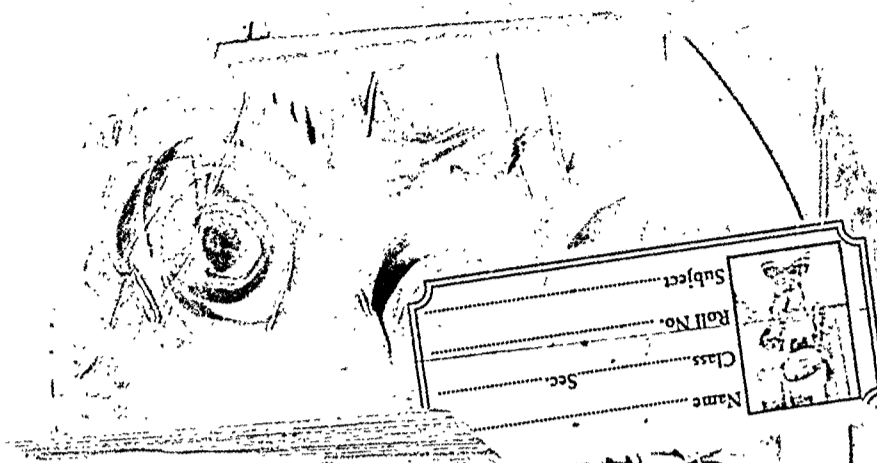
उनसे बचकर भारत लौट रहा हूँ। और अपने व्यक्तिगत अनुभवसे जानता हूँ कि इंग्लैंडमें भी इतने-बहुत अन्नाहारी मौजूद हैं।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २०–६–१८९१

१३. एडवोकेट बननेके लिए आवेदन

बम्बई

नवम्बर १६, १८९१

सेवामें

प्रोथोनोटरी व रजिस्ट्रार

उच्च न्यायालय

बम्बई

महोदय,

मैं उच्च न्यायालयका एडवोकेट बननेका इच्छुक हूँ। मैंने गत १० जूनको इंग्लैंडमें बैरिस्टरीकी सनद प्राप्त की है और इनर टेम्पलमें बारह सत्र पूरे किये हैं। मैं बम्बई प्रान्तमें बैरिस्टरी करना चाहता हूँ।

मैं इसके साथ अपनी बैरिस्टरीका प्रमाणपत्र पेश कर रहा हूँ। जहाँतक मेरे चालचलन और योग्यताके प्रमाणपत्रका संबंध है, मैं इंग्लैंडके किसी न्यायाधीशसे कोई प्रमाणपत्र नहीं ले सका, क्योंकि मुझे बम्बई उच्च न्यायालयमें प्रचलित नियमोंका ज्ञान नहीं था। तथापि मैं श्री डब्ल्यू० डी० एडवर्ड्सका प्रमाणपत्र पेश कर रहा हूँ। वे इंग्लैंडके सर्वोच्च न्यायालयके बैरिस्टर और "कॉम्पेंडियम आफ द ला आफ प्रापर्टी इन लैंड" के रचयिता हैं, जो बैरिस्टरीकी अन्तिम परीक्षाके लिए निर्दिष्ट पुस्तकोंमें से एक है।

आपका

अत्यन्त आज्ञानुवर्ती सेवक

मो० क० गांधी

महात्मा, खण्ड १; मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे

१४. स्वदेश वापसीके मार्गमें

१

इंग्लैंडमें तीन वर्ष रहनेके वाद १२ जून, १८९१ को मैं वम्बईके लिए रवाना हुआ। दिन वड़ा सुहावना था। सूर्यकी उज्ज्वल धूप फैली हुई थी। हवाके ठंडे झकोरोंसे वचनेके लिए ओवरकोटकी जरूरत नहीं थी।

पौने वारह वजे मुसाफिरोंकी एक्सप्रेस रेलगाड़ी लिवरपूल स्ट्रीट स्टेशनसे जहाज-घाटके लिए रवाना हुई।

जवतक मैं पी० ऐंड ओ० कम्पनीके जहाज *ओशियाना*में सवार नहीं हो गया, मुझे विश्वास ही नहीं होता था कि मैं भारत जा रहा हूँ। इतना मेरा लंदन और उसके वातावरणसे अनुराग हो गया था; क्योंकि ऐसा कौन है, जिसका न हो जायेगा? वहाँ जो शिक्षा-संस्थाएँ, सार्वजनिक कला-भवन, अजायवघर, नाटकघर, अपार वाणिज्य, सार्वजनिक वाग और अन्नाहारी जलपान-गृह हैं, उनके कारण वह विद्यार्थियों, यात्रियों, व्यापारियों, और जिन्हें विरोवी लोग 'खब्ती' कहकर पुकारते हैं उन अन्नाहारियोंके लिए एक योग्य स्थान है। इसलिए मैं गहरे अफसोसके विना प्यारे लंदनसे विदाई नहीं ले सका। साथ ही मुझे खुशी भी थी कि इतने लम्बे अरसेके वाद मैं भारत पहुँचकर अपने मित्रों और संवंधियोंसे मिलूँगा।

ओशियाना एक आस्ट्रेलियाई जहाज है। उसकी गिनती कम्पनीके सवसे वड़े जहाजोंमें है। उसका वजन ६,१८८ टन और शक्ति १,२०० हार्सपावर है। इस तैरते हुए विशाल द्वीपमें सवार होने पर हमें अच्छी, ताजगीदेह चाय और नाश्ता दिया गया, जिस पर तमाम यात्रियों और उनके मित्रोंने समान रूपसे जी भरके हाथ साफ किया। यह वता देना जरूरी है कि चाय-नाश्ता मुफ्त दिया गया था। उस समय जिस इतमीनानसे लोग चाय पी रहे थे, उसे देखकर अनजान व्यक्ति तो यही समझता कि वे सभी यात्री हैं (और उनकी संख्या काफी वड़ी थी)। परन्तु जव घंटी वजाकर यात्रियोंके मित्रोंको सूचना दी गई कि जहाज लंगर उठानेवाला है, तो वह संख्या वहुत-कुछ क्षीण हो गई। जव जहाज वन्दरगाहसे चला तो ढाढ़स वँधाने और उत्साहित करनेके उद्‌गारोंका समाँ वँव गया और जहाँ-तहाँ रूमालें लहराई जाने लगीं।

वम्वई जानेवाले यात्रियोंको अदनमें *ओशियाना* छोड़कर *आसाम* जहाज पर वैठना था। इसलिए दोनों जहाजोंका फर्क वता देना ठीक होगा।

*ओशियाना*में हजूरिये (वेटर) अंग्रेज थे। वे सदा साफ-सुथरे और उपकार करनेको तत्पर रहते थे। दूसरी ओर, *आसाम* जहाजके हजूरिये पुर्तगीज थे, जो बात-बातमें टकसाली अंग्रेजीकी हत्या करते और सदैव अस्वच्छ रहते थे। वे घुन्ने और मन्द भी थे।

इसके अलावा, दोनों जहाजोंमें दिये जानेवाले भोजनकी किस्ममें भी फर्क था। *आसाम*के यात्री जिस तरह असंतोष प्रकट करते रहते थे, उससे यह साफ था। और यही बस नहीं था। *ओशियाना*में *आसाम*की अपेक्षा जगह भी अच्छी थी। परन्तु इसका तो कोई इलाज कंपनीके पास नहीं था। अंग्रेजोंका जहाज अच्छा है, इसलिए अपने जहाजको वह फेंक तो नहीं दे सकती।

अन्नाहारियोंने जहाजमें कैसे काम चलाया, यह सवाल मौजूं होगा।

अन्नाहारी तो मुझे मिलाकर सिर्फ दो ही थे। हम दोनों अगर कुछ बेहतर न मिले तो उबले हुए आलू, गोभी और मक्खनसे काम चला लेनेको तैयार थे। परन्तु हमें उस हदतक जानेकी जरूरत नहीं पड़ी। भला कारिन्दा (स्टयूअर्ड) हमें शाक-सब्जी, चावल, भापमें पकाये हुए और ताजे फल पहले दर्जेके भोजन-गृहसे लाकर दे देता था। और बड़ी बात तो यह है कि वह हमें चोकरदार आटेकी डबल रोटी (ब्राउन ब्रेड) भी दे देता था। इस तरह, जो भी जरूरी था, सब-कुछ हमें मिल जाता था। इसमें कोई शक नहीं कि मुसाफिरोंको भोजन देनेमें जहाजके लोग बड़े उदार होते हैं। बात इतनी ही है कि वे अति कर देते हैं। कमसे कम मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

दूसरे दर्जेके भोजन-गृहकी खाद्य-सूचीमें क्या-क्या होता है, और यात्रियोंको कितनी बार भोजन दिया जाता है, इसका वर्णन कर देना अनुचित न होगा।

पहले तो, औसत दर्जेके यात्रीको एक-दो प्याले चाय और कुछ बिस्कुट दिये जाते हैं। यह बिलकुल सुबहकी पहली चीज होती है। साढ़े आठ बजे सुबह नाश्तेकी घंटी होती है और यात्री भोजनशालामें पहुँच जाते हैं। और कुछ हो-न-हो, भोजनके समय तो वे ठीक मिनट-मिनट समयका पालन करते ही हैं। नाश्तेकी सूचीमें आम तौरपर जईका दलिया, कुछ मछली, मांस, सब्जी, मुरब्बा, डबल रोटी, मक्खन, चाय या काफी आदि होती है। प्रत्येक वस्तु इच्छानुसार ली जा सकती है।

मैंने अक्सर यात्रियोंको दलिया, मछली और 'करी' [मसालेदार मांस] खाते और डबल रोटी तथा मक्खनको दो-तीन प्याले चायसे पेटमें उतारते देखा है।

हमें नाश्तेको हजम करनेका समय भी मुश्किलसे मिल पाता कि डेढ़ बजे दुपहरको फिरसे भोजनकी घंटी बज जाती थी। दुपहरका भोजन भी उतना ही अच्छा होता था, जितना कि नाश्ता। उसमें यथेष्ट मांस और शाक, चावल, सालन और रोटी आदि वस्तुएँ होती थीं। किसी चीजकी कमी दिखलाई न पड़ती। हफ्तेमें दो दिन दूसरे दर्जेके यात्रियोंको साधारण भोजनके अलावा फल आदि दिये जाते थे। परन्तु यह भी बस नहीं था। भोजनका माल-मसाला इतना सुपाच्य होता था कि चार बजे शामको हमें ताजगी देनेवाले चायके प्याले और कुछ बिस्कुटोंकी जरूरत महसूस होती थी। परन्तु शामकी हवा चायके उस "छोटे-से प्याले" का सारा असर इतनी जल्दी हर लेती कि साढ़े छः बजे हमें अच्छे-खासे नाश्तेके साथ चाय दी जाती — जिसमें डबल रोटी, मक्खन, फलोंके मुरब्बे, सलाद, मांस, चाय, काफी आदि होती थी। समुद्रकी हवा इतनी स्वास्थ्यवर्धक मालूम होती थी कि यात्रीगण थोड़े-से, बिलकुल ही थोड़े (सिर्फ आठ या दस — ज्यादासे ज्यादा पंद्रह) बिस्कुट, थोड़ा-सा पनीर और थोड़ी-सी अंगूरी शराब या बीयर लिये बिना सोने नहीं जा सकते थे। इस सबकी दृष्टिसे क्या निम्नलिखित पंक्तियाँ बिलकुल सही नहीं हैं?

> तुम्हारा जठर ही तुम्हारा भगवान है, तुम्हारा उदर ही तुम्हारा मंदिर है, तुम्हारी तोंद ही तुम्हारी वेदी है, तुम्हारा रसोइया ही तुम्हारा पुरोहित है।... तुम्हारा प्रेम पकानेके बर्तनोंमें ही उद्दीप्त होता है, तुम्हारी श्रद्धा रसोईघरमें ही तीव्र होती है, तुम्हारी सारी आशा मांसकी थालियोंमें ही छिपी रहती है।... बार-बार दावतें देनेवालेके बराबर, उत्तम भोजन करानेवालेके बराबर, अभ्यस्त स्वास्थ्य-पान करनेवालेके बराबर तुम्हारे आदरका पात्र कौन है?

दूसरे दर्जेका सलून सब तरहके यात्रियोंसे काफी भरा था। उसमें सैनिक, धर्मोपदेशक, नाई, खलासी, विद्यार्थी, सरकारी कर्मचारी और, हो सकता है, साहसिक भी थे। तीन या चार महिलाएँ थीं। हम अपना समय खास तौरसे

खाने-पीनेमें बिताते थे। बाकी समय या तो ऊँघनेमें बिताया जाता था या गपशपमें और कभी-कभी बहस करने, खेलने आदिमें। मगर दो या तीन दिनके बाद बहसों, पत्तों और दूसरोंकी निन्दाके कार्यक्रमोंके बावजूद भोजनोंके बीचका समय बहुत भारी मालूम होने लगा।

हममें से कुछ लोगोंको कुछ करनेका उत्साह हुआ। उन्होंने गाने-बजाने, रस्साकशी और दौड़की प्रतियोगिताओं और उनमें इनाम देनेका आयोजन किया। एक शाम व्याख्यानों और गाने-बजानेके लिए रखी गई।

मैंने सोचा, मानें न मानें, अब मेरे हाथ डालनेका समय आ गया है। मैंने आयोजक समितिके सेक्रेटरीसे अन्नाहारके विषयमें एक छोटा-सा भाषण करनेके लिए पाव घंटेका समय माँगा। सेक्रेटरीने बड़े अनुग्रहके भावसे सिर हिलाकर हामी भर दी।

तो, मैंने डटकर तैयारी की। मुझे जो भाषण देना था उसे मैंने सोचा, लिखा और एक बार दुहराकर लिख डाला। मैं भली-भाँति जानता था कि मुझे विरोधी श्रोताओंका सामना करना है और यह सावधानी रखनी पड़ेगी कि मेरा भाषण सुनते-सुनते लोग ऊँघने न लगें। सेक्रेटरीने मुझसे कहा था कि मैं विनोदमय भाषण करूँ। मैंने उसे बताया कि मेरा घबरा जाना तो सम्भव है, परन्तु विनोदमय भाषण करना मुझे आता ही नहीं।

जरा सोचिए, उस भाषणका क्या हुआ होगा? गाने-बजानेका दूसरा कार्यक्रम हुआ ही नहीं और, इस तरह, वह भाषण भी कभी नहीं हुआ। इससे मुझे बहुत व्यथा हुई। मेरा खयाल है, इसका कारण यह था कि पहली शामको कार्यक्रममें कोई भी रस लेता दिखलाई नहीं पड़ा, क्योंकि हमारे दूसरे दर्जेमें पैटी[1] जैसे गायक और ग्लैडस्टन जैसे वक्ता तो थे ही नहीं।

फिर भी, मैं दो या तीन यात्रियोंके साथ अन्नाहार पर बातचीत करनेमें सफल हुआ। उन्होंने मेरी बात शान्तिसे सुनी और, सारांशमें, यह जवाब दिया : "हमने मान लिया कि आपकी दलील सही है। परन्तु जबतक हमें अपने वर्तमान आहारमें मजा मिलता है, तबतक हम आपके आहारका प्रयोग नहीं कर सकते (अपने आहारसे कभी-कभी हमें मन्दाग्नि हो जाती हो तो भी कोई हर्ज नहीं)।"

१. उस समयका एक प्रसिद्ध इतालवी गायक।

उनमें से एकने जब देखा कि मुझे और मेरे अन्नाहारी मित्रको रोज अच्छे-अच्छे फल मिलते हैं, तब उसने अन्नाहारका प्रयोग जरूर किया, परन्तु उसके लिए मांसका प्रलोभन बहुत बड़ा था।

बेचारा!

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ९-४-१८९२

२

इसके अलावा, यात्रियोंके बीच मेलजोलका भाव रहता था और पहले दर्जेके यात्री सौजन्यका व्यवहार करते थे। उदाहरणके लिए, पहले दर्जेके यात्री समय-समय पर नाटक और नाच किया करते थे और उनमें अक्सर दूसरे दर्जेके यात्रियोंको आमन्त्रित किया जाता था।

पहले दर्जेमें कुछ बहुत भले स्त्री-पुरुष थे। परन्तु, बिना किसी झगड़ेके, सिर्फ खेल ही खेलमें मजा नहीं आता था, इसलिए एक शाम कुछ यात्रियोंने शराब पीकर मतवाले हो जाना पसंद किया (क्षमा कीजिए, सम्पादकजी, वे शराब तो हर शाम ही पीते थे, मगर इस खास शामको वे पीकर आपेसे बाहर हो गये थे)। मालूम होता है, वे व्हिस्कीकी चुसकियाँ लेते हुए आपसमें बहस कर रहे थे कि उनमें से कुछ लोगोंने अनुचित शब्दोंका प्रयोग कर दिया। इसपर तू-तू मैं-मैं शुरू हो गई, और बादमें लोग घूंसेबाजी पर उतर आये। आखिरकार कप्तानके पास शिकायत गई। उसने इन मुक्केबाज भद्र पुरुषोंको आड़े हाथों लिया और उसके बाद फिर कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ।

इस तरह अपने समयको खाने-पीने और मनोरंजनमें बाँटकर हम आगे बढ़ते रहे।

दो दिनकी यात्राके बाद जहाज जिब्राल्टरके पाससे निकला, मगर किनारे पर नहीं गया। हममें से कुछ लोगोंने आशा की थी कि वह वहाँ रुकेगा। परन्तु जब रुका नहीं तो खास तौरसे तम्बाकू पीनेवाले बड़े हताश हुए। उन्होंने वहाँ बिना चुंगीकी सस्ती तम्बाकू खरीदनेके मंसूबे बाँध रखे थे।

इसके बाद हम माल्टा पहुँचे। वह कोयला लेनेका स्थान है, इसलिए जहाज वहाँ कोई नौ घंटे तक ठहरता है। इस बीच लगभग सभी यात्री बस्ती देखने चले गये।

माल्टा एक सुन्दर द्वीप है, जहां लंदनका जैसा धुआं छाया नहीं रहता।
घरोंकी बनावट भी भिन्न है। हमने गवर्नरका महल देखा। शस्त्रागार तो देखने
ही लायक है। वहां नेपोलियनकी गाड़ी प्रदर्शित की गई है। कुछ सुन्दर चित्र
भी देखनेको मिलते हैं। बाजार बुरा नहीं है। फल सस्ते हैं। गिरजाघर
बड़ा भव्य है।

हम एक सवारी पर छः मीलकी बड़ी आनन्ददायक सैर करते हुए संतरेके
बाग पहुंचे। वहां संतरेके हजारों पेड़ थे और कुछ पानीके टांके थे, जिनमें सुन-
हली मछलियां पली हुई थीं। सवारी बड़ी सस्ती थी — सिर्फ ढाई शिलिंग।
भिखमंगोंके कारण माल्टा कितनी रद्दी जगह बन गई है! यह हो ही नहीं
सकता कि आप गंदे दीखनेवाले भिखमंगोंकी मिन्नतोंकी झड़ियोंसे बचकर
सड़कसे शान्तिपूर्वक गुजर जायें। वे एकदम पीछे पड़ जाते हैं। उनमें से कुछ
आपके मार्ग-दर्शक बननेके लिए तैयार हो जायेंगे और दूसरे आपको चुरुट
या माल्टाकी प्रसिद्ध मिठाईकी दूकानोंमें ले जानेकी तत्परता दिखायेंगे।
माल्टासे हम ब्रिंडिसी पहुंचे। वह सिर्फ एक अच्छा बन्दरगाह है। वहां आप
एक दिन भी मनोरंजनमें गुजार नहीं सकते। हमें ९ घंटे या इससे भी
ज्यादाका समय था, मगर हम चार घंटोंका भी सदुपयोग नहीं कर सके।
ब्रिंडिसीके बाद हम पोर्ट सईद पहुंचे। वहां हमने यूरोप और भूमध्य सागरसे
अन्तिम विदाई ली। पोर्ट सईदमें देखने लायक कुछ नहीं है। हां, अगर आप
समाजका तलछट देखना चाहें तो बात दूसरी है। वह धूर्तों और छलियोंसे
भरा हुआ है।[1]

पोर्ट सईदसे आगे जहाज बहुत धीमे-धीमे चलता है, क्योंकि हम एम०
डी'लेसेप्सकी बनाई स्वेज नहरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। नहर सतासी मील लम्बी
है। जहाजको यह फासला तय करनेमें चौबीस घंटे लगे। हम दोनों ओर
जमीनके निकट थे। पानीका पाट इतना सँकरा है कि कुछ जगहोंको छोड़कर
कहीं भी दो जहाज साथ-साथ नहीं चल सकते। रातको दृश्य बड़ा मनमोहक
होता है। सब जहाजोंको सामने बिजलीका प्रकाश रखना पड़ता है। और
यह प्रकाश बहुत जोरदार होता है। जब दो जहाज एक-दूसरेको पार करते
हैं तब दृश्य बड़ा सुहावना होता है। सामने के जहाजसे आनेवाला बिजलीका
प्रकाश बिलकुल चौंधिया देनेवाला होता है।

१. स्पष्टतः यह संकेत नगरवासियोंके एक वर्ग-विशेषकी ओर है।

रास्तेमें हमें *गैंजेज़* जहाज मिला। हमने उसपर हर्ष-ध्वनि की, जिसका उसके यात्रियोंने हृदयसे प्रत्युत्तर दिया। स्वेज शहर नहरके दूसरे सिरेपर है। जहाज वहाँ मुश्किलसे आध घंटा ठहरता है।

अब हम लाल सागरमें प्रविष्ट हुए। यह यात्रा तीन दिनकी थी, मगर अत्यन्त कष्टदायक थी। गर्मी असह्य थी। जहाजके अन्दर रहना तो असम्भव था ही, छत पर भी बेहद गर्मी थी। यहाँ पहली बार हमने महसूस किया कि हम गर्म आबहवाका सामना करनेके लिए भारत जा रहे हैं।

अदन पहुँचने पर हमें हवाके कुछ झकोरे मिले। हम (बम्बई जानेवाले यात्रियों)को यहाँ जहाज बदलकर *आसाम* जहाजमें बैठना था। यह वैसा ही था जैसा कि लंदनको छोड़कर किसी दीन-हीन गाँवमें जाना। *आसाम* जहाज आकार-प्रकारमें *ओशियाना*का शायद आधा भी न होगा।

मुसीबतें कभी अकेली नहीं आतीं — *आसाम*में बैठनेके बाद समुद्रमें तूफानका भी सामना करना पड़ा, क्योंकि मौसम वर्षारम्भका था। हिन्द महासागर आम तौरपर शान्त रहता है, इसलिए वर्षाकालमें वह क्षुब्ध होकर सारी कसर निकाल लेता है। हमें बम्बई पहुँचनेमें समुद्रपर पाँच दिन ज्यादा बिताने पड़े। दूसरी रातको तूफान अपने सच्चे रूपमें प्रकट हुआ था। बहुत-से लोग बीमार हो गये थे। अगर कोई छतपर जानेका साहस करता तो उछलता हुआ पानी झपाटा मारता था। कहीं कुछ कड़ाका होता, कहीं कुछ टूट कर गिरता! कोठरीमें शान्तिपूर्वक सोया नहीं जा सकता था। दरवाजा फटफटाता रहता। सामान नाचने लगता। बिस्तरपर पड़े लोग बेलन जैसे लुढ़कते। कभी-कभी लगता कि जहाज डूब रहा है। भोजनकी मेजपर अब कोई आराम नहीं। जहाज आजू-बाजू लुढ़कता है। उससे काँटे-चम्मच, शोरबेकी रकाबियाँ और सिरका, तेल आदिकी शीशियोंके स्टैंड भी गोदमें आ गिरते हैं। तौलिया पीला रँग जाता है। इसी तरह जाने क्या-क्या होता है।

एक सुबह मैंने कारिन्दा (स्टयूवर्ड) से पूछा कि क्या इसे ही असल तूफान कहा जाता है? उसने जवाब दिया: "जी नहीं, यह तो कुछ भी नहीं है।" और उसने अपना हाथ डुलाकर बताया कि असली तूफानमें जहाज कैसे लुढ़कता है।

इस तरह उछलते और गिरते हुए हम ५ जुलाईको बम्बई पहुँचे। उस समय बड़े जोरोंकी वर्षा हो रही थी, इसलिए तटपर जाना कठिन था। फिर भी हम सकुशल तटपर पहुँच गये और हमने *आसाम*से विदा ली।

ओशियाना और आसाममें नाना-रूप मनुष्य-रूपी असबाब भरा था! कुछ लोग बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर आस्ट्रेलियामें धन कमानेके लिए जा रहे थे; कुछ इंग्लैंडमें अपनी पढ़ाई समाप्त करके सभ्यजनोचित जीविका उपार्जित करनेके लिए भारत जा रहे थे। कुछ कर्तव्यकी पुकारसे आये थे, कुछ स्त्रियाँ भारत या आस्ट्रेलियामें अपने पतियोंसे मिलने जा रही थीं और कुछ साहसिक थे, जो अपने घरसे निराश होकर अपने साहसके कार्योंको आगे बढ़ानेके लिए भगवान जाने कहाँ जा रहे थे!

क्या सबकी आशाएँ पूर्ण हुईं? यह सवाल है। मनुष्यका मन कितना आशालु होता है, और फिर भी कितनी बार वह निराशाका शिकार होता रहता है! हम आशाओं पर ही तो जीते हैं।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, १६-४-१८९२

१५. पत्र : पटवारी[1]को

बम्बई

सितम्बर ५, १८९२

प्रिय भाई पटवारी,

आपके कृपापत्र और मुझे दी हुई सलाहके लिए धन्यवाद।

मैंने अपने पिछले पोस्टकार्डमें आपको लिखा ही था कि मुझे वकालतके लिए विदेश जाना स्थगित कर देना पड़ा है। मेरे भाई उसके बहुत खिलाफ हैं। उनका खयाल है कि मैं काठियावाड़[2]में खासी-अच्छी आजीविका कमा सकता हूँ—सो भी सीधे तिकड़मबाजीमें पड़े बगैर; इसलिए इस विषयमें मुझे हताश नहीं होना चाहिए। कुछ हो, उन्हें आशा है और मेरी ओरसे हर तरहके लिहाजका हक है। इसलिए मैं उनकी सलाह मानूँगा। यहाँ भी मुझे कुछ कामका वादा मिला है। इसलिए मैंने कमसे कम दो महीने यहाँ रहनेका इरादा किया है।

१. राजकोटके रणछोड़लाल पटवारी।

२. सौराष्ट्र भी कहलाता है।

कोई साहित्यिक नौकरी मंजूर कर लेनेसे मेरे कानूनी अभ्यासमें बाधा पड़ेगी, ऐसा मुझे नहीं लगता। उलटे, ऐसे कामसे मेरा ज्ञान बढ़ेगा। वह वकालतमें अप्रत्यक्ष रूपसे सहायक हुए बिना नहीं रह सकता। फिर, उसके द्वारा मैं ज्यादा एकाग्र चित्तसे, चिन्ता-मुक्त रहकर काम कर सकूँगा। परन्तु जगह है कहाँ? कोई जगह पा लेना आसान थोड़े ही है।

बेशक, मैंने कर्ज आपके राजकोटमें किये हुए वादेके बल पर ही माँगा था। मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि आपके पिताजीको इसका पता नहीं चलना चाहिए। परन्तु अब उसकी चिन्ता न कीजिए। मैं किसी दूसरी जगह कोशिश कर लूँगा। मेरे लिए समझना कठिन नहीं है कि आपके पास एक वर्षकी वकालतसे बहुत बड़ी बचत नहीं हो सकती।

मेरे भाई सचीनमें नवाबके सचिवके पद पर रख लिये गये हैं। वे राजकोट गये हैं और कुछ दिनोंमें लौटेंगे।

काशीदाससे यह जानकर खुशी हुई कि वे धंधुकामें बसनेवाले हैं।

जाति-विरोध हमेशाके समान ही जोरदार है। सारी बात एक आदमी पर निर्भर है। वह मुझे जातिमें शामिल न होने देनेकी शक्ति-भर कोशिश करेगा। मुझे अपने लिए इतना दुःख नहीं, जितना अपने जातिभाइयोंके लिए है। वे तो भेड़ोंकी तरह एक आदमीके संकेतपर चलते हैं। कुछ निरर्थक प्रस्ताव पास करते रहते हैं और अपना हिस्सा अदा करनेमें अति करके अपनी ईर्ष्याका साफ-साफ परिचय दे रहे हैं। उनके तर्कोंमें धर्म तो है ही नहीं। क्या सिर्फ इसलिए कि मैं भी उनमें से ही एक माना जाऊँ, उनके सामने गिड़गिड़ाना और उनकी कीर्तिको बढ़ाना उचित है? उनसे अलग ही रहना ज्यादा अच्छा नहीं है? फिर भी, मुझे जमानेके साथ चलना होगा।

व्रजलालभाईके बारेमें यह सुनकर बहुत खुशी हुई कि वे गुजरातमें कहीं कारभारी[1] बन गये हैं।

आप इतने अच्छे अक्षर लिखते हैं कि मुझे आपकी नकल करनेका लोभ हो आया — हालाँकि मैं बड़ी कच्ची नकल कर सका हूँ।

आपका हितैषी,

मो० क० गांधी

स्वयं गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिसे।

१. प्रशासक या एडमिनिस्ट्रेटर।

१६. शनाख्तका सवाल

प्रिटोरिया
सितम्बर १९, १८९३

सेवामें
सम्पादक
नेटाल एडवर्टाइज़र

महोदय,

मेरा ध्यान आपके पत्रमें उद्धृत और समीक्षित उस पत्र[1]की ओर आकर्षित किया गया है, जो श्री पिल्लैने ट्रान्सवाल एडवर्टाइज़र को लिखा था। मैं ही वह कमनसीब भारतीय बैरिस्टर हूँ, जो डर्बनमें आया था और अब प्रिटोरियामें हूँ। परन्तु मैं "श्री पिल्लै" नहीं हूँ और न बी० ए० उपाधिधारी ही हूँ।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेज़ीसे]
नेटाल एडवर्टाइज़र, १८–९–१८९३

१. इस शिकायतका पत्र कि उन्हें (श्री पिल्लैको) पैदल-पटरीसे धक्के देकर हटा दिया गया था।

१७. भारतीय व्यापारी

प्रिटोरिया
सितम्बर १९, १८९३

सेवामें
सम्पादक
नेटाल एडवर्टाइज़र

महोदय,

यदि आप निम्नलिखित शब्दोंको अपने पत्रमें स्थान देनेकी कृपा करें तो मैं बहुत आभारी हूँगा।

श्री पिल्लैने *ट्रान्सवाल एडवर्टाइज़र*को हाल ही में जो पत्र लिखा था, उसके बारेमें यहाँके कुछ सज्जनोंने और वहाँके पत्रोंने उन्हें 'गंदा' कहकर उनकी छीछालेदर कर डाली है। मुझे आश्चर्य है कि क्या "मुए धूर्त एशियाई व्यापारियों — समाजका कलेजा ही खा जानेवाले सच्चे घुनों, अर्धबर्बर जीवन व्यतीत करनेवाले इन परोपजीवियों" के सम्बन्धमें आपका अग्रलेख कठोर शब्दोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें श्री पिल्लैको मात नहीं दे देगा! तथापि, शैली-सम्बन्धी रुचियाँ भिन्न होती हैं और मैं किसीकी लेखन-शैलीके गुण-अवगुणका निर्णय करने नहीं बैठूंगा।

परन्तु बेचारे एशियाई व्यापारियों पर यह क्रोध क्यों उगला गया? उपनिवेश पर अक्षरशः सत्यानाशका खतरा कैसे उत्पन्न हो गया है, यह समझना तो कठिन है। आपके १५ तारीखके अग्रलेखसे मैं जो कारण समझ सका हूँ उसका सार इन शब्दोंमें बताया जा सकता है — "एक एशियाई दिवालिया हो गया है और उसने पाँच पेंस फी-पौंड भुगतान किया है। यह एशियाई व्यापारियोंका एक काफी सच्चा नमूना है। उन्होंने छोटे-छोटे यूरोपीय व्यापारियोंको खदेड़ दिया है।"

अब, जरा मान लें कि एशियाई व्यापारियोंमें से अधिकतर दिवाला निकाल देते हैं और अपने लेनदारोंको बहुत कम पैसा चुकाते हैं (जो सत्य बिलकुल नहीं है), तो भी क्या उन्हें उपनिवेशसे या दक्षिण आफ्रिकासे खदेड़ देनेके लिए यह कारण काफी है? क्या इससे यह ज्यादा स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता कि

दिवाला-सम्बन्धी कानूनमें कुछ खामी है, जिससे कि वे अपने लेनदारोंको इस तरह बरबाद कर सकते हैं? अगर कानून इस तरहके कामोंके लिए जरा भी गुंजाइश देगा तो लोग उसका फायदा लेने ही वाले हैं। क्या यूरोपीय लोग दिवाला-अदालतका संरक्षण नहीं माँगते? इसका यह अर्थ नहीं कि मैं "तू भी तो करता है" — इस तर्कका आश्रय लेकर भारतीयोंकी सफाई दे रहा हूँ। मुझे तो हार्दिक खेद है कि भारतीय ऐसे तरीकोंका आश्रय जरा भी लेते ही क्यों हैं। यह उनके देशके लिए लज्जास्पद है। उनके देशको तो किसी समय अपनी प्रतिष्ठाका इतना अधिक खयाल था कि वह व्यापारमें बेईमानीसे सरोकार रख ही नहीं सकता था। फिर भी, यह तो मुझे दीखता ही है कि अगर भारतीय व्यापारी दिवाला-कानूनका लाभ उठाते हैं तो इससे उन्हें देशसे निकाल देनेका मामला नहीं बन पड़ता। दिवाला निकालनेकी घटनाओंकी पुनरावृत्ति कानूनके द्वारा रोकी जा सकती है। इतना ही नहीं, थोक व्यापारी भी कुछ अधिक सावधानी बरतकर उन्हें रोक सकते हैं। और, बहरहाल, उन व्यापारियोंको यूरोपीय व्यापारियोंसे उधारी मिलती है; क्या यह हकीकत ही साबित नहीं कर देती कि, आखिरकार, वे उतने खराब नहीं हैं, जितना खराब आपने उन्हें चित्रित किया है?

अगर छोटे-छोटे यूरोपीय व्यापारी अपना व्यापार समेट लेनेको बाध्य हो गये हैं तो इसमें उनका क्या अपराध? इससे तो भारतीय व्यापारियोंकी अधिक वाणिज्य-कुशलताका ही परिचय मिलता है। और, आश्चर्य है कि उनकी यही बेहतर कुशलता उनके निकाले जानेका कारण बननेवाली है। मैं आपसे पूछता हूँ, महोदय, कि क्या यह न्यायसंगत है? अगर कोई सम्पादक अपने पत्रका सम्पादन अपने प्रतिद्वन्द्वीकी अपेक्षा अधिक कुशलतासे करता है और इसके फलस्वरूप अपने प्रतिद्वन्द्वीको क्षेत्रसे भगा देता है तो पहले सम्पादकको यह कहना कैसा लगेगा कि वह अपने चारों खाने चित प्रतिद्वन्द्वीके लिए जगह खाली कर दे, क्योंकि वह (सफल सम्पादक) योग्य है? क्या अधिक योग्यता प्रोत्साहनका विशेष कारण नहीं होनी चाहिए, ताकि दूसरे भी उतने ही ऊँचे उठनेका प्रयत्न करें? क्या हितावह प्रतिद्वन्द्विताका गला घोंटना अच्छी नीति है? क्या यूरोपीय व्यापारियोंको, अगर उनकी शानमें बट्टा न लगता हो तो, भारतीय व्यापारियोंके जीवनसे सस्ता बेचना और सादगीसे रहना नहीं सीखना चाहिए? "दूसरोंके साथ वैसा ही बरताव करो, जैसा तुम चाहते हो, दूसरे तुम्हारे साथ करें।"

परन्तु आपका कहना है कि ये अभागे एशियाई अर्धबर्बर जीवन बिताते हैं। इसलिए अर्धबर्बर जीवनके बारेमें आपके विचार जानना बड़ा रोचक होगा। मुझे उनके जीवनके बारेमें कुछ कल्पना है। अगर कमरेमें खूबसूरत और मूल्यवान गलीचों तथा झाड़-फानूसका न होना, मेजका (शायद बिना वार्निशकी) बेशकीमती मेजपोश तथा फूलोंसे सजा हुआ और यथेष्ट शराब, सुअरके मांस तथा गोमांससे पूर्ण न होना ही अर्धबर्बर जीवन है; अगर गर्म आबहवाके लिए खास तौरसे अनुकूल बनाये गये सफेद, आरामदेह कपड़े पहनना ही, जिनके कारण, मैंने सुना है, बहुत-से यूरोपीय ग्रीष्मकी कड़ी गर्मीमें उनसे ईर्ष्या करते हैं, अर्धबर्बर जीवन है; अगर बीयर व तमाखू न पीना, खूबसूरत छड़ी लेकर न चलना, घड़ीका सुनहला पट्टा न बाँधना, विलासके साधनोंसे सजा हुआ कमरा न होना अर्धबर्बर जीवन है; संक्षेपमें, अगर आम तौरपर सादा तथा मितव्ययी माना जानेवाला जीवन अर्धबर्बर जीवन है — तब तो, अवश्य ही, भारतीय व्यापारियोंको यह आरोप स्वीकार करना होगा; और जितनी जल्दी यह अर्धबर्बरता उच्चतम औपनिवेशिक सभ्यतासे निःशेष कर दी जाये उतना ही अच्छा।

सभ्य राज्योंसे लोगोंको निकालनेके लिए साधारणतः जो बातें कारणीभूत होती हैं, वे इन लोगोंमें बिलकुल ही पाई नहीं जातीं। मेरे इस कथनसे आप भी सहमत होंगे कि वे सरकारके लिए राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक नहीं हैं, क्योंकि वे राजनीतिमें दखल देते ही नहीं; और अगर देते हैं तो बहुत थोड़ा। वे कोई कुख्यात डाकू नहीं हैं। मेरा विश्वास है कि भारतीय व्यापारियोंके बीच एक भी घटना ऐसी नहीं हुई, जिसमें किसी भारतीय व्यापारीको कैदकी सजा भोगनी पड़ी हो, या उसपर चोरी, डकैती अथवा अन्य अधम अपराधोंमें से किसीका आरोप भी किया गया हो (इसमें अगर मेरी गलती हो तो मैं उसे सुधारनेके लिए तैयार हूँ)। उनकी शराबसे पूरे परहेजकी आदतोंने उन्हें विशेष शान्तिप्रिय नागरिक बना दिया है।

परन्तु, प्रस्तुत अग्रलेखमें कहा गया है कि वे कुछ खर्च नहीं करते। खर्च करते ही नहीं? तब तो वे, मैं कहूँ, हवापर या भावनाओंपर जीते होंगे! हम जानते हैं, *वैनिटी फ़ेअर* नामक उपन्यासमें बेकी बिना किसी वार्षिक आयके गुजर-बसर करता था। परन्तु यहाँ तो एक वर्गका वर्ग ही वैसा करता खोज निकाला गया है। इससे यह मानना होगा कि उन्हें दूकान-भाड़ा, कर, मांस बेचनेवाले तथा किरानेवालेका पैसा, कारकुनोंका वेतन आदि कुछ चुकाना

नहीं पड़ता। सचमुच, खास तौरपर आजकल, जब कि सारी दुनियाका व्यापार संकटकी हालतसे गुजर रहा है, ऐसे भाग्यशाली व्यापारियोंकी जमातमें शामिल होना लोग कितना पसन्द करेंगे !

मालूम होता है कि बेचारे भारतीय व्यापारियोंकी सादगी, उनका शराबसे पूरा-पूरा परहेज, उनकी शान्तिमय और, सबसे अधिक, व्यवस्थित तथा मितव्ययी आदतें, जो उनकी सिफारिशका काम करनेवाली होनी चाहिए थीं, सचमुच उनके खिलाफ इस तमाम तिरस्कार और घृणाका मूल हैं। तिस पर वे ब्रिटिश प्रजा हैं। क्या यह ईसाइयतके अनुकूल है, क्या यह औचित्य है, क्या यह न्याय है, क्या यह सभ्यता है? मुझे उत्तर ढूँढ़े नहीं मिलता।

आप इसे प्रकाशित करेंगे, इसके अनुमानमें सधन्यवाद —

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइज़र, २३–९–१८९३

१८. नये गवर्नरका स्वागत

टाउन हाल
डर्बन
सितम्बर २८, १८९३

सेवामें
परमश्रेष्ठ, सर वाल्टर हेली-हचिन्सन
के० सी० एम० जी०, आदि

महानुभावसे निवेदन है कि,

सम्राज्ञीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे इस उपनिवेशमें आगमनके अवसरपर हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले मुसलमान और भारतीय समाजके सदस्य अत्यन्त आदरके साथ महानुभावका स्वागत करते हैं।

हमें विश्वास है कि महानुभाव इस उपनिवेशको तथा इसके सम्पर्कको अनुकूल पायेंगे। और यहाँ नये रूपका शासन जारी करनेका काम महानुभावके लिए उतना ही सरल होगा, जितना कि दिलचस्प।
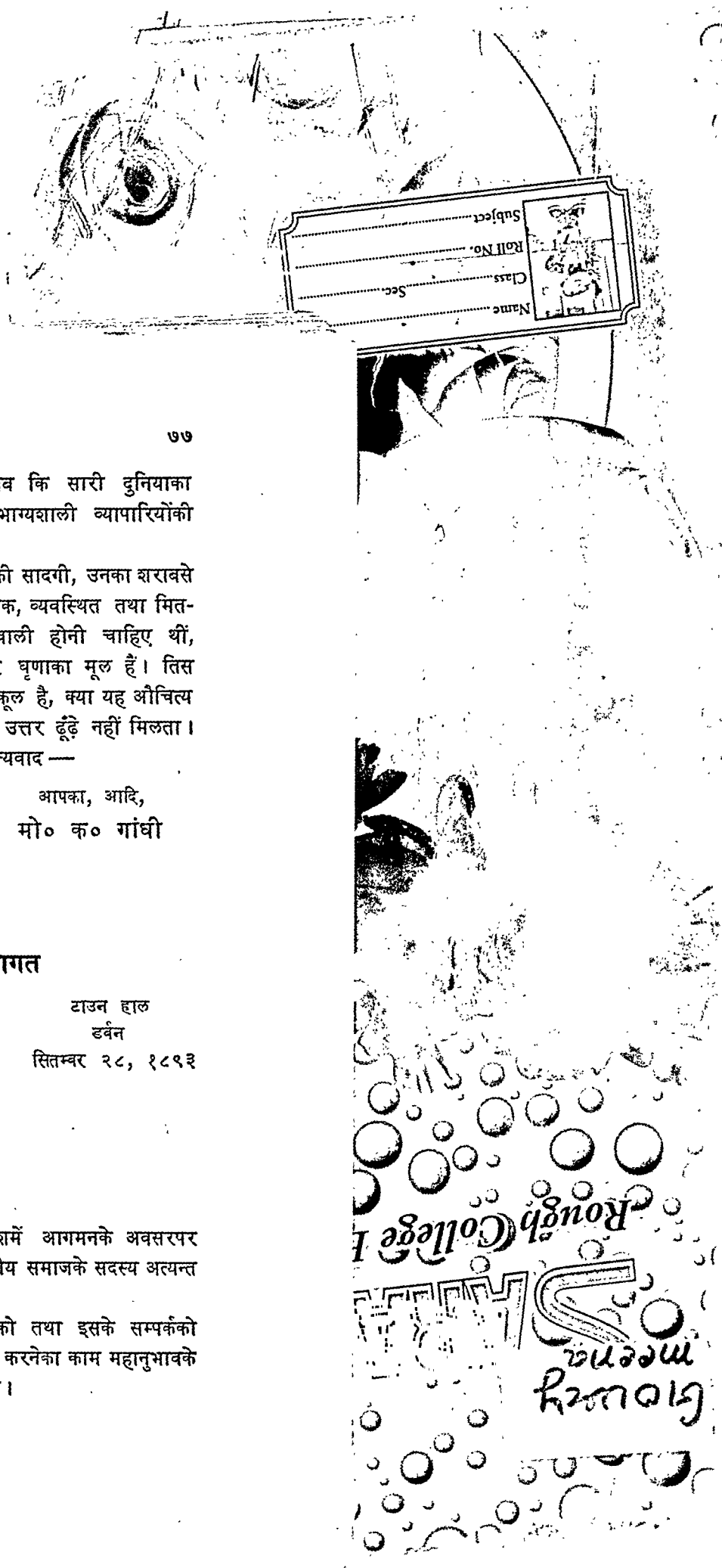
नेटालमें भारतीय प्रभाव अधिकाधिक फैल रहा है। उसके कारण यहाँके भारतीयोंके विशेष मामलोंपर महानुभावका ध्यान निरन्तर रहेगा ही। हम, महानुभावकी अनुमतिसे, पहलेसे ही महानुभावकी उदारताका आश्वासन ग्रहण करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि सम्राज्ञीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे महानुभाव हमारे साथ वह उदारता बरते बिना न रहेंगे।

हम कामना करते हैं कि महानुभावके और बेगम हेली-हचिन्सनके लिए इस उपनिवेशका वास समस्त सुख और समृद्धि देनेवाला हो!

आपके अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक,

दादा अब्दुल्ला, एम० सी० कमरुद्दीन, अमोद टिल्ली,
दाऊद मोहम्मद, अमोद जीवा, पारसी रुस्तमजी,
ए० सी० पिल्लै।

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ३०-९-१८९३

१९. भारतीयोंके मत

प्रिटोरिया
सितम्बर २९, १८९३

सेवामें
सम्पादक
नेटाल एडवर्टाइज़र

महोदय,

निवेदन है कि अपने पत्रमें निम्नलिखित शब्द प्रकाशित करनेकी कृपा करें:

आपने अपने १९ तारीखके अंकमें भावी एशियाई-विरोधी संघ (लीग) के लिए जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, उसका व्यापक उत्तर देना बहुत बड़ा काम है और उसे सम्पादकके नाम पत्रकी मर्यादामें निभाया नहीं जा सकता। फिर भी, मैं चाहता हूँ कि आपकी अनुमतिसे केवल दो मुद्दोंका उत्तर दे दिया जाये। वे मुद्दे हैं — यह भय कि "कुलियोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल जायेंगे", और यह मान्यता कि भारतीयोंमें मत देनेकी योग्यता नहीं है।

आरंभमें, मैं अनुरोध करूँगा कि आप अपनी सद्भावना और न्यायप्रियतासे, जो ब्रिटिश राष्ट्रका लाक्षणिक गुण मानी जाती है, काम लें। अगर आप और आपके पाठक प्रश्नके एक ही पहलूको देखनेका संकल्प कर बैठे तो मैं कितने भी तथ्य या तर्क पेश करूँ, आपको या उनको मेरी बातोंकी न्यायपूर्णताका विश्वास न होगा। सारे मामलेको सही रूपमें समझनेके लिए ठंडे दिलसे निर्णय करने और राग-द्वेषरहित तथा निष्पक्ष जाँच करनेकी अनिवार्य आवश्यकता है।

क्या यह खींच-तानकर बनाया हुआ खयाल नहीं मालूम होता कि किसी भी समय भारतीयोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल सकते हैं? सरसरी तौरपर देखनेवाला व्यक्ति भी जान सकता है कि यह कभी सम्भव नहीं है। मताधिकारके लिए आवश्यक सम्पत्तिकी योग्यता इतने भारतीयोंमें कभी भी नहीं हो सकती कि उनके मत यूरोपीयोंके मतोंसे अधिक हो जायें।

भारतीय लोग व्यापारियों और मजदूरोंके दो वर्गोंमें बँटे हुए हैं। मजदूरोंकी संख्या तुलनामें बहुत बड़ी है और साधारणतः उन्हें मताधिकार प्राप्त नहीं है। वे दरिद्रताके मारे हैं और भुखमरीकी मजदूरी पर नेटाल आये हैं। क्या वे मताधिकारकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए पर्याप्त सम्पत्ति रखनेका कभी स्वप्न भी देख सकते हैं? और अगर यहाँ कुछ भी स्थायी रूपसे रहनेवाले कोई भारतीय हैं, तो वे यही हैं। किसान वर्गके केवल थोड़े-से लोगोंको सम्पत्ति-सुलभ योग्यता प्राप्त है। परन्तु वे स्थायी रूपसे नेटालमें रहते नहीं। और जो लोग कानूनन मत देनेके अधिकारी हैं, उनमें बहुत-से उसकी कभी परवाह नहीं करते। वर्गगत रूपसे भारतीय अपने देशमें भी कभी अपने सब राजनीतिक अधिकारोंका लाभ नहीं उठाते। वे अपने आध्यात्मिक कल्याणके विचारोंमें इतने मग्न रहते हैं कि राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेका विचार ही नहीं कर सकते। उनमें कोई बहुत बड़ी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं होतीं। वे यहाँ राजनीतिज्ञ बनने नहीं, ईमानदारीके साथ अपनी रोटी कमाने आते हैं और अगर उनमें से कुछ लोग पूरी ईमानदारीके साथ उसे नहीं कमाते तो यह खेदकी बात है। तो फिर, इससे स्पष्ट है कि भारतीयोंके मतोंके अशुभ परिमाण ग्रहण कर लेनेकी सारी आशंकाका आधार गलत है।

और जिन थोड़े-से मतों पर भारतीयोंका अधिकार है वे नेटालकी राजनीतिको किसी भी रूपमें प्रभावित नहीं कर सकते। भारतीयोंके प्रतिनिधित्वकी चीख-पुकार करनेके लिए किसी एक भारतीय दलका संगठन करनेकी सारी चर्चा हवाई मालूम पड़ती है, क्योंकि चुनाव तो सदैव दो गोरे लोगोंके

बीच ही होगा। तो फिर, क्या भारतीयोंके कुछ मत होनेसे बहुत-कुछ बन-बिगड़ जायेगा? उन थोड़े-से मतोंसे ज्यादासे ज्यादा यह हो सकता है कि कोई पूर्ण श्वेत व्यक्ति चुनकर आ जाये जो, अगर अपने वचनके प्रति सच्चा रहे तो, विधानसभामें उनकी अच्छी सेवा करे। और जरा कल्पना तो कीजिए, ऐसे एक-दो सदस्योंके बने भारतीय दलकी!

वे, या यों कहिए कि, वह तो लोगोंका मत-परिवर्तन करनेकी विद्युत शक्ति या, शायद कहना अनुचित न होगा, दिव्य शक्तिसे रहित, अरण्यरोदन करनेवाला प्रत्यक्ष संत जान[1] ही होगा। शाही संसदमें विविध प्रकारके छोटे-छोटे हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले छोटे-छोटे किन्तु प्रबल दल भी बहुत कम असर डाल पाते हैं। वे कुछ प्रश्नोंसे प्रधानमन्त्रीको परेशान करके अगले दिनके पत्रोंमें अपने नाम छपनेका संतोष-भर जरूर मान सकते हैं।

फिर, आपका खयाल है कि भारतीय लोग मत देनेके लिए जितने चाहिए उतने सभ्य नहीं हैं; वे आदिवासियोंसे शायद बेहतर नहीं होंगे और, निश्चय ही, सभ्यताके मापदंडमें वे यूरोपीयोंके बराबर नहीं हैं। हो भी सकता है। और यह सब "सभ्यता" शब्दकी व्याख्यापर निर्भर करेगा। इस विषयकी जाँच करनेसे जो प्रश्न उठ सकते हैं उन सबकी पूर्ण चर्चा करना संभव नहीं है। फिर भी, मुझे यह कहनेकी इजाजत दी जाये कि भारतमें वे इन विशेषाधिकारोंका उपभोग करते हैं। रानीकी १८५८ की घोषणा — जिसे ठीक ही "भारतीयोंका मैग्नाकार्टा" कहा जाता है, इस प्रकार है:

> हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। और सर्वशक्तिमान परमात्माकी कृपासे हम उन दायित्वोंका सदसद्विवेक-बुद्धि और श्रद्धाके साथ निर्वाह करेंगे। और इसके अतिरिक्त हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें जाति और धर्मके भेदभावके बिना मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये।

मैं भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले इसी तरहके उद्धरण और भी पेश कर सकता हूँ। परन्तु मुझे लगता है कि मैं इतनेमें ही आपके सौजन्यका बहुत

१. बपतिस्मा देनेवाले संत जान।

अधिक उपयोग कर चुका हूँ। फिर भी मैं इतना तो कह दूँ कि कलकत्ता उच्च न्यायालयका स्थानापन्न प्रधान न्यायाधीश एक भारतीय रहा है; एक भारतीय इलाहाबादके उच्च न्यायालयका न्यायाधीश है, और यहाँके भारतीय व्यापारी सामान्यतः उसके सहधर्मी हैं। और एक भारतीय ब्रिटिश संसदका सदस्य है। इसके अलावा, ब्रिटिश सरकार अनेक दृष्टियोंसे महान अकबरके कदमों पर चलती है। अकबर बादशाह तो सोलहवीं शताब्दीमें हुआ था। वह एक भारतीय था। आजकी भूमि-नीति महान वित्त-विशारद टोडरमलकी नीतिका अनुकरण मात्र है। उसमें सिर्फ थोड़ा-सा फेरफार कर लिया गया है। वह टोडरमल भी भारतीय ही था। अगर यह सब सभ्यताका नहीं, बल्कि अर्ध-बर्बरताका परिणाम है, तो मुझे अभी जानना बाकी है कि सभ्यताका अर्थ क्या है?

अगर उपर्युक्त सब तथ्योंके होते हुए भी आप वैमनस्यको उत्तेजना दे सकते हैं, और समाजके यूरोपीय अंगको भारतीय अंगके विरुद्ध काम करनेके लिए भड़का सकते हैं, तो आप महान हैं।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइज़र, ३–१०–१८९३

२०. अन्नाहार-सम्बन्धी प्रचार-कार्य

श्री मो० क० गांधी प्रिटोरियासे एक खानगी पत्रमें लिखते हैं:

"दक्षिण आफ्रिकामें वनस्पति-आहार उत्पन्न करनेवाले बागवानोंके लिए बहुत अच्छा अवसर है। यहाँकी जमीन तो बहुत उपजाऊ है, मगर बागवानीकी बहुत उपेक्षा की गई है।

"मुझे यह बतानेमें खुशी है कि मैंने अपनी घर-मालकिनको, जो एक अंग्रेज महिला हैं, स्वयं अन्नाहारी बनने और अपने बच्चोंका पोषण भी अन्नाहार पर ही करनेके लिए राजी कर लिया है। भय इतना ही है कि वे फिसल जायेंगी। यहाँ ठीक तरहके शाक नहीं मिलते। जो भी मिलते हैं, बहुत महँगे हैं। फल भी बहुत महँगे हैं। यही हाल दूधका है। इसलिए उन महिलाको
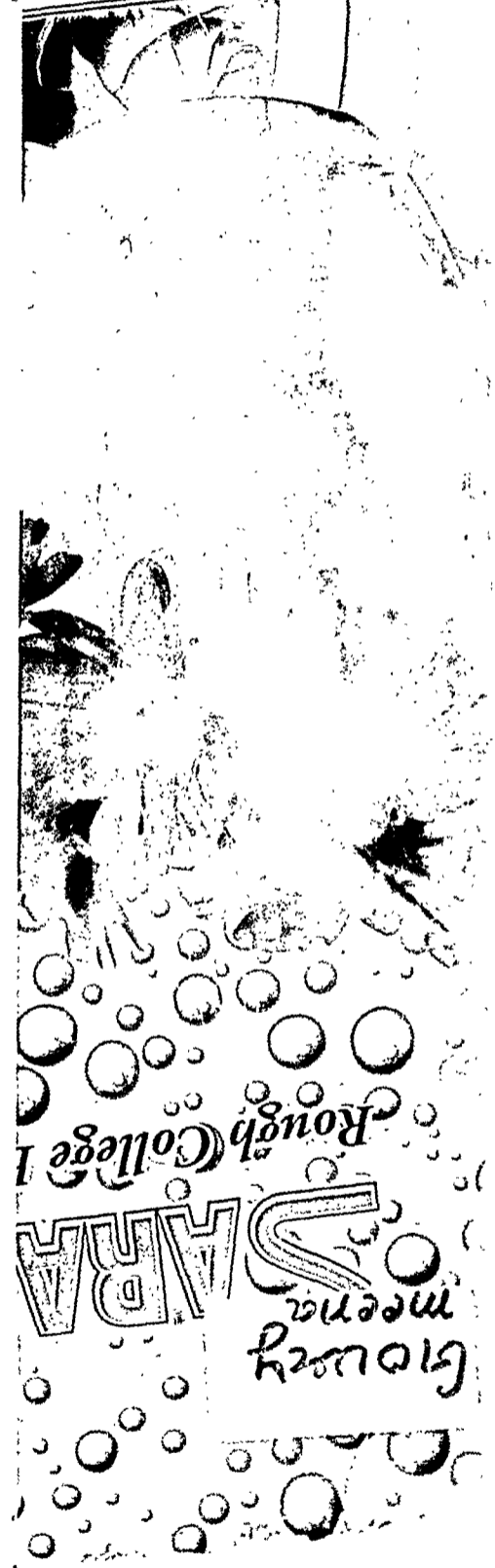
काफी विविध प्रकारकी चीजें देना बहुत कठिन होता है। अगर ज्यादा खर्चीला मालूम हुआ तो वे इसे जरूर छोड़ देंगी।

"प्राणयुक्त [जीवन-सत्त्वयुक्त] आहार[1]पर श्री हिल्सका लेख मैंने बहुत दिलचस्पीसे पढ़ा। मैं शीघ्र ही फिरसे उसका प्रयोग करनेका इरादा कर रहा हूँ। आपको याद होगा कि मैंने बम्बईमें उसका प्रयोग किया था। परन्तु वह इतने लम्बे वक्त तक नहीं चला था कि मैं उसपर कोई अभिप्राय दे सकूँ।

"कृपया सब मित्रोंको मेरी याद दिलाएँ।"

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ३०–९–१८९३

२१. प्राणयुक्त आहारका प्रयोग

इस प्रयोगका, अगर इसे प्रयोग कहा जा सके तो, वर्णन करनेके पहले मैं यह बता दूँ कि बम्बईमें भी मैंने एक सप्ताह तक प्राणयुक्त आहारका परीक्षण किया था। मैंने उसे सिर्फ इस कारणसे छोड़ा था कि उस समय मुझे अनेक मित्रोंका आतिथ्य करना पड़ता था। कुछ सामाजिक बातें भी थीं, जिनका खयाल करना जरूरी था। प्राणयुक्त आहार उस समय मुझे बहुत अनुकूल पड़ा था। अगर मैं उसे जारी रख सका होता तो बहुत संभव था कि वह आगे भी अनुकूल पड़ता।

जिस समय मैं यह दूसरा प्रयोग कर रहा था, मैंने कुछ टिप्पणियाँ लिख रखी थीं। उन्हें मैं यहाँ देता हूँ।

अगस्त २२, १८९३ — प्राणयुक्त आहारका प्रयोग शुरू किया। पिछले दो दिनोंसे मुझे सर्दी थी। कानोंमें भी थोड़ा-सा सर्दीका असर था। दो भोजनके

१. प्राणयुक्त आहारके सिद्धान्तका प्रचार पहले-पहल अन्नाहारी मंडलके अध्यक्ष श्री ए० एफ० हिल्सने फरवरी ४, १८८९ को मंडलकी पहली त्रैमासिक बैठकमें किया था। उन्होंने प्राणशक्ति, शारीरिक स्फूर्ति, सूर्यकी किरणों आदिके महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तका विस्तारके साथ प्रतिपादन किया। ये सब निम्नलिखित खाद्य पदार्थोंमें उपलब्ध हैं: फल, अनाज, कच्चे मेवे और दालें — सब कच्चे। हिल्स: "द फूड डाएट आफ वेजेटेरियन्स।" गांधीजीके "प्राणयुक्त आहार-सम्बन्धी प्रयोगों"के लिए आगेका लेख पढ़िए।

चम्मच (टेवल स्पून) भर गेहूँ, एक चम्मच मटर, एक चम्मच चावल, दो चम्मच किशमिश, करीब बीस छोटे कवची मेवे, दो संतरे और एक प्याला कोकोका नाश्ता किया। अनाजको रात-भर भिगोकर रखा था। भोजन ४५ मिनटमें समाप्त किया। सुवह वहुत स्फूर्ति रही, शामको सुस्ती आ गई। सिरमें थोड़ा-सा दर्द भी हुआ। शामको रोटी, शाक आदिका साधारण भोजन किया।

अगस्त २३ — भूख मालूम होती है। कल शामको कुछ मटर खाये थे। उसके कारण मैं अच्छी तरह सोया नहीं। सुवह जागने पर मुँहका स्वाद खराब था। कलके ही जैसा नाश्ता और व्यालू की। यद्यपि वदलीका उदासी भरा दिन था और कुछ पानी भी वरस गया था, मुझे जुकाम या सिर दर्द नहीं था। वेकर[1]के साथ चाय पी थी। यह विलकुल माफिक नहीं पड़ी। पेटमें दर्द मालूम हुआ।

अगस्त २४ — सुवह उठा तो पेट भारी था और वेचैनी महसूस होती थी। वही नाश्ता किया। सिर्फ मटर एक चम्मचसे आधा चम्मच घटा दिये थे। व्यालू साधारण। स्वस्थ नहीं रहा। सारे दिन वदहजमी महसूस करता रहा।

अगस्त २५ — उठने पर पेटमें भारीपन था। दिनमें भी अस्वस्थ रहा। व्यालूके लिए भूख नहीं थी। फिर भी व्यालू की। कल व्यालूमें अधपके मटर खाये थे। हो सकता है भारीपन इसी कारण रहा हो। दुपहरके वाद सिरमें दर्द रहा। व्यालूके वाद थोड़ी-सी कुनैन ली। नाश्ता कलके ही समान।

अगस्त २६ — पेटमें भारीपनके साथ जागा। नाश्तेमें मैंने आधा भोजनका चम्मच भर मटर, आधा चम्मच चावल, आधा चम्मच गेहूँ, ढाई चम्मच किशमिश, १० अखरोट और एक संतरा लिया। सारे दिन मुँहका स्वाद अच्छा नहीं रहा। स्वस्थ भी नहीं रहा। साधारण व्यालू की। ७ वजे शामको एक संतरा और एक प्याला कोको ली। इस समय (८ वजे रातको) भूख मालूम हो रही है, फिर भी खानेकी इच्छा नहीं है। प्राणयुक्त आहार भली-भाँति अनुकूल पड़ता नहीं दिखता।

१. एक मित्र, श्री ए० डवल्यू० वेकर, अटर्नी तथा धर्मोपदेशक, जिन्होंने गांधीजीके साथ ईसाई धर्म पर विचार-विमर्श किया था और उनका प्रिटोरियाके ईसाई मित्रोंसे परिचय कराया था।

अगस्त २७ — सुबह जब उठा तो भूख बहुत थी, मगर स्वस्थ नहीं महसूस करता था। नाश्तेमें भोजनके चम्मचसे डेढ़ चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, दस अखरोट, और एक संतरा लिया। (ध्यान रहे, चावल और मटर नहीं लिया)। दुपहरके बाद अच्छा लगा। कलके भारीपनका कारण शायद मटर और चावल था। १ बजे दुपहरको एक चायका चम्मच सूखे गेहूँ, एक भोजनका चम्मच किशमिश और १४ कवची मेवे लिये। (इस तरह साधारण व्यालूको प्राणयुक्त आहारमें बदल दिया)। कुमारी हैरिसके स्थानपर चाय (रोटी, मक्खन, मुरब्बा और कोको) पी। यह चाय मुझे बहुत अच्छी लगी, मानो मैं एक लम्बे उपवासके बाद रोटी और मक्खन खा रहा था। चायके बाद बहुत भूख और कमजोरी मालूम हुई। इसलिए घर लौटनेपर एक प्याला कोको और एक संतरा लिया।

अगस्त २८ — सुबह मुँहका स्वाद अच्छा नहीं था। डेढ़ भोजनके चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, बीस कवची मेवे, एक संतरा और एक प्याला कोको ली। कमजोरी और भूख तो महसूस होती रही, मगर इसके अलावा अच्छा लगता रहा। मुँहका स्वाद भी ठीक था।

अगस्त २९ — सुबह उठने पर ताजगी थी। नाश्तेमें डेढ़ भोजनके चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, एक संतरा और बीस कवची मेवे लिये। व्यालूमें तीन भोजनके चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, २० कवची मेवे और दो संतरे लिये। शामको तैयबके यहाँ चावल, सेवँई और आलू खाये थे। शामको कमजोरी मालूम हुई।

अगस्त ३० — नाश्तेमें दो भोजनके चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, २० अखरोट और एक संतरा लिया। व्यालूमें भी यही चीजें लीं, सिर्फ एक संतरा ज्यादा था। बहुत कमजोरी महसूस हुई। बिना थके साधारण सैर नहीं कर सका।

अगस्त ३१ — सुबह जब उठा तो मुँहका स्वाद बहुत मीठा था। बहुत कमजोरी मालूम होती थी। नाश्ते और व्यालूमें भोजनकी वही मात्रा ली। शामको एक प्याला कोको और एक संतरा लिया था। सारे दिन बहुत कमजोरी महसूस होती रही। बहुत कठिनाईसे सैर कर सकता हूँ। दाँत भी कमजोर हो रहे हैं। मुँहका स्वाद बहुत ज्यादा मीठा है।

सितम्बर १ — सुबह उठा तो बिलकुल थका हुआ था। कलके ही समान नाश्ता और व्यालूकी। बहुत कमजोरी मालूम होती है। दाँत दुखते हैं।

प्रयोग छोड़ देना होगा। वेकरका जन्मदिन था, इसलिए उसके साथ चाय पी। चायके वाद अच्छा लगा।

सितम्बर ९ — सुवह ताजगी लिये उठा (कल शामकी चायका असर)। पुराना खाना खाया (दलिया, रोटी, मक्खन, मुरब्वा और कोको)। वहुत ही अच्छा महसूस किया।

इस तरह प्राणयुक्त आहारका प्रयोग समाप्त हुआ।

अधिक अनुकूल परिस्थितियोंमें शायद यह असफल न हुआ होता। किसी भोजनालयमें, जहाँ हर वात अपने वशकी नहीं होती, जहाँ आहारमें वार-वार फर्क करना संभव नहीं होता, आहार-सम्बन्धी प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं किये जा सकते। इसके अलावा, ताजे फलोंमें मैं सिर्फ संतरे पा सकता था। उस समय ट्रान्सवालमें और कोई फल नहीं मिलते थे।

यह तो बड़े अफसोसकी वात है कि यद्यपि ट्रान्सवालकी भूमि वहुत उप-जाऊ है, फिर भी उसमें फलोंकी उपजकी ओर वहुत उपेक्षा वरती गई है। फिर, मुझे दूध तो मिल ही नहीं सका। वह यहाँ वहुत महँगा है। दक्षिण आफ्रिकामें आम तौरपर लोग डिब्बेके दूधका उपयोग करते हैं। इसलिए यह तो मानना ही होगा कि प्राणयुक्त आहारका महत्त्व सिद्ध करनेकी दृष्टिसे यह प्रयोग विलकुल निकम्मा है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ११ दिनके प्रयोगके वाद प्राणयुक्त आहारके वारेमें कोई अभिप्राय देने वैठना दुराग्रहमात्र होगा। वीस वर्ष और उससे ज्यादासे पके हुए भोजनके अभ्यस्त पेटसे यह अपेक्षा करना वहुत अधिक है कि वह एकाएक कच्चा भोजन हजम कर ले। और फिर भी, मैं समझता हूँ, इस प्रयोगका अपना महत्त्व तो है ही। यह उन लोगोंके लिए एक मार्गदर्शक जैसा हो सकता है, जो इन प्रयोगोंके कुछ आकर्षणोंमें आकर ऐसे प्रयोग करने बैठ जायें, परन्तु जिनके पास प्रयोगोंको सफल करनेके लिए न तो सामर्थ्य हो, न साधन, न अनुकूल परिस्थितियाँ, न धैर्य और न आवश्यक ज्ञान ही। मैं मंजूर करता हूँ कि मुझमें उपर्युक्त योग्यताओंमें से कोई भी नहीं थी। स्पष्ट है कि नतीजे धीरे-धीरे होते देखनेका धैर्य न होनेके कारण मैंने अपना आहार वदल दिया। नाश्ता तो शुरूसे ही प्राणयुक्त पदार्थोंका था, और मुश्किलसे चार-पाँच दिन वीते होंगे कि व्यालू भी उन्हीं वस्तुओंकी होने लगी। सचमुच प्राणयुक्त आहारके सिद्धान्तोंका मेरा ज्ञान वहुत छिछला था। श्री हिल्सकी एक छोटी-सी पुस्तक और *वेजिटेरियन*में हालमें प्रकाशित उनके एक-दो लेख ही मेरे तत्सम्बन्धी ज्ञानका आधार थे। इसलिए, मेरा

विश्वास है, आवश्यक तैयारी और योग्यता न रखनेवाला कोई भी व्यक्ति असफल होने ही वाला है। वह खुद नुकसान उठायेगा और जिस हेतुको परखने और आगे बढ़ानेका प्रयत्न कर रहा है, उसको भी नुकसान पहुँचायेगा।

और, आखिरकार, क्या एक साधारण अन्नाहारीके — ऐसे अन्नाहारीके, जो अपने आहारसे संतुष्ट है — इस तरहके प्रयोगोंमें पड़नेसे कोई लाभ है? क्या यह अच्छा न होगा कि इसे उन विशेषज्ञोंके लिए छोड़ दिया जाये जो इस तरहकी गवेषणाओंमें अपना जीवन लगाते हैं? यह बात खास तौरसे उन अन्नाहारियों पर लागू होती है, जिनका अन्नाहार-धर्म भूतदयाके महान तत्त्व पर आधारित है — जो इसलिए अन्नाहारी हैं कि वे अपने भोजनके लिए प्राणियोंका वध करना गलत ही नहीं, पापमय समझते हैं। साधारण अन्नाहार संभव है, स्वास्थ्यप्रद है — यह तो सरसरी तौरपर देखनेवाले भी जान सकते हैं। फिर, हम ज्यादा क्या चाहते हैं? प्राणयुक्त आहारमें भारी सामर्थ्य हो सकता है, परन्तु वह हमारे नाशवान शरीरोंको अमर तो नहीं बना देगा। यह संभव नहीं दीखता कि मनुष्य किसी बहुत बड़ी बहुसंख्यामें कभी भी भोजन पकानेकी क्रिया त्याग देंगे। केवल प्राणयुक्त आहार आत्माकी जरूरतोंको पूर्ण नहीं करेगा, नहीं कर सकता। और अगर इस जीवनका सबसे ऊँचा उद्देश्य — सचमुच तो, एकमात्र उद्देश्य — आत्माको जानना हो, तो मेरा नम्र निवेदन है कि जिस बातसे हमारे आत्माको जाननेके अवसर कम होते हैं, वह उस हदतक हमारे जीवनके एकमात्र वांछनीय उद्देश्यके साथ खिलवाड़ है। इसलिए, प्राणयुक्त आहारोंके और वैसे ही दूसरे प्रयोगोंके साथ खिलवाड़ करना भी इसी तरहकी बात है।

अगर हमें इसलिए भोजन करना है कि हम जिस परमात्माके हैं उसकी शानके मुताबिक जी सकें, तो क्या यह काफी नहीं है कि हम ऐसी कोई वस्तु न खायें, जो प्रकृतिके प्रतिकूल है, और जिसके लिए अनावश्यक खून बहाना जरूरी होता है? परन्तु अभी मैं इस विषयके अध्ययनकी प्राथमिक अवस्थामें ही हूँ, इसलिए अधिक नहीं कहूँगा। मैं सिर्फ इन विचारोंको, जो मेरे प्रयोगके समय मनमें उठा करते थे, सामने रख रहा हूँ। हो सकता है कि संयोगवश किसी प्यारे भाई या बहनको इनमें अपने निजी विचारोंकी गूँज मिल जाये।

जिस कारणसे मैं प्राणयुक्त आहारका प्रयोग करनेको आकृष्ट हुआ था, वह था — उसका परले दर्जेका सादापन। मैं खाना पकानेके कामको खत्म

कर सकता हूँ, मैं जहाँ-कहीं भी जाऊँ अपना भोजन अपने साथ ले जा सकता हूँ, मुझे घर-मालकिनकी या जो भी मुझे भोजन देते हैं, उनकी गन्दगी बरदाश्त नहीं करनी होगी, दक्षिण आफ्रिका-जैसे देशमें यात्रा करनेमें प्राणयुक्त आहार आदर्श आहार होगा — ये सब आकर्षण मेरे लिए इतने प्रबल थे कि मैं इनका प्रतिरोध नहीं कर सकता था। परन्तु, आखिरकार जो एक स्वार्थ ही है और जो परम लक्ष्यसे ओछा है, उसे सिद्ध करनेके लिए समयका कितना बलिदान! और कितना कष्ट! इन सब चीजोंके लिए जीवन बहुत छोटा मालूम पड़ता है।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २४-३-१८९४

२२. इंग्लैंडवासी भारतीयोंके नाम

श्री मो० क० गांधीने इंग्लैंडके भारतीयोंको निम्नलिखित परिपत्र भेजा है। हम इसे यह बतानेके लिए उद्धृत कर रहे हैं कि श्री गांधी, एक लम्बे फासलेके बावजूद, जो उनको हमसे जुदा किये हुए है, हमारे बीच अब भी कैसी सरगर्मीसे काम कर रहे हैं। तिसपर भी, हमारे विरोधियोंका कहना है कि अन्नाहारी भारतीयोंमें "ईमानदार ब्रिटिश राष्ट्र" के पुत्रोंके जैसा अपने लक्ष्यसे चिपटे रहनेका गुण नहीं होता! —सम्पादक, *वेजिटेरियन*।

[प्रिटोरिया]

सेवामें
सम्पादक
वेजिटेरियन

मेरे प्रिय भाई,

अगर आप अन्नाहारी हैं, तो मैं समझता हूँ कि लंदन अन्नाहारी मंडल (लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी) के सदस्य बन जाना आपका कर्तव्य है। और अगर आप अभी तक *वेजिटेरियन*के ग्राहक न बने हों तो वह भी बन जाना चाहिए।

यह आपका कर्तव्य है, क्योंकि —

(१) आप जिस मतका पुरस्कार करते हैं उसे इसके द्वारा प्रोत्साहन और सहायता मिलेगी।

(२) एक ऐसे देशमें, जहाँ अन्नाहारियोंकी संख्या बहुत कम है, उनके बीच परस्पर सहानुभूतिका जो सम्बन्ध होना चाहिए, उसकी इससे अभिव्यक्ति होगी।

(३) अंग्रेज अन्नाहारी भारतीयोंकी आकांक्षाओंके साथ सहानुभूति रखनेमें अधिक तत्पर रहेंगे (यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है)। इस प्रकार अन्नाहार-आन्दोलनसे अप्रत्यक्ष रूपमें भारतको राजनीतिक सहायता मिलेगी।

(४) केवल शुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे देखा जाये तो भी, इसके द्वारा आपको अन्नाहारी मित्रोंका एक भारी संघ मिल जायेगा। ये मित्र तो दूसरोंकी अपेक्षा अधिक अपनाने योग्य होने चाहिए।

(५) अन्नाहारी साहित्यके ज्ञानसे आप एक ऐसे देशमें अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रह सकेंगे, जहाँ प्रलोभन बहुत हैं और बहुत अधिक मामलोंमें दुर्निवार सिद्ध हो चुके हैं। बीमार होनेपर आपको निरामिष औषधियों और अन्नाहारी डाक्टरोंकी मदद भी मिल सकेगी। मंडलके सदस्य और *वेजिटेरियन* पत्रके ग्राहक बननेसे आप इनकी जानकारी बहुत आसानीसे पा सकेंगे।

(६) भारतमें आपके भाइयोंको इससे बहुत सहायता मिलेगी। निरामिष भोजनसे निर्वाह हो सकता है, इस सम्बन्धमें हमारे माता-पिताओंकी शंका मिटानेका भी यह एक साधन होगा। इस प्रकार दूसरे भारतीयोंके इंग्लैंड आनेका मार्ग बहुत सरल हो जायेगा।

(७) अगर भारतीय ग्राहकोंकी संख्या काफी हो तो *वेजिटेरियन*के सम्पादकको एक पृष्ठ या एक स्तम्भ भारतीय मामलोंके लिए सुरक्षित कर देनेको राजी किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप, आप मानेंगे, भारतको लाभ पहुँचे बिना नहीं रह सकता।

और भी अनेक कारण बताये जा सकते हैं कि क्यों आपको मंडलके सदस्य और *वेजिटेरियन*के ग्राहक बनना चाहिए। परन्तु मेरा खयाल है कि मेरे प्रस्ताव पर आप अनुकूल विचार करें, इसके लिए इतने ही कारण काफी होंगे।

अगर आप अन्नाहारी न हों तो भी देखेंगे कि उपर्युक्त कारणोंमें से अनेक आप पर भी लागू होते हैं, और आप *वेजिटेरियन*के ग्राहक बन सकते हैं। और कौन जानता है कि आगे चलकर आप उन लोगोंकी कतारमें शामिल होनेको एक विशेषाधिकार न समझने लगेंगे, जो अपने अस्तित्वके लिए सहजीवी पशुओंके रक्त पर कभी अवलम्बित नहीं रहते?

हाँ, मैंचेस्टर वेजिटेरियन सोसाइटी और उसका मुखपत्र *वेजिटेरियन मेसेंजर* भी है ही। मैंने लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी और उसके मुखपत्रकी हिमायत तो सिर्फ इसलिए की है कि वह लंदनमें होनेके कारण बहुत नजदीक पड़ता है। और इसलिए भी कि उसका पत्र साप्ताहिक है।

मुझे भरोसा है कि कमखर्चीके खयालको आप सोसाइटीके सदस्य होने और पत्रके ग्राहक बननेके आड़े नहीं आने देंगे; क्योंकि ग्राहक-चन्दा बहुत कम है, और वह निश्चय ही आपको आपके रुपयेसे ज्यादाका लाभ पहुँचा देगा।

आशा है कि आप इसे मेरी धृष्टता नहीं समझेंगे।

आपका स्नेही भाई,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, २८-४-१८९४

२३. अन्नाहार और बच्चे

श्री मो० क० गांधी एक खानगी पत्रमें लिखते हैं :

"हालमें ही वेलिंगटनमें पादरी एंड्रयू मरेकी अध्यक्षतामें केसविक ईसाइयोंका एक विराट सम्मेलन हुआ था। मैं कुछ प्यारे ईसाइयोंके साथ उसमें गया था। उनका ६-७ वर्षका एक लड़का है। उस दौरानमें एक दिन वह मेरे साथ घूमनेके लिए गया। मैं उससे सिर्फ प्राणियोंके प्रति दयाभावकी बात कर रहा था। बातचीतमें अन्नाहारकी भी चर्चा चली थी। मुझे मालूम हुआ कि तबसे उस लड़केने मांस नहीं खाया। यह बातचीत होनेके पहले उसने मुझे भोजनकी मेज पर केवल शाकाहार करते जरूर देखा था और मुझसे पूछा था कि आप मांस क्यों नहीं खाते। उसके माता-पिता स्वयं तो अन्नाहारी नहीं हैं, परन्तु अन्नाहारके गुणोंको माननेवाले हैं। उन्हें इसके सम्बन्धमें अपने लड़केसे मेरे बातचीत करनेपर कोई आपत्ति नहीं थी।

"यह मैं आपको यह बतानेके लिए लिख रहा हूँ कि हम कितनी आसानीसे बच्चोंको यह महान सत्य समझाकर उनसे मांसाहार छुड़वा सकते हैं। हाँ, शर्त यह है कि माता-पिता इस परिवर्तनके विरोधी न हों। वह बच्चा और मैं अब गहरे दोस्त बन गये हैं। मालूम होता है कि वह मुझे बहुत चाहता है।

"लगभग पन्द्रह वर्षकी उम्रके एक अन्य लड़केके साथ मैं बात कर रहा था। उसने कहा कि वह स्वयं तो मुर्गीको नहीं मार सकता, न उसे मारे जाते देख सकता है; परन्तु उसे खानेमें उसको कोई आपत्ति नहीं है।"

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ५-५-१८९४

२४. धर्म-सम्बन्धी प्रश्नावली

[जून, १८९४के पूर्व]

गांधीजीके हृदयमें श्री राजचन्द्र रावजीभाई मेहता या रायचन्दभाईके लिए बहुत आदर था। श्री राजचन्द्र एक जैन विचारक थे। उनके विषयमें गांधीजीने अपनी आत्मकथामें एक पूरा अध्याय लिखा है (भाग दूसरा, अध्याय १)। उन्होंने प्रिटोरियासे जून, १८९४के पहले राजचन्द्रजीको एक पत्र लिखकर कुछ प्रश्न पूछे थे। मूलपत्र हमें नहीं मिल सका। इसलिए राजचन्द्रजीके भाई श्री मनसुखलाल रावजीभाई मेहता द्वारा सम्पादित गुजराती पुस्तक *श्रीमद् राजचन्द्र* (संस्करण १९१४, पृ० २९२ और आगे) में प्रकाशित रायचन्दभाईके उत्तरोंसे उन प्रश्नोंका अनुवाद करके यहाँ दिया जा रहा है। मूल गुजरातीसे मालूम होता है कि गांधीजीने कुछ और प्रश्न भी पूछे थे। परन्तु उन्हें छोड़ दिया गया था। इसलिए उनकी प्रति उपलब्ध नहीं है।

आत्मा क्या है? वह कुछ करता है? उसपर कर्मका प्रभाव पड़ता है या नहीं?

ईश्वर क्या है? वह जगत्कर्ता है, यह सही है?

मोक्ष क्या है?

"मोक्ष मिलेगा या नहीं" — क्या यह इसी देहमें रहते हुए ठीक तरहसे जाना जा सकता है?

पढ़नेमें आया है कि मनुष्य, देह छोड़नेके बाद, कर्मके अनुसार जानवरोंमें अवतरित हो सकता है, पेड़ या पत्थर भी बन सकता है। यह सही है?

आर्यधर्म क्या है? क्या सब भारतीय धर्मोंकी उत्पत्ति वेदोंसे ही हुई है?

वेद किसने रचे? वे अनादि हैं? यदि ऐसा हो तो अनादिका अर्थ क्या है?

गीता किसने रची? ईश्वरकृत तो नहीं है? यदि ऐसा हो तो इसका कोई प्रमाण?

पशु आदिके यज्ञसे जरा भी पुण्य होता है?

कोई धर्म उत्तम है, ऐसा कहा जाये तो इसका प्रमाण माँगा जा सकता है?

ईसाई धर्मके विषयमें आप कुछ जानते हैं? यदि जानते हों तो अपने विचार बतायेंगे?

ईसाई कहते हैं, बाइबिल ईश्वर-प्रेरित है; ईसा ईश्वरका अवतार, उसका बेटा था। ऐसा था?

जूने करार (ओल्ड टेस्टामेंट) में जो भविष्य कहा गया है, वह सब ईसामें सही उतरा है?

आगे कौन-सा जन्म होगा, इसका ज्ञान इस जन्ममें हो सकता है? अथवा पिछला जन्म क्या था, इसका?

हो सकता है तो किसको?

आपने मोक्ष पाये हुए लोगोंके नाम बताये हैं, सो किस आधार पर?

आप किस आधार पर कहते हैं कि बुद्धदेव तकने मोक्ष नहीं पाया?

अन्तमें दुनियाकी क्या स्थिति होगी?

यह अनीति मिटकर सुनीति स्थापित होगी?

दुनियाका प्रलय है?

अपढ़को भक्तिसे ही मोक्ष मिल जाता है — सही है क्या?

कृष्णावतार और रामावतार — यह सच बात है? ऐसा हो तो इसका क्या अर्थ है? वे साक्षात् ईश्वर थे या उसके अंश थे? उनको माननेसे सचमुच मोक्ष मिल सकता है?

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कौन हैं?

मुझे साँप काटने आये तो उसे काटने दूँ या मार डालूँ? उसे दूसरे तरीकेसे दूर करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, ऐसा मान लेता हूँ।

२५. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभा[1]को

डर्बन
जून २८, १८९४

सेवामें
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
विधानसभा, नेटाल उपनिवेश

नेटाल उपनिवेशवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

(१) प्रार्थी ब्रिटिश प्रजा हैं, जो भारतसे आकर इस उपनिवेशमें बसे हैं।

(२) प्रार्थियोंमें से अनेकके नाम मतदाताओंके रूपमें दर्ज हैं। उन्हें आपकी परिषद और सभाके चुनावोंमें मत देनेका बाकायदा हक है।

(३) मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके दूसरे वाचनका जो विवरण अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है उसे प्रार्थियोंने सच्चे खेद और भयके साथ पढ़ा है।

(४) आपके माननीय सदनके प्रति अधिकसे अधिक आदर रखते हुए भी प्रार्थी विभिन्न वक्ताओं द्वारा प्रकट किये गये विचारोंसे पूर्ण मतभेद व्यक्त करते हैं। प्रार्थी कहनेके लिए लाचार हैं कि जिन कारणोंसे इस दुर्भाग्यपूर्ण विधेयकको स्वीकार करना उचित बताया गया है, उनका सच्ची परिस्थितियोंसे समर्थन नहीं होता।

(५) समाचारपत्रोंके अनुसार, विधेयकके समर्थनमें जो कारण दिये गये हैं वे, प्रार्थियोंको मालूम हुआ है, ये हैं :

(क) भारतीयोंने अपने देशमें मताधिकारका प्रयोग कभी नहीं किया।

(ख) वे मताधिकारके प्रयोगके लिए योग्य नहीं हैं।

(६) प्रार्थी आदरपूर्वक माननीय सदस्योंकी नजरमें ला देना चाहते हैं कि इतिहास और सारी वस्तुस्थितियाँ विपरीत दिशाकी ओर इंगित करनेवाली हैं।

१. पहले यह प्रार्थनापत्र विधानपरिषद और विधानसभा दोनोंके नाम लिखा गया था। बादमें संशोधन करके इसे केवल विधानसभाके नाम कर दिया गया। परिषदको एक अलग प्रार्थनापत्र दिया गया था, जो पृष्ठ १०४ पर दिया जा रहा है।

(७) ऐंग्लो-सैक्सन जातियोंको प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तोंका जब ज्ञान हुआ उसके बहुत पहलेसे भारत-राष्ट्र चुनावके अधिकारोंसे परिचित रहा है और उनका प्रयोग करता आ रहा है।

(८) उपर्युक्त कथनके समर्थनमें प्रार्थी आपकी सम्माननीय परिषद और सभाका ध्यान सर हेनरी समर मेनकी पुस्तक *विलेज कम्यूनिटीज़*की ओर आकर्षित करते हैं। उसमें अत्यन्त स्पष्टताके साथ बताया गया है कि भारतीय जातियाँ लगभग स्मरणातीत कालसे प्रातिनिधिक संस्थाओंके सिद्धान्तोंसे परिचित रही हैं। उस महान कानून-विशारद और लेखकने बताया है कि *ट्यूटानिक मार्क*[1]पर जबतक शुद्ध शास्त्रीय रोमन स्वरूपकी कलम नहीं लगा दी गई, तबतक वह उतना सुसंगठित या तात्त्विक रूपमें उतना प्रातिनिधिक नहीं था, जितनी कि भारतीय ग्राम-पंचायतें थीं।

(९) श्री चिज़ोम ऐन्स्टीने लंदनमें ईस्ट इंडियन असोसिएशनके सामने भाषण करते हुए कहा था :

> **जब हम पूर्वके लोगोंको शिक्षा और इसी तरहकी तमाम चीजोंसे म्यूनिसिपल शासन और संसदीय शासनके लिए तैयार करनेकी बातें करते हैं, तब कहीं हम भूल न जायें कि पूर्व ही म्यूनिसिपल-प्रणालीका जनक है। स्थानिक स्वराज्य — शब्दके व्यापकतम अर्थमें — उतना ही पुराना है, जितना कि स्वयं पूर्व। जिसे हम पूर्व कहते हैं उसमें रहनेवाले लोगोंका धर्म कोई भी हो, उस देशमें उत्तरसे दक्षिण तक और पूर्वसे पश्चिम तक एक हिस्सा भी ऐसा नहीं है, जो म्यूनिसिपैलिटियोंसे छाया न हो। इतना ही नहीं, हमारी प्राचीन कालकी म्यूनिसिपैलिटियोंके समान, वे सब आपसमें ऐसी आबद्ध हैं, मानो किसी जालमें गुँथी हुई हों। इस तरह, प्रतिनिधित्वकी उस महान प्रणालीका ढाँचा आपको तैयार मिला है।**

प्रत्येक गाँव या कस्बेमें हर जातिके अपने नियम और व्यवस्थाएँ हैं। वे अपने-अपने प्रतिनिधियोंका चुनाव करती हैं। और वे ऐंग्लो-सैक्सनोंके

१. बहुत प्राचीन कालमें जर्मनीमें गाँवकी जमीनका मालिक उस गाँवका सारा समाज होता था। उसकी व्यवस्था भी संयुक्त होती थी। यह प्रथा संशोधित रूपमें मध्यकाल तक जारी रही। शाब्दिक अर्थमें, गाँवके ऐसे क्षेत्रको "ट्यूटानिक मार्क" कहा जाता था। स्पष्ट है कि उसमें प्रारंभिक रूपका प्रातिनिधिक तत्त्व सन्निविष्ट था।

पाइटन'का, जिनसे वर्तमान संसदीय संस्थाओंका विकास हुआ है, हू-ब-हू नमूना हैं।

(१०) *पंचायत* शब्द भारतके कोने-कोनेमें प्रचलित सामान्य शब्द है। और, जैसा कि माननीय सदस्यगण जानते होंगे, उसका अर्थ है पाँच लोगोंकी सभा, जिसका चुनाव इन पाँच व्यक्तियोंकी जाति ही अपने सामाजिक कामकी व्यवस्था और नियंत्रणके लिए करती है।

(११) मैसूर राज्यमें इस समय एक प्रातिनिधिक संसद मौजूद है। वह ठीक ब्रिटिश संसदके नमूनेकी है और उसे मैसूर विधानसभा कहा जाता है।

(१२) डर्बनमें इस समय जो व्यापार करनेवाले भारतीय हैं उनकी भी अपनी पंचायत या पाँच लोगोंकी सभा मौजूद है। बहुत बड़े महत्त्वकी बातोंमें सारा समाज उनके विचार-विमर्शका नियंत्रण करता है। सभाके संविधानके अनुसार, सारा समाज पर्याप्त बहुमतसे उसके निर्णयोंको बदल सकता है। प्रार्थियोंका निवेदन है कि प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें उनकी योग्यताओंका यह प्रमाण मौजूद है ही।

(१३) सच तो यह है कि सम्राज्ञीकी सरकारने प्रातिनिधिक संस्थाओंको समझनेकी भारतीयोंकी योग्यता इस हद तक मान्य कर ली है कि भारत, शब्दके सच्चेसे सच्चे अर्थमें, म्यूनिसिपल स्थानिक स्वराज्यका उपभोग कर रहा है।

(१४) १८९१ में भारतमें ७५५ म्यूनिसिपल कमेटियाँ [नगरपालिकाएँ] और ८९२ लोकल बोर्ड [जनपद सभाएँ] थे। उनमें २०,००० भारतीय सदस्य थे। इससे म्यूनिसिपैलिटियों और उनके निर्वाचक-मंडलोंके विस्तारकी कुछ कल्पना हो सकेगी।

(१५) अगर इस विषयमें अधिक प्रमाणकी जरूरत हो तो प्रार्थी माननीय सदस्योंका ध्यान हालमें ही स्वीकृत हुए भारतीय परिषद विधेयक (इंडिया कौंसिल बिल)की ओर आकृष्ट करते हैं। उसके द्वारा भारतके विभिन्न प्रदेशोंकी विधानपरिषदोंमें भी प्रतिनिधि-प्रणाली दाखिल कर दी गई है।

(१६) इसलिए, प्रार्थियोंको विश्वास है, उनका मताधिकारका प्रयोग करना किसी ऐसे नये विशेषाधिकारका दिया जाना नहीं है, जिसे वे पहले कभी जानते ही न रहे हों, या जिसका उपभोग उन्होंने पहले कभी किया ही न

१. ऐंग्लो-सैक्सन कालकी राष्ट्रीय परिषद।

हो। इसके उलटे, उन्हें उसका प्रयोग करनेके अयोग्य ठहराना एक अन्याय-पूर्ण प्रतिबन्ध होगा, जो ऐसी ही परिस्थितियोंमें उनकी मातृभूमिमें कभी नहीं लगाया जायेगा।

(१७) फलतः प्रार्थियोंका निवेदन है कि, यदि कमसे कम कहा जाये तो, यह भय भी निराधार है कि अगर भारतीयोंको मताधिकारका प्रयोग करने दिया गया तो वे "जिस महान देशसे आये हैं उसमें आन्दोलनके प्रचारक और राजद्रोहके उपकरण बन जायेंगे।"

(१८) छोटी-छोटी बातोंकी, और दूसरे वाचनकी बहसमें व्यर्थ ही जो कड़े आक्षेप किये गये उनकी, चर्चा करना प्रार्थी अनावश्यक समझते हैं। फिर भी प्रार्थी कुछ ऐसे अंश उद्धृत करनेकी इजाजत चाहते हैं, जिनका विचाराधीन विषयपर असर पड़ता है। प्रार्थी तो पसंद करते कि उनके कामोंसे उनके बारेमें मत निर्धारित किया जाता, न कि दूसरोंने उनकी जातिके बारेमें जो खयाल किया है उसे उद्धृत करके वे स्वयं अपने-आपको सही ठहराते। परन्तु वर्तमान परिस्थितियोंमें हमारे सामने कोई दूसरा रास्ता खुला नहीं है, क्योंकि मुक्त पारस्परिक व्यवहार न होनेके कारण हमारी क्षमताओंके बारेमें बहुत भ्रम फैला हुआ दिखलाई पड़ता है।

(१९) केनिंगटनके विधानसभा-भवनमें भाषण करते हुए श्री एफ० पिनकाटने कहा था :

> भारतीयोंके अज्ञान और प्रातिनिधिक शासनके महान लाभोंको समझनेकी उनकी अयोग्यताके बारेमें हमने इस देशमें बहुत-कुछ सुना है। सचमुच वह सब बहुत मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि प्रातिनिधिक शासनका शिक्षाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका तो बहुत बड़ा वास्ता सामान्य बुद्धिसे है, और भारतके लोगोंको सामान्य बुद्धि उतनी ही मात्रामें प्राप्त है, जितनी मात्रामें हमें। किसी भी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त होनेके सैकड़ों वर्ष पूर्व हम चुनावके अधिकारका उपभोग करते थे और हमारे पास प्रातिनिधिक संस्थाएँ थीं। इसलिए शिक्षा-सम्बन्धी कसौटीका कोई मूल्य नहीं है। जो लोग हमारे देशके इतिहाससे परिचित हैं, वे भली-भाँति जानते हैं कि दो सौ वर्ष पहले हमारे यहाँ घोरतम अंधविश्वास और अज्ञान फैला हुआ था। फिर भी हमारे पास हमारी प्रातिनिधिक संस्थाएँ तो थीं ही।

(२०) सर जार्ज वर्डवुडने भारतके लोगोंके चारित्र्यके बारेमें लिखते हुए इस प्रकार उपसंहार किया है :

भारतके लोग किसी भी सच्चे अर्थमें हमसे ओछे नहीं हैं। कुछ झूठे — हमारे लिए ही झूठे — मापदण्डोंसे, जिनपर विश्वास करनेका हम ढोंग करते हैं, नापने पर वे हमसे ऊँचे हैं।

(२१) मद्रासके एक गवर्नर सर टामस मनरोका कथन है :

मैं नहीं जानता कि भारतके लोगोंको सभ्य बनानेका क्या अर्थ है। अच्छे शासनके सिद्धान्तों और व्यवहारमें वे ओछे उतर सकते हैं; परन्तु यदि अच्छी कृषि-प्रणाली, उत्तम माल तैयार करना . . . लिखने-पढ़नेके लिए शालाओंकी स्थापना, दयालुता और आतिथ्यका सामान्य व्यवहार . . . ये सब उन बातोंमें हैं, जिनसे लोगोंकी सभ्यता जानी जाती है, तो वे सभ्यतामें यूरोपके लोगोंसे ओछे नहीं हैं।

(२२) जिन भारतीयोंको बहुत गालियाँ दी जाती हैं और, उससे भी ज्यादा, गलत समझा गया है उनके ही बारेमें प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं :

अगर मुझसे पूछा जाये कि किस देशके मनुष्योंके मानसने अपने कुछ सर्वोत्तम गुणोंका अधिकसे अधिक पूरे रूपमें विकास किया है, जीवनकी बड़ीसे बड़ी समस्याओं पर अत्यन्त गंभीरताके साथ विचार किया है और उनके ऐसे हल प्राप्त किये हैं, जो प्लेटो और कांटके दर्शनोंका अध्ययन किये हुए लोगोंके लिए भी बखूबी ध्यान देने योग्य हैं, तो मैं भारतकी ओर इंगित करूँगा।

(२३) कोमलतर भावनाओंको प्रेरित करनेके इरादेसे प्रार्थी आदरके साथ बताना चाहते हैं कि अगर मताधिकार संशोधन विधेयक मंजूर हो गया तो उससे एकीकरणके कार्यको वेग नहीं मिलेगा, बल्कि उसमें बाधा पड़ेगी। और इस एकीकरणके लिए तो भारतीय और ब्रिटिश राष्ट्रोंके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हार्दिक प्रयत्न कर रहे हैं।

(२४) प्रार्थियोंने अपने पक्षमें जान-बूझकर अंग्रेज विद्वानोंके वचन इस तरह पेश किये हैं कि उनके ही मुखसे उनकी बात सुनी जा सके। उपर्युक्त उद्धरणोंको व्याख्या करके बढ़ाया नहीं गया। इस प्रकारके उद्धरणोंकी संख्या और भी बढ़ाई जा सकती है। परन्तु प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि आपकी

सम्माननीय परिषद और सभाको हमारी प्रार्थनाके न्याययुक्त होनेका विश्वास दिला देनेके लिए उपर्युक्त उद्धरण काफी होंगे, और प्रार्थी आपकी सम्माननीय सभासे याचना करते हैं कि वह आपके निर्णयों पर फिरसे विचार करे। या, विधेयकके सम्बन्धमें आगे कार्रवाई करनेके पहले वह इस प्रश्नकी जाँच करनेके लिए कि उपनिवेशवासी भारतीय मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य हैं या नहीं, एक आयोग (कमिशन) की नियुक्ति करे।

और दया तथा न्यायके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि-आदि।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० १७९, जिल्द १८९ : वोट्स एंड प्रोसीडिंग्ज़ आफ पार्लमेंट, नेटाल; १८९४।

२६. शिष्टमंडलकी भेंट : नेटालके प्रधानमन्त्रीसे

डर्बन

जून २९, १८९४

सेवामें
सर जान राबिन्सन, के० सी० एम० जी०
प्रधानमन्त्री और उपनिवेश-सचिव
नेटाल उपनिवेश

निवेदन है कि,

श्रीमान्ने अपने बहुमूल्य समयका कुछ अंश इस शिष्टमंडलसे मिलनेके लिए दिया, इसके लिए हम श्रीमान्का धन्यवाद करते हैं।

हम श्रीमान्को उपनिवेशवासी भारतीयोंका यह प्रार्थनापत्र अर्पित करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि श्रीमान् इस पर ध्यानसे विचार करें।

हम श्रीमान्की शिष्टताका फायदा उतने ही समय तक उठायेंगे जितना बिलकुल जरूरी है। परन्तु हमें इतना काफी समय नहीं मिला कि हम अपना

मामला जितना हो सकता है उतने विस्तारके साथ श्रीमान्‌के सामने पेश कर सकें। इसका हमें खेद है।

महानुभाव, हमें ताने दिये गये हैं कि हम इतनी देरसे जागे, जब कि कुछ होना प्रायः असम्भव हो चुका था। इसलिए, आपको विश्वास दिलानेके लिए कि हम सदनके सामने सम्भवतः इससे जल्द जा ही नहीं सकते थे, आपको अपनी खास परिस्थितियाँ बता देना जरूरी हो गया है। हमारे समाजके जो दो प्रमुख सदस्य हैं, वे जरूरी कामसे उपनिवेशसे बाहर गये हुए थे। वे उपनिवेशके लोगोंके साथ किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार करनेमें असमर्थ थे। इधर, हमारा अंग्रेजी भाषाका ज्ञान बहुत कच्चा है। इसलिए हम महत्त्व-पूर्ण विषयोंका यथेष्ट परिचय नहीं रख सकते।

श्रीमान्‌के प्रति अत्यन्त आदरके साथ हम बताना चाहते हैं कि ऐंग्लो-सैक्सन और भारतीय — दोनों जातियोंका उद्भव एक ही मूलवंशसे हुआ है। विधेयकके दूसरे वाचनके समय श्रीमान्‌ने जो धाराप्रवाह भाषण किया उसे हमने पूरे ध्यानसे पढ़ा है। हमने यह जाननेके लिए बहुत परिश्रम किया कि आपने दोनों जातियोंके मूलवंशोंके अन्तर पर जो विचार व्यक्त किये हैं उनका समर्थन किसी अधिकारी लेखकने किया है या नहीं। परन्तु मैक्समूलर, मारिस, ग्रीन और अनेकानेक दूसरे लेखक एक स्वरसे बहुत स्पष्ट रूपमें यही बताते दीखते हैं कि दोनों जातियोंका उद्भव एक ही आर्य वंशसे या, जैसा कि बहुत-से लोग कहते हैं, इंडो-आर्यन वंशसे हुआ है। फिर भी, जो राष्ट्र हमें स्वीकार करनेके लिए तैयार न हो उसके बन्धु-राष्ट्रके सदस्योंके नाते जबरन् उसके गले पड़ जानेकी इच्छा हमें जरा भी नहीं है। परन्तु अगर हम वे बातें सच-सच बताते हैं, जिनके कथित अभावको हमें मताधिकारके अयोग्य घोषित करनेके लिए दलीलके रूपमें पेश किया गया है, तो आशा है हमें क्षमा किया जायेगा।

इसके अलावा, बताया जाता है, श्रीमान्‌ने यह भी कहा है कि भारतीयोंसे मताधिकारका प्रयोग करनेकी अपेक्षा करना क्रूरता होगी। नम्र निवेदन है कि हमारा प्रार्थनापत्र इसका पर्याप्त उत्तर है।

आपका भाषण हमें अपने दृष्टिकोणसे कितना भी अन्यायपूर्ण क्यों न मालूम हुआ हो, हमें यह जानकर कम सन्तोष नहीं हुआ कि वह न्याय, नीति और, इनके अलावा, ईसाइयतकी भावनाओंसे ओतप्रोत था। जबतक इस भूमिके

श्रेष्ठ पुरुषोंमें यह भावना दिखलाई पड़ती है, तवतक हम प्रत्येक मामलेमें न्याय किया जानेकी वावत हताश नहीं होंगे।

इसीलिए हमने पूरे विश्वासके साथ आपके सामने आनेका साहस किया है। हम मानते हैं कि हमारे नम्र प्रार्थनापत्रमें जो नई हकीकतें स्पष्ट की गई हैं, उनकी रोशनीमें उपर्युक्त भावनाओंके प्रदर्शित किये जानेका परिणाम उपनिवेशवासी भारतीयोंके प्रति ठोस न्याय ही होगा।

हमारा विश्वास है कि प्रार्थनापत्रमें की गई याचना वहुत विनम्र है। अगर अखवारोंके समाचार विश्वास-योग्य हों तो श्रीमान्ने स्वीकार करनेकी कृपा की थी कि कुछ प्रतिष्ठित भारतीय ऐसे हैं, जो इस विशेपाधिकारका प्रयोग करनेके लिए पर्याप्त वुद्धि रखते हैं। हमारी नम्र रायमें, केवल यह कारण ही इस अति महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी जाँचके लिए आयोग नियुक्त करनेको काफी है। हम ऐसे आयोगके सामने उपस्थित होनेको तैयार ही नहीं हैं, सचमुच तो हम उसका स्वागत करते हैं। वादमें, अगर निष्पक्ष न्यायाधिकरण (ट्रिव्यूनल) निर्णय कर दे कि भारतीय लोग मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य हैं, तो क्या हमारा यह माँग करना बहुत ज्यादा होगा कि उन्हें उसका प्रयोग करने दिया जाये? अगर हम विधेयकके सही मानी समझ सके हैं तो उसके कानूनमें परिणत हो जाने पर भारतीयोंका दर्जा निचलेसे निचले देशी लोगोंके दर्जेसे भी नीचा हो जायेगा। क्योंकि, जब देशी लोग शिक्षा प्राप्त करके मताधिकार पानेके योग्य बन सकेंगे, भारतीयोंको यह मौका कभी नहीं मिलेगा। विधेयक इतना सख्त है कि अगर ब्रिटिश लोकसभाका कोई भारतीय सदस्य भी यहाँ आये तो वह भी मतदाता वननेके योग्य न होगा।

हम जानते हैं कि इतने ही महत्त्वके दूसरे विषयोंपर भी आपको गंभीरतापूर्वक ध्यान देना है। अगर हम यह जानते न होते तो विधेयककी व्याख्यासे निकलनेवाले हानिकारक परिणामोंका वर्णन और भी करते। ये परिणाम ऐसे हैं कि शायद विधेयकके यशस्वी निर्माताओंका मंशा ऐसा कदापि न रहा होगा। इसलिए अगर हमें एक सप्ताहका समय दे दिया जाये तो हम विधानसभाके सामने अपना पक्ष अधिक पूर्ण रूपसे रख सकते हैं। तव हम अपना मामला श्रीमान्के हाथोंमें सौंप देंगे, और अपनी सारी उत्कटताके साथ श्रीमान्से प्रार्थना करेंगे कि श्रीमान् अपने प्रभावका उपयोग करके भारतीयोंके प्रति पूर्ण न्याय करायें। क्योंकि, हम न्याय और केवल न्याय ही चाहते हैं।

श्रीमान्‌ने हमारे शिष्टमंडलको जो मुलाकात दी और हमारे प्रति जो शिष्टता प्रदर्शित की उसके लिए हम श्रीमान्‌को धन्यवाद देते हैं।

भारतीय समाजकी ओरसे,

श्रीमान्‌के आज्ञानुवर्ती सेवक,
(ह०) मो० क० गांधी
तथा तीन अन्य

[अंग्रेजीसे]

नेटाल विधानसभाके आदेशसे २१ अप्रैल, १८९६ को प्रकाशित पत्र-व्यवहारसूचीमें नं० १ की मद।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स नं० १८१, जिल्द ४१।

२७. प्रश्नावली[1] : संसद-सदस्योंके नाम

(एक परिपत्र)

डर्बन
जुलाई १, १८९४

सेवामें . . . .

महोदय,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवालोंने विधानपरिषद और विधानसभा दोनोंके माननीय सदस्योंके पास इस पत्रकी नकलें रजिस्टर्ड डाकसे भेजी हैं और उनसे साथके प्रश्नोंका उत्तर देनेका अनुरोध किया है। यदि आप संलग्न पत्रमें उत्तरके कालम भरकर और आप जो ठीक समझें वह मन्तव्य दर्ज करके अपने हस्ताक्षरोंके साथ उसे प्रथम हस्ताक्षरकर्ताके पास ऊपरके पतेपर वापस भेज दें तो हम अत्यन्त आभारी होंगे।

आपके आज्ञानुवर्ती सेवक,
मो० क० गांधी
तथा चार अन्य

१. इस पत्र और प्रश्नावलीका उल्लेख लार्ड रिपनके नाम भेजे गये प्रार्थनापत्र (पृ० १२०)के आठवें अनुच्छेदमें किया गया है।

प्रश्न	उत्तर *हाँ या नहीं*	विशेष
(१) क्या आप शुद्ध अन्तःकरणसे कहते हैं कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयक बिलकुल न्याययुक्त है, जिसमें किसी संशोधन या परिवर्तनकी जरूरत नहीं है?		
(२) क्या आप इसे न्याययुक्त समझते हैं कि जो भारतीय किसी कारणसे अपने नाम मतदाता-सूचीमें नहीं लिखा सके उन्हें हमेशाके लिए संसदीय चुनावोंमें मत देनेसे रोक दिया जाना चाहिए — भले वे कितने ही योग्य क्यों न हों और उपनिवेशमें उनका कैसा भी हित निविष्ट क्यों न हो?		
(३) क्या आप सचमुच विश्वास करते हैं कि कोई भी भारतीय उपनिवेशका पूरा नागरिक बननेकी या मत देनेकी पर्याप्त योग्यता कभी भी कमा नहीं सकता?		
(४) क्या आप इसे न्याय समझते हैं कि किसी आदमीको सिर्फ इसलिए मतदाता न बनने दिया जाये कि वह एशियाई वंशका है?		
(५) क्या आप चाहते हैं कि जो गिरमिटिया भारतीय उपनिवेशमें आते हैं और यहाँ बस जाते हैं वे यदि स्थायी रूपसे भारत वापस चले जाना पसन्द न करें तो सदा अर्ध-दासता और अज्ञानकी अवस्थामें रहें?		

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स नं० १७९, जिल्द १८९।

२८. शिष्टमंडलकी भेंट : नेटालके गवर्नरसे

डर्बन
जुलाई ३, १८९४

सेवामें

परमश्रेष्ठ माननीय सर वाल्टर फ्रान्सिस हेली-हचिन्सन, के० सी० एम० जी, गवर्नर, नेटाल उपनिवेश; प्रधान सेनापति तथा वाइस-एडमिरल, नेटाल; और देशी आबादीके सर्वोच्च शासक

नम्रतापूर्वक निवेदन है कि,

जुलाई १, १८९४ को डर्बनमें प्रमुख भारतीयोंकी एक सभा हुई थी, जिसमें हमसे अनुरोध किया गया था कि हम मताधिकार संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावसे भेंट करें। इस विधेयकका तीसरा वाचन कल शामको नेटाल उपनिवेशकी विधानसभामें हो चुका है।

विधेयक अपने वर्तमान रूपमें प्रत्येक भारतीयको, जिसका नाम अभी मतदाता-सूचीमें दर्ज नहीं है, चाहे वह ब्रिटिश प्रजा हो चाहे न हो, मतदाता बननेके अयोग्य ठहराता है।

हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि यदि विधेयकमें कोई शर्तें या मर्यादाएँ शामिल न कर दी गईं तो वह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण है और कमसे कम कुछ भारतीयों पर तो उसका असर बहुत बुरा होगा ही।

इंग्लैंडमें भी आवश्यक योग्यता रखनेवाले किसी भी ब्रिटिश प्रजाजनको जाति, रंग या धर्मके भेद बिना मत देनेका अधिकार प्राप्त है।

महानुभावके शिष्टाचारका अतिक्रमण होनेके खयालसे हम यहाँ इस प्रश्नकी विस्तारके साथ चर्चा नहीं करेंगे। परन्तु हम विधानसभाको दिये गये प्रार्थना-पत्रकी एक छपी हुई नकल महानुभावके पास भेजनेकी इजाजत लेते हैं। निवेदन है कि महानुभाव उसे ध्यानसे पढ़ लें।

हमें हमारा लक्ष्य इतना न्यायपूर्ण जँचता है कि उसके समर्थनमें किसी दलीलकी आवश्यकता ही नहीं होगी।

हमें भरोसा है कि महाकृपालु महिमामयी सम्राज्ञीके प्रतिनिधिके रूपमें महानुभाव किसी ऐसे कानूनको अनुमति प्रदान नहीं करेंगे, जिससे कोई ऐसी

व्यवस्था होती दीखती हो कि सम्राज्ञीका कोई भारतीय प्रजाजन कभी भी मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य नहीं बन सकता।

इस विषयमें हम महानुभावकी सेवामें योग्य अधिकारियोंकी मार्फत उचित प्रार्थनापत्र[1] भेजनेकी आशा करते हैं।

शिष्टमंडलको डर्वनमें मुलाकात देनेके लिए और महानुभावके शिष्टाचार तथा धैर्यके लिए हम महानुभावको बहुत-बहुत धन्यवाद देते हैं।

विनीत,

(ह०) मो० क० गांधी
और छः अन्य

[अंग्रेजीसे]

उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपनके नाम नेटालके गवर्नर सर वाल्टर हेली-हचिन्सनके खरीता नं० ६२, ता० १६ जुलाई, १८९४ का सहपत्र नं० २।

२९. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानपरिषदको

डर्बन
जुलाई ४, १८९४

माननीय श्री कैम्पबेलने विधानपरिषदके अध्यक्ष और सदस्योंके नाम निम्नलिखित प्रार्थनापत्र पेश किया :

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटाल निवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थियोंको इस उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीय समाजने आपकी परिषदके सामने यह नम्र प्रार्थनापत्र पेश करनेके लिए नियुक्त किया है। इसका सम्बन्ध

१. इसके वाद नेटालके गवर्नरको वस्तुतः कोई प्रार्थनापत्र नहीं भेजा गया। स्पष्ट है कि गांधीजी और उनके साथी भेजना तो चाहते थे, परन्तु घटना-चक्र आगे वढ़ गया। यह प्रार्थनापत्र भी अस्वीकृत हो गया और विधेयकको जल्दी-जल्दी सव अवस्थाओंसे गुजारकर सम्राज्ञीकी स्वीकृतिके लिए उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपनके पास भेजनेको तैयार कर लिया गया। इसलिए एक दूसरा प्रार्थनापत्र (देखिए पृष्ठ ११७) सर वाल्टर हेली-हचिन्सन द्वारा लार्ड रिपनके पास उनके निर्णयके लिए लंदन भेजना आवश्यक हुआ।

मताधिकार कानून संशोधन विधेयक (फ्रैंचाइज़ ला अमेंडमेंट बिल) से है, जिसका तीसरा वाचन विधानसभामें २ जुलाईको हुआ था। हम अपनी शिकायतोंका जिक्र विस्तारपूर्वक इस प्रार्थनापत्रमें नहीं करेंगे। उसके लिए हम आपका ध्यान भारतीयोंके उस प्रार्थनापत्रकी ओर सादर आकर्षित करते हैं, जो इस विधेयकके सम्बन्धमें विधानसभाको दिया गया था और जिसकी एक छपी हुई नकल सदस्योंके तत्काल देखनेके लिए इसके साथ नत्थी है। प्रार्थनापत्र पर लगभग ५०० भारतीयोंने हस्ताक्षर किये हैं। ये हस्ताक्षर सिर्फ एक दिनके थोड़े-से समयमें किये गये थे। अगर प्रार्थियोंको अधिक समय दिया गया होता तो, विभिन्न जिलोंसे जो रिपोर्टें प्राप्त हुई हैं उनसे पूरा विश्वास होता है कि, कमसे कम दस हजार लोगोंने हस्ताक्षर किये होते। प्रार्थियोंको आशा थी कि विधानसभा प्रार्थनाके न्यायको महसूस करके उसे स्वीकार कर लेगी। परन्तु उनकी आशाएँ भग्न हो गईं। इसलिए अब प्रार्थियोंने इस उद्देश्यसे आपकी सम्माननीय परिषदके सम्मुख उपस्थित होनेका साहस किया है कि माननीय सदस्यगण उपर्युक्त प्रार्थनापत्र पर बारीकीसे विचार करें और न्याय तथा औचित्यके अनुरूप अपने संशोधन करनेके अधिकारका प्रयोग करें। कुछ प्रार्थियोंने निम्न सदनके कुछ माननीय सदस्योंसे उपर्युक्त प्रार्थनापत्रके सम्बन्धमें भेंट की थी। वे सब प्रार्थनापत्रमें कही गई बातोंको न्याययुक्त मानते दिखलाई पड़े थे। परन्तु आम भावना यह मालूम हुई थी कि वह प्रार्थनापत्र बहुत विलम्बसे दिया गया। इस बातकी बारीकियोंमें गये बिना, हम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि अगर इसे सही मान लिया जाये तो भी विधेयकके कानूनके रूपमें परिणत हो जानेके परिणाम इतने गंभीर होंगे, और हमारी प्रार्थना इतनी न्यायपूर्ण और सौम्य है कि प्रार्थनापत्र पर विचार करते समय विलम्बका महत्त्व सदस्योंके सामने बिलकुल नहीं होना चाहिए था। सभ्य देशोंकी संसदोंके ऐसे उदाहरण खोज निकालना बहुत कठिन न होगा, जिनमें कि इससे कम जोरदार परिस्थितियोंमें समिति द्वारा विचार हो जानेके बाद भी विधेयकोंको संशोधित या अस्वीकार कर दिया गया है। ब्रिटिश लाट-सभाने आयरलैंडकी स्वतन्त्रताके विधेयकको नामंजूर कर दिया था। उसका उदाहरण आपको बतानेकी जरूरत नहीं है। और न जिन परिस्थितियोंमें वह अस्वीकार किया गया था उनकी चर्चा करना ही जरूरी है। हमारा निवेदन है कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयकका वर्तमान रूप इतना सर्वग्राही है कि उसके स्वीकार हो जाने पर कोई भी भारतीय, जिसका नाम इस

समय मताधिकार-सूचीमें नहीं है, मतदाता नहीं बन सकता, फिर वह कितना ही योग्य क्यों न हो। प्रार्थियोंका विश्वास है कि आपकी सम्माननीय परिषद ऐसे विचारका समर्थन नहीं करेगी और, इसलिए, विधेयकको विधान-सभाके पास पुनर्विचारके लिए भेज देगी।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, ५-७-१८९४

३०. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

मालूम होता है, गांधीजीने दादाभाई नौरोजीको जो अनेक पत्र लिखे थे उनमें यह पहला था। दादाभाई दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी समस्याओंसे परिचित थे, क्योंकि वहाँके भारतीयोंने १८९१ में ही उनके पास ब्रिटिश सरकारके सामने पेश करनेके लिए प्रार्थनापत्र भेजे थे। पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है। उसके निम्नलिखित अंश श्री आर० पी० मसानीकृत *दादाभाई नौरोजी : द ग्रैंड ओल्ड मैन आफ इंडिया* [भारत राष्ट्र-पितामह : दादाभाई नौरोजी] से उद्धृत किये गये हैं।

डर्बन
जुलाई ५, १८९४

उत्तरदायी शासनमें नेटालकी पहली संसद प्रमुखतः एक भारतीय संसद ही रही है। वह अधिकांशतः भारतीयों पर असर डालनेवाले कानून बनानेमें व्यस्त रही। ये कानून किसी भी तरह प्रवासी भारतीयोंके अनुकूल नहीं हैं। गवर्नरने विधानपरिषद और विधानसभाका उद्घाटन करते हुए कहा था कि भारतमें कभी मताधिकार प्रयोग न करने पर भी नेटालमें भारतीय प्रवासी उसका प्रयोग कर रहे हैं; मेरे मन्त्री मताधिकारके इस विषयको सुलझायेंगे। भारतीयोंका मताधिकार छीननेके लिए सर्वग्राही कानून बनानेके कारण ये बताये गये थे कि उन्होंने पहले कभी मताधिकारका प्रयोग नहीं किया, और वे उसके लिए योग्य नहीं हैं।

भारतीयोंका प्रार्थनापत्र इसका पर्याप्त उत्तर साबित होता दीख पड़ा। फलतः अब उन्होंने पैंतरा बदलकर विधेयकका सच्चा ध्येय प्रकट कर दिया

है, जो महज यह है: "हम नहीं चाहते कि भारतीय यहाँ और रहें। मजदूर हम जरूर चाहते हैं। परन्तु यहाँ वे गुलाम ही बन कर रहेंगे। जैसे ही वे आजाद हुए, फौरन भारत लौट जायेंगे।" मेरा हार्दिक अनुरोध है कि आप इसपर पूरा-पूरा ध्यान दें और आपका जो प्रभाव हमेशा भारतीयोंके पक्षमें काम आया है — भले वे कहीं भी क्यों न हों — उसका उपयोग करें। भारतीय आपकी ओर वैसे ही आशाकी दृष्टिसे देखते हैं, जैसे बच्चे पिताकी ओर देखते हैं। यहाँकी भावना यथार्थमें ऐसी ही है।

दो शब्द अपने बारेमें भी लिखकर इसे खत्म करूँगा। अभी मैं नौजवान और अनुभवहीन हूँ। इसलिए बिलकुल सम्भव है कि मुझसे कहीं गलतियाँ हो जायें। मैंने जो जिम्मेदारी उठाई है वह मेरी योग्यतासे कहीं भारी है। यह भी बता दूँ कि मैं यह कार्य बिना मिहनतानेके कर रहा हूँ। इसलिए आप देखेंगे कि मैंने भारतीयोंके धनसे धनी बननेके लिए अपने सामर्थ्यसे बाहरका यह काम नहीं उठाया। यहाँके लोगोंमें मैं अकेला ही ऐसा हूँ जो इस प्रश्नको निभा सकता हूँ। इसलिए अगर आप कृपाकर मेरा मार्ग-दर्शन करते रहें और मुझे उचित सुझाव देते रहें तो मैं बहुत आभारी हूँगा। मैं आपके सुझावोंको वैसे ही स्वीकार करूँगा जैसे पिताके सुझाव पुत्रको हों।

[अंग्रेजीसे]

३१. दूसरा प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानपरिषदको

डर्बन
जुलाई ६, १८९४

सेवामें
माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधानपरिषद, नेटाल

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्रतापूर्वक निवेदन है कि,

(१) नेटालवासी भारतीयोंने प्रार्थियोंको आपकी माननीय परिषदकी सेवामें "मताधिकार कानून संशोधन विधेयक" के सम्बन्धमें निवेदन करनेके लिए नियुक्त किया है।

(२) प्रार्थियोंको हार्दिक खेद है कि उन्होंने ४ जुलाई, १८९४ को माननीय श्री कैम्पबेलके द्वारा जो प्रार्थनापत्र पेश किया था, वह नियमानुकूल नहीं था; इस कारण उन्हें फिरसे यह प्रार्थनापत्र पेश करके आपकी परिषदका अमूल्य समय बिगाड़ना पड़ रहा है।

(३) प्रार्थी भारतीय समाजके विश्वासपात्र और जिम्मेदार सदस्य हैं। इस हैसियतसे वे आपकी परिषदका ध्यान आकर्षित करते हैं कि विचाराधीन विधेयकने भारतीय समाजमें व्यापक असंतोष और निराशाकी भावना पैदा कर दी है। जैसे-जैसे भारतीय समाजमें विधेयककी धाराओंका ज्ञान फैलता है, वैसे-वैसे प्रार्थियोंको लोगोंकी ये भावनाएँ अधिकाधिक मात्रामें सुनाई पड़ती जाती हैं: "सरकार माँ-बाप हमें मार डालेगी, हम क्या करें?"

(४) प्रार्थी आपकी परिषदके प्रति अधिकसे अधिक आदरके साथ निवेदन करते हैं कि यह भावना सिर्फ तुच्छ गिनी जाने योग्य नहीं, बल्कि अन्तःकरणसे निकली हुई है और परिषदके अत्यन्त गंभीर विचारके योग्य है।

(५) आपकी परिषदमें विधेयकके दूसरे वाचनकी बहसके समय बतानेका प्रयत्न किया गया था कि मत देना क्या है, यह भारतीयोंको मालूम ही नहीं है। प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि यह सच नहीं है। वे भलीभाँति समझते हैं कि मत देनेके अधिकारसे क्या हक मिलता है और उसकी क्या जिम्मेदारी होती है। प्रार्थियोंकी केवल इतनी ही इच्छा है कि परिषद स्वयं देख सकती, विधेयककी प्रगतिकी प्रत्येक अवस्थाको भारतीय समाज किस चिन्ता और उत्तेजनाके साथ देखा करता है।

(६) प्रार्थी एक क्षणके लिए भी यह कहना नहीं चाहते कि भारतीय समाजके प्रत्येक व्यक्तिको ऐसा ज्ञान और, इसलिए, ऐसी भावना है। परन्तु वे कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि साधारण स्थिति यही है। वे यह भी कहना नहीं चाहते कि ऐसे भारतीय हैं ही नहीं जिन्हें मत देनेका अधिकार नहीं मिलना चाहिए। परन्तु वे इतना जरूर कहेंगे कि यह तो कोई कारण नहीं, जिससे कि सारेके सारे भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित कर दिया जाये।

(७) विधेयकके अमलसे जो परिणाम होंगे उनमें से कुछका परिषदके विचारार्थ निवेदन करनेकी प्रार्थी अनुमति चाहते हैं:

(क) जिन लोगोंके नाम इस समय मतदाता-सूचीमें शामिल हैं, उन्हें विधेयक मनमाने ढंगसे उसमें कायम रखता है। परन्तु जिन लोगोंने

अबतक उस अधिकारका प्रयोग करनेकी इच्छा नहीं की उनको वह हमेशाके लिए उससे वंचित कर देता है।

(ख) जब कि कुछ भारतीय पिताओंको मत देनेका हक होगा, उनके बच्चे कभी मत नहीं दे सकेंगे — भले ही बच्चे अपने पिताओंसे हर तरह आगे बढ़े हुए क्यों न हों।

(ग) विधेयक गिरमिटिया और स्वतन्त्र भारतीयों — दोनोंको एक ही तराजूसे तौलता है।

(घ) विधेयकका आधार राजनीति है। वह आधार हाल ही में विकसित हुआ दीखता है। उसे यदि थोड़ी देरके लिए छोड़ दिया जाये तो विधेयकसे ऐसा मालूम होगा कि इस समय भारतमें रहनेवाला एक भी भारतीय मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य नहीं है; और यूरोपीयों तथा भारतीयोंके बीच इतना अन्तर है कि भारतीय यूरोपीयोंके दीर्घ सहवासके बाद भी उस मूल्यवान् अधिकारका प्रयोग करनेके योग्य नहीं बने।

(८) प्रार्थी नम्रतापूर्वक पूछते हैं: एक पिता मतदाता है। वह अपने पुत्रकी शिक्षा पर इसलिए भारी मात्रामें धन खर्च करता है कि पुत्र लोकपरायण बने। फिर, यदि अन्तमें उसे देखना पड़े कि पुत्रको वह अधिकार भी नहीं मिलता जिसे प्रातिनिधिक संस्थाओंवाले सब सभ्य देशोंमें पैदा हुए प्रत्येक सच्चे शिक्षित व्यक्तिका जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है, तो क्या यह उचित होगा?

(९) प्रार्थी इस भयकी विवेचना करनेको बहुत इच्छुक हैं कि एशियाइयोंको मताधिकार दे देनेसे देशीयोंका राज्य अन्तमें भारतीयोंके हाथमें चला जायेगा। परन्तु भय है कि, इस विषय पर आपकी परिषदके सामने अपने नम्र विचार रखनेका अवसर यह नहीं है। प्रार्थी इतना ही कहकर संतोष करेंगे कि उनके विचारसे ऐसा बनाव कभी बननेवाला ही नहीं है। और यदि दूर भविष्यमें कभी बन भी जाये तो भी उसके विरुद्ध कानून बनानेका समय अभी तो नहीं आया है।

(१०) प्रार्थी सादर निवेदन करते हैं कि विधेयक ब्रिटिश प्रजाके एक वर्ग और दूसरे वर्गके बीच द्वेषजनक भेद-भाव उत्पन्न करनेवाला है। परन्तु कहा यह गया है कि यदि भारतीय ब्रिटिश प्रजाके साथ यूरोपीयोंकी बराबरीका बरताव किया जाता है तो वही बरताव दूसरी ब्रिटिश प्रजाओं — अर्थात् उपनिवेशके देशी लोगोंके साथ भी होना चाहिए। प्रार्थी अप्रिय तुलनामें उतरे

बिना सम्राज्ञीकी १८५८ की घोषणाका एक अंश उद्धृत करनेकी इजाजत लेते हैं। उससे मालूम होगा कि भारतीय ब्रिटिश प्रजाके साथ किन सिद्धान्तोंके आधार पर व्यवहार किया जाना चाहिए :

> **हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। और सर्वशक्तिमान परमात्माकी कृपासे हम उन दायित्वोंका निष्ठापूर्वक और सदसद्विवेक-बुद्धिके साथ निर्वाह करेंगे। और इसके अतिरिक्त हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें जाति और धर्मके भेद-भावके बिना मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये। उनकी समृद्धिमें ही हमारी शक्ति होगी, उनके संतोषमें ही हमारी सुरक्षा होगी और उनकी कृतज्ञतामें ही हमारा सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार होगा।**

(११) उपर्युक्त उद्धरण और १८३३ के अधिकार-पत्र (चार्टर) के अनुसार, भारतीयोंको भारतमें मुख्य न्यायाधीशके जैसे अत्यन्त उत्तरदायी पदों पर नियुक्त किया जाता है। फिर भी, यहाँ, एक ब्रिटिश उपनिवेशमें, प्रार्थियोंको या उनके भाई-बन्दोंको या उनके बच्चोंको साधारण नागरिकोंके सामान्यतम अधिकारसे वंचित करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

(१२) अब कहा गया है कि भारतीय लोग म्यूनिसिपल स्वशासन तो जानते हैं, किन्तु राजनीतिक स्वशासनसे अनभिज्ञ हैं। प्रार्थियोंका निवेदन है कि यह भी बिलकुल सच नहीं है। परन्तु मान लिया जाये कि बात बराबर ऐसी ही है, तो क्या जिस देशमें संसदीय शासन प्रचलित हो उसमें भारतीयोंको राजनीतिक मताधिकारसे वंचित करनेका यह कोई कारण होना चाहिए? प्रार्थियोंका निवेदन है कि सच्ची और एकमात्र कसौटी यह होनी चाहिए कि आपके प्रार्थी और जिनकी वे पैरवी कर रहे हैं वे योग्य हैं अथवा नहीं। जिस देशमें राजाका राज्य है वहाँसे आया हुआ कोई व्यक्ति — उदाहरणार्थ, रूसी — भले ही प्रातिनिधिक शासनको समझने या सराहनेकी योग्यता न दिखा सका हो, फिर भी, प्रार्थी मानते हैं कि, यदि वह दूसरी दृष्टियोंसे योग्य हो तो परिषद उसे अयोग्य ठहराकर मताधिकारसे वंचित न करेगी।

(१३) इसे पूरा करनेके पहले प्रार्थी आपकी परिषदका ध्यान लार्ड मेकालेके निम्नलिखित स्मरणीय शब्दोंकी ओर आकर्षित करते हैं : "हम स्वतन्त्र और

सम्य हैं; परन्तु यदि मानव-जातिके किसी भागको स्वतन्त्रता और सम्यताका समान अंश देनेमें हम आपत्ति करते हैं तो हमारी स्वतन्त्रता और सम्यता व्यर्थ है।"

(१४) प्रार्थियोंको हार्दिक विश्वास है कि उपर्युक्त तथ्य तथा तर्क और कुछ भले ही सिद्ध न कर सकें, वे इतना तो संतोषप्रद रूपमें सिद्ध कर ही देंगे कि भारतीयोंकी मताधिकार प्राप्त करनेकी योग्यता-अयोग्यताकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त करनेकी सच्ची आवश्यकता है। यदि भारतीयोंको मताधिकार दे दिया गया तो उनके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल जायेंगे और शासनकी बागडोर उनके हाथोंमें चली जायेगी — क्या इस भयका कोई आधार है? इसकी जाँचके लिए तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर रिपोर्ट देनेके लिए भी जाँच-आयोगकी नियुक्ति आवश्यक है — यह भी उपर्युक्त तर्कों तथा तथ्योंसे सिद्ध हो जायेगा।

(१५) इसलिए प्रार्थी विनती करते हैं कि आपकी परिषद जो सिफारिशें न्यायपूर्ण और उचित समझे उनके साथ विधेयकको विधानसभाके पास पुनर्विचारके लिए वापस भेज दे।

और इस न्याय तथा दयाके कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि-आदि।

[अंग्रेजीसे]

श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा तथा अन्य सात व्यक्तियोंका प्रार्थनापत्र, जो ६ जुलाई, १८९४को माननीय श्री कैम्पबेलने नेटाल संसदकी विधान-परिषदके सामने पेश किया था।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० १८१, जिल्द ३८।

३२. भारतीय और मताधिकार

मताधिकार कानून संशोधन विधेयक (फ्रैंचाइज़ ला अमेंडमेंट बिल) के सम्बन्धमें भारतीय समाजने नेटाल विधानपरिषद (लेजिस्लेटिव कौन्सिल) को जो प्रार्थनापत्र दिया था उसपर ७ जुलाई, १८९४ के *नेटाल मर्क्युरी*में 'भारतीय ग्राम-समाज' शीर्षक से एक लम्बा अग्रलेख प्रकाशित हुआ था। उसमें यह दलील दी गई थी कि जिसे आज संसदीय शासन समझा जाता है वह भारतके ग्राम-समाजोंमें प्रचलित प्रातिनिधिक संस्थाओंके किसी भी स्वरूपसे भिन्न है। विधेयकमें भारतीयोंको इस आधार पर मताधिकारसे वंचित रखा गया था कि उन्होंने अपने देशमें कभी मताधिकारका प्रयोग नहीं किया। भारतीयोंका कहना था कि वे अपने ग्राम-समाजोंमें प्राचीन कालसे ही मताधिकारका प्रयोग करते आ रहे हैं। परन्तु *नेटाल मर्क्युरी*ने भारतीयोंके इस दावेका प्रतिवाद किया था। सर हेनरी समर मेनने अपनी पुस्तक *विलेज कम्यूनिटीज़ इन द ईस्ट एंड वेस्ट* [पूर्व और पश्चिमके ग्राम-समाज]में जो यह मत व्यक्त किया है कि भारतीय लगभग स्मरणातीत कालसे प्रातिनिधिक संस्थाओंसे परिचित हैं, उसका भी उसने प्रतिवाद किया था। उसका कथन था कि भारतीयोंका राजनीतिक प्रतिनिधित्वसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा; जो-कुछ सम्बन्ध रहा है वह लगान-पट्टेके कानूनी पहलूके सिलसिलेमें था। उसकी दलील यह थी कि ग्राम्य सामाजिक जीवन तो सभी आदिम लोगोंमें समान रूपसे प्रचलित था और उससे अगर कोई बात सिद्ध होती है तो वह है उन लोगोंका पिछड़ापन। उसने सर जार्ज चेज़नीका *नाइंटीन्थ सेन्चुरी*में व्यक्त किया हुआ यह मत उद्धृत किया था कि भारतीय अब भी अपनी राजनीतिक बाल्यावस्थामें हैं। उत्तरमें गांधीजीने निम्न पत्र लिखा था:

डर्बन
जुलाई ७, १८९४

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

आपका आजके अंकका विद्वत्तापूर्ण और समर्थ अग्रलेख पढ़कर बड़ा मजा आया। ऐसी तो आशा ही नहीं थी कि मताधिकार-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रके विरुद्ध कुछ कहनेको होगा ही नहीं। इस आधुनिक कालमें जिस चीजके दो पहलू न हों वह तो आश्चर्यजनक — मैं कहने पर था, मानवोत्तर — वस्तु होगी। इस सिद्धान्तके आधार पर, सर जार्ज चेज़नी अकेले ही ऐसे लेखक

नहीं हैं, जो आपका उद्देश्य सिद्ध करेंगे। आखिरकार, सर हेनरी समर मेन भी तो मनुष्य ही थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनके सिद्धान्तों और निष्कर्षोंका खंडन किया जाये। किसी मर्त्यका "विरोधी तत्त्वोंकी जोड़ी"से बचे रहना संभव नहीं दिखाई देता। फिर भी, मैं इस समय मामलेकी दूसरी बाजू पेश नहीं करूँगा, और कभी भविष्यमें उसपर लौटनेकी इजाजत चाहूँगा।

यह पत्र लिखनेका उद्देश्य आपको अचानक एक खबर देकर "विस्मित करना" है। मुझे यह कहते हर्ष है कि मैसूर राज्यने अपनी प्रजाको राजनीतिक मताधिकार दे दिया है। मैं समाचारपत्रोंकी रिपोर्टसे निम्नलिखित अंश उद्धृत कर रहा हूँ :

> दीवानने अब जिस प्रणालीकी व्याख्या की है, उसके अनुसार १०० रुपये या इससे ज्यादा लगान या १३ रुपये और इससे ज्यादा *मोहातर्फा* [घर-कर] देनेवाले सब जमीन-मालिकोंको प्रतिनिधि सभाके सदस्योंको मत देनेका या स्वयं सदस्य बननेका अधिकार है। इसके अलावा, किसी भी भारतीय विश्वविद्यालयके ऐसे सब स्नातकोंको, जो साधारणतः राज्यके किसी ताल्लुकेमें रहते हों, और जो सरकारी नौकर न हों, निर्वाचन करने और निर्वाचित होनेका भी अधिकार प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार सम्पत्ति तथा वृद्धि दोनोंके प्रतिनिधि धारासभामें होंगे। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सार्वजनिक संघ, म्यूनिसिपैलिटियाँ और लोकल बोर्ड भी अपने सदस्योंका चनाव कर सकते हैं। सदस्योंकी कुल संख्या ३४७ निश्चित की गई है और इन सदस्योंका चुनाव लगभग ४,००० निर्वाचक करेंगे।

महोदय, मैं आपसे सद्भावनाका अनुरोध करता हूँ, और पूछता हूँ कि क्या दोनों समाजोंके भेद-सूचक तत्त्वोंको, जो अक्सर बहुत खिंचे-तने या निरे काल्पनिक होते हैं, जनताके सामने खोलकर दिखानेके बजाय आप उनके साम्य-सूचक मुद्दोंको एकत्र करके प्रदर्शित करें तो मानव-जातिकी अधिक सेवा नहीं होगी? विरोधी तत्त्व तो मनुष्यके बुरेसे बुरे भावोंको ही जगा सकते हैं न, जब कि किसीका सच्चा लाभ उनसे हो ही नहीं सकता? मैं नहीं समझता कि दोनों राष्ट्रोंके बीच ईर्ष्या और शत्रुताके बीज बोना आपके लिए लाभजनक हो सकता है। मुझे कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करनेकी

शक्ति आपमें है, जैसी कि वह हरएकमें कम या ज्यादा मात्रामें होती है। परन्तु इससे बहुत ऊँची और बहुत उदात्त एक चीज भी आपकी पहुँचके अन्दर है — वह एक ऐसी चीज है, जो न केवल आपको महत्ता प्रदान करेगी, बल्कि भला भी बनायेगी। इसके अलावा, आपको एक पूरे राष्ट्रकी, जो १,२०० वर्षके दमन और अत्याचारोंसे भी कुचला नहीं जा सका, कृतज्ञता प्राप्त होगी। उस राष्ट्रका कुचला न जा सकना अपने-आपमें एक चमत्कार है। और वह चीज है — उपनिवेशके लोगोंको भारत और उसके लोगोंके बारेमें सही शिक्षा देना।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ११–७–१८९४

३३. पत्र : नेटालके गवर्नरको

डर्बन
जुलाई १०, १८९४

सेवामें

परमश्रेष्ठ माननीय सर वाल्टर फ्रान्सिस हेली-हचिन्सन, के० सी० एम० जी०, गवर्नर, नेटाल उपनिवेश; प्रधान सेनापति तथा वाइस-एडमिरल, नेटाल; और देशी आबादीके सर्वोच्च शासक

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

सादर निवेदन है कि,

(१) प्रार्थी नेटाल उपनिवेशवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे इस प्रार्थनापत्रके द्वारा मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं।

(२) प्रार्थियोंको मालूम हुआ है कि महानुभाव उपर्युक्त विधेयकको सम्राज्ञीकी सम्मतिके लिए ब्रिटिश सरकारके पास भेजेंगे।

(३) ऐसी स्थितिमें, विधेयकके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारके नाम एक प्रार्थनापत्र[1] तैयार किया जा रहा है।

(४) प्रार्थी वह प्रार्थनापत्र, जितनी जल्दी हो सकेगा, महानुभावके पास भेज देंगे।

(५) प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि महानुभाव ब्रिटिश सरकारको अपना इस विषय सम्बन्धी खरीता भेजना तबतक स्थगित रखें, जबतक कि उपर्युक्त प्रार्थनापत्र भी उसके पास भेजनेके लिए महानुभावकी सेवामें न पहुँच जाये।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदा दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) मो० क० गांधी
तथा सात अन्य

[अंग्रेजीसे]

उपनिवेशमन्त्री लार्ड रिपनके नाम नेटालके गवर्नर सर वाल्टर हेली-हचिन्सनके खरीता नं० ६२, ता० १६ जुलाई, १८९४का सहपत्र नं० ६।
कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० १७१, जिल्द १८१।

१. देखिए, पृष्ठ ११७।

३४. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

मार्फत — दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी
डर्बन
जुलाई १४, १८९४

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी, संसद-सदस्य

श्रीमन्,

अपने इसी माहकी ७ ता०के पत्र[1]के सिलसिलेमें मैं आपको मताधिकार कानून संशोधन विधेयक-विरोधी आन्दोलनकी प्रगतिकी निम्नलिखित जानकारी दे रहा हूँ :

ता० ७ को विधानपरिषदमें विधेयकका तीसरा वाचन मंजूर हो गया। परिषदको दिया गया दूसरा प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया था। एक माननीय सदस्यने प्रस्ताव किया था कि जबतक सदन प्रार्थनापत्रपर विचार न कर ले तबतक तीसरा वाचन स्थगित रखा जाये। वह प्रस्ताव नामंजूर कर दिया गया।

गवर्नरने विधेयकको अपनी अनुमति दे दी है। शर्त यह है कि सम्राज्ञी उसका निषेध न कर दें। विधेयकमें एक व्यवस्था है कि वह तबतक कानूनका रूप न लेगा जबतक कि गवर्नर राजकीय घोषणा द्वारा या अन्यथा सूचित न कर दे कि सम्राज्ञीकी इच्छा विधेयकका निषेध करनेकी नहीं है।

मैं इसके साथ ब्रिटिश सरकारके नाम एक प्रार्थनापत्र[2]की नकल भेज रहा हूँ। प्रार्थनापत्र यहाँके गवर्नरको शायद १७ ता०को भेजा जायेगा। इसपर लगभग १०,००० भारतीय हस्ताक्षर करेंगे। लगभग ५,००० हस्ताक्षर हो चुके हैं।

अफसोस है कि मैं आपको परिषद[3]के नाम भेजे गये प्रार्थनापत्रकी नकल नहीं भेज सकता। परन्तु एक अखबारकी कतरन भेज रहा हूँ। उसमें प्रार्थनापत्रकी काफी अच्छी रिपोर्ट दी गई है।

१. यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।
२. देखिए, पृष्ठ ११७।
३. देखिए, पृष्ठ १०७।

और कुछ कहनेको है, ऐसा नहीं लगता। परिस्थिति इतनी नाजुक है कि अगर विधेयक कानून बन गया तो अबसे दस वर्ष बाद उपनिवेशमें भारतीयोंकी स्थिति असह्य हो जायेगी।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,
मो० क० गांधी

गांधीजीके अपने हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

३५. प्रार्थनापत्र : लार्ड रिपनको

गांधीजीने अपनी आत्मकथामें कहा है कि उन्होंने भारतीयोंके मताधिकार-सम्बन्धी इस प्रार्थनापत्रपर बहुत परिश्रम किया था और एक पखवारेमें इसके लिए १०,००० से अधिक हस्ताक्षर प्राप्त कर लिये थे। नेटालके प्रधानमन्त्रीने इसे गवर्नरके पास भेजते हुए साथके पत्रमें वे कारण बताये थे जिनके आधारपर उन्होंने अपीलको नामंजूर करनेकी सिफारिश की थी।

[डर्बन
जुलाई १७, १८९४][1]

सेवामें

महामहिम, परममाननीय मार्क्विस आफ रिपन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार

सम्प्रति नेटाल उपनिवेशवासी नीचे हस्ताक्षर
करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन है कि,

(१) महानुभावके प्रार्थी भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं और नेटाल उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोंमें निवास करते हैं।

(२) महानुभावके कुछ प्रार्थी व्यापारी हैं, जो इस उपनिवेशमें आकर बस गये हैं। कुछ पहले-पहल इकरारनामेमें बँधकर भारतसे आये थे और इधर कुछ समयसे (बीस-तीस वर्षसे भी) स्वतन्त्र हो चुके हैं। कुछ लोग गिर-

१. पृष्ठ ११६ पर दिये पत्रमें उल्लेखके आधारपर।

मिटमें बँधे हुए भारतीय हैं, कुछ इसी उपनिवेशमें जन्मे और शिक्षा पाये हुए हैं और वकीलोंके मुंशी, कम्पाउंडर, कम्पोजीटर, फोटोग्राफर, शिक्षक आदिके भिन्न-भिन्न धंधोंमें लगे हैं। इसके अलावा, अनेक प्रार्थी उपनिवेशमें बड़ी-बड़ी जमीन-जायदादके मालिक हैं और माननीय विधानसभाके सदस्योंके चुनावमें मत देनेका वाजिब अधिकार रखते हैं। थोड़े लोग ऐसे हैं, जो जमीन-जायदाद होनेके कारण मत देनेका अधिकार तो रखते हैं, फिर भी किसी-न-किसी कारणसे मतदाता-सूचीमें अपने नाम दाखिल नहीं करा सके।

(३) प्रार्थी मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावको यह प्रार्थनापत्र दे रहे हैं। उक्त विधेयक उपनिवेशके प्रधानमन्त्री माननीय सर जान राविन्सनने गत अधिवेशनमें पेश किया था। विधानसभामें इसका तीसरा वाचन स्वीकार हो चुका है, और माननीय गवर्नर महोदय इसे अपनी स्वीकृति इस शर्त पर दे चुके हैं कि सम्राज्ञी इसे अब भी अस्वीकार कर सकती हैं।

(४) विधेयकका हेतु यह है कि एशियाई वंशोंके जो भी लोग उपनिवेशमें बसे हैं उन सबको संसदीय चुनावोंमें मत देनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जाये। परन्तु जिनके नाम इस मतदाता-सूचीमें वाजिब तौर से दर्ज हैं उनको विधेयकमें अपवादस्वरूप माना गया है।

(५) उपनिवेशके सत्ताधीशोंसे न्याय पानेके लिए जो आन्दोलन किया गया है, प्रार्थी उसका संक्षिप्त इतिहास पेश करनेकी अनुमति चाहते हैं।

(६) महानुभावके प्रार्थियोंने सबसे पहले उस समय विधानसभाके सामने फरियाद की थी, जब कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयकका दूसरा वाचन स्वीकार हुआ था। जब प्रार्थियोंको मालूम हुआ कि दूसरे वाचनके बाद दो दिनमें ही समितिने विधेयकको पास कर दिया और एक दिन बाद उसका तीसरा वाचन भी समाप्त हो जायेगा, तब स्थिति ऐसी हो चुकी थी कि यदि तीसरा वाचन स्थगित न किया जाये तो प्रार्थनापत्र पेश करना असम्भव होगा। इसलिए आपके प्रार्थियोंने तार द्वारा विधानसभासे प्रार्थना की कि तीसरा वाचन स्थगित किया जाये। विधानसभाने बड़ी कृपा करके एक दिनके लिए वाचन स्थगित किया। उस एक दिनमें लगभग पाँच सौ भारतीयोंने एक प्रार्थनापत्र पर सही करके दूसरे दिन उसे विधानसभाके सामने पेश किया। मैरित्स-वर्गमें प्रार्थियोंका एक शिष्टमण्डल प्रधानमन्त्री और महान्यायवादीके समेत विधानसभाके अनेक सदस्योंसे मिला। शिष्टमण्डलको बड़े सौजन्यके साथ

स्वीकार किया गया और उसकी बातें धैर्यके साथ सुनी गईं। अधिकतर सदस्योंने, जिनसे शिष्टमण्डलने भेंट की, स्वीकार किया कि प्रार्थियोंने विधान-सभासे जो प्रार्थना की थी वह उचित थी। परन्तु सभीका कहना यह रहा कि प्रार्थनापत्र देरीसे दिया गया। प्रार्थनापत्रपर विचार किया जा सके, इस उद्देश्यसे प्रधानमन्त्रीने चार दिनके लिए तीसरा वाचन स्थगित करा दिया। यह भी बता देना अनुचित न होगा कि वेरुलम, रिचमंड-रोड तथा अन्य स्थानोंसे विधानपरिषदके नाम तार भेजकर प्रार्थनापत्रका समर्थन किया गया था। परन्तु उन तारोंको इस बिनापर अनियमित ठहरा दिया गया कि वे परिषदके किसी सदस्यकी मार्फत पेश नहीं किये गये। प्रार्थी इसके साथ अपने विभिन्न प्रार्थनापत्र नत्थी नहीं कर रहे हैं, क्योंकि उन सबको तो निस्सन्देह सरकार आपके पास भेजेगी ही।

(७) प्रार्थनापत्र पेश करनेके चार दिन बाद, अर्थात् सोमवार, २ जुलाई, १८९४ को, प्रार्थियोंकी अपेक्षाके विरुद्ध, और उनके लिए अत्यन्त खेदजनक रूपमें, विधेयकका तीसरा वाचन स्वीकार हो गया।

(८) मंगलवारको आपके प्रार्थियोंने माननीय विधानपरिषदको एक प्रार्थना-पत्र भेजा। उसे माननीय श्री कैम्पबेलकी मार्फत पेश किया गया था। परन्तु उसमें विधानसभा सम्बन्धी उल्लेख होनेके कारण उसे नियमबाह्य ठहरा दिया गया, और विधेयकका दूसरा वाचन हो गया। जैसे ही आपके प्रार्थियोंको इसका पता चला, उन्होंने बिना समय खोये विधानपरिषदके नाम दूसरा प्रार्थनापत्र तैयार करके गुरुवारको भेज दिया। शुक्रवारको उन्हीं माननीय सदस्यने उसे पेश किया। इसी बीच, अर्थात् दूसरे वाचनके बाद एक दिनके अन्दर ही, विधेयक समिति द्वारा स्वीकार हो गया था। माननीय श्री कैम्पबेलने विधेयकके तीसरे वाचनको स्थगित करनेका प्रस्ताव किया, ताकि उपर्युक्त प्रार्थनापत्रपर विचार किया जा सके। परन्तु प्रस्ताव इस आधार पर अस्वीकृत हो गया कि प्रार्थनापत्र *बहुत विलम्बसे* पेश किया गया है। आप देखेंगे कि विधेयक मुश्किलसे चार दिन विधानपरिषदके सामने रहा था। प्रार्थी यह भी बता दें कि भारतीय समाजके प्रमुख सदस्योंने माननीय सर वाल्टर एफ० हेली-हचिन्सन [गवर्नर]से मिलनेके लिए एक शिष्टमण्डल नियुक्त किया था। सर वाल्टरने बड़ी सहृदयता और शिष्टताके साथ शिष्ट-मण्डलकी बातें सुनीं। माननीय सदस्योंके व्यक्तिगत मत जाननेके लिए

भारतीयोंकी एक समितिने उन्हें एक छपा हुआ परिपत्र[1] भेजा था और उनसे कुछ प्रश्नोंके उत्तर देनेका अनुरोध किया था। परिपत्र और प्रश्नावली दोनों इसके साथ नत्थी हैं। अबतक तो केवल एक सदस्यने ही उत्तर भेजा है, परन्तु उसने भी प्रश्नोंके उत्तर नहीं दिये।

(९) मताधिकार विधेयककी आलोचना करनेके पहले एक दलीलको, जो प्रार्थियोंके विरुद्ध काममें लाई गई है, निबटा देनेकी प्रार्थी अनुमति चाहते हैं। दलील यह है कि प्रार्थियोंने विधानसभाको बहुत देरीसे अर्जी दी। इस विषयमें प्रार्थियोंका कहना इतना ही है कि कायदेके मुताबिक देरी नहीं हुई थी। इसके अलावा, प्रश्न इतने महत्त्वके थे, तथा हैं, और विधेयकका सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके साथ इतना गहरा सम्बन्ध था तथा है, कि अगर सरकारने या विधानसभा या विधानपरिषदने विधेयकका तीसरा वाचन स्वीकार होने देनेके पहले अपने निर्णयपर फिरसे विचार किया होता और प्रार्थियोंके मामलेकी भली-भाँति जाँच कराई होती तो अनुचित न होता।

(१०) बहस और विधेयककी प्रस्तावनामें कहा गया है कि एशियाई लोगोंने कभी मताधिकारका उपभोग नहीं किया है। बहसमें तो यह भी कहा गया था कि एशियाई लोग मताधिकारका उपभोग करनेके योग्य ही नहीं हैं। उस समय भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित रखनेके लिए यही दो मुख्य कारण बताये गये थे। प्रार्थियोंका विश्वास है कि विधानसभाको दिये गये प्रार्थना-पत्रसे इन दोनों आपत्तियोंका पूरी तरह निराकरण हो जाता है।

(११) यद्यपि खुले तौरसे यह स्वीकार नहीं किया गया कि एशियाइयोंके मताधिकारके सम्बन्धमें दोनों आपत्तियाँ ढह गई हैं, फिर भी दिखाई तो यह पड़ता है कि गुपचुप तौरपर इस बातको मंजूर कर लिया गया है। कारण, विधानसभामें विधेयकके दूसरे वाचनके समय तो कहा गया था कि भारतीयोंको मत देनेसे वंचित रखना नीति तथा न्यायके आधारपर उचित है, परन्तु तीसरे वाचनमें खुले तौरपर उसे शुद्ध राजनीतिक आधारपर उचित बताया गया। तीसरे वाचनके समय कहा गया कि अगर भारतीयोंको मत देनेका अधिकार दिया गया तो उनके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल जायेंगे और यूरोपीयोंके राज्यके बदले भारतीयोंका राज्य स्थापित हो जायेगा।

१. देखिए, संसद-सदस्योंके नाम प्रश्नावली, जुलाई १, १८९४, पृष्ठ १०१।

(१२) प्रार्थी दोनों सदनोंके प्रति अधिकतम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि उपर्युक्त भय बिलकुल निराधार है। आज भी यूरोपीय मतदाताओंकी तुलनामें भारतीय मतदाता बहुत कम हैं। जो भारतीय गिरमिटमें बँधकर आते हैं उनमें गिरमिटकी अवधिके अन्दर और उसके बाद भी अनेक वर्षों तक मताधिकारके लिए काफी साम्पत्तिक योग्यता नहीं हो सकती। फिर, यह भी एक जानी हुई बात है कि जो लोग अपने खर्चसे आते हैं वे हमेशाके लिए उपनिवेशमें नहीं रहते। वे कुछ वर्षोंके बाद स्वदेश वापस चले जाते हैं और उनके बदले दूसरे भारतीय आते हैं। इस तरह, जहाँतक व्यापारी वर्गका सम्बन्ध है, उसके मतोंकी संख्या हमेशा जितनी-की-तितनी बनी रहेगी। इसके अलावा, यह बात भी भूली नहीं जा सकती कि यूरोपीय समाज उपनिवेशके राजनीतिक कामोंमें जितनी सक्रिय दिलचस्पी रखता है उतनी भारतीय समाज नहीं रखता। ऐसा मालूम होता है कि उपनिवेशमें ४५,००० यूरोपीय और उतने ही भारतीय हैं। यह हकीकत ही बता देती है कि यूरोपीय और भारतीय मतोंमें कितना बड़ा अन्तर है। प्रार्थी निवेदन करते हैं कि अभी अनेक पीढ़ियों तक किसी भारतीयका नेटालकी संसदमें प्रविष्ट होनेकी आशा करना असम्भवप्राय है। इसको सिद्ध करनेके लिए किसी प्रमाणकी आवश्यकता है, ऐसा नहीं लगता।

(१३) और अगर महानुभावके प्रार्थी मताधिकारका प्रयोग करनेके लिए अयोग्य न हों और उन्हें उपनिवेशके शासनमें — और विशेषतः अपने ही ऊपर शासन करनेमें — कुछ भाग मिले तो क्या कोई हर्ज है?

(१४) प्रार्थियोंका निवेदन है कि विधेयकका स्वरूप प्रतिगामी है, और वह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण है।

(१५) जिन लोगोंके नाम वाजिबी तौरसे मतदाता-सूचीमें दर्ज हैं उन्हें रहने देनेकी बातसे ही, प्रार्थियोंकी नम्र रायमें, यह स्वीकार हो जाता है कि मताधिकारका उत्तरदायित्व और उसका हक समझनेकी योग्यता प्रार्थियोंमें मौजूद है। बहसके दौरानमें यह बतानेका प्रयत्न किया गया था कि प्रार्थी मत देनेके योग्य नहीं हैं, फिर भी उन्हें रहने दिया गया है। इस पर प्रार्थी विश्वास नहीं कर सकते।

(१६) यह भी कहा गया है कि विधेयककी दूसरी उपधारासे पूरा न्याय हो जाता है। प्रार्थियोंका निवेदन है कि ऐसी बात नहीं है। इसके उलटे, वह उन दोनोंकी भावनाओंको दुखानेवाला है, जो सूचीमें हैं, और जो नहीं हैं।

(१७) जिन लोगोंके नाम सूचीमें हैं उनके लिए यह बात तसल्ली देनेवाली नहीं है कि वे स्वयं तो मत दे सकते हैं, परन्तु उनके बच्चे, भले वे कितने ही शिक्षित और सुयोग्य क्यों न हों, मत नहीं दे सकते। और यदि विधेयक कानूनमें परिणत हो गया तो वह उपनिवेशमें बसे भारतीय माता-पिताओंके अपने बच्चोंको ऊँची शिक्षा देनेके दृढ़से दृढ़ उत्साहको भी हर लेगा। वे अपने बच्चोंको समाजमें बिना आदर-मानके या बिना महत्त्वाकांक्षाके, अछूतोंके समान जीवन बिताते देखना पसन्द नहीं करेंगे। अगर मनुष्यको समाजमें आदर-मान न मिले तो धन भी बेकार हो जाता है। इस तरह तो जिस विचारसे मनुष्य धन-दौलत इकट्ठी करता है, वह अंकुरित होते ही मसल डाला जाता है।

(१८) फिर, जो लोग उपनिवेशमें आकर बसे हैं वे दूसरी उपधारासे यह जानकर चिढ़ते हैं कि जब उनके भाई उनसे किसी भी तरह बेहतर न होनेपर भी दैवयोगसे मत देनेका अधिकार रखते हैं, तब वे शायद सिर्फ इसलिए मत देनेके अधिकारी नहीं हैं कि वे अपने वशसे बिलकुल बाहरकी परिस्थितियोंके कारण मतदाता-सूचीमें अपने नाम नहीं लिखा सके। इस प्रकार एक ही वर्गकी भारतीय ब्रिटिश प्रजाके बीच संयोगसे बनी परिस्थितियोंके आधारपर विधेयक ईर्ष्याजनक भेद-भाव पैदा करता है।

(१९) यह संकेत भी किया गया है कि दूसरी उपधारा द्वारा जो न्याय हुआ है उसका प्रार्थियोंने उपकार नहीं माना। परन्तु दूसरी उपधारा दाखिल करनेमें सरकारके न्यायके इरादेका अधिकतम आदर करते हुए भी कहना पड़ता है कि प्रार्थी उसमें न्याय देख नहीं सके। इसे स्वयं कुछ माननीय सदस्योंने भी स्वीकार किया था, क्योंकि उन्होंने दूसरी उपधाराके रहने-न-रहनेके बारेमें इसलिए कोई चिन्ता व्यक्त नहीं की कि वे मत तो थोड़े समयमें उड़ जानेवाले हैं। यह तो स्वयं स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

(२०) दक्षिण आफ्रिकाके देशीयोंके साथ महानुभावके प्रार्थियोंकी बराबरी करनेका जो उत्साहपूर्ण प्रयत्न किया गया है, उसे प्रार्थियोंने शर्म और दुःखके साथ देखा है। बारंबार कहा गया है कि अगर भारतीयोंको सिर्फ इसलिए मत देनेका कोई हक है कि वे ब्रिटिश प्रजा हैं, तो देशीयोंको यह ज्यादा है। प्रार्थी इस तुलनाकी कोई विवेचना करना नहीं चाहते, परन्तु सम्राज्ञीकी सन् १८५८ की घोषणा और महानुभावके भारतीय प्रजा-सम्बन्धी अनुभवकी ओर

महानुभावका ध्यान अवश्य खींचते हैं। भारतीय और देशी ब्रिटिश प्रजाकी शासन-व्यवस्थामें जो स्पष्ट अन्तर है वह बताना शायद जरूरी नहीं है।

(२१) अगर यह विधेयक कानून बन गया तो इस समय जो सैकड़ों शिक्षित भारतीय हैं, जिनके हस्ताक्षर इस प्रार्थनापत्रमें पाये जाते हैं, वे संसदीय चुनावोंमें मत नहीं दे सकेंगे। प्रार्थियोंको पूरा विश्वास है कि जिस विधेयकसे ब्रिटिश प्रजाके किसी भी वर्गके प्रति इतना गंभीर अन्याय होता हो, उसे मंजूर करनेकी सलाह महानुभाव सम्राज्ञी-सरकारको नहीं देंगे।

(२२) मार्च २७, १८९४ के *नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*में प्रकाशित १८९३ की प्रवासी भारतीय स्कूल बोर्ड रिपोर्टसे मालूम होता है कि उस वर्ष २६ स्कूल थे, जिनमें २,५८९ विद्यार्थी पढ़ते थे। प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि ये बच्चे, जिनमें से अनेक इसी उपनिवेशमें जन्मे हैं, पूरी तरह यूरोपीय ढंगसे पाले-पोसे जाते हैं। आगेके जीवनमें इनका सम्बन्ध मुख्यतः यूरोपीयोंके साथ होता है। इसलिए वे मताधिकारके लिए हर तरहसे उतने ही योग्य बन जाते हैं, जितना कि कोई यूरोपीय होता है। हाँ, उनमें मूलतः ही कोई कमी हो, जिससे वे शिक्षा-योग्यतामें यूरोपीयोंकी बराबरी न कर सकें, तो बात अलग है। परन्तु वे अयोग्य नहीं हैं, यह तो ऐसे विषयोंके बड़ेसे बड़े पण्डितों द्वारा असंदिग्ध रूपमें सिद्ध किया जा चुका है। इंग्लैंड और भारत दोनोंमें ही अंग्रेज तथा भारतीय विद्यार्थियोंकी प्रतिद्वन्द्विताके परिणामोंसे पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है कि भारतीयोंमें यूरोपीयोंके साथ सफलतापूर्वक होड़ करनेका सामर्थ्य मौजूद है। संसदीय समितिके सामने जो गवाहियाँ दी गई थीं उनके या इस विषयके महान लेखकोंकी रचनाओंके उद्धरण प्रार्थी जानबूझकर नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वैसा करना भरी थालीमें घी परोसने जैसा व्यर्थ होगा। फिर अगर प्रार्थी माँग करते हैं कि इन लड़कोंको सयाने होनेपर मताधिकार दिया जाये, तो क्या वह एक ऐसी माँग नहीं होती, जिसे किसी भी सभ्य देशमें कोई भी आदमी अपना जन्म-सिद्ध हक मानेगा, और जिसमें जरा भी हस्तक्षेप होनेपर उचित रीतिसे उसका मुकाबला करेगा? प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि महानुभाव एक संसदीय संस्थाओं द्वारा शासित देशमें इन बच्चोंको साधारणसे साधारण नागरिक अधिकारोंसे वंचित किये जानेके अपमानका भाजन न होने देंगे।

(२३) प्रार्थी माननीय श्री कैम्पबेल और माननीय श्री डोनके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने अपने खर्चसे आये हुए भारतीयोंका मताधिकार छीननेके अन्यायको

समझा और उसकी आलोचना की। परन्तु वे भी दूसरे माननीय सदस्योंके समान यह मानते दीखते हैं कि जो लोग गिरमिटिया बनकर आये हैं उन्हें तो मताधिकार *कदापि नहीं* मिलना चाहिए। प्रार्थी स्वीकार करते हैं (यद्यपि वे यह कहे बिना नहीं रह सकते कि अगर कोई मनुष्य अन्यथा योग्य हो तो उसकी दरिद्रताको अपराध नहीं माना जाना चाहिए) कि गिरमिटिया भारतीयोंको गिरमिटकी अवधिमें भले ही मताधिकार न दिया जाये, परन्तु, अगर बादमें वे पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर लें तो, हमारा नम्र निवेदन है कि, उन्हें भी मत देनेके अधिकारसे सदैव वंचित नहीं रखा जाना चाहिए। ऐसे जो लोग यहाँ आते हैं वे साधारणतः हृष्ट-पुष्ट और नौजवान होते हैं। वे यूरोपीयोंके प्रभावमें आ जाते हैं और गिरमिटकी अवधि पूरी करते समय तथा, खास तौरसे, स्वतन्त्र हो जानेके बाद, वे शीघ्रतासे यूरोपीय सभ्यताको अपनाने लगते हैं और पूरे उपनिवेशी बन जाते हैं। यह स्वीकार किया जा चुका है कि वे बहुत उपयोगी हैं — सचमुच तो अमूल्य हैं, जो सुलह-शांतिसे रहते हैं। यह बता देना अनुचित न होगा कि इस समय जो शिक्षित भारतीय युवक सरकारी नौकरियोंमें मुहर्रिरों या दुभाषियोंका, या सरकारी नौकरियोंके बाहर शिक्षकों और वकीलोंके मुंशियों आदिका काम कर रहे हैं, उनमें से अधिकतर गिरमिटिया मजदूर बनकर उपनिवेशमें आये थे। प्रार्थियोंका निवेदन है कि उनको या उनके बच्चोंको मत देनेसे या अपने ही शासनमें किसी प्रकारका प्रभाव रखनेसे वंचित करना एक क्रूर कार्य होगा। अगर कोई आदमी दूसरे रूपोंमें नियमानुसार योग्य है, या योग्य बन जाता है, तो सिर्फ इतनी बात ही उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक अधिकारोंकी प्राप्तिमें बाधक नहीं होनी चाहिए कि वह एशियाई वंशका है, या गिरमिटिया बनकर उपनिवेशमें आया था।

(२४) महानुभावका ध्यान प्रार्थी इस उलझनकी ओर भी आकृष्ट करते हैं कि यह विधेयक भारतीयोंको असभ्यसे असभ्य देशी लोगोंकी अपेक्षा भी नीची कोटिमें रख देगा। कारण, असभ्यसे असभ्य देशीयोंको तो उचित योग्यता प्राप्त करनेपर मताधिकार प्राप्त हो सकता है, परन्तु आज मताधिकार रखनेवाले भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन मताधिकारसे ऐसे वंचित हो जायेंगे कि फिर कभी उन्हें वह अधिकार न मिलेगा, भले ही वे मताधिकार छिननेके समय कितने ही योग्य क्यों न हों, या अपने आगेके जीवनमें कितने भी योग्य क्यों न बन जायें।

(२५) प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि यह विधेयक इतना सर्वग्राही और इतना बेरहम है कि इससे सारे भारतीय राष्ट्रका अपमान होता है, क्योंकि अगर भारतका कोई बड़ेसे बड़ा सपूत भी नेटालमें आकर बसे तो उसे मत देनेका अधिकार नहीं होगा। कदाचित् औपनिवेशिक दृष्टिसे वह इस अधिकारके लिए अयोग्य ठहरेगा। यह अड़चन दोनों सदनोंके माननीय सदस्योंने स्वीकार की थी और माननीय कोषाध्यक्ष महोदयने तो यहाँतक कहा था कि अड़चनके खास-खास मामलों पर संसद भविष्यमें विचार कर सकती है।

(२६) ऊपरकी दलीलको और अधिक स्पष्ट करनेके लिए प्रार्थी महानुभावका ध्यान भूतपूर्व नेटाल विधानपरिषदमें भारतीयोंके मताधिकार-सम्बन्धी प्रश्नपर हुई बहसके कागजात और सरकारी गज़टोंकी ओर आकर्षित करते हैं। नेटाल-सम्बन्धी एक "ब्लू बुक" – सरकारी रिपोर्ट (सी – ३७९६, १८८३) में पृष्ठ ३ पर औपनिवेशिक कार्यालयके नाम श्री सांडर्सका एक पत्र प्रकाशित किया गया है। प्रार्थी उसका निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं:

> यह व्याख्या ही कि ये हस्ताक्षर पूरे हों, निर्वाचकके अपने ही अक्षरोंमें हों और यूरोपीय लिपिमें हों, इस आत्यन्तिक जोखिमको रोकनेमें बहुत दूर तक सहायक होगी कि एशियाइयोंके मत अंग्रेजोंके मतोंको दबा देंगे।

इस प्रकार, एशियाई-विरोधी नीतिके उत्साही समर्थक होते हुए भी, श्री सांडर्स इससे आगे नहीं जा सके। उसी पत्रमें वे माननीय महाशय आगे कहते हैं:

> ऊँची श्रेणीके भारतीय देखते और महसूस करते हैं कि नये कुलियों और उनके बीच एक फर्क है।

इसलिए, ऐसा मालूम होता है कि उस समयकी सरकार भारतीय-भारतीयके बीच फर्क करनेको बिलकुल राजी थी। दुर्भाग्यवश अब, अधिक स्वतन्त्र राज्यमें, गिरमिटिया, गिरमिट-मुक्त और स्वतन्त्र, सभी भारतीयोंको एक ही तराजूसे तोलनेकी कोशिश की जा रही है। प्रार्थी विनम्रतापूर्वक कहे बिना नहीं रह सकते कि श्री सांडर्सका विधेयक वर्तमान विधेयककी तुलनामें बहुत सौम्य था। परन्तु उस विधेयकका भी सम्राज्ञीकी प्रजावत्सल सरकारने समर्थन नहीं किया था। इसलिए, प्रार्थियोंका निवेदन है कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयकका समर्थन तो और भी नहीं होना चाहिए। उपर्युक्त पुस्तकमें ही पृष्ठ ७ पर तत्कालीन प्रवासी-संरक्षक श्री ग्रेव्ज़का यह कथन दिया गया है:

मेरा मत है कि केवल वे भारतीय ही न्यायपूर्वक मताधिकारके हकदार हैं जिन्होंने अपना और अपने परिवारोंका भारत जानेके भाड़ेका सारा हक छोड़ दिया है।

उन्होंने यह भी ठीक ही बताया कि श्री सांडर्सकी सुझाई हुई हस्ताक्षरकी कसौटी व्यवहारमें यूरोपीय निर्वाचकों पर लागू नहीं की जाती। उसी पृष्ठपर तत्कालीन महान्यायवादीने अपनी रिपोर्टमें कहा है:

दीख पड़ेगा कि मेरे बनाये हुए विधेयकके मसविदेमें कुछ उपधाराएँ प्रवर-समिति (सिलेक्ट कमेटी) की सिफारिशोंसे ली गई हैं। उनमें श्री सांडर्सके पत्रकी वैकल्पिक योजनाको कार्यान्वित करनेका रास्ता बताया गया है। परन्तु परदेशियोंको किसी खास रूपमें मताधिकारके अयोग्य ठहरानेका सुझाव स्वीकार करने योग्य नहीं माना गया।

महानुभावका ध्यान प्रार्थी उसी पुस्तकके पृष्ठ ९१ पर उन्हीं विद्वान् सज्जनकी रिपोर्टकी ओर भी आकृष्ट करते हैं। विद्वान् महान्यायवादीकी ही एक अन्य रिपोर्टका अंश उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। पृष्ठ १४ पर उन्होंने कहा है:

जहाँतक उपनिवेशके साधारण कानूनके अन्दर पूरी तरहसे न आनेवाले हरएक राष्ट्र या जातिके सब लोगोंको मताधिकारसे वंचित कर देनेका सुझाव है, उसका लक्ष्य साफ तौरसे उपनिवेशवासी भारतीयों और क्रियोलोंका मताधिकार है, जिसका उपभोग वे आज कर रहे हैं। जैसा कि मैं बारहवें विधेयक-सम्बन्धी अपनी रिपोर्टमें पहले ही कह चुका हूँ, मैं इस तरहके विधेयकको न्यायपूर्ण या जरूरी नहीं मान सकता।

(२७) इस तरह स्थिति यह है कि जब उपनिवेशका शासन एक अधिक स्वतन्त्र संविधानके अनुसार होने लगा है, और जब इस स्वतन्त्रताका लाभ प्रार्थियोंको भी मिलना चाहिए था, तब प्रथम उत्तरदायी मन्त्रिमण्डलने हमको कम स्वतन्त्र करनेका, हम तमाम लोगोंका मताधिकार छीन लेनेका प्रयत्न किया है। यह बड़े दुःखकी बात है। यह देखते हुए कि पहलेके शासनमें प्रार्थियोंके अधिकार छीननेके इससे बहुत कम जोरदार प्रयत्नोंको सम्राज्ञी-सरकारने प्रश्रय नहीं दिया, प्रार्थियोंको प्रत्येक आशा है कि वर्तमान प्रयत्नकी भी वही गति होगी और प्रार्थियोंके प्रति न्याय किया जायेगा।

(२८) मताधिकार विधेयकसे अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे दुःखदायी परिणाम इतने हैं कि उन सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। फिर भी, प्रार्थी उनमें से कुछका विवेचन करनेकी इजाजत चाहते हैं।

(२९) यह तो जानी हुई बात है कि उपनिवेशके यूरोपीयों और भारतीयोंके बीच एक चौड़ी दरार है। भारतीयोंसे यूरोपीय द्वेष करते हैं और उन्हें दुतकारते हैं। उन्हें अक्सर परेशान किया जाता और सताया जाता है। प्रार्थियोंका निवेदन है कि मताधिकार-विधेयकसे इस तरहकी भावना अधिक तीव्र होगी। इसके लक्षण तो अभी ही दिखाई पड़ने लगे हैं। इसकी सचाई साबित करनेके लिए प्रार्थी चालू तारीखोंके समाचारपत्रोंकी ओर, और दोनों सदनोंकी बहसोंकी ओर भी, महानुभावका ध्यान खींचते हैं।

(३०) दूसरे वाचनकी बहसके दौरानमें कहा गया था कि भारतीयों पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है उससे उपनिवेशके कानून बनानेवालों पर अधिक जिम्मेदारी आ पड़ेगी और भारतीयोंपर कोई प्रतिबन्ध न होते हुए उनके हितोंका जितना संरक्षण हो सकता है उससे अब ज्यादा होगा। प्रार्थियोंका निवेदन है कि यह अब तकके सारे अनुभवके प्रतिकूल है।

(३१) कुछ माननीय सदस्योंका खयाल था कि भारतीयोंको म्यूनिसिपल चुनावोंमें भी मत प्रदान करने नहीं देना चाहिए। बहसके समय उत्तरदायी क्षेत्रोंमें यह व्यापक रूपसे मशहूर था कि इस प्रश्नपर भविष्यमें, किन्तु शीघ्र ही, ध्यान दिया जायेगा। भावना ऐसी दिखलाई पड़ती है कि मताधिकार-विधेयक तो अँगुली है, जिसे पकड़ लेनेपर पहुँचा पकड़नेमें देर नहीं लगेगी।

(३२) महानुभावको मालूम है कि गिरमिटमें बँधकर आये हुए भारतीय अगर उपनिवेशमें बसना चाहें तो उनपर कर लगानेका इरादा किया गया है। कहा गया है कि कर इतना भारी होना चाहिए कि उनका उपनिवेशमें रहना व्यर्थ हो जाये — वे रुक ही न सकें, और उनका उपनिवेशियोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता करना सम्भव ही न रहे। प्रार्थियोंका मताधिकार छीन लेने पर उनके हितोंका बेहतर संरक्षण कैसे होगा, इसका यह दूसरा उदाहरण है।

(३३) सरकारी नौकरी (सिविल सर्विस) विधेयकपर बहसके समय कुछ माननीय सदस्योंने कहा था कि चूँकि भारतीयोंसे मताधिकार छीन लिया जाने-वाला है, इसलिए उन्हें सरकारी नौकरियोंमें भरती होनेसे भी रोक देना उचित ही होगा। इस आशयका एक संशोधन भी पेश किया गया था। सरकारने चतुराई और दूरदर्शितासे काम लेकर माँग की कि उसपर मत लिये जायें और

वह संशोधन केवल अध्यक्षके निर्णायक मतसे रद हुआ। प्रार्थी पूरी तरहसे स्वीकार करते हैं कि इस मामलेमें सरकारने बहुत सहानुभूतिका रुख अख्तियार किया। फिर भी इन घटनाओंका रुख और अपशकुन स्पष्ट है। इस संशोधनका अवसर मताधिकार-विधेयकने ही प्रदान किया था।

(३४) प्रार्थियोंको मालूम हुआ है कि केप उपनिवेशमें रंग या जाति-सम्बन्धी ऐसा कोई भेद-भाव नहीं है।

(३५) प्रार्थी आदरपूर्वक बतानेकी इजाजत चाहते हैं कि अगर यह विधेयक कानूनके रूपमें परिणत हो गया तो दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर इसका असर एकदम विनाशकारक होगा। ट्रान्सवालमें वे कुचले हुए और द्वेषके शिकार तो हैं ही, बादमें तो उनकी स्थिति एकदम असह्य हो उठेगी। अगर एक ब्रिटिश उपनिवेशमें भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ जरा भी भेद-भावका व्यवहार होने दिया गया तो, प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है, शीघ्र ही एक समय ऐसा आयेगा जब कि थोड़ा भी स्वाभिमान रखनेवाले भारतीयका उपनिवेशमें रहना असम्भव हो जायेगा। ऐसी स्थितिसे उनके रोजगार-धंधेमें बहुत बाधा पड़ेगी, और सम्राज्ञीके सैकड़ों प्रजाजन बेरोजगार हो जायेंगे।

(३६) अन्तमें प्रार्थी आशा करते हैं कि उपर्युक्त तथ्यों और दलीलोंसे महानुभावको विश्वास हो जायेगा कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयक अन्यायपूर्ण है। और, महानुभाव सम्राज्ञीकी प्रजाके एक वर्गको दूसरे वर्गके अधिकारोंमें अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करने देंगे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, फर्ज समझकर, सदैव दुआ करेंगे, इत्यादि।

हाजी मुहम्मद हाजी दादा
और सोलह अन्य

[अंग्रेजीसे]

उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपनके नाम नेटालके गवर्नर सर वाल्टर हेली-हचिन्सनके ३१ जुलाई, १८९४ के खरीता नम्बर ६६ का सहपत्र नम्बर १।

क्लोनियल आफिस रेकर्ड्स नं० १७९, जिल्द १८९।

३६. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

एकान्त विश्वासका

पो० आ० बाक्स २५३
डर्बन
जुलाई २७, १८९४

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी, संसद-सदस्य

श्रीमन्,

अपने इसी माहकी १४ ता०के पत्रके सिलसिलेमें आपको नीचे लिखी जानकारी दे रहा हूँ :

ब्रिटिश सरकारके नाम जिस प्रार्थनापत्रकी एक नकल आपको भेजी जा चुकी है वह, मैं सुनता हूँ, पिछले सप्ताह भेज दिया गया था।

अगर खबर देनेवालेकी बात सही है, तो महान्यायवादी श्री एस्कम्बने इस आशयकी रिपोर्ट दी है कि विधेयक स्वीकार करनेका एकमात्र उद्देश्य एशियाइयोंको देशी लोगोंके शासनका नियंत्रण करनेसे रोकना है। परन्तु सच्चा कारण महज यह है — वे भारतीयों पर ऐसी बाधाएँ और निषेध लादना चाहते हैं और उनकी स्थिति ऐसी अपमानास्पद बना देना चाहते हैं कि उपनिवेशमें रुकना उनके लिए फायदेमन्द न रह जाये। फिर भी वे सब भारतीयोंको हटाना नहीं चाहते। जो भारतीय अपने साधनोंसे आते हैं उन्हें तो वे निश्चय ही नहीं चाहते, और गिरमिटिया भारतीयोंकी जरूरत बुरी तरहसे महसूस करते हैं। परन्तु उनके वशमें हो तो वे गिरमिटिया मजदूरोंको अवधि समाप्त होने पर भारत लौट जानेके लिए बाध्य करेंगे। पक्की शेर-बकरीकी साझेदारी! वे खूब जानते हैं कि एकदम ऐसा करना उनके वशकी बात नहीं है। इसलिए उन्होंने मताधिकार विधेयकसे इसका सूत्रपात किया है। वे इस प्रश्न पर ब्रिटिश सरकारका रुख परखना चाहते हैं। विधानसभाके एक सदस्यने मुझे लिखा है कि उसे विश्वास नहीं है, ब्रिटिश सरकार विधेयकको मंजूर करेगी। कहना न होगा, भारतीय समाजके लिए यह कितना जरूरी है कि विधेयकको स्वीकृति न दी जाये।

भारतीयोंके लिए नेटाल बुरी जगह नहीं है। बहुत-से भारतीय व्यापारी यहाँ इज्जतके साथ जीविका-उपार्जन करते हैं। अगर विधेयक कानून बन

गया तो वह भारतीयोंकी आगेकी प्रवृत्तियों पर जबर्दस्त वार करनेवाला होगा।

मैं एक बार कह ही चुका हूँ और, बेशक, फिरसे कह दूँ कि देशी लोगोंके शासनके यूरोपीयोंके हाथोंसे भारतीयोंके हाथोंमें चले जानेकी सम्भावना जरा भी नहीं है। इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकारको डराना मात्र है। यहाँ रहनेवाले लोग — सरकार-सहित — खूब जानते हैं कि ऐसी बात कभी होनेवाली नहीं है। संसदमें अपने हितोंकी हिफाजत करनेके लिए भारतीय दो या तीन गोरे लोगोंको भी चुनें, यह वे नहीं चाहते; ताकि सरकार बिना किसी विघ्न-बाधाके भारतीयोंके सर्वनाशकी तैयारी कर सके।

मैंने सर डब्ल्यू० वेडरबर्न और वहाँके कुछ अन्य सज्जनोंको प्रार्थनापत्रकी नकलें भेजी हैं। कुछ नकलें भारतीय पत्रोंको भी भेज दी हैं।

मेरे पत्रोंकी लम्बाईके लिए कृपा कर क्षमा करें। आप मुझे काम करनेके तरीकेके सुझाव देंगे तो मैं बहुत ही आभारी हूँगा।

आपका विश्वस्त सेवक,

मो० क० गांधी

गांधीजीके अपने हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

३७. नेटाल भारतीय कांग्रेस

(स्थापित : २२ अगस्त, १८९४)

अगस्त, १८९४

अध्यक्ष

श्री अब्दुल्ला हाजी आदम

उपाध्यक्ष

सर्वश्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा, अब्दुल कादिर, हाजी दादा हाजी हबीब, मूसा हाजी आदम, पी० दावजी मुहम्मद, पीरन मुहम्मद, मुरुगेश पिल्ले, रामस्वामी नाइडू, हुसेन मीरन, आदमजी मियाँ खाँ, के० आर० नायना, आमद भायात (पीटरमैरित्सबर्ग), मूसा हाजी कासिम, मुहम्मद कासिम जीवा, पारसी

रुस्तमजी, दाउद मुहम्मद, हुसेन कासिम, आमद टिल्ली, दोरास्वामी पिल्ले, उमर हाजी अबा, उस्मानखाँ रहमतखाँ, रंगस्वामी पदयाची, हाजी मुहम्मद (पीटरमैरित्सवर्ग), कमरुद्दीन (पीटरमैरित्सवर्ग)।

अवैतनिक मन्त्री

श्री मो० क० गांधी

कार्यकारी कमेटी

अध्यक्ष : श्री अब्दुल्ला हाजी आदम। *अवैतनिक मन्त्री* : श्री मो० क० गांधी। *कमेटीके सदस्य* : सब उपाध्यक्ष और सर्वश्री एम० डी० जोशी, नरसीराम, माणेकजी, दावजी मामूजी मुतालह, मुतुकृष्ण, विसेसर, गुलाम हुसेन रांदेरी, शमसुद्दीन, जी० ए० वासा, सरवजीत, एल० ग्रैब्रिएल, जेम्स क्रिस्टोफर, मूबू नाइडू, जान ग्रैब्रिएल, सुलेमान वोराजी, कासमजी आमूजी, आर० कुन्दास्वामी नाइडू, एम० ई० कथराडा, इब्राहीम एम० खत्री, शेख फरीद, वरिन्द इस्माइल रनजीत, पेरुमल नाइडू, पारसी धनजी शा, रायपन, जूसुब अब्दुल करीम, अर्जुनसिंह, इस्माइल कादर, ईसप कड़वा, मुहम्मद ईसाक, मुहम्मद हाफिजजी, एम० फारूख, सुलेमान दावजी, वी० नारायण पायेर, लछमन पाण्डे, उस्मान अहमद, मुहम्मद तय्यब।

सदस्यताकी शर्तें

कोई भी व्यक्ति, जो कांग्रेसके कामको पसन्द करता है, सदस्यताके फार्म पर दस्तखत करके और चन्दा अदा करके कांग्रेसका सदस्य बन सकता है। कमसे कम मासिक चन्दा ५ शिलिंग और सालाना चन्दा ३ पौंड है।

नेटाल भारतीय कांग्रेसके ध्येय

(१) उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच मेलजोल और एकता बढ़ाना।

(२) समाचारपत्रोंमें लिखकर, पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके और भाषण देकर भारतकी जनताको जानकारी देना।

(३) भारतीयोंको — खास तौरसे उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीयोंको — भारतीय इतिहास और भारत-सम्बन्धी साहित्य पढ़नेके लिए समझाना।

(४) भारतीयोंकी हालतोंकी जाँच करना और उनकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए उचित कार्रवाइयाँ करना।
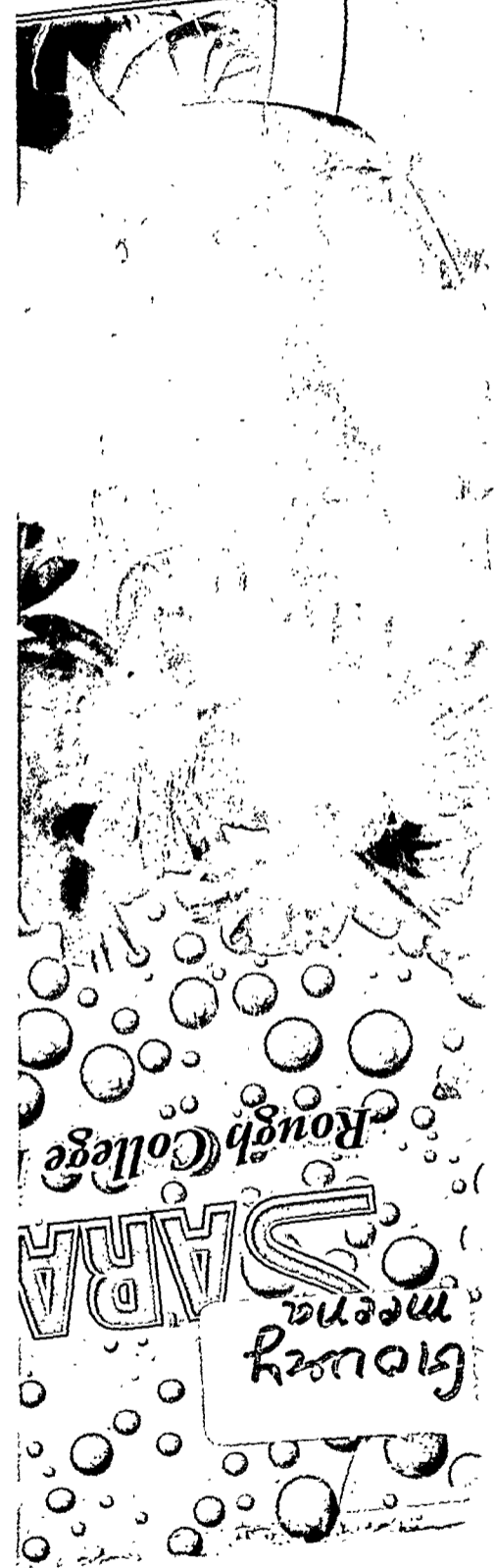
(५) गिरमिटिया भारतीयोंकी हालतोंकी जाँच करना और उनके कष्टोंको दूर करनेके लिए उचित कदम उठाना।

(६) गरीबों और असहायोंको हर युक्तिसंगत तरीकेसे मदद करना।

(७) ऐसे सब काम करना, जिनसे भारतीयोंकी नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक हालतोंमें सुधार हो।

कमेटी द्वारा रद्द अथवा संशोधित और कांग्रेस द्वारा अनुमोदित नियम

(१) बैठकोंके लिए एक भवन किराये पर ले लेनेका अधिकार दिया जाता है। उसका किराया १० पौंड मासिकसे अधिक न हो।

(२) कमेटीकी बैठक महीनेमें कमसे कम एक बार अवश्य होगी।

(३) कांग्रेसका आम अधिवेशन वर्षमें कमसे कम एक बार अवश्य होगा। यह जरूरी नहीं है कि वह डर्बनमें ही किया जाये।

(४) अवैतनिक मन्त्री उपनिवेशके दूसरे भागके सदस्योंको आमंत्रित करेंगे।

(५) कमेटीको नियम बनाने और पास करनेका अधिकार होगा। उसे अन्य साधारण काम-काज करनेके सब दूसरे अधिकार भी होंगे।

(६) कमेटीको उचित वेतन पर एक वैतनिक मन्त्री नियुक्त करनेका अधिकार होगा।

(७) अगर अवैतनिक मन्त्री उचित समझें तो वे कांग्रेसके हितमें दिलचस्पी रखनेवाले किसी यूरोपीयको उपाध्यक्ष बननेके लिए आमंत्रित करेंगे।

(८) अगर अवैतनिक मन्त्री उचित समझें तो वे कांग्रेसके कोषसे कांग्रेसके पुस्तकालयके लिए अखबार मँगा सकते हैं।

(९) अवैतनिक मन्त्री हिसाबकी किताबमें यह दर्ज करेंगे कि कोई चेक उन्होंने अपने दस्तखतोंसे दी है या किसी दूसरेके साथ अपने संयुक्त हस्ताक्षरोंसे।

कमेटीके पास किये नियम

(१) प्रत्येक बैठकका सभापति अध्यक्ष होगा। उसकी अनुपस्थितिमें कमेटीका प्रथम सदस्य और यदि वह भी अनुपस्थित हो तो दूसरा सदस्य सभापति होगा। इसी क्रमसे सभापतित्व किया जायेगा।

(२) बैठकके आरंभमें अवैतनिक मन्त्री पिछली बैठककी कार्रवाई पढ़ेगा और इसके बाद सभापति उसपर हस्ताक्षर करेगा।

(३) यदि मन्त्रीको कोई प्रस्ताव पेश करनेकी सूचना पहलेसे न दी जाये तो कमेटीको उसे अमान्य करनेका अधिकार होगा।

(४) कमेटी या कांग्रेस जो द्रव्य पाये या खर्च करे उसका विस्तृत ब्योरा अवैतनिक मन्त्री पढ़कर सुनायेगा।

(५) अगर कोई प्रस्ताव कमेटीके किसी सदस्य द्वारा पेश न किया जाये और कोई दूसरा सदस्य उसका समर्थन न करे तो कमेटीको उसपर विचार न करनेका अधिकार होगा।

(६) सभापति और मन्त्रीको पदेन कमेटीके सदस्य माना जायेगा। दोनों पक्षोंमें बराबर मत होनेपर सभापतिको निर्णायक मत देनेका अधिकार होगा।

(७) बैठकमें भाषण करते समय प्रत्येक सदस्य सभापतिकी ओर अभिमुख रहेगा।

(८) प्रत्येक सदस्य कमेटीकी बैठकमें किसी दूसरे सदस्यको संबोधित करनेमें श्री (मिस्टर) का उपयोग करेगा।

(९) कमेटीकी बैठककी कार्रवाई इन भाषाओंमें से किसी एक या सबमें की जायेगी — गुजराती, तमिल, हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी।

(१०) अगर जरूरत समझी जाये तो सभापति किसी एक सदस्यको दूसरे सदस्यके भाषणका अनुवाद कर देनेका आदेश देगा।

(११) प्रत्येक प्रस्ताव या सुझाव बहुमतसे स्वीकार किया जायेगा।

(१२) कांग्रेसके पास कमसे कम ५० पौंडकी रकम होने पर अवैतनिक मन्त्री उसे अपनी पसन्दगीके किसी बैंकमें नेटाल भारतीय कांग्रेसके नाम जमा कर देगा।

(१३) अवैतनिक मन्त्री जो द्रव्य बैंकमें जमा न करे उसके लिए उसे जिम्मेदार समझा जायेगा।

(१४) ५ पौंडसे अधिक अनियमित खर्च करनेके लिए कमेटीसे पहले अधिकार प्राप्त करना जरूरी होगा। अगर अध्यक्ष या मन्त्री कमेटीकी पूर्व-स्वीकृतिके बिना उपर्युक्त रकमसे अधिक खर्च करे तो यह माना जायेगा कि उसने अपनी जिम्मेदारी पर ऐसा किया है। अवैतनिक मन्त्री ५ पौंड तककी चेक पर अपने हस्ताक्षर करेगा। इससे अधिक रकमकी चेक पर इन सदस्योंमें से

किसीके साथ संयुक्त हस्ताक्षर करना आवश्यक होगा — सर्वश्री अब्दुल्ला हाजी आदम, मूसा हाजी कासिम, अब्दुल कादर, कोलंदावेलु पिल्ले, पी० दावजी मुहम्मद, हुसेन कासिम।

(१५) बैठकका काम चलानेके लिए कोरम १० सदस्योंका होगा। सभापति और मन्त्री इसके अतिरिक्त होंगे।

(१६) बैठककी सूचना सदस्योंको कमसे कम दो दिन पहले दी जायेगी। यह सूचना अवैतनिक मन्त्री देंगे।

(१७) अगर डाक अथवा किसी संदेशवाहक द्वारा लिखित सूचना दी जाये तो सोलहवाँ नियम पूरा हुआ माना जायेगा।

(१८) यदि कमेटीका कोई सदस्य लगातार ६ बैठकोंमें अनुपस्थित रहे तो उसका नाम सदस्य-सूचीसे खारिज किया जा सकेगा (कमेटी उसे अपने इस इरादेकी सूचना पहले दे देगी)। बैठकमें अनुपस्थित रहनेवाले सदस्यको अगली बैठकमें अपनी अनुपस्थितिका कारण बताना होगा।

(१९) जो सदस्य बिना कोई उचित कारण बताये लगातार तीन महीने तक अपना चन्दा नहीं देगा, उसकी सदस्यता मारी जायेगी।

(२०) कमेटीकी किसी भी बैठकमें धूम्रपानकी इजाजत नहीं होगी।

(२१) अगर दो सदस्य एक साथ भाषण देनेके लिए खड़े हो जायें, तो पहले कौन बोले इसका निर्णय सभापति करेगा।

(२२) अगर सदस्य काफी संख्यामें उपस्थित हों तो कमेटीकी बैठक निश्चित समय पर शुरू हो जायेगी। परन्तु यदि निश्चित समय पर या उसके आधे घंटे बाद तक उपस्थित सदस्योंकी संख्या काफी न हो तो बैठक बिना कोई कार्रवाई किये खत्म हो जायेगी।

(२३) नेटाल इंडियन असोसिएशनको सभा-भवन और पुस्तकालयका उपयोग मुफ्त करनेकी इजाजत होगी। इसके बदलेमें वह लेखनकार्य आदि जैसी उचित सेवाएँ प्रदान करेगा।

(२४) कांग्रेसके सब सदस्योंको कांग्रेस पुस्तकालयका उपयोग करनेका अधिकार होगा।

(२५) कमेटीके सदस्य एक घेरेमें और दर्शकगण उसके बाहर बैठेंगे। दर्शक बैठककी कार्रवाइयोंमें कोई हिस्सा नहीं ले सकते। अगर वे शोर-गुल

आदि करके कोई गड़बड़ी मचायें तो उन्हें सभा-भवनसे निकाला जा सकता है।

(२६) कमेटीको भविष्यमें इन नियमोंमें संशोधन करनेका अधिकार होगा।

एक टाइप की हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई एक अंग्रेजी और एक गुजराती प्रति भी उपलब्ध है। अंग्रेजीकी हस्तलिखित प्रतिमें दी हुई नेटाल भारतीय कांग्रेसके ध्येयोंकी शब्दावली "भारतीय कांग्रेस" (पृष्ठ २५०) और "प्रार्थनापत्र: श्री चेम्बरलेनको" (पृष्ठ ३३७-३८) में उद्धृत की हुई शब्दावलीसे मिलती है। उद्धृत शब्दावली आगेकी तारीखोंकी है, इसलिए स्पष्ट है कि वह बादमें संशोधित की गई है। तीनों प्रतियोंमें थोड़ा-बहुत और भी शाब्दिक अन्तर है। परन्तु, वह गौण स्वरूपका है। ये तीनों प्रतियाँ साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित हैं।

३८. "रामीसामी"

डर्बन
अक्तूबर २५, १८९४

सेवामें
सम्पादक
टाइम्स आफ नेटाल

महोदय,

आपकी अनुमतिसे मैं आपके २२ तारीखके अंकमें प्रकाशित "रामीसामी" शीर्षक अग्रलेख पर कुछ राय व्यक्त करनेकी धृष्टता करता हूँ।

*टाइम्स आफ इंडिया*के जिस लेखका आपने उल्लेख किया है, उसकी सफाई देनेका मेरा इरादा नहीं है। परन्तु क्या आपका अग्रलेख ही उसकी सफाई नहीं दे देता? क्या "रामीसामी" शीर्षक ही गरीब भारतीयोंके प्रति ख्वाहमख्वाह तिरस्कार उगलनेवाला नहीं है? क्या साराका सारा लेख ही उनका व्यर्थ अपमान करनेवाला नहीं है? आपने कृपा कर स्वीकार किया है कि "भारतमें उच्च संस्कारोंके लोग मौजूद हैं," आदि। और फिर भी, अगर आपके वशकी बात हो तो, आप उनको गोरोंके बराबर राजनीतिक अधिकार नहीं देंगे। क्या इस प्रकार आप अपमानको दुहरा अपमानजनक नहीं बना रहे हैं? अगर आप मानते होते कि भारतीय सुसंस्कृत नहीं हैं, बल्कि बर्बर,

ज्ञानहीन प्राणी हैं; और अगर आपने उनको राजनीतिक समानता देनेसे इसी आधार पर इनकार किया होता, तो आपके मन्तव्य कुछ सकारण होते। परन्तु, आपको तो निरपराध लोगोंके अपमानसे प्राप्त आनन्दका अधिकसे अधिक उपभोग करनेके लिए यह बताना जरूरी है कि आप उन्हें बुद्धिमान मानते हैं, और फिर भी उन्हें पैरोंके नीचे कुचले रहेंगे।

फिर, आपने कहा है कि उपनिवेशवासी भारतीय वैसे ही नहीं हैं, जैसे भारतमें रहनेवाले भारतीय हैं। परन्तु, महोदय, आप सुभीतेसे भूल जाते हैं कि वे उसी जातिके लोगोंके भाई-बन्द और वंशज हैं, जिसको आपने बुद्धि-मानीका श्रेय प्रदान किया है। इसलिए उनके अन्दर वह शक्ति छिपी हुई है जिससे, मौका पाने पर, वे अपने अधिक भाग्यवान भारतवासी भाइयोंके समान योग्य बन सकते हैं। यह ठीक वैसा ही है, जैसे कि लन्दनके ईस्ट एण्ड [मजदूर हलके] में रहनेवाले, अज्ञान और दुर्गुणोंके गहरे गर्तमें डूबे हुए व्यक्तिमें भी स्वतन्त्र इंग्लैंडका प्रधानमन्त्री बन जानेकी शक्ति छिपी होती है।

लार्ड रिपनको जो मताधिकार-प्रार्थनापत्र भेजा गया है उसका आपने ऐसा अर्थ लगाया है, जिसको उससे व्यक्त करनेका कभी इरादा ही नहीं था। भारतीयोंको इसका कोई अफसोस नहीं है कि योग्य देशी लोगोंको मताधिकार दिया गया है। उन्हें तो अफसोस तब होता जब इसका उलटा होता। तथापि, उनका यह दावा है कि उन्हें भी, अगर वे योग्य हों तो, वह अधिकार मिलना चाहिए। आप तो बुद्धिमत्ता इसमें समझते हैं कि वह मूल्यवान विशेषा-धिकार भारतीय या आदिवासी किसीको भी किसी भी अवस्थामें न दिया जाये, क्योंकि उनकी चमड़ी काली है। आप केवल बाहरी रूप-रंग देखते हैं। जबतक चमड़ी गोरी है, आपको कोई परवाह नहीं कि उसके अन्दर विष छिपा हुआ है या अमृत। आपको तो पब्लिकन[1]के सच्चे प्रायश्चित्तसे फैरिसी[2]की — क्योंकि वह फैरिसी है — कोरी मौखिक प्रार्थना ज्यादा स्वीकार्य है। और मेरा खयाल है कि इसीको आप ईसाइयत कहेंगे। आप भले ही कहें, मगर यह ईसाकी ईसाइयत तो नहीं है।

१, २. फैरिसी — यहूदी पुरोहित — जो धर्मके बाहरी दिखावेमें विश्वास करता था। परन्तु पब्लिकन पापी होता हुआ भी अपने पापोंके लिए दिलसे पश्चात्ताप करनेवाला था।

गांधीजी : लंदन अन्नाहारी मण्डलके अन्य सदस्योंके साथ, १८९०

नेटाल भारतीय कांग्रेसके संस्थापक, १८९५

अपनी इस तरहकी रायके बावजूद भी आप, जो उपनिवेशके एक सम्मानित
पत्रके सम्पादक हैं, टाइम्स आफ इंडियापर झूठका आरोप लगाते हैं।
अभियोग लगा देना एक बात है, मगर उसे सावित करना दूसरी ही बात है।
आपने अपने लेखका अन्त यह कहकर किया है कि नागरिक जिस किसी
भी अधिकारकी कामना कर सकते हैं, वे सब "रामीसामी" को दिये जा
सकते हैं; केवल "राजनीतिक सत्ता" नहीं दी जा सकती। क्या आपके
अग्रलेखका शीर्षक और उसकी विचारधारा, दोनों उपर्युक्त मतके अनुकूल
हैं? या सुसंगत रहना ईसाइयत और अंग्रेजियतके अनुकूल नहीं है? प्रभुने
कहा था — "छोटे बच्चोंको मेरे पास आने दो!" इस उपनिवेशमें रहने-
वाले उनके शिष्य (?) तो "छोटे"के बाद "गोरे" जोड़कर इसमें सुधार
कर लेना चाहेंगे। मुझे मालूम हुआ कि डर्बनके मेयरने बच्चोंका जो मेला
आयोजित किया था, उसके जुलूसमें एक भी अश्वेत बच्चा दिखलाई नहीं
पड़ता था। क्या यह अश्वेत माता-पितासे पैदा होनेके पापका दण्ड था?
क्या यह उस विशेष प्रकारकी नागरिकताकी तैयारी है, जो आप अपने द्वेष-
भाजन "रामीसामी" को देनेवाले हैं?

अगर प्रभु ईसा हमारे बीच आयें तो क्या वे हममें से अनेकके बारेमें
यह नहीं कहेंगे कि "मैं तुम्हें पहचानता नहीं"? महोदय, क्या मैं एक
सुझाव देनेकी धृष्टता कर सकता हूँ? क्या आप अपना "नया करार" (न्यू
टेस्टामेंट) फिरसे पढ़ेंगे? क्या आप उपनिवेशके अश्वेत निवासियोंके बारेमें
अपने लेख पर विचार करेंगे? और तब क्या आप कह सकेंगे कि वह लेख
बाइबलकी शिक्षा या श्रेष्ठतम ब्रिटिश परम्पराओंके अनुकूल है? अगर आपने
ईसा और ब्रिटिश परम्पराओं दोनोंसे बिलकुल नाता ही तोड़ लिया है तब
तो मुझे कुछ कहना नहीं है; मैं खुशीसे अपनी लिखी हुई सब बातोंको वापस
लेता हूँ। सिर्फ इतना कह दूँ कि, अगर कभी आपके बहुत-से अनुयायी हो
गये तो वह ब्रिटेन और भारतके लिए एक अफसोसका दिन होगा।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स आफ नेटाल, २६-१०-१८९४

३९. पत्र : नाज़रको

डर्बन
नवम्बर १२, १८९४

प्रिय श्री नाज़र,

आपका ४ ता०का पत्र मिला। आपको कल शाम मेरा तार मिला ही होगा। इसके साथ सरकार और मेरे बीच आये-गये तारोंकी नकलें भेज रहा हूँ। सरकार और एजेंटके बीच हुए पत्र-व्यवहारकी नकल मैं देखना चाहता हूँ।

स्टारका लेख बुरा है — बहुत बुरा है। अच्छा हो, आप भी सम्पादकको इस आशयका पत्र लिख दें कि भारतीयोंको सार्वजनिक. . .[1] और चन्देकी जरूरत नहीं है। वे दुनिया भरमें अपनी दानशीलताका ढिंढोरा पीटते नहीं फिरते। अगर १०,००० भारतीय भी ट्रान्सवाल से नेटाल चले जायें तो वे भूखों नहीं मरेंगे और न, इतने पर भी, कोई व्यर्थ आडम्बर किया जायेगा। भारतीय नेटालमें सरकार पर भार बनकर कभी नहीं रहे। भारत दुनियाका सबसे गरीब देश है। वहाँ गरीबोंकी सहायताका कोई कानून नहीं है। वहाँकी मूक और, इसलिए, ईसाई दानशीलताको सभी जानते हैं। स्टार जैसे प्रतिष्ठित पत्रसे, जो ब्रिटिश सिद्धान्तोंकी शेखी मारता है और दीन-दुर्बलोंका पक्षपाती होनेका दम भरता है, यह अपवाद प्रसारित होना अशोभनीय है। आप सम्पादकको यह भी बता सकते हैं कि १०० — करीब १०० — भारतीय अभी कल ही जोहानिसबर्गसे आये हैं, और उनमें से एकको भी भूखों रहना या मददकी खोजमें घूमते फिरना नहीं पड़ा। इसके विपरीत गोरे गरीबोंके लिए सरकारी अधिकारियोंको खास प्रबन्ध करना पड़ता है। और, अन्तमें उसे यह भी बताइये कि, नेटाल सरकार सोच-विचार करके भले निर्णय पर आई और उसने १० पौंड जमा करानेका नियम, देरीसे ही क्यों न हो, खूबसूरतीके साथ स्थगित

१. मूल अंग्रेजी प्रतिमें यहाँका शब्द पढ़ा नहीं जाता।

कर दिया है। *लीडर*को भी लिखकर सरकारके निर्णयकी सूचना दे देना और धन्यवाद तथा सन्तोष व्यक्त कर देना ठीक ही होगा।

आपका हितैषी,

मो० क० गांधी

आशा है, आपने *लीडर*की गलती ठीक करा दी होगी। 'डी-आर'[1] शब्दने भ्रम पैदा कर दिया है।

मो० क० गां०

गांधीजीके अपने हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

४०. एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन

डर्बन

नवम्बर २६, १८९४

सेवामें

सम्पादक

नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

आपके विज्ञापन-स्तम्भोंमें एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनके बारेमें जो विज्ञापन छपा है, उसकी ओर अगर आप अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेकी इजाजत दें तो मैं बहुत आभारी हूँगा। विज्ञापित पुस्तकोंमें जिस विचारधाराका प्रतिपादन किया गया है, वह किसी भी तरह देखने पर कोई नई धारा नहीं है, बल्कि पुरानी विचारधाराका ही आधुनिक मानसको स्वीकार होने योग्य रूपान्तर है। इसके अतिरिक्त, वह धर्मकी एक विचार-धारा है, जो विश्वात्मैक्यकी शिक्षा देती है और सनातन विधितापर आधारित है, केवल परिस्थिति विशेष अथवा ऐतिहासिक तथ्योंपर आधारित नहीं है। उस विचारधारामें ईसाको बड़ा बतानेके लिए मोहम्मद या बुद्धको गाली नहीं दी जाती। उलटे वह ईसाई धर्मके साथ अन्य धर्मोंका

१. अंग्रेजीमें 'Dr' (डाक्टर?)

समन्वय करती है। ग्रंथकारोंके मतसे, ईसाई धर्म उसी सनातन सत्यको प्रस्तुत करनेकी (अनेक प्रणालियोंमें से) एक प्रणाली है। "पुराने करार" (ओल्ड टेस्टामेंट) की अनेक उलझनोंका इन ग्रंथोंमें बिलकुल पूर्ण और सन्तोषजनक हल मिल जाता है।

अगर आपके पाठकोंमें कोई उच्चतर जीवनकी साधनाका आकांक्षी है और उसे वर्तमान भौतिकवाद तथा उसकी तमाम चमक-दमक अपनी आत्माकी भूख मिटानेके लिए अपर्याप्त मालूम हुई है; और अगर वह देखता है कि आधुनिक सभ्यताकी चमक-दमकके पीछे जो-कुछ छिपा है, उसमें से बहुत-कुछ मनुष्यकी अपेक्षाके प्रतिकूल पड़ता है; और, सबसे ऊपर, अगर आधुनिक भोग-विलासके साधन और लगातार होनेवाली सरगर्म प्रवृत्तियाँ उसे कोई राहत नहीं पहुँचातीं; तो, ऐसे व्यक्तिसे मैं ये पुस्तकें पढ़नेकी सिफारिश करता हूँ। और मैं आश्वासन देता हूँ कि इन्हें पढ़कर, इनके विचारोंको पूरी तरह अंगीकार न करने पर भी, वह ज्यादा भला आदमी बन जायेगा।

अगर कोई इस विषयमें मेरे साथ बातचीत करना चाहे तो मुझे इतमीनानके साथ विचार-विनिमय करनेमें बहुत प्रसन्नता होगी। ऐसे जो लोग मेरे साथ व्यक्तिगत रूपसे पत्र-व्यवहार करेंगे उन्हें मैं धन्यवाद ही दूँगा। यह कहना जरूरी नहीं है कि पुस्तकोंकी बिक्री आर्थिक लाभके लिए नहीं की जा रही है। यदि यूनियनके अध्यक्ष श्री मेटलैंड या यूनियनके स्थानिक एजेंटके लिए ये पुस्तकें मुफ्त बाँट देना सम्भव होता, तो वे खुशीसे ऐसा ही करते। कई लोगोंको ये लागत-मूल्यसे भी कम पर दी गई हैं। कुछ लोगोंको मुफ्त भी दे दी गई हैं। बिना मूल्यके व्यवस्थित रूपसे वितरण करना सम्भव नहीं पाया गया। कुछ लोगोंको पढ़नेके लिए ये खुशीसे माँगे दी जायेंगी।

मैं ग्रंथकर्ताओंके नाम स्वर्गीय एवे कान्स्टैंटके पत्रसे एक उद्धरणके साथ इसे समाप्त करूँगा — "मानव-जाति हमेशासे और हर जगह अपने-आपसे ये परम महत्त्वपूर्ण तीन प्रश्न पूछती आई है: हम कहाँसे आये हैं, हम क्या हैं, हम कहाँ जायेंगे? अब *परफेक्ट वे* में इन प्रश्नोंका विस्तृत उत्तर प्राप्त हो गया है, जो पूर्ण, सन्तोषजनक और सान्त्वना देनेवाला है।"

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्करी, ३–१२–१८९४

४१. पुस्तकें विकाऊ

डर्बन, नेटाल

स्वर्गीया श्रीमती ऐना किंग्जफ़र्ड और श्री एडवर्ड मेटलैंडकृत निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित मूल्य पर विकाऊ हैं। ये दक्षिण आफ्रिकामें पहली ही बार लाई गई हैं :

परफेक्ट वे	*शि०* ७/६
क्लोदृड विद द सन	*शि०* ७/६
द स्टोरी आफ द न्यू गॉस्पेल आफ इंटरप्रिटेशन	*शि०* ३/६
द न्यू गॉस्पेल आफ इंटरप्रिटेशन	*शि०* १/–
द बाइबिल्स ओन एकाउंट आफ इटसेल्फ	*शि०* १/–

इन पुस्तकोंके सम्बन्धमें कुछ सम्मतियाँ निम्नलिखित हैं :

"ज्ञानका स्रोत (*परफेक्ट वे*)। भाष्यात्मक और समन्वयात्मक। . . . . . पारमार्थिक विषयोंका कोई विद्यार्थी इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।"

लाइट, लंदन।

"दैवी अनुग्रहके साधनके रूपमें शताब्दीकी तमाम पुस्तकोंमें अद्वितीय।"

—*आकल्ट वर्ल्ड*।

इस विषयकी कुछ पुस्तिकाएँ बिना मूल्य मेरे दफ्तरसे मिल सकती हैं।

मो० क० गांधी

एजेंट, एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, २८–११–१८९४

४२. खुली चिट्ठी

डर्बन
[दिसम्बर, १८९४][1]

सेवामें
माननीय सदस्यगण
विधानपरिषद व विधानसभा

महोदयो,

अगर आपको गुमनाम खत लिखना सम्भव होता, तो मुझे उससे ज्यादा खुशी और किसी बातसे न होती। मगर मुझे इस पत्रमें जो बातें कहनी हैं वे इतनी महत्त्वपूर्ण और गम्भीर हैं कि मेरा अपना नाम प्रकट न करना बिलकुल कायरताका काम माना जायेगा। फिर भी, मैं आपको नम्रतापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मैं न तो स्वार्थ-भावसे लिख रहा हूँ, न अपना महत्त्व बढ़ाने या नाम फैलानेके लिए ही। मेरा एकमात्र उद्देश्य इस उपनिवेशके यूरोपीयों तथा भारतीयोंके बीच अधिक मेलजोल पैदा करना और भारतकी सेवा करना है, जो जन्म-संयोगके कारण मेरा स्वदेश कहलाता है।

यह एक ही तरीकेसे किया जा सकता है। वह तरीका है, लोकमतका प्रतिनिधित्व और निर्माण करनेवाले व्यक्तियोंसे अपील करनेका।

अतः यदि यूरोपीय और भारतीय निरन्तर झगड़ते रहें तो दोष आपके मत्थे होगा। अगर दोनों बिना संघर्षके, शान्तिसे, मिलजुलकर चलें और रहें, तो सारा श्रेय भी आपको ही मिलेगा।

सबूत देनेकी जरूरत नहीं कि सारी दुनियाकी सामान्य जनता बहुत बड़ी हदतक अपने नेताओंके मतोंका अनुसरण करती है। ग्लैड्स्टनका मत आधे इंग्लैंडका मत है, और सेलिसबरीका मत शेष आधेका। जहाज-घाटके मजदूरोंकी हड़तालके समय उनके निमित्त विचार करनेवाला बर्न्स था। पार्नेलने लगभग पूरे आयरलैंडके निमित्त विचार किया। धर्मग्रंथ — मेरा मतलब सारी दुनियाके धर्मग्रंथोंसे है — यही कहते हैं। एड्विन आर्नोल्डके

१. यह चिट्ठी दिसम्बर १९, १८९४ को नेटालके यूरोपीयोंको भेजी गई थी (देखिए, पृष्ठ १६७), इसलिए उस तारीखके पहले तैयार हुई होगी।

"सांग सेलेस्टियल"[1] में कहा गया है—"बुद्धिमान लोग जो पसन्द करते हैं, दूसरे लोग उसे ग्रहण कर लेते हैं। श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग उसका अनुसरण करते हैं।"

इसलिए इस पत्रके लिए क्षमा-याचनाकी जरूरत नहीं है। इसे धृष्टतापूर्ण नहीं माना जायेगा।

क्योंकि, ऐसी अपील और किससे करना ज्यादा ठीक हो सकता है? या, इस पर आपकी अपेक्षा और किसे ज्यादा गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिए?

इंग्लैंडमें आन्दोलन चलानेसे तो उपनिवेशके दोनों समाजोंमें संघर्षकी वृद्धि हो सकती है। ऐसी हालतमें उससे मिलनेवाली राहत निकम्मी होगी। वह राहत ज्यादासे ज्यादा सिर्फ अस्थायी हो सकती है। जबतक उपनिवेशके यूरोपीयोंको भारतीयोंके साथ ज्यादा अच्छा व्यवहार करनेके लिए राजी नहीं किया जा सकता तबतक, ब्रिटिश सरकारकी सतर्कताके बावजूद, उत्तरदायी शासनके अधीन भारतीयोंका जीवन बड़ा कष्टमय है।

विस्तारमें न जाकर, मैं समग्र रूपमें भारतीय प्रश्न की ही चर्चा करूँगा।

मैं मानता हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उपनिवेशमें भारतीयोंको तुच्छ प्राणी माना जाता है, और उनका जो विरोध किया जाता है उस सबका सीधा कारण उनके प्रति यह द्वेष ही है।

अगर इस द्वेषका आधार सिर्फ उनका रंग है तो, बेशक, उनको छुटकारे की कोई आशा नहीं है। ऐसी हालतमें तो वे जितनी जल्दी उपनिवेश छोड़ दें उतना ही अच्छा। वे कुछ भी करें, उनकी चमड़ीका रंग तो गोरा होनेवाला नहीं है। परन्तु, अगर उसका आधार कुछ और है—उनके सामान्य चरित्र और उनकी दक्षताके सम्बन्धमें अज्ञान है—तब तो वे उपनिवेशके यूरोपीयोंके हाथों अपने उचित अधिकार प्राप्त करनेकी आशा जरूर कर सकते हैं।

यह प्रश्न कि उपनिवेश इन ४०,००० भारतीयोंसे क्या काम लेगा, मेरा निवेदन है, उपनिवेशियोंके अत्यन्त गम्भीर विचारके योग्य है। और जिन लोगोंके हाथमें शासनकी बागडोर है, जिन्हें जनताने कानून बनानेके अधिकार सौंप रखे हैं, उनके लिए तो यह विशेष रूपसे विचारणीय है। इन ४०,०००

१. भगवद्गीताका अंग्रेजी पद्यानुवाद।

भारतीयोंको उपनिवेशसे निकाल देना तो, निस्संदेह, एक असम्भव कार्य है। इनमें से अधिकतर अपने परिवारोंके साथ यहाँ बस गये हैं। एक ब्रिटिश उपनिवेशमें जो कानून बनाये जा सकते हैं उनमें से कोई भी कानून बनानेवालोंको यह अधिकार नहीं दे सकता कि वे उन लोगोंको उपनिवेशसे खदेड़ दें। हाँ, शायद यह हो सकता है कि आगे आनेवाले प्रवासियोंको रोकनेका कोई उपाय निकाला जा सके। परन्तु, इसके अलावा भी, मेरा सुझाया हुआ प्रश्न आपका ध्यान खींचनेके लिए और आपसे इस पत्रको निष्पक्ष भावसे पढ़नेका अनुरोध करनेके लिए काफी गम्भीर है।

यह तो आपको ही कहना है कि आप उन्हें सभ्यताके पैमाने पर नीचे झुकायेंगे या ऊपर उठायेंगे। क्या आप उन्हें उस स्तरसे नीचे गिरा देंगे जिसपर उन्हें अपनी वंश-परम्पराके कारण होना चाहिए? आप उनके दिलोंको अपनेसे दूर कर देंगे या अपने ज्यादा नजदीक खींचेंगे? सारांश यह कि आप उनपर अत्याचारपूर्वक शासन करेंगे या सहानुभूतिके साथ?

आप लोकमतको ऐसा बना सकते हैं कि द्वेष दिन-दिन बढ़ता जाये। और अगर आप चाहें तो उसे ऐसा भी बना सकते हैं कि द्वेष ठंडा पड़ने लगे।

अब मैं प्रश्नको निम्नलिखित शीर्षकोंमें बाँट कर उसकी चर्चा करूँगा:

(१) क्या भारतीयोंका नागरिक बनकर उपनिवेशमें रहना वांछनीय है?

(२) भारतीयोंकी हस्ती क्या है?

(३) क्या उनके साथ इस समय किया जानेवाला व्यवहार सर्वोत्तम ब्रिटिश परम्पराओंके, या न्याय तथा नीतिके सिद्धान्तों, या ईसाइयतके सिद्धान्तोंके अनुरूप है?

(४) शुद्ध भौतिक और स्वार्थमय दृष्टिसे, क्या उनके एकाएक या धीरे-धीरे उपनिवेशसे चले जानेसे उपनिवेशका ठोस, चिरस्थायी लाभ होगा?

१

पहले प्रश्नपर विचार करते हुए, सबसे पहले मैं भारतीय मजदूरोंकी चर्चा करूँगा। उनमें से अधिकतर गिरमिटिया बनकर उपनिवेशमें आये हैं।

जो लोग जानकार समझे जाते हैं उन्होंने, जान पड़ता है, मंजूर कर लिया है कि गिरमिटिया भारतीय उपनिवेशकी भलाईके लिए बिलकुल अपरिहार्य हैं। छोटे-छोटे काम करनेवाले नौकरोंके रूपमें हो या हजूरियों

(वेटर)के, रेलवे कर्मचारियोंके रूपमें हो या बागवानोंके — उनका आना उपनिवेशके लिए लाभदायी ही हुआ है। देशी लोग जो काम नहीं कर सकते, या नहीं करते, उसे गिरमिटिया भारतीय खुशीसे और अच्छी तरह करते हैं। यह तो स्पष्ट है कि इस उपनिवेशको दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान-उपनिवेश बनानेमें भारतीयोंकी सहायता काम आई है। उन्हें चीनीकी जायदादोंसे हटा लिया जाये तो उपनिवेशके इस मुख्य उद्योगकी हालत क्या होगी? यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि निकट भविष्यमें देशी लोग वह काम सँभाल सकेंगे। दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य इसका एक उदाहरण है। देशी लोगोंके सम्बन्धमें अपनी तथाकथित जोरदार नीतिके बावजूद, वह धूलभरा रेगिस्तान-सा ही बना हुआ है, हालांकि जमीन बहुत उपजाऊ है। वहाँ सस्ते मजदूर कैसे प्राप्त किये जायें, यह समस्या हर दिन ज्यादा गम्भीर होती जा रही है। नामलायक सिर्फ एक नेलमेपियस-जायदादका बाग है। और क्या उसकी भी सफलताका सारा श्रेय भारतीयोंको ही नहीं है? चुनाव सम्बन्धी एक भाषणमें कहा गया है :

> ...और आखिर, एकमात्र उपाय समझकर, भारतीयोंको लाकर बसानेकी योजना शुरू की गई। विधानमण्डलने बहुत बुद्धिमत्तापूर्वक इस सर्वथा महत्त्वपूर्ण योजनाका समर्थन किया और इसमें मदद की। जब इस योजनाको शुरू किया गया था उस समय उपनिवेशकी उन्नति और करीब-करीब उसका अस्तित्व ही डांवाडोल था। और अब इस प्रवासी-योजनाका परिणाम क्या हुआ? वित्तकी दृष्टिसे, उपनिवेशके खजानेसे प्रति वर्ष दस हजार पौंड दिये गये हैं। परिणाम क्या? यह कि, उद्योगोंके विकास अथवा इस उपनिवेशके हितोंको किसी भी दृष्टिसे बढ़ानेके लिए स्वीकार की गई किसी भी रकमका इतना आर्थिक प्रतिफल नहीं मिला, जितना कि कुलियोंको मजदूरोंके तौरपर यहाँ लानेसे दिखलाई पड़ा है।... मेरा विश्वास है कि उपनिवेशके उद्योगोंके लिए जैसे मजदूरोंकी जरूरत है, ये वैसे ही हैं। इनको लाया न गया होता, तो डर्बनके यूरोपीयोंकी आबादी आजकी अपेक्षा आधीसे भी कम होती, और आज जहाँ बीस मजदूर काम करते हैं वहाँ सिर्फ पाँचकी ही जरूरत रहती। वहाँकी जमीन-जायदादका मूल्य आजकी अपेक्षा तीन-चार सौ फी-सदी कम होता। उपनिवेशके अन्य स्थानों और नगरोंमें भी जमीनका

मूल्य इसी अनुपातमें कम होता। तटवर्ती भूमि आज जिस भाव पर बिकती है, वह भाव कभी भी सम्भव न होता।

ये सज्जन [जिनका उद्धरण ऊपर दिया गया है] और कोई नहीं, श्री गार्लैण्ड हैं। बेचारे भारतीयोंको वे लोग भी तिरस्कारके साथ "कुली" कहकर पुकारते हैं, जिन्हें ज्यादा अच्छी जानकारी होनी चाहिए। इन "कुलियों" से प्राप्त होनेवाली ऐसी अमूल्य सहायताके बावजूद उक्त माननीय सज्जन भारतीयोंकी उपनिवेशमें बसनेकी वृत्तिपर कृतघ्नताके साथ खेद प्रकट करते जाते हैं।

*नेटाल मर्क्युरी*ने अपने ११ अगस्त, १८९४ के अंकमें *न्यू रिव्यू*से श्री जान्स्टनका एक लेख उद्धृत किया है। उसका निम्नलिखित अंश मैं यहाँ देता हूँ :

लोग समस्याका हल पीली जातिको लानेमें देखते हैं। यह जाति गरम आबहवा बरदाश्त करनेमें समर्थ है, और उन कामोंको करनेकी काफी बुद्धि रखती है, जिन्हें सम-शीतोष्ण जलवायुमें यूरोपीय करते हैं। यह पीली जाति पूर्वी आफ्रिकामें अत्यन्त सफल रही है। यह हिन्दुस्तानकी निवासी है। भिन्न-भिन्न किस्मों और भिन्न-भिन्न धर्मोंवाली इस जातिने, ब्रिटिश या पोर्तुगीज शासनमें, पूर्व आफ्रिकी तटवर्ती प्रदेशके व्यापारको शुरू किया और बढ़ाया है। मध्य आफ्रिकामें इन सीधे-सादे, परोपकारी, कमखर्च, मिहनती, अँगुलियोंके दक्ष और कुशाग्र बुद्धिके भारतीयोंको लानेसे हमें उस क्षेत्रमें अपनी सशस्त्र सेनाओंके लिए ठोस बल मिल जायेगा। हमें तार-बाबू, छोटे-छोटे दूकानदार, कुशल कारीगर, बावरची, छोटे-छोटे कर्मचारी, मुहर्रिर, और रेलवे कर्मचारी भी मिलेंगे, जो गरम आबहवावाले आफ्रिकाके सभ्य शासनके लिए जरूरी हैं। काले और गोरे दोनों ही भारतीयोंको चाहते हैं, इसलिए वे इन दोनों परस्पर-विरोधी जातियोंके बीच सम्बन्ध जोड़नेवाली कड़ीका काम देंगे।

जहाँतक भारतीय व्यापारियोंका सम्बन्ध है, जिन्हें गलत नाम — "अरब" — से पुकारा जाता है, सबसे अच्छा यह होगा कि उनके उपनिवेशमें आने-पर जो आपत्तियाँ की जाती हैं, उनपर विचार किया जाये।

समाचारपत्रोंसे — खासकर ६–७–९४ के *नेटाल मर्क्युरी* और १५–९–९३ के *नेटाल एडवर्टाइज़र*से — आपत्तियाँ ये मालूम होती हैं कि वे सफल
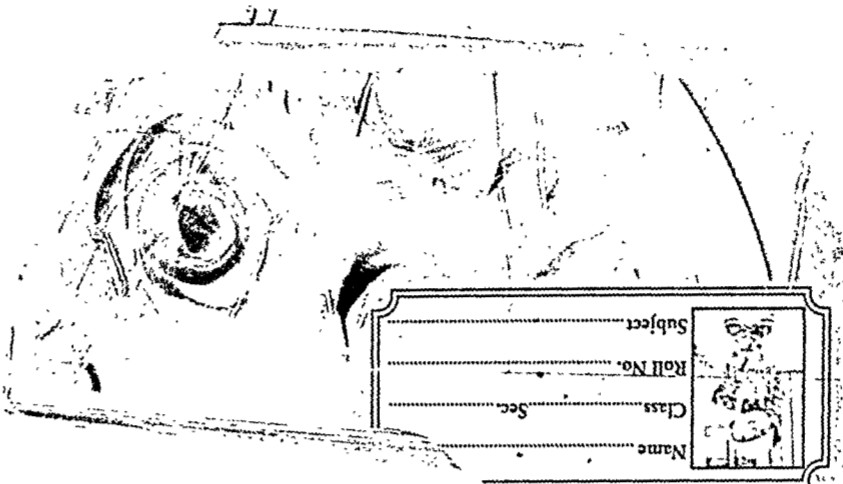
व्यापारी हैं और, रहन-सहन बहुत सादा होनेके कारण, छोटे-छोटे रोजगारोंमें यूरोपीय व्यापारियोंसे बाजी मार ले जाते हैं। इक्के-दुक्के व्यक्तिगत उदाहरणोंको लेकर जो यह साधारण निष्कर्ष निकाला जाता है कि भारतीय रोजगारमें बेईमानी करते हैं, उसे मैं विचार करनेके अयोग्य मानकर रद करता हूँ। और दिवालियापनके खास उदाहरणके बारेमें तो, उनकी सफाई देनेका कोई खयाल न रखते हुए, मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि "जो निष्पाप हो वह पहला पत्थर फेंके।" कृपा कर दिवाला-अदालतके कागज-पत्रोंकी जाँच कीजिए।

अब उनकी सफल होड़-सम्बन्धी गम्भीर आपत्तिको लें। मैं मानता हूँ कि यह सच है। परन्तु, क्या यह कोई कारण है, जिससे उन्हें उपनिवेशसे खदेड़ दिया जाये? क्या सभ्य लोगोंका समाज ऐसा तरीका पसन्द करेगा? कौन-सा कारण है, जिससे वे इतने सफल प्रतिद्वन्द्वी बने? सरसरी तौरपर देखनेवाला भी जान सकता है कि कारण उनकी आदतें हैं, जो बहुत सीधी-सादी होती हुई बर्बर नहीं हैं, जैसा कि नेटाल एडवर्टाइज़रने बताना पसन्द किया है। मेरे खयालसे उनकी सफलताका सबसे मुख्य कारण शराब और उसके साथकी बुराइयोंसे पूर्ण आत्मनिग्रह है। इससे एकदम भारी परिमाणमें धनकी बचत हो जाती है। इसके अलावा, उनकी रुचियाँ सादी हैं, और वे अपेक्षाकृत कम मुनाफेसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वे व्यर्थ बहुत बड़ा ठाट-बाट नहीं जमाते। सारांश यह कि वे अपने ही खरे पसीनेकी रोटी कमाते हैं। ये सब बातें उनके उपनिवेशमें रहनेपर आपत्तिके रूपमें कैसे पेश की जा सकती हैं, समझना कठिन है। बेशक, वे जुआ नहीं खेलते, साधारणतः तमाखू नहीं पीते, छोटी-छोटी असुविधाओंको बरदाश्त कर सकते हैं और रोजाना आठ घंटेसे ज्यादा काम कर सकते हैं। अगर उनसे अपेक्षा की जाये तो, क्या यह वांछनीय होगा कि वे इन सद्गुणोंको तिलांजलि दे दें और जिन दुर्गुणोंसे ग्रस्त होकर पश्चिमी राष्ट्र कराह रहे हैं, उन्हें पकड़ लें, ताकि उन्हें बिना छेड़छाड़के उपनिवेशमें रहने दिया जाये?

भारतीय व्यापारियों और मजदूरों, दोनोंके बारेमें जो सामान्य आपत्ति की जाती है उसपर भी विचार कर लेना बहुत अच्छा होगा। आपत्ति है, उनकी अस्वच्छ आदतोंके सम्बन्धमें। मुझे भारी मर्मवेदनाके साथ यह आरोप आंशिक रूपमें मंजूर करना ही होगा। बेशक, उनकी अस्वच्छ आदतोंके खिलाफ जो-कुछ कहा जाता है उसके बहुत-से अंशका आधार तो सिर्फ ईर्ष्या-द्वेष है,

फिर भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इस विषयमें वे पूरे-पूरे वैसे नहीं हैं, जैसे होनेकी उनसे अपेक्षा की जा सकती है। परन्तु उन्हें उपनिवेशसे निकाल देनेका कारण तो इसे कदापि नहीं बनाया जा सकता। इस विषयमें उनसे सुधारकी आशा ही न की जा सकती हो, सो बात नहीं है। मेरा निवेदन है कि सफाई-कानूनके दृढ़ फिर भी न्याय और दयापूर्ण प्रयोगसे इस बुराईका सफल मुकाबला और मूलोच्छेद भी हो सकता है। बुराई इतनी बड़ी भी तो नहीं है कि उसके खिलाफ कठोर कार्रवाईकी जरूरत हो। आप देखेंगे कि अगर गिरमिटिया भारतीयोंको छोड़ दिया जाये तो शेष भारतीयोंकी व्यक्तिगत आदतें गन्दी नहीं हैं। गिरमिटिया तो इतने गरीब हैं कि वे अपनी व्यक्तिगत सफाई पर ध्यान दे ही नहीं सकते। मैं अपने अनुभवसे यह कहनेकी इजाजत चाहता हूँ कि व्यापारी सम्प्रदायके लोग हफ्तेमें कमसे कम एक बार स्नान करने के लिए, और जब-जब नमाज पढ़ें, कुहनियों तक हाथ, मुँह और पैर धोनेके लिए धर्मके द्वारा बाध्य हैं। उनके लिए दिनमें चार बार[1] नमाज पढ़नेका नियम है और ऐसे बहुत कम लोग हैं जो दिनमें कमसे कम दो बार नमाज नहीं पढ़ते।

मुझे आशा है, यह तो फौरन मान लिया जायेगा कि जो दुर्गुण किसी सम्प्रदायको पूरे समाजके लिए खतरनाक बना देते हैं उनसे वे गैर-मामूली तौरपर बरी हैं। संवैधानिक सत्ताको शिरोधार्य करनेमें वे किसीसे पीछे नहीं हैं। राजनीतिक दृष्टिसे वे कदापि खतरनाक नहीं हैं। और कलकत्ता तथा मद्रासमें अरकाटियोंने बिना जाने कभी-कभी जिन गुण्डोंको भरती कर लिया है उन्हें छोड़कर बाकी लोग भयानक अपराधोंसे मुक्त हैं। खेद है कि मैं फौजदारी अदालतोंके आँकड़ोंकी तुलना करनेमें समर्थ नहीं हूँ, इसलिए इस विषयमें अधिक नहीं कह सकता। परन्तु मैं *नेटाल आलमैनेक*से यह उद्धरण देनेकी इजाजत चाहता हूँ: "भारतीय आबादीके बारेमें कहना ही होगा कि समग्रत: वह व्यवस्थाप्रिय और कानूनका पालन करनेवाली है।"

मैं निवेदन करता हूँ, उपर्युक्त तथ्य बताते हैं कि भारतीय मजदूर न सिर्फ वांछनीय हैं, बल्कि उपनिवेशके उपयोगी नागरिक हैं। वे उपनिवेशके कल्याणके लिए बिलकुल अनिवार्य हैं। और जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध

१. पाँच बार।

है, उनमें तो कोई ऐसी बात है ही नहीं जो उन्हें उपनिवेशके लिए अवांछनीय बना दे।

इस विषयको समाप्त करनेके पहले मैं यह भी कह देना चाहूँगा कि भारतीय व्यापारी, जहाँतक वे अपनी जोरदार प्रतिद्वन्द्विताके द्वारा जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव मंदे रखते हैं, यूरोपीय समाजके गरीब तबकेके लिए सचमुच वरदान-स्वरूप हैं। और भारतीय मजदूरोंके लिए तो वे अपरिहार्य ही हैं। उनकी जरूरतोंकी वे जानकारी रखते हैं और उनकी पूर्ति करते हैं। उनके साथ वे यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अपनेपनके साथ व्यवहार कर सकते हैं।

२

हमारी छानबीनका दूसरा शीर्षक, अर्थात् "भारतीयोंकी हस्ती क्या है", सबसे महत्त्वपूर्ण है। मेरा निवेदन है कि आप इसे ध्यानसे पढ़ें। अगर इससे भारत और भारतीयोंके बारेमें अध्ययनको उत्तेजन ही मिल जाये, तो मेरा इसे लिखनेका उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा; क्योंकि मेरा पूरा विश्वास है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके मार्गमें जो कठिनाइयाँ पेश की जाती हैं उनमें से आधी, या तीन-चौथाई भी, भारत-सम्बन्धी जानकारीके अभावसे पैदा हुई हैं।

मैं यह पत्र जिनके नाम लिख रहा हूँ उनका मुझे खूब ध्यान है। मुझसे ज्यादा ध्यान किसे हो सकता है? कुछ माननीय सदस्य मेरे पत्रके इस अंशको अपमानजनक समझकर नाराज हो सकते हैं। ऐसे सज्जनोंसे मैं अत्यन्त आदर-पूर्वक निवेदन करता हूँ कि "मुझे मालूम है, आपको भारतके बारेमें बहुत-कुछ ज्ञान है। परन्तु क्या यह एक निष्ठुर सत्य नहीं है कि उपनिवेशको आपके ज्ञानका लाभ नहीं मिला? भारतीयोंको तो निश्चय ही नहीं मिला। हाँ, यह बात अलग है कि आपने जो ज्ञान प्राप्त किया है वह उसी क्षेत्रमें काम किये हुए दूसरे लोगों द्वारा प्राप्त ज्ञानसे भिन्न हो, या उसके विपरीत हो। फिर, यद्यपि यह विनम्र पत्र प्रत्यक्षतः आपके नाम लिखा जा रहा है, तो भी मान्यता यह है कि यह अनेक लोगोंके पास, सचमुच तो उन सबके पास पहुँचेगा, जिनकी वर्तमान निवासियोंसे आबाद इस उपनिवेशके भविष्यमें दिलचस्पी है।"

मताधिकार विधेयकके दूसरे वाचनके समय अपने भाषणमें प्रधानमन्त्रीने जो विपरीत अभिप्राय व्यक्त किया है, उसके बावजूद, उनके प्रति अधिकतम आदर रखते हुए भी, मैं बतानेकी धृष्टता करता हूँ कि अंग्रेज और भारतीय

एक ही इण्डो-आर्यन मूलवंशकी सन्तान हैं। इसके समर्थनमें बहुत-से ग्रंथ-लेखकोंके उदाहरण तो नहीं दे सकूँगा, क्योंकि दुर्भाग्यवश मेरे पास संदर्भ-ग्रंथ बहुत कम हैं; फिर भी, सर विलियम विल्सन हंटरकी पुस्तक *इण्डियन एम्पायर* [भारतीय साम्राज्य]से मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ:

> यह उदात्ततर जाति (अर्थात्, प्राचीन आर्य) आर्य या इण्डो-जर्मनिक मूल-वंशकी थी, जिससे कि ब्राह्मण, राजपूत और अंग्रेज एक समान पैदा हुए हैं। इतिहास इसका प्राचीनतम निवासस्थान मध्य एशिया बताता है। उस सामान्य शिविर-स्थलसे कुछ शाखाएँ पूर्वकी ओर चलीं, कुछ पश्चिमकी ओर। एक पश्चिमी शाखाने पर्शियाका साम्राज्य स्थापित किया, दूसरी एथेन्स और लेसीडीमोनका साम्राज्य स्थापित करके हेलेनिक राष्ट्रके रूपमें परिणत हो गई। तीसरी इटली पहुँची और उसने "सात पहाड़ोंका नगर" बसाया, जिसने बढ़कर रोम-साम्राज्यका रूप धारण किया। उसी जातिके एक सुदूर उपनिवेशने स्पेनकी प्रागैतिहासिक चाँदीकी खानोंका खनन किया। और जब हम प्राचीन इंग्लैंडकी पहली झलक पाते हैं तो हमें एक आर्य उपनिवेशके दर्शन होते हैं, और हम उसके निवासियोंको नरकुलकी डोंगियोंपर मछलियाँ पकड़ते और कार्नवालकी टीनकी खानोंका खनन करते हुए देखते हैं।
>
> यूनानियों और रोमनोंके, अंग्रेज और हिन्दुओंके पूर्वज एक साथ एशियामें रहते थे, एक ही भाषा बोलते थे और एक ही देवताओंकी पूजा करते थे।
>
> यूरोप और भारतके प्राचीन धर्मोंका मूल एक-जैसा ही था।

इस प्रकार आप देखेंगे कि इस विद्वान इतिहासज्ञने बिना किसी शंका अथवा किन्तु-परन्तुके उपर्युक्त मन्तव्य व्यक्त किया है। उसने तमाम प्रामाणिक ग्रंथोंका अध्ययन किया ही होगा। इसलिए अगर मैं कोई भूल भी कर रहा हूँ तो वह भूल अधिक अच्छे व्यक्तियोंने भी की है। और यह विश्वास, गलत हो या सही, उन लोगोंकी प्रवृत्तियोंके आधारका काम करता है, जो दोनों जातियोंके हृदयोंको जोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं। ये जातियाँ कानूनी और बाह्य रूपमें तो एक झंडेके नीचे परस्पर एकसूत्रसे बँधी हुई हैं ही।

उपनिवेशमें सामान्यतः यह विश्वास फैला हुआ दीखता है कि अगर भारतीय बेहतर लोग हों भी तो वे बर्बरों या आफ्रिकाके देशी लोगोंसे बेहतर नहीं

हैं। बच्चों तकको ऐसा ही विश्वास करना सिखाया जाता है। परिणाम यह है कि भारतीयोंको निरे काफिरोंकी हैसियतमें नीचे ढकेला जा रहा है।

मेरा पक्का विश्वास है कि उपनिवेशका ईसाई विधानमण्डल जानबूझकर ऐसी स्थिति पैदा होने और कायम रहने नहीं देगा। इसी भरोसेपर मैं निम्नलिखित विपुल उद्धरण दे रहा हूँ। इनसे एकदम मालूम हो जायेगा कि हम औद्योगिक, बौद्धिक, काव्यात्मक आदि जीवनके विभिन्न अंगोंमें उनके ऐंग्लो-सैक्सन भाइयोंसे — अगर मैं इस शब्दका उपयोग कर सकूं तो — किसी कदर ओछे नहीं हैं।

जहाँतक भारतीय दर्शन और धर्मका सम्बन्ध है, "इण्डियन एम्पायर" के विद्वान लेखकने सार-रूपमें यह कहा है:

> व्यावहारिक धर्मके जो हल ब्राह्मणोंने निकाले वे हैं — तप, दान, यज्ञ और ईश्वरका ध्यान। परन्तु आध्यात्मिक जीवनके व्यावहारिक प्रश्नोंके अलावा धर्मकी बौद्धिक समस्याएँ भी हैं, जैसे कि दुनियाकी बुराईके साथ ईश्वरकी अच्छाईका समन्वय और जीवनमें सुख और दुःखका असम विभाजन। ब्राह्मणोंके दर्शनने इन समस्याओंके, और अधिकतर भारी समस्याओंके, हल खोज निकाले हैं, जब कि यूनानी और रोमन ऋषियों, मध्यकालीन आचार्यों और *आधुनिक वैज्ञानिकों*को (टाइपमें फर्क मैंने किया है) इन्होंने उलझनमें डाले रखा है। उन्होंने सृष्टि, व्यवस्था और विश्वासकी विभिन्न कल्पनाओंमें से प्रत्येकका विस्तार किया है, और *आधुनिक शरीर-शास्त्रियोंके विचार नई सूझबूझके साथ हमें कपिलके विकास-सिद्धान्तकी ही ओर वापस ले जानेवाले हैं।* (यहाँ भी टाइपका फर्क मेरा ही है)। १८७७ में भारतकी विविध भाषाओंमें १,१९२ धार्मिक ग्रंथ और, उनके अलावा, ५६ ग्रंथ तत्त्वज्ञान पर प्रकाशित हुए। १८८२ में धार्मिक ग्रंथोंकी कुल संख्या १,५४५ और तत्त्वज्ञानके ग्रंथोंकी १५३ तक बढ़ गई।

भारतीय दर्शनके बारेमें मैक्समूलरने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं। (यह अंश और कुछ दूसरे अंश भी मताधिकार-प्रार्थनापत्रमें अंशतः या पूर्णतः उद्धृत किये गये हैं):

> **अगर मुझसे पूछा जाये कि किस देशके मनुष्योंके मानसने अपने कुछ सर्वोत्तम गुणोंका अधिकसे अधिक पूर्ण विकास किया है, जीवनकी बड़ीसे**

बड़ी समस्याओं पर अत्यन्त गंभीरताके साथ विचार किया है और उनके ऐसे हल प्राप्त किये हैं, जो प्लेटो और कांटके दर्शनोंका अध्ययन किये हुए लोगोंके लिए बखूबी विचार करने योग्य हैं, तो मैं भारतकी ओर इंगित करूँगा। और अगर मुझे अपने-आपसे पूछना हो कि यूरोपके हम लोग, जो लगभग यूनानी, रोमन और एक सेमिटिक जाति — यहूदी — के विचारों मात्र पर ही पालित-पोषित हुए हैं, वह संशोधन कहाँके साहित्यसे प्राप्त कर सकते हैं, जो हमारे जीवनको अधिक परिपक्व, अधिक व्यापक, अधिक सार्वलौकिक, दरअसल अधिक सच्चे रूपमें मानवीय — न केवल इस जन्मके लिए जीवन, बल्कि तमाम जन्मोंके लिए रूपान्तरित व सनातन जीवन — बनानेके लिए नितान्त आवश्यक है, तो फिर भी मैं भारतकी ही ओर संकेत करूँगा।

जर्मन दार्शनिक शोपेनहारने उपनिषदोंमें निहित भारतीय दर्शनकी भव्यता पर यह साक्षी दी है:

एक-एक वाक्यसे मौलिक और उदात्त विचार उदित होते हैं और सम्पूर्ण वस्तु एक उच्च, पवित्र तथा उत्कट भावनासे व्याप्त है। हम भारतीय वातावरण और सगोत्र आत्माओंके मौलिक विचारोंमें निमज्जन करने लगते हैं। . . . सारे संसारमें मूल तत्त्वोंको छोड़कर और किसी वस्तुका अध्ययन इतना लाभदायक और इतना उन्नयनकारी नहीं है, जितना कि उपनिषदोंका। उससे मुझे जीवनमें समाधान मिला है और मृत्युमें भी समाधान मिलेगा।

विज्ञानके विषयमें सर विलियमका कथन है:

पश्चिमके वैयाकरण जब भाषा-विज्ञानका विवेचन आकस्मिक समानताओंके आधार पर कर रहे थे, उस समय भारतमें उसे मूलभूत सिद्धांतोंका रूप मिल चुका था। आधुनिक भाषा-विज्ञानका आरंभ तो तब हुआ जब यूरोपीय विद्वानोंने संस्कृतका अध्ययन किया। . . . पाणिनिके व्याकरणका स्थान संसारके व्याकरणोंमें सर्वोच्च है। . . . सम्पूर्ण संस्कृत भाषाको उसके द्वारा एक तर्कसंगत और व्यवस्थित रूपमें प्रस्तुत कर दिया गया है। और

वह मानवीय आविष्कार और उद्योगकी एक शानदार सिद्धिके रूपमें देदीप्यमान है।

सर एच० एस० मेन अपने रीड-व्याख्यानमें, जो *विलेज कम्युनिटीज़*के नवीनतम संस्करणमें प्रकाशित हुआ है, विज्ञानके उसी अंग पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :

भारतने दुनियाको तुलनात्मक भाषाशास्त्र दिया है और ऐसी पौराणिक कथा-सामग्री भी प्रदान की है, जिससे पुराणोंका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हुआ है। वह अभी एक और नया शास्त्र दे सकता है। उसका महत्त्व भाषाशास्त्र और लोककथाशास्त्रसे कम न होगा। मुझे उसको तुलनात्मक न्यायशास्त्र कहनेमें संकोच है, क्योंकि यदि कभी उसका आविर्भाव हुआ तो उसका क्षेत्र कानूनके क्षेत्रसे बहुत विस्तृत होगा। कारण यह है कि, भारतमें एक ऐसी आर्य भाषा मौजूद है (या, अधिक सही, मौजूद रही है), जो उसी सर्वसामान्य मातृभाषासे निकली अन्य सब भाषाओंसे पुरानी है। उसके पास प्राकृतिक पदार्थोंके ऐसे अनेकानेक नाम भी हैं, जो काल्पनिक व्यक्तियोंके अर्थमें उतने रूढ़ नहीं हुए, जितने कि अन्य स्थानोंके नाम हो गये हैं। इसके अलावा, असंख्य आर्य संस्थाएँ, आर्य प्रथाएँ, आर्य कानून, आर्य विचार और आर्य विश्वास उसके पास सुरक्षित हैं। उसकी सीमाके बाहर इनमें से जो वस्तुएँ अब भी अवशिष्ट रह गई हैं, उन सबकी अपेक्षा ये विकास तथा वृद्धिकी अधिक प्राचीन अवस्थामें हैं।

भारतीय ज्योतिषके बारेमें वही इतिहासकार [हंटर] कहता है :

ब्राह्मणोंके ज्योतिषकी कभी बहुत अधिक सराहना हुई है, कभी अनुचित तिरस्कार हुआ है। . . . कुछ बातोंमें ब्राह्मण यूनानी ज्योतिषसे आगे बढ़ गये थे। उनकी कीर्ति सारे पश्चिममें फैली और उसे 'क्रानिकन पास्केल'[1] में स्थान मिला। आठवीं और नौवीं शताब्दीमें अरब लोग उनके शिष्य बन गये।

१. ईसाइयोंकी पौराणिक पुस्तक, जिसमें आदमसे लेकर सन् ६२९ ई० तक की सृष्टि-कथाका काल-क्रम दिया गया है। माना जाता है कि यह सन् ६१० से ६४१ के बीच लिखी गई थी।

बीजगणित और अंकगणितमें (मैं फिर सर विलियमका ही उद्धरण दे रहा हूँ) ब्राह्मणोंने पश्चिमी सहायताके बिना स्वतन्त्र रूपसे ऊँचे दर्जेकी दक्षता प्राप्त कर ली थी। दशमलव प्रणालीके आविष्कारका उनका हम पर ऋण है। . . . अरबोंने ये अंक हिन्दुओंसे प्राप्त करके यूरोपमें फैलाये। . . . गणित और यंत्रशास्त्र पर भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित ग्रंथोंकी संख्या १८७७ में ८९ और १८८२ में १६६ थी।

वही प्रतिष्ठित इतिहासकार आगे लिखता है:

ब्राह्मणोंने चिकित्साशास्त्रका विकास भी स्वतन्त्र रूपसे किया। . . . पाणिनिके व्याकरणमें विशेष रोगोंके जो नाम पाये जाते हैं, उनसे मालूम होता है कि चिकित्साशास्त्रका विकास उसके काल (सन् ३५० ईसापूर्व) के पहले हो चुका था। . . . अरब चिकित्सा-प्रणालीकी आधारशिला संस्कृत ग्रंथोंके अनुवादों पर रखी गई। . . . यूरोपीय चिकित्साशास्त्रका आधार १७वीं शताब्दी तक अरब चिकित्साशास्त्र ही था। १८७७ में भारतीय भाषाओंमें चिकित्साशास्त्र पर १३० और १८८२ में २१२ ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। प्राकृतिक विज्ञान पर जो ८७ ग्रंथ प्रकाशित हुए थे वे इनमें शामिल नहीं हैं।

युद्ध-कला पर लिखते हुए लेखक कहता है:

ब्राह्मण लोग केवल चिकित्साशास्त्रको ही नहीं, बल्कि युद्धकला, संगीत और शिल्पकलाको भी अपने देव-प्रेरित ज्ञानके पूरक अंग समझते थे। . . . संस्कृत महाकाव्योंसे सिद्ध होता है कि युद्धकलाको ईसाके जन्मके पूर्व ही एक सर्वमान्य विज्ञानकी अवस्था प्राप्त हो चुकी थी। बादमें लिखे गये अग्नि-पुराण में लम्बे-लम्बे परिच्छेदोंमें उसका व्यवस्थित वर्णन किया गया है।

भारतीय संगीतकलाका प्रभाव अधिक व्यापक हुए बिना रह नहीं सकता था। . . . यह स्वरलिपि ब्राह्मणोंके पाससे ईरानियोंके द्वारा अरब पहुँची। वहाँसे गाइडो ड आरेज़ोने ११वीं शताब्दीके आरंभमें इसे यूरोपीय संगीतमें दाखिल किया।

स्थापत्य-कला पर वही लेखक कहता है :

भारतके बौद्ध लोग पत्थरकी भवन-निर्माण कलामें अत्यन्त कुशल थे। उनके विहार और मठ बाईस शताब्दियोंके कला-इतिहासका परिचय देनेवाले हैं, जो पर्वतशिलाओंको काट कर बनाये गये प्राचीनतम गुहा-मन्दिरोंसे लेकर ईंट-चूनेके बने, झलमलाते हुए और अलंकारोंसे अति-सज्जित आधुनिकतम जैन मंदिरों तकमें सुव्यक्त है। असम्भव नहीं कि यूरोपके गिरजाघरोंकी मीनारें बौद्ध स्तूपोंसे ही विकसित हुई हों। . . . हिन्दू कलाकारोंने ऐसे स्मारक बना रखे हैं, जो इस युगमें बरबस हमें कौतूहल और आश्चर्यमें डाल देते हैं।

दक्षिण भारतके अनेक हिन्दू मन्दिरोंके साथ-साथ, ग्वालियरके राजमहलकी हिन्दू स्थापत्य-कला, भारतीय मुसलमानोंकी मसजिदें और दिल्ली तथा आगराके मकबरे अपने सौन्दर्य, रूपरेखा और प्रचुर अलंकार-सम्पत्तिमें कोई सानी नहीं रखते।

हमारे युगकी ब्रिटिश अलंकरण-कलाने भारतीय आकृतियों और नमूनोंसे बहुत-कुछ ग्रहण किया है। सच्चे स्वदेशी नमूनोंकी भारतीय कलाकृतियोंका अब भी यूरोपकी अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनियोंमें अधिकतम सम्मान होता है।

एंड्रू कार्नेगीने अपनी पुस्तक राउंड द वर्ल्ड [संसार-भ्रमण] में आगराके ताजमहलके बारेमें लिखा है :

कुछ विषय इतने पवित्र होते हैं कि उनका विश्लेषण तो क्या, वर्णन भी नहीं किया जा सकता। और अब मैं मनुष्यकी बनाई एक ऐसी इमारतको जानता हूँ, जिसकी उत्कृष्टता या अलौकिकताने उसे ऐसे ही पवित्र क्षेत्रमें उठा दिया है। ताजमहल हलके मखनिया संगमर्मरका बना है, जिससे वह दर्शकको ठिठुरा नहीं देता, जैसा कि शुद्ध ठंडा सफेद संगमर्मर करता है। वह स्त्रीके समान गरमाहट देनेवाला और हमदर्द है। . . . एक महान समालोचकने ताजमहलको मुक्त भावसे स्त्रीत्वमय कहा है। वह कहता है कि उसमें पौरुषेय कुछ नहीं है, उसकी सम्पूर्ण रम्यता स्त्री-सुलभ है। इस मखनिया संगमर्मरमें संगमूसाकी बारीक काली रेखाओंकी पच्चीकारी की गई है और, कहा जाता है, इस प्रकार अरबी लिपिमें पूरीकी पूरी कुरानशरीफ

अंकित कर दी गई है। ... चाहे पहाड़ी झरनोंके बीच हो, चाहे छिटकी हुई चाँदनीमें और चाहे जंगलमें सैर करते हुए हो, जबतक मैं मरता नहीं, जहाँ-कहीं भी और जब-कभी भी ऐसा मनोभाव पैदा होगा, जिसमें अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त उन्नत, अत्यन्त शुद्ध सब-कुछ शान्त-स्थिर मानस पर अपना तेज बरसानेके लिए लौटता है, तब और तहाँ ही मेरी संचित निधियोंमें उस सुकुमार मोहिनी — उस ताजमहलकी स्मृति पाई जायेगी।

और ऐसा भी नहीं कि भारतमें उसके-अपने संहित या असंहित कानून न हों। मनुकी व्यवस्थाएँ सदासे अपने न्याय और अचूकताके लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी न्याय भावनासे सर एच० एस० मेन इतने प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं कि उन्होंने उनका बखान इन शब्दोंमें किया है — "ब्राह्मणोंके मतानुसार, कानून क्या होना चाहिए, इसका आदर्श चित्र।" श्री पिनकाटने १८९१ में *नेशनल रिव्यू*में लेख लिखकर उनको "मनुके दार्शनिक उपदेश" कहा है।

नाट्यकलामें भी भारतीय ओछे नहीं रहे। सबसे प्रसिद्ध भारतीय नाटक "शाकुन्तल"का वर्णन गेटेने इस प्रकार किया है:

यदि तुम नववसन्तके पुष्प और प्रौढ़
मधुऋतुकी फलराशि
और हृदयको आनन्दविभोर, मुग्ध, पुष्ट
और तुष्ट करनेवाले सर्वस्वको
देखना चाहते हो;
यदि तुम स्वर्लोक और भूलोकको
एक ही नाममें एकीभूत हुआ
देखना चाहते हो;
लो, हे शकुन्तला! मैं तेरा नाम लेता हूँ —
और इतना ही कहना सब-कुछ कह देना है।[१]

१. Wouldst thou the young year's blossoms,
and the fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed,
enraptured, feasted, fed,
Wouldst thou the earth,
and heaven in itself in one sole name combine?
I name thee O Shakuntala! and all at once is said.

भारतीय चारित्र्य और सामाजिक जीवनके बारेमें तो राशि-के-राशि प्रमाण मौजूद हैं। मैं संक्षिप्त उद्धरण-मात्र दे सकता हूँ।

हंटरकी *इण्डियन एम्पायर* नामक पुस्तकसे ही मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ:

यूनानका प्रतिनिधित्व करनेवाले यात्री (मैगेस्थनीज) ने भारतमें गुलामीके अभाव और स्त्रियोंके सतीत्व तथा पुरुषोंकी वीरताको कौतूहलमय सराहनाके साथ देखा। पराक्रममें वे एशियाके शेष सब लोगोंसे बढ़े-चढ़े थे; उन्हें अपने दरवाजोंमें ताले लगानेकी जरूरत नहीं होती थी; सबसे ऊपर, कोई भारतीय कभी झूठ बोलता नहीं पाया जाता था। वे संयमी और उद्योगी थे, अच्छे किसान और कुशल कारीगर थे। वे शायद ही कभी मुकदमे-बाजीका आश्रय लेते थे और अपने स्थानके मुखियोंके अधीन शान्तिपूर्वक जीवन-निर्वाह करते थे। राजाके शासनका चित्र मैगेस्थनीजने लगभग वैसा ही खींचा है, जैसा कि मनुने बताया है — पारिषदों और सैनिकोंकी वंशपरम्परागत जातियोंके साथ। . . . ग्राम-व्यवस्थाका वर्णन बड़ी भली-भाँति किया गया है। . . . *प्रत्येक छोटा-छोटा गाँव उस यूनानीको एक स्वतन्त्र गणराज्य दीखता था।* (टाइपका अन्तर मैंने किया है)।

बिशप हेबर भारतीय जनताके बारेमें कहते हैं:

जहाँतक उनके स्वाभाविक चारित्र्यका सम्बन्ध है, समग्रतः मेरा बहुत अनुकूल अभिप्राय बना है। वे बड़े ऊँचे और बहादुराना साहसवाले पुरुष हैं — शिष्ट, बुद्धिमान, और ज्ञान तथा सुधारके लिए अत्यन्त उत्सुक। . . . वे संयमी हैं, उद्योगी हैं, अपने माता-पिताके प्रति कर्तव्यनिष्ठ और अपने बच्चोंके प्रति स्नेहशील हैं। स्वभावमें वे लगभग एक जैसे सज्जन और धैर्यवान हैं। उनके प्रति यदि कोई कृपा दिखाता है और उनकी जरूरतों या भावनाओंका खयाल करता दीखता है तो वे, जिन दूसरे लोगोंसे भी मैं मिला हूँ, लगभग उन सभीकी अपेक्षा ज्यादा आसानीसे प्रभावित हो जाते हैं।

मद्रासके एककालीन गवर्नर सर टामस मनरोका कथन है:

मैं ठीक-ठीक समझता नहीं कि भारतके लोगोंको सभ्य बनानेका अर्थ क्या है। अच्छे शासनके सिद्धान्त और व्यवहारमें सम्भव है वे कम उतरें, परन्तु यदि एक अच्छी कृषि-प्रणाली, अद्वितीय माल तैयार करना, सुविधा और विलासकी सामग्री उत्पन्न करनेकी शक्ति, लिखने-पढ़नेके लिए पाठ-शालाओंकी स्थापना, दयालुता तथा आतिथ्यके सामान्य व्यवहार और, सबसे ऊपर, स्त्रियोंके प्रति विवेकपूर्ण सम्मान और कोमलताकी गिनती उन विषयोंमें है, जिनसे लोगोंकी सभ्यता जानी जाती है, तो हिन्दू लोग यूरोपके लोगोंसे सभ्यतामें ओछे नहीं हैं।

भारतीयोंके साधारण चारित्र्य पर सर जार्ज बर्डवुडने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

वे लम्बे समय तक कष्ट सहनेवाले और धैर्यवान, मजबूत और डटे रहनेवाले, कममें गुजारा करनेवाले और उद्योगी, कानूनका पालन करनेवाले और शान्तिप्रिय हैं। . . . शिक्षित और उच्चतर व्यापारी वर्गके लोग ईमान-दार और सच्चे हैं। जितने निरपेक्ष अर्थमें मैं शब्दोंका उपयोग कर सकता हूँ उतने अर्थमें वे ब्रिटिश सरकारके प्रति वफादार और आस्था रखनेवाले हैं। और इन शब्दोंको आप समझते हैं। नैतिक सत्यनिष्ठा बम्बईके (ऊँचे) सेठिया वर्गका उतना ही बड़ा गुण है, जितना कि स्वयं ट्यूटानिक[1] जातिका। संक्षेपमें, भारतके लोग किसी असली अर्थमें हमसे ओछे नहीं हैं। कुछ झूठे — हमारे लिए ही झूठे — मापदण्डोंसे, जिन पर विश्वास करनेका हम ढोंग करते हैं, नापी जानेवाली बातोंमें तो वे हमसे आगे ही हैं।

सर सी० ट्रेवेलियनका कथन है:

वे बहुत बड़ी शासनिक योग्यता, महान धैर्य, महान उद्योगशीलता और महान कुशाग्रता तथा बुद्धिके धनी हैं।

कौटुम्बिक सम्बन्धोंके बारेमें सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर यह कहते हैं:

अंग्रेजों और हिन्दुओंके मनमें कौटुम्बिक हितों और कौटुम्बिक प्रेमका जो स्थान है उसकी दृष्टिसे उन दोनोंके बीच कोई तुलना हो ही नहीं

१. जर्मन, स्कैंडिनेवियन और ऐंग्लो-सैक्सन।

सकती। बच्चोंके प्रति माता-पिताके, और माता-पिताके प्रति बच्चोंके उस प्रेमका कोई प्रतिरूप इंग्लैंडमें शायद ही मिलेगा। हमारे पूर्वीय नागरिक बन्धुओंमें मातृ-पितृ प्रेम और अपत्य-प्रेमका वह स्थान है जो इस देशमें स्त्री-पुरुषके बीचकी वासनाने ले रखा है।

और श्री पिनकाटका खयाल है कि :

तमाम सामाजिक बातोंमें अंग्रेज लोग हिन्दुओंके गुरु बननेके प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उनके चरणोंके पास बैठने और शिष्य बनकर उनसे शिक्षा लेनेके ही बहुत अधिक योग्य हैं।

एम० लुई जेकोलियट कहता है :

प्राचीन भारतकी भूमि, मानव जातिका पालना, तेरी जय हो! जय हो, अयि कुशल धात्री, तेरी, जिसे शताब्दियोंके क्रूर आक्रमण अबतक विस्मृतिकी धूलमें दबा नहीं सके। अयि श्रद्धा, प्रेम, काव्य और विज्ञानकी मातृभूमि, तेरी जय हो! हम अपने पश्चिमके भविष्यमें तेरे अतीतके पुनर्जन्मका स्वागत करें!

विक्टर ह्यूगो कहता है :

इन राष्ट्रों — फ्रांस और जर्मनीने यूरोपका निर्माण किया है। पश्चिमके लिए जर्मनी जो-कुछ है, वही पूर्वके लिए भारत है।

इसमें ये तथ्य भी जोड़ लीजिए : कि भारतने बुद्धको जन्म दिया है, जिनके जीवनको कुछ लोग तमाम मनुष्योंके जीवनोंमें श्रेष्ठ और पवित्रतम मानते हैं, और कुछ केवल ईसाके जीवनसे दोयम बताते हैं; कि भारतने ऐसे अकबरको जन्म दिया है, जिसकी नीतिका ब्रिटिश सरकारने इनेगिने संशोधनोंके साथ अनुसरण किया है; कि अभी थोड़े ही वर्ष पहले भारतने एक ऐसे पारसी बैरोनेट[1]को खोया है, जिसने अपनी दानशीलतासे न केवल भारतको, वरन् इंग्लैंडको भी आश्चर्य-चकित कर दिया था; कि भारतने पत्रकार क्रिस्टोदास पालको जन्म दिया है, जिसकी वर्तमान वाइसराय लार्ड एलगिनने यूरोपके सर्व-श्रेष्ठ पत्रकारोंसे तुलना की है; कि भारतने न्यायमूर्ति मोहम्मद और न्यायमूर्ति-

१. छोटे लार्ड।

मुतुकृष्ण ऐयर[1]को जन्म दिया है, जो दोनों भारतके उच्च न्यायालयोंके न्यायाधीश हैं और जिनके फैसले भारतके उच्च न्यायालयोंमें न्यायाधीशोंके आसनोंको सुशोभित करनेवाले भारतीय तथा यूरोपीय न्यायाधीशोंके निर्णयोंमें सबसे योग्य माने गये हैं; और, आखिरमें, भारतमें बदरुद्दीन [तैयबजी], [सुरेन्द्रनाथ] बनर्जी और [फीरोजशाह] मेहता जैसे वक्ता हैं, जिन्होंने अनेक अवसरों पर इंग्लिस्तानके श्रोताओंको मन्त्रमुग्ध किया है।

ऐसा है भारत। अगर यह चित्र आपको कुछ अतिरंजित अथवा लहरी मालूम होता हो, तो भी यह सच्चा है। अवश्य ही इसका दूसरा पहलू भी है। मगर उस पहलूका चित्रण वह करे, जिसे दोनों राष्ट्रोंको मिलानेकी अपेक्षा अलग करनेमें आनन्द मिलता हो। बादमें आप डैनिएलकी निष्पक्षतासे दोनोंको परखें। मेरा दावा है कि तब भी ऊपर कही हुई बातोंका भारी अंश अक्षुण्ण रहेगा और वह आपको विश्वास दिला देगा कि भारत आफ्रिका नहीं है, वह सभ्यता शब्दके शुद्धतम अर्थमें एक सभ्य देश है।

तथापि, इस विषयको समाप्त करनेके पहले मैं एक सम्भव आपत्तिको ताड़ लेनेकी इजाजत माँगता हूँ। वह होगी: "आप जो कह रहे हैं वह अगर सत्य है, तो इस उपनिवेशके जिन लोगोंको आप भारतीय कहते हैं वे भारतीय नहीं हैं। कारण यह है कि उनके आचार-व्यवहारसे आपके मन्तव्यकी पुष्टि नहीं होती। देखिए, कैसे ठेठ झूठे हैं वे।" इस उपनिवेशमें मैं जिससे भी मिला हूँ, हरएकने भारतीयोंकी असत्यवादिताकी बात कही है। कुछ हदतक मैं इस आरोपको स्वीकार भी करता हूँ। परन्तु अगर मैं इस आपत्तिका उत्तर यह कहकर दूँ कि दूसरे वर्ग भी, खास तौरसे इन अभागे भारतीयोंकी हालतोंमें रखे जानेपर, ज्यादा अच्छे नहीं ठहरते, तो यह मेरे लिए बड़े अल्प संतोषकी बात होगी। फिर भी, अंदेशा है कि मुझे उस तरहके तर्कका सहारा लेना ही होगा। मैं चाहूँ तो बहुत कि वे ऐसे न हों, परन्तु यह सिद्ध करनेमें अपनी पूरी असमर्थता कबूल करता हूँ कि वे मनुष्य नहीं, मनुष्यसे कुछ ज्यादा हैं। वे भुखमरीकी मजदूरी पर नेटाल आये हैं (मेरा मतलब सिर्फ गिरमिटिया भारतीयोंसे है)। वे अपने-आपको एक विचित्र स्थिति और प्रतिकूल वातावरण में पाते हैं। *जिस क्षण वे भारतसे रवाना होते हैं,* उसी क्षणसे, अगर वे उपनिवेशमें बस जाते हैं तो, सारे जीवन उन्हें बिना किसी नैतिक शिक्षाके

१. उल्लेख सर टी० मुतुस्वामी ऐयरका है।

रहना पड़ता है। हिन्दू हों या मुसलमान, उन्हें नाम-लायक कोई नैतिक या धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती। और वे खुद इतने पढ़े-लिखे होते नहीं कि दूसरोंकी सहायताके बिना स्वयं शिक्षा प्राप्त कर लें। ऐसी हालतमें वे झूठ बोलनेके छोटेसे छोटे प्रलोभनके भी शिकार हो सकते हैं। होते-होते उन्हें झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है, बीमारी हो जाती है। वे बिना किसी कारणके, बिना किसी फायदेकी आशाके, झूठ बोलने लगते हैं। सचमुच तो वे जानते ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। वे जिन्दगीकी एक ऐसी मंजिल पर पहुँच जाते हैं, जहाँ कि उनकी नैतिक शक्तियाँ उपेक्षाके कारण बिलकुल मंद पड़ जाती हैं। झूठ बोलनेका दूसरा एक बहुत दुःखद रूप भी है। अपने मालिक द्वारा सताये जानेके डरसे वे अपने उन भाइयोंके लिए भी सच बोलनेका साहस नहीं करते, जिन्हें दुराग्रहपूर्वक सताया जाता है। अपने मालिकोंके खिलाफ गवाही देनेका साहस करनेपर उनकी रूखी-सूखी खुराकमें कटौती कर दी जाये और उन्हें कठोर शारीरिक दण्ड दिया जाये तो उसे समचित्तसे सहन करने योग्य तत्त्वज्ञानी वृत्तिवाले तो वे नहीं हैं। तब क्या उन लोगों पर दया करनेकी अपेक्षा उनका तिरस्कार करना उचित है? क्या उनके साथ दयाके अयोग्य बदमाशों जैसा बरताव किया जायेगा, या उन्हें ऐसे असहाय प्राणी माना जायेगा, जिन्हें हमदर्दीकी बुरी तरहसे जरूरत है? क्या कोई ऐसा वर्ग देखनेमें आता है, जो इसी तरहकी परिस्थितियोंमें उनके समान ही व्यवहार नहीं करेगा?

परन्तु मुझसे पूछा जायेगा कि व्यापारी भी उतने ही झूठे हैं; उनके पक्षमें आप क्या कह सकते हैं? इस विषयमें मेरा निवेदन है कि यह आरोप निराधार है। व्यापार अथवा कानूनका निर्वाह करनेके लिए दूसरे वर्ग जितना झूठ बोलते हैं उससे ज्यादा झूठ वे नहीं बोलते। उन्हें बहुत ज्यादा गलत समझा जाता है। पहले तो इसलिए कि वे अंग्रेजी भाषा नहीं बोल सकते; दूसरे, उनकी बातोंका भाषान्तर बहुत त्रुटिपूर्ण होता है, जिसमें स्वयं दुभाषियोंका कोई दोष नहीं है। दुभाषियोंसे चार भाषाओंमें सफलतापूर्वक उलथा करनेकी कठिन जिम्मेदारी अदा करनेकी अपेक्षा की जाती है। ये भाषाएँ हैं — तमिल, तेलुगु, हिन्दुस्तानी और गुजराती। व्यापारी भारतीय अनिवार्यतः हिन्दुस्तानी या गुजराती बोलते हैं। जो लोग सिर्फ हिन्दुस्तानी बोलते हैं वे ऊँचे दर्जेकी हिन्दुस्तानी बोलते हैं। दुभाषियोंमें से एकको छोड़कर शेष सब स्थानीय हिन्दुस्तानी बोलते हैं। यह भाषा तमिल, गुजराती और दूसरी भारतीय भाषाओंका एक भद्दा मिश्रण है, जिसे बहुत गलत हिन्दुस्तानी व्याकरणका जामा पहना दिया
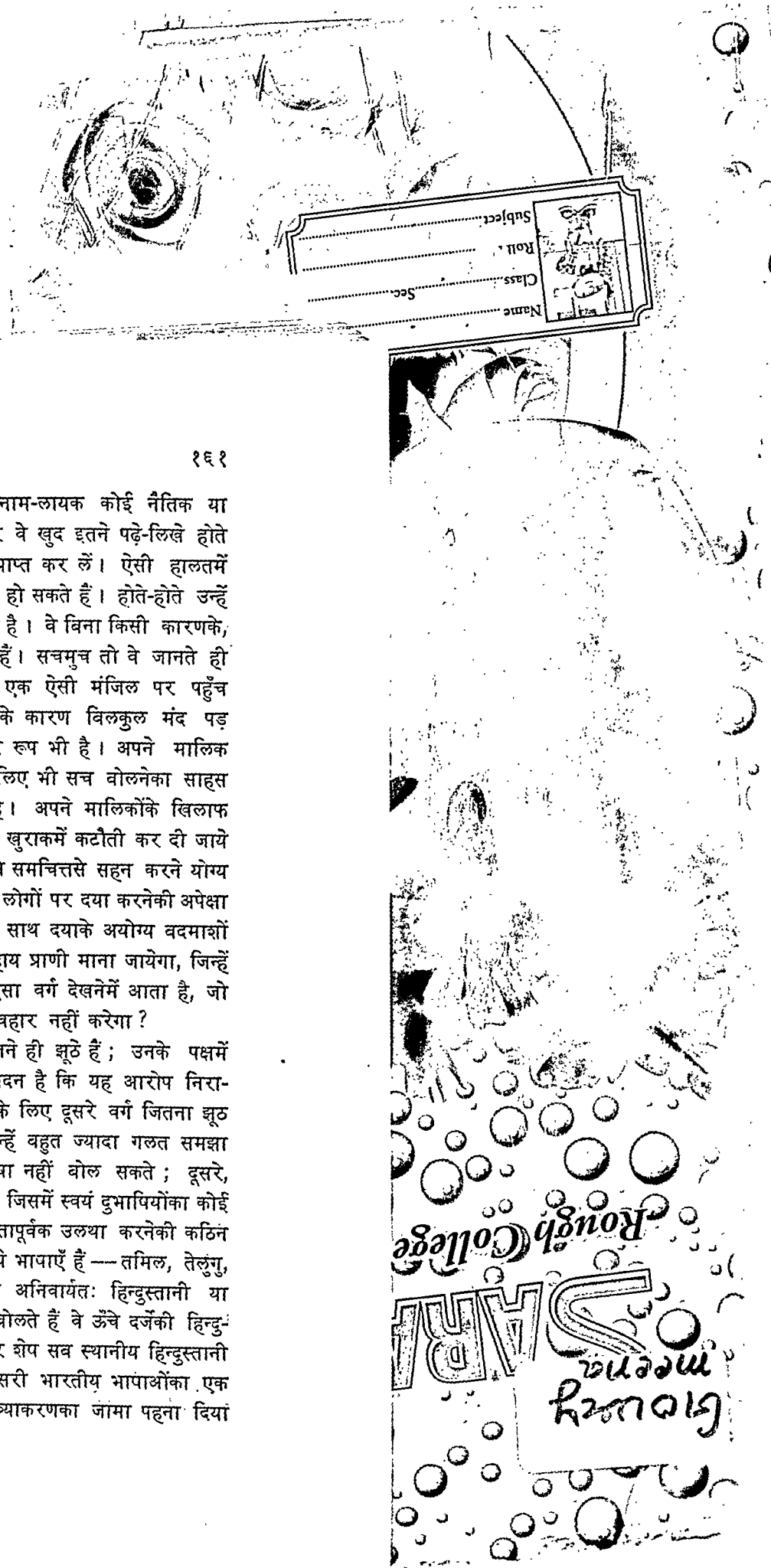
गया है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि दुभाषियेको गवाहका आशय समझनेके लिए उससे तर्क-वितर्क करना पड़ता है। ऐसा होते समय न्यायाधीश अधीर हो उठता है और सोचता है कि गवाह चालवाजी कर रहा है। वेचारे दुभाषियेसे जब सवाल किया जाता है तो वह, मनुष्य स्वभावके अनुसार ही, अपने सदोष भाषा-ज्ञानको छिपानेके लिए कह देता है कि गवाह सीधा जवाव नहीं देता। वेचारे गवाहको अपनी स्थिति साफ करनेका कोई मौका नहीं होता। गुजराती वोलनेवालोंके वारेमें तो वात और भी गंभीर है। अदालतोंमें गुजरातीका दुभाषिया एक भी नहीं है। दुभाषिया, वहुत सिरपच्ची करनेके वाद, गवाह जो-कुछ कहता है उसका सारमात्र निकाल पाता है। गुजराती वोलनेवाले गवाहोंको अपनी वात समझानेके लिए और दुभाषियोंको उनकी गुजराती हिन्दुस्तानी समझनेके लिए मगजमारी करते हुए मैंने खुद देखा है। दुभाषियोंके लिए तो यह भारी श्रेयकी वात है कि वे अनजान शब्दोंके जालसे आशयमात्र भी निकाल लेते हैं। परन्तु जितने समय यह संघर्ष होता है, उतनेमें न्यायाधीश अपने मनमें गवाहके एक शब्द पर भी विश्वास न करनेका फैसला कर लेता है और उसे झूठा करार दे देता है।

३

अव यह तीसरा प्रश्न — "क्या उनके साथ किया जानेवाला वर्तमान व्यवहार सर्वोत्तम ब्रिटिश परम्पराओं, या न्याय और नीतिके सिद्धान्तों या ईसाई धर्मके सिद्धान्तोंके अनुरूप है?" इसका उत्तर देनेके लिए यह जाँच लेना आवश्यक होगा कि उनके साथ किया जानेवाला व्यवहार है कैसा? मैं समझता हूँ कि यह तो फौरन मंजूर कर लिया जायेगा कि भारतीयोंके प्रति इस उपनिवेशमें बड़ा तीव्र द्वेष है। साधारण लोग भी उनसे द्वेष करते हैं, उन्हें कोसते हैं, उनपर थूकते हैं और अक्सर उन्हें पैदल-पटरियोंसे वाहर ढकेल देते हैं। अखवारोंको तो मानो उनकी निन्दा करनेके लिए अच्छेसे अच्छे अंग्रेजी कोशमें भी काफी जोरदार शब्द ढूंढ़े नहीं मिलते। कुछ उदाहरण लीजिए — "सच्चा घुन जो समाजका कलेजा ही खाये जा रहा है"; "वे परोपजीवी", "मक्कार, मुए अर्ध-बर्बर एशियाटिक"; "दुवली और काली, कोई चीज निराली; सफाई न निकली छू, कहाते मुए हिन्दू"; "भरा नाक तक वुराइयोंसे, जीता खा तन्दूल; कोसूंगा दिल भर कर उसको, वह हिन्दू चण्डूल"; "गंदे कुलीकी झूठी जवान और धूर्त आचार"। अखवार उन्हें सही नामोंसे पुकारनेसे लगभग एक स्वरसे इनकार

करते हैं। उन्हें "रामीसामी" कहा जाता है, "मिस्टर सामी" कहा जाता है, "मिस्टर कुली" और "ब्लैक मैन" [काला आदमी] कह कर पुकारा जाता है। और ये सन्तापकारक उपाधियां इतनी आम बन गई हैं कि इनका प्रयोग (कमसे कम इनमें से एक — "कुली" — का तो अवश्य ही) अदालतकी पवित्र सीमामें भी किया जाता है — मानो, "कुली" कोई कानूनी और व्यक्तिवाचक नाम है, जो किसी भी भारतीयको दिया जा सकता है। लोकपरायण व्यक्ति भी इस शब्दका स्वच्छन्दतासे उपयोग करते दिखाई पड़ते हैं। मैंने ऐसे लोगोंको भी इन दुःखदायी शब्दों — "कुली क्लार्क" — का प्रयोग करते सुना है, जिनको वस्तुस्थितिका ज्यादा अच्छा ज्ञान होना चाहिए। ये शब्द अपने-आपमें परस्पर-विरोधी हैं और जिसके लिए काममें लाये जाते हैं उसे सन्तापकारक होते हैं। परन्तु इस उपनिवेशमें तो भारतीय ऐसे जानवर हैं, जिन्हें कोई भावनाएँ होती ही नहीं!

ट्रामगाड़ियाँ भारतीयोंके लिए नहीं हैं। रेलवे-कर्मचारी भारतीयोंके साथ जानवरोंके जैसा व्यवहार कर सकते हैं। भारतीय चाहे कितने भी स्वच्छ क्यों न हों, उपनिवेशके प्रत्येक गोरे व्यक्तिको उन्हें देखकर ही सन्ताप हो आता है। और वह सन्ताप इतना होता है कि वे थोड़ी देरके लिए भी भारतीयोंके साथ रेलगाड़ीके एक ही डिब्बेमें बैठना पसन्द नहीं करते। होटलोंके दरवाजे उनके लिए बन्द हैं। मुझे सम्माननीय भारतीयोंके ऐसे उदाहरण मालूम हैं, जिन्हें रात भरके लिए होटलमें स्थान नहीं मिला। सार्वजनिक स्नानगृह भी भारतीयोंको उपलब्ध नहीं होते, फिर वे भारतीय कोई भी क्यों न हों।

विभिन्न जायदादोंमें गिरमिटिया भारतीयोंके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारकी जो रिपोर्टें मुझे मिली हैं उनके दसवें हिस्से पर भी अगर मैं विश्वास करूँ, तो वे उन जायदादोंके मालिकोंकी मनुष्यता और गिरमिटियोंके संरक्षक द्वारा की जानेवाली उनकी परवाहके खिलाफ भयानक आरोप-स्वरूप होंगी। परन्तु इस विषयका मुझे बहुत सीमित अनुभव है, इसलिए इसपर मैं अधिक विचार व्यक्त नहीं करूँगा।

आवारा-कानून गैरजरूरी तौरपर उत्पीड़क है। अक्सर वह प्रतिष्ठित भारतीयोंको बड़ी अड़चनमें डाल देता है।

इस सबमें उन अफवाहोंको जोड़ लीजिए जो हवामें फैली हुई हैं। अफवाहोंका सार यह है कि भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहनेके लिए समझाया या बाध्य किया जाये। हो सकता है कि यह सिर्फ इरादा ही हो। फिर भी,
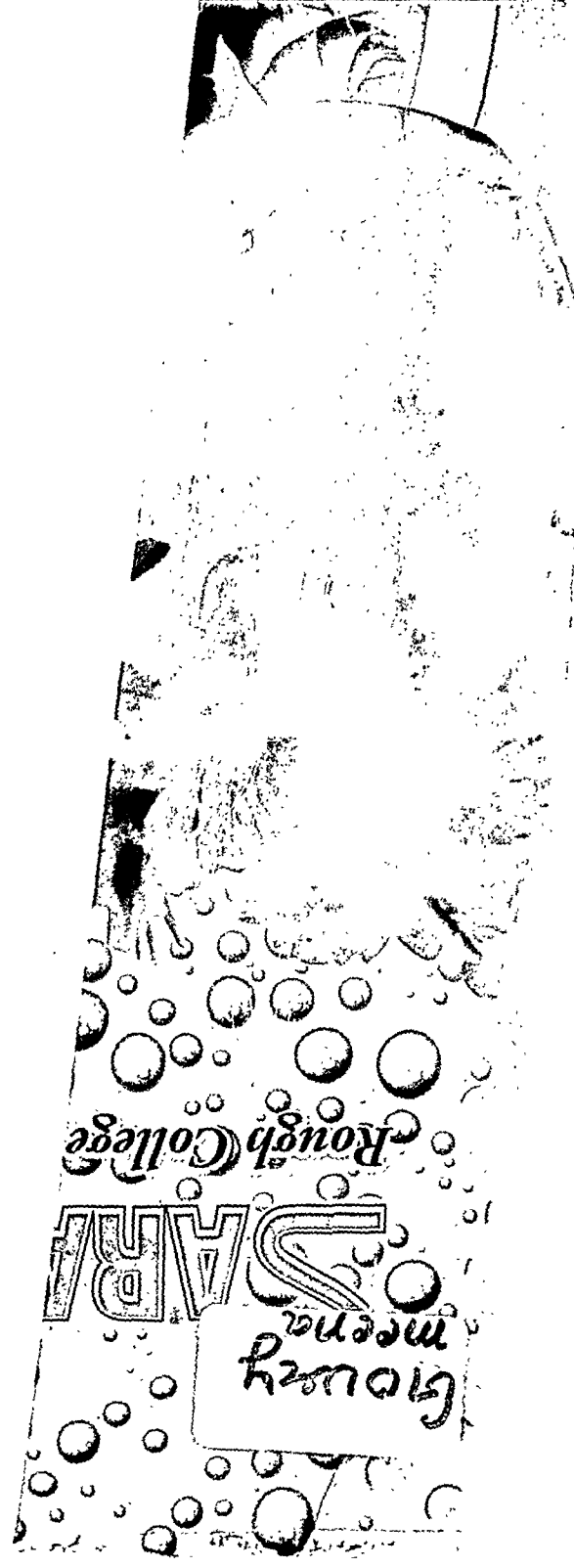
भारतीयोंके खिलाफ यूरोपीयोंकी भावनाओंका परिचय तो इससे मिलता ही है। मेरी प्रार्थना है, आप कल्पना करके देखें कि अगर ऐसे सब इरादोंको पूरा करना सम्भव हो तो नेटालमें भारतीयोंकी हालत क्या होगी।

अब, क्या यह व्यवहार ब्रिटिश न्याय-परम्परा, या नीति या ईसाइयतके अनुरूप है?

आपकी इजाजतसे मैं मेकालेके विचारोंका एक अंश पेश करता हूँ और इसका निर्णय आप पर छोड़ता हूँ कि क्या भारतीयोंके प्रति आज जो व्यवहार हो रहा है, उसे वह पसन्द करता। भारतीयोंके प्रति व्यवहारके विषयमें भाषण करते हुए उसने निम्नलिखित भावनाएँ व्यक्त की थीं :

> **मैं एक सम्पूर्ण समाजको अफीम खिलानेकी, अपने हाथोंमें ईश्वर द्वारा सौंपे हुए एक महान राष्ट्रको सिर्फ इसलिए मदहोश और पंगु बना देनेकी सम्मति कभी न दूँगा कि वह हमारे नियन्त्रणमें रहनेके अधिक उपयुक्त बन जाये। उस सत्ताका क्या मूल्य, जिसकी नींव दुर्गुणों पर, अज्ञान पर और दुःख-दैन्य पर रखी गई हो; जिसका संरक्षण हम उन अत्यन्त पवित्र कर्तव्योंको भंग करके ही कर सकते हों, जिनके लिए हम शासकोंकी हैसियतसे शासितोंके प्रति जिम्मेदार हैं; और जिन कर्तव्योंके रूपमें साधारणसे अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता और बौद्धिक प्रकाशके धनीके नाते हमें उस जातिका ऋण चुकाना है, जो तीन हजार वर्षके निरंकुश शासन और पुरोहितोंकी धूर्ततासे अधःपतित हो गई है? अगर हम मानव-जातिके किसी अंगको अपने ही बराबर स्वतन्त्रता और सभ्यता प्रदान करनेको तैयार नहीं हैं, तो हम व्यर्थ ही स्वतन्त्र हैं, व्यर्थ ही सभ्य हैं।**

इसके अलावा, मिल, बर्क, ब्राइट और फासेट जैसे लेखक भी भारतीयोंके प्रति इस उपनिवेशमें होनेवाले व्यवहारको बरदाश्त नहीं कर सकते थे। यह बतानेके लिए इनकी ओर संकेत कर देना भर काफी होगा।

किसी आदमीको भुखमरीकी मजदूरी पर यहाँ लाना, उसे गुलामीमें जकड़कर रखना, और जब वह स्वतन्त्रताका जरा-सा भी चिह्न दिखाये, या कम दुःख-दर्दकी हालतमें रहनेके योग्य हो, तब उसे उसके घर वापस भेज देनेकी इच्छा करना — जब कि वहाँ जाकर वह अपेक्षाकृत एक अजनबी होगा और शायद अपनी जीविका भी कमा न सकेगा — ब्रिटिश राष्ट्रके स्वाभाविक न्याय या निष्पक्ष व्यवहारका सूचक नहीं है।

भारतीयोंके प्रति किया जानेवाला व्यवहार ईसाइयतके प्रतिकूल है, यह साबित करनेके लिए तर्ककी आवश्यकता नहीं है। जिस विभूतिने हमें अपने शत्रुओंसे प्रेम करनेकी, और जिसे हमारे कोटकी जरूरत हो उसे अपना चोगा दे देनेकी, और जब बायें गाल पर तमाचा मारा जाये, तब दाहिना गाल सामने कर देनेकी शिक्षा दी, और जिसने यहूदी और गैर-यहूदीके भेदको उखाड़ फेंका, वह ऐसी वृत्तिको कभी बरदाश्त नहीं करेगा, जो आदमीको इतना अहंकारी बनाती है कि वह अपने सहजीवीके स्पर्शसे भी अपने-आपको नापाक हुआ माने।

४

आखिरी प्रश्नकी चर्चा, मैं मानता हूँ, पहले प्रश्नकी चर्चामें काफी हो गई है। और अगर प्रत्येक भारतीयको उपनिवेशसे खदेड़ देनेका प्रयोग किया जाये तो व्यक्तिगत रूपसे मुझे बहुत दुःख न होगा। वैसा करने पर, मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि उपनिवेशी लोग शीघ्र ही उस दिनपर मातम मनाने लगेंगे, जब कि उन्होंने यह कदम उठाया होगा। और वे सोचने लगेंगे, कि वैसा न किया होता तो अच्छा होता। उन्हें खदेड़ देनेपर छोटे-छोटे धंधे और जिन्दगीके छोटे-छोटे काम पड़े रहेंगे। जिस कामके लिए वे खास तौरसे उपयुक्त हैं, उसे यूरोपीय नहीं करेंगे। और आज भारतीयोंसे उपनिवेशको राजस्वके रूपमें जो भारी रकम प्राप्त होती है, वह खो जायेगी। दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवा ऐसी नहीं है, कि उसमें यूरोपीय लोग वे सब काम कर सकें जो यूरोपमें वे सरलतासे कर लेते हैं। तथापि, मैं तो अत्यन्त आदरके साथ यह निवेदन करना चाहता हूँ कि अगर भारतीयोंका उपनिवेशमें रखा जाना लाजिमी ही है, तो फिर उनके साथ ऐसा व्यवहार कीजिए जिसके, अपनी योग्यता और ईमानदारीके आधार पर, वे योग्य हों। अर्थात्, वे जिसके अधिकारी हों वह उन्हें दीजिए; आपकी निष्पक्ष और भेद-भावरहित न्यायबुद्धि जो कमसे कम देनेकी प्रेरणा करे वह उन्हें दीजिये।

अब मुझे आपसे सिर्फ यह प्रार्थना करनी है कि आप इस विषय पर सच्चे दिलसे विचार करें। और मुझे आपको (यहाँ मेरा मतलब सिर्फ अंग्रेजोंसे है) याद दिलाना है कि विधिने अंग्रेजों और भारतीयोंको एक साथ रखा है, और भारतीयोंका भाग्य-सूत्र अंग्रेजोंके हाथमें सौंपा है। प्रत्येक अंग्रेज भारतीयोंके साथ जैसा बरताव करेगा उस पर ही निर्भर करेगा कि इस एक साथ रखे जानेका परिणाम उदार सहानुभूति, प्रेम, मुक्त पारस्परिक व्यवहार और भारतीय स्वभावके सही ज्ञानसे उत्पन्न चिरन्तन ऐक्य होना है, या इस एक साथ रखे

जानेको सिर्फ उतने ही समय टिकना है, जबतक कि अंग्रेजोंके पास भारतीयोंको नियन्त्रणमें रखनेके साधन पर्याप्त हैं और स्वभावसे शान्त भारतीय परेशान होकर विदेशी प्रभुत्वके विरुद्ध सक्रिय विरोध आरंभ नहीं कर देते। मैं यह याद भी दिलाता हूँ कि इंग्लैंडके अंग्रेजोंने अपने लेखों, व्याख्यानों और कृतियों द्वारा दिखा दिया है कि उनका आशय दोनों राष्ट्रोंके हृदयोंको एक करनेका है और वे रंग-भेदमें विश्वास नहीं करते। वे भारतके विनाश पर अपनी उन्नति साधना नहीं, बल्कि उसे अपने साथ-साथ ऊपर उठाना पसन्द करेंगे। इसके समर्थनमें मैं आपको ब्राइट, फासेट, ग्लैड्स्टन, वेडरबर्न, पिनकाट, रिपन, रे, नार्थब्रुक, डफरिन और लोकमतका प्रतिनिधित्व करनेवाले अनेकानेक अन्य अंग्रेजोंके नामोंका हवाला देता हूँ। तत्कालीन प्रधानमन्त्रीके विरोध व्यक्त करने पर भी, एक अंग्रेज मत-दाता-क्षेत्रने एक भारतीयको ब्रिटिश लोकसभाका सदस्य चुन दिया है।[1] सारे उदार और अनुदार ब्रिटिश पत्रोंने उस भारतीय सदस्यको उसकी सफलता पर बधाई दी है। उन्होंने इस अनोखी घटनाकी सराहना भी की है। और, फिर, उदार और अनुदार दोनों दलोंके पूरे सदनने उसका हार्दिक स्वागत किया है। सिर्फ एक इस वस्तुस्थितिको ही ले लिया जाये तो, मेरा निवेदन है, मेरे कथनकी पुष्टि हो जाती है। यह सब देखते हुए आप उनका अनुसरण करेंगे या अपने लिए एक अलग रास्ता बनायेंगे? आप एकताको बढ़ायेंगे, "जो प्रगतिका निमित्त होती है," या वैमनस्यको बढ़ायेंगे, "जो अधःपतनका निमित्त होता है?"

अन्तमें मेरी प्रार्थना है कि आप इस पत्रको उसी भावनासे ग्रहण करें, जिससे यह लिखा गया है।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

नेटाल मर्करी स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, डर्बनमें छपी अंग्रेजी पुस्तिकासे।

१. यह उल्लेख १८९३ में सेंट्रल फिन्सबरी क्षेत्रसे दादाभाई नौरोजीके चुनावका है।

४३. पत्र : यूरोपीयोंके नाम[1]

बीच ग्रोव
डर्बन
दिसम्बर १९, १८९४

महाशय,

मैं संलग्न "खुली चिट्ठी" आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ और इसकी विषय-सामग्री पर आपके अभिप्रायकी याचना करता हूँ।

आप धर्मोपदेशक, सम्पादक, लोकसेवक, व्यापारी या वकील, कोई भी हों, यह विषय आपके ध्यानका अपेक्षी है ही। अगर आप धर्मोपदेशक हैं तो, जहाँतक आप ईसाके उपदेशोंका निरूपण करते हैं, आपका कर्तव्य होना चाहिए कि आप अपने सहजीवी भाइयोंके साथ किये जानेवाले किसी भी ऐसे व्यवहारके प्रति, जो ईसाको खुश करनेवाला न हो, प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी प्रकारकी कोई अनुकूलता न दिखायें। अगर आप पत्र-सम्पादक हैं तो भी जिम्मेदारी उतनी ही बड़ी है। पत्रकारकी हैसियतसे आप अपने प्रभावका उपयोग मानव-जातिके विकासके लिए कर रहे हैं या ह्रासके लिए — यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप विभिन्न वर्गोंके बीच फूटको उत्तेजना देते हैं, या एकता स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यही विचार लोकसेवककी स्थितिमें भी आप पर लागू होंगे। अगर आप व्यापारी या वकील हैं तो भी आपका अपने ग्राहकों या मुवक्किलोंके प्रति कुछ कर्तव्य है, क्योंकि उनसे आप बड़ी मात्रामें आर्थिक लाभ कमाते हैं। यह आपके हाथ है कि आप उनके साथ कुत्तों-जैसा व्यवहार करें या उन्हें अपने सहजीवी भाई मानें, जो उपनिवेशमें भारतीयोंके सम्बन्धमें फैले हुए अज्ञानके कारण क्रूरतापूर्ण अत्याचारोंके शिकार बने हुए हैं और इसमें आपकी सहानुभूतिकी अपेक्षा करते हैं। आपका उनके साथ अपेक्षाकृत अधिक निकट सम्पर्क होता है। इसलिए अवश्य ही आपको उन्हें समझनेका मौका और प्रयोजन भी है। सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखने पर शायद वे आपको उस रूपमें दीख पड़ेंगे, जिस रूपमें मौका पानेवाले और मौकेका ठीक उपयोग करनेवाले बीसियों और सैकड़ों यूरोपीयोंने उन्हें देखा है।

१. एक छपा हुआ परिपत्र, जो गांधीजीने नेटालके यूरोपीयोंको भेजा था।

अगर मान लिया जाये कि उपनिवेशवासी भारतीयोंके साथ जैसी इच्छा की जा सकती है, ठीक वैसा व्यवहार नहीं होता, तो क्या यहाँ कोई ऐसे यूरोपीय हैं जो उनके साथ सक्रिय सहानुभूति रखें और उन पर दया करें? "खुली चिट्ठी" की विषय-सामग्री पर आपके अभिप्रायकी याचना यही तय करनेके लिए की गई है।

आपका वफादार सेवक,

मो० क० गांधी

साबरमती-ग्रंथालयमें सुरक्षित एक अंग्रेजी नकलसे।

४४. भौतिकवादकी अपर्याप्ति

डर्बन
जनवरी २१, १८९५

मो० क० गांधी
एजेंट
एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन
तथा लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

सेवामें
सम्पादक
नेटाल एडवर्टाइज़र

महोदय,

आपके विज्ञापन-स्तम्भोंमें एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी सम्बन्धी जो सूचना छपी है उसकी ओर अगर आप मुझे अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेका अवसर दें तो मैं आपका आभारी हूँगा।

यूनियन जिस विचारधाराका प्रतिनिधित्व करती है वह दुनियाके सब महान धर्मोंमें एकता और उन सबका एक ही स्रोत बतानेवाली है। जैसा कि विज्ञापित पुस्तकोंसे भली-भाँति ज्ञात हो जायेगा, वह भौतिकवादकी पूर्ण अपर्याप्तता दिखाती है। और भौतिकवादकी तो शेखी है कि उसने संसारको एक अभूतपूर्व सभ्यता प्रदान की है। कहा जाता है, उसने मानव-जातिका सबसे बड़ा कल्याण किया है। परन्तु कहनेवाले लोग सुभीतेसे भूल जाते हैं कि उसकी सबसे बड़ी सिद्धि है — विनाशके भयानकतम अस्त्रोंका आविष्कार, अराजकताकी आतंक-

जनक वृद्धि, पूँजीपतियों और श्रमिकोंके बीच भयावह झगड़े और "नामधारी" विज्ञानके नाम पर निर्दोष, निर्वाक् प्राणियोंपर स्वच्छन्द और पैशाचिक क्रूरता।

तथापि अब प्रतिक्रियाके लक्षण भी दिखलाई पड़ने लगे हैं। थियोसाफिकल सोसाइटी [ब्रह्मविद्या-समाज] की प्रायः अनुपम सफलता और ईसाई धर्मगुरुओं द्वारा मनुष्यके अन्दर निहित पवित्रता या ईश्वरीय अंश[1]का शनैः-शनैः स्वीकार उस प्रतिक्रियाका परिचायक है। प्रोफेसर मैक्समूलरका अवतारवादको स्वीकार करना, जो इतने निर्णायक तरीकेसे *परफ़ेक्ट वे*में स्पष्ट किया गया है, उनका यह कथन कि यह विचारधारा इंग्लैंड तथा अन्य देशोंके विचारशील लोगोंके मनमें जड़ें पकड़ रही है और *द अननोन लाइफ़ आफ़ जीज़ज़ क्राइस्ट*का प्रकाशन — ये सब तो उस प्रतिक्रियाके और भी बड़े उदाहरण हैं। दक्षिण आफ्रिकामें ये पुस्तकें पाना सम्भव नहीं है, इसलिए इनके बारेमें मेरा ज्ञान इनकी समालोचनाएँ पढ़ने तक ही सीमित है। मेरा निवेदन है कि ये सब और ऐसे ही दूसरे भी बहुत-से तथ्य अचूक रूपसे बताते हैं कि जिन भौतिक वृत्तियोंने हमें इतनी क्रूरताकी हद तक स्वार्थी बना दिया है उनसे हटकर हम केवल ईसाकी ही नहीं, बल्कि बुद्ध, ज़रतुश्त और मोहम्मदकी भी शुद्ध शिक्षाओंकी ओर मुड़ रहे हैं। सभ्य जगत अब इनको झूठे पैगम्बर या अवतार कहकर नहीं पुकारता; बल्कि इनकी और ईसाकी शिक्षाओंको एक-दूसरेकी पूरक मानने लगा है।

खेद है कि मैं अभी अन्नाहार-सम्बन्धी पुस्तकोंका विज्ञापन नहीं कर सकता। गलतीसे वे पुस्तकें भारतको भेज दी गई हैं और उनके डर्बन पहुँचनेमें कुछ समय लगेगा। फिर भी मैं अन्नाहारके गुणोंके बारेमें एक महत्त्वकी बात बता दूँ। बुराईका साधन शराबखोरीसे ज्यादा जोरदार दूसरा नहीं है। मैं यह कहनेकी अनुमति चाहता हूँ कि जो लोग शराबकी तलबसे पीड़ित रहते हैं, परन्तु उससे छुटकारा पानेके इच्छुक हैं, वे कमसे कम एक मास तक मुख्यतः ब्राउन ब्रेड [बे-छने आटेकी भूरे रंगकी डबल रोटी], संतरों या अंगूरके आहार पर रहकर देखें। इससे उनकी शराबकी तलब पूरी तरह मिट जायेगी। मैंने स्वयं अनेक प्रयोग किये हैं और मैं साक्षी दे सकता हूँ कि मैं बिना मसालेके अन्नाहारपर, जिसमें बड़ी मात्रामें रसीले ताजे फल शामिल थे, अनेक-अनेक दिनों तक रहा

१. डाक्ट्रिन आफ़ होलीनेस।

हूँ और मुझे चाय, काफी, कोको और, यहाँतक कि, पानीकी भी जरूरत महसूस नहीं हुई। इसी कारण इंग्लैंडमें सैकड़ों लोग अन्नाहारी बन गये हैं और जो कभी पक्के पियक्कड़ थे उन्हें अब शराबकी बू भी नहीं रुचती। डाक्टर बी० डब्ल्यू० रिचार्डसनने अपनी पुस्तक *फ़ूड फ़ार मैन*में शुद्ध शाकाहारको शराबखोरीका इलाज बताया है। नेटाल-जैसे अपेक्षाकृत गरम देशमें, जहाँ फलों और शाकोंकी बहुतायत है, रक्तरहित आहार हर प्रकारसे बहुत लाभदायक होना चाहिए। वैज्ञानिक, स्वच्छता-सम्बन्धी, आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे वह मांसाहारकी अपेक्षा बेहद बेहतर तो है ही।

कदाचित् यह कहना आवश्यक न होगा कि एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनकी पुस्तकोंकी बिक्री आर्थिक लाभके लिए नहीं की जाती। कुछ लोगोंको तो पुस्तकें मुफ्त बाँट दी गई हैं। कुछ लोगोंको वे पढ़नेके लिए खुशीसे उधार दी जायेंगी। अगर आपके कोई पाठक एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन अथवा लंदन वेजिटेरियन सोसाइटीके बारेमें अधिक जानकारी चाहते हों तो मैं खुशीसे उनके साथ पत्र-व्यवहार करूँगा। या, अगर कोई मुझसे इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर (जो कमसे कम मेरे लिए तो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ही) मुझसे इतमीनानके साथ चर्चा करना चाहे तो भी मुझे खुशी होगी।

एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनकी शिक्षाओंके बारेमें पादरी जान पुल्सफर्ड, डी० डी० ने जो-कुछ कहा है, उसके साथ मैं अपना यह वक्तव्य समाप्त करूँगा। उन्होंने कहा है:

> आध्यात्मिक प्रतिभा रखनेवाले पाठकके लिए इस बातमें शंका करना असम्भव है कि ये शिक्षाएँ दिव्य आवरणके अन्दरसे प्राप्त हुई हैं। इनमें दिव्य धाम और परमात्मा-सम्बन्धी ज्ञानका सार लबालब भरा हुआ है। अगर ईसाई लोग अपना धर्म जानते हों तो उन्हें इन अमूल्य लेखोंमें प्रभु ईसा और उनकी पद्धतिका परिपूर्ण चित्रण और परिपुष्टि देख पड़ेगी। इस प्रकारके संदेश संभव हैं और संसारको दिये जा सकते हैं, यह हमारे युगका एक चिह्न और बहुत आशाप्रद चिह्न है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइज़र, १–२–१८९५

४५. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

३२८, स्मिथ स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
जनवरी २५, १८९५

सेवामें

श्रीमान् दादाभाई नौरोजी, संसद-सदस्य
लंदन

श्रीमन्,

यद्यपि सरकार चुप है, अखबार जनताको बता रहे हैं कि सम्राज्ञीने मताधिकार विधेयकका निषेध कर दिया है। क्या आप इस विषयमें हमें कोई जानकारी दे सकते हैं?

आपने प्रवासी भारतीयोंकी ओरसे जो कष्ट उठाया उसके लिए वे आपको और कांग्रेस कमेटीको जितना भी धन्यवाद दें, थोड़ा ही होगा।

आपका वफादार सेवक,
मो० क० गांधी

मैं आपके देखनेके लिए साथके कागजात भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

मो० क० गां०

गांधीजीके अपने हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

४६. पुस्तकें बिकाऊ

स्वर्गीय डाक्टर ऐना किंग्ज़फ़र्ड और श्री एडवर्ड मेटलैंडकृत निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित मूल्य पर बिकाऊ हैं। दक्षिण आफ्रिकामें ये पहली ही बार लाई गई हैं:

द परफेक्ट वे — शि० ७/६
क्लोद्ड विद द सन — शि० ७/६
द स्टोरी आफ द न्यू गास्पेल आफ इंटरप्रिटेशन — शि० ३/६
बाइबिल्स ओन एकाउंट आफ इटसेल्फ — शि० १/–
द न्यू गास्पेल आफ इंटरप्रिटेशन — शि० १/–

"पढ़नेसे ऐसा मालूम होता है मानो देव या प्रधान देवदूतकी वाणी सुन रहे हों। साहित्यमें इसके बराबरकी कोई दूसरी कृति मुझे ज्ञात नहीं है (*द परफेक्ट वे*)।" — स्वर्गीय सर एफ० एच० डॉइल।

"उन्नीसवीं शताब्दीमें प्रकाशित पुस्तकोंमें *द परफेक्ट वे*को हम सबसे अधिक ज्ञानपूर्ण और उपयोगी पुस्तक मानते हैं।" — *नॉस्टिक* (संयुक्त राज्य अमेरिका)

मो० क० गांधी

एजेंट, एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन और
लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, २-२-१८९५

४७. मुस्लिम कानून

*नेटाल विटनेस*के २२-३-१८९५के अंकमें निम्नलिखित रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी :

श्री टैथमने कल सर्वोच्च न्यायालयमें अर्जी दी थी कि हसन दावजीकी विला-वसीयत जायदादके बारेमें अधिकारी (सर्वोच्च न्यायालयके 'मास्टर')की रिपोर्टकी पुष्टि कर दी जाये। उन्होंने कहा कि बैरिस्टर गांधीकी बनाई हुई बँटवारेकी तजवीज रिपोर्टमें शामिल कर ली गई है। यह तजवीज मुस्लिम कानूनके अनुसार की गई है।

सर वाल्टर रैग[1] : इसमें बात सिर्फ इतनी ही है कि श्री गांधी मुस्लिम कानूनके बारेमें कुछ नहीं जानते। वे मुस्लिम कानूनसे उतने ही अपरिचित हैं, जितना कि कोई फ्रांसीसी। उन्होंने जो-कुछ कहा है, उसके लिए उन्हें किताबोंका सहारा लेना पड़ा होगा, जैसा कि आप भी कर सकते हैं। उनकी अपनी विशेष जानकारी कुछ नहीं है।

श्री टैथमने कहा कि बँटवारेकी एक-एक तजवीज काजियों और श्री गांधीसे हासिल की गई है। इनके अलावा वह और किससे बनवाई जाती, मैं नहीं जानता। विशेषज्ञोंके जो भी प्रमाण उपलब्ध थे उन सबकी छानबीन हमने कर ली है।

१. सर्वोच्च न्यायालयके एक न्यायाधीश।

सर वाल्टर रैग : जो हिस्सा श्री गांधीके कथनानुसार मृत व्यक्तिके भाईको मिलना चाहिए वह, मुस्लिम कानूनके अनुसार गरीबोंके हिस्सेमें जाना चाहिए। श्री गांधी एक हिन्दू हैं और वे बेशक अपना धर्म जानते हैं, मगर मुस्लिम कानूनके बारेमें वे कुछ नहीं जानते।

श्री टैथम : सवाल यह है कि हम श्री गांधीका मत मानें या काजियोंका?

सर वाल्टर रैग : आपको काजियोंका मत मानना चाहिए। जब भाई साबित कर सके कि वह गरीबोंका प्रतिनिधित्व करता है तब उसे श्री गांधीके कथनानुसार चौबीसमें से पाँच हिस्सोंका हक मिलेगा।

इसकी आलोचना करते हुए गांधीजीने निम्नलिखित लेख लिखा था :

डर्बन
मार्च २३, १८९५

सेवामें

सम्पादक
नेटाल विटनेस

महोदय,

आपके २२ तारीखके अंकमें मुस्लिम कानूनके एक मुद्देके सम्बन्धमें सर वाल्टर रैग और श्री टैथमके बीचका वार्तालाप प्रकाशित हुआ है। उसपर, मुझे भरोसा है, न्यायके हितमें आप मुझे कुछ विचार व्यक्त करनेका अवसर देंगे।

मैंने आपके सौजन्यका लाभ उठानेका साहस अपनी सफाई देनेके मंशासे नहीं, बल्कि सर्वोच्च न्यायालयके उस निर्णयके कारण किया है, जो सर वाल्टर रैगके प्रति उचित सम्मान रखते हुए भी, मेरा विश्वास है, मुस्लिम कानूनकी गलत धारणा पर आधारित है और भारतीय बाशिन्दोंकी भारी संख्यापर गहरा आघात करनेवाला होगा।

अगर मैं मुसलमान होता और मेरा निर्णय कोई ऐसा मुसलमान करता जिसकी एकमात्र योग्यता यह होती कि वह जन्मसे मुसलमान है, तो मुझे बहुत खेद होता। यह तो एक नई बात मालूम हुई कि मुसलमान तो सहज ज्ञानसे ही कानून जानते हैं और कोई गैर-मुसलमान मुस्लिम कानूनके किसी मुद्दे पर कोई मत दे ही नहीं सकता।

अगर आपकी रिपोर्ट सही है तो, मुझे आशंका है, यह निर्णय कि भाईको सम्पत्तिके चौबीसमें से पाँच भागोंका हक तभी होगा जब वह "साबित कर सके कि वह गरीबोंका प्रतिनिधि है," भारतमें प्रचलित और कुरानमें बताये गये

मुस्लिम कानूनको उलट देनेवाला होगा। मैंने मैकनाटनकी *मोहम्मडन ला* नामक पुस्तकके वसीयत-सम्बन्धी अध्यायोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा है। (यह पुस्तक, प्रसंगवश मैं कह दूँ, एक गैर-मुसलमान भारतीयने सम्पादित की है, और श्री विन्स तथा मेसनने भारतसे लौटनेके वाद इसे मुस्लिम कानून पर एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक वताया है।) मैंने कुरानका वह अंश भी पढ़ा है, जो इस विषयसे सम्वन्ध रखता है। इन दोनोंमें मैंने एक शब्द भी ऐसा नहीं पाया, जिससे कि किसी मृत मुसलमानकी सम्पत्तिका कोई भाग पानेका हक गरीवोंको मिलता हो। अगर कुरान शरीफ और उपर्युक्त पुस्तक उस कानूनकी जरा भी अधिकारी पुस्तकें हैं, तो विचाराधीन सम्पत्तिके किसी अंश पर गरीवोंका हक नहीं है। इतना ही नहीं, वल्कि किसी भी हालतमें, किसी भी विला-वसीयत जायदादके अंशपर गरीवोंका कोई अधिकार नहीं है। मैं यह साबित कर सकनेकी आशा रखता हूँ कि जव भाई (सचमुच तो सौतेला भाई होना चाहिए) उस कानूनके अनुसार कुछ प्राप्त करता है, तव वह उसे *अपने ही हकसे* प्राप्त करता है और *इसलिए* प्राप्त करता है कि वह *भाई* है।

सम्भवतः न्यायाधीश महोदय उत्तराधिकारके वारेमें वातें करते समय सच-मुच परन्तु अनजाने खैरातके वारेमें सोच रहे थे, जो प्रत्येक मुसलमानके लिए लाजिमी है। खैरात मुसलमानोंकी ईश्वर-निष्ठाका एक अंग है। परन्तु जो सिद्धान्त जीवित अवस्थामें खैरातका निर्देश करता है, वह विरासतके वँटवारे पर लागू नहीं होता। जीवनकालमें खैरात वाँटकर मुसलमान जन्नतका, या जन्नतमें आदरके योग्य स्थानका हक कमा लेता है। उसकी मौतके वाद सरकार द्वारा उसकी जायदादसे वाँटी गई खैरात उसे कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं पहुँचा सकती, क्योंकि यह काम तो उसका नहीं होता। किसी मुसलमानकी मृत्युके वाद उसकी जायदादपर तो उसके रिश्तेदारोंका पहला — नहीं, एकमात्र उनका ही — हक होता है।

कुरानका वचन है:

> **हमने मुकर्रर किया है कि माँ-वाप और रिश्तेदार अपनी मौतके बाद जो जायदाद छोड़ जायें उसका हिस्सा हर रिश्तेदारको मिले।**

कानून कहता है:

> **"मरनेवाले आदमीकी जायदाद पर चार क्रमिक जिम्मेदारियाँ होती हैं — पहली, विना फिजूल खर्चके, फिर भी विना किसी कमीके, उस आदमीकी दफन-क्रिया वगैरह; दूसरी, उसकी वची हुई जायदादसे उसके**

कर्जका भुगतान; फिर जो-कुछ बचे उसके एक-तिहाई हिस्सेसे उसकी वसीयतका भुगतान; और आखिरी, उसके बचे हुए धनका वारिसोंके बीच बँटवारा।"

वारिसोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है:

(१) कानूनी हिस्सेदार, (२) शेषके हिस्सेदार, (३) दूरके रिश्तेदार, (४) इकरारनामेकी बदौलत वारिस, (५) माने हुए रिश्तेदार, (६) सार्वजनीन विरासतदार, (७) सरकार या राजा।

"कानूनी हिस्सेदारों" की व्याख्या इस प्रकार की गई है: "वे सब लोग, जिनको कुरानपाकके मुताबिक, परम्पराओंसे या आम रायसे निश्चित हिस्सोंका अधिकारी माना गया हो।" और हिस्सेदारोंके बारह वर्गोंके बयानमें सौतेले भाई भी शामिल किये गये हैं। "शेषके हिस्सेदार" वे "सब लोग हैं, जिनके लिए कोई हिस्सा निश्चित नहीं किया गया और जो हिस्सेदारोंमें बँटवारा हो जानेके बाद बचा हुआ हिस्सा प्राप्त करते हैं, या अगर हिस्सेदार न हों तो सारी जायदादके अधिकारी होते हैं।" यहाँ यह बता देना होगा कि कुछ कानूनी हिस्सेदार कुछ खास परिस्थितियोंमें वारिस नहीं रहते और उस हालतमें वे शेषके हिस्सेदारोंमें शामिल हो जाते हैं। "दूरके रिश्तेदार" वे "सब रिश्तेदार हैं, जो न तो कानूनी हिस्सेदार हैं न शेषके हिस्सेदार हैं।" "हिस्सेदारोंका हिस्सा बँट जानेके बाद अगर मरे हुए व्यक्तिकी जायदादका कुछ हिस्सा बच जाये तो वह *शेषके अधिकारी कहलानेवाले दूसरे वर्गके लोगोंमें बाँटा जायेगा।* अगर ऐसे शेषके अधिकारी न हों तो शेष जायदाद कानूनी हिस्सेदारोंमें उनके हिस्सोंके हिसाबसे बाँट दी जायेगी।"

मैं दूसरे वारिसोंकी परिभाषाएँ देकर आपके मूल्यवान स्थानको नहीं भरूँगा। इतना कहना काफी है कि उनमें गरीबोंका कोई समावेश नहीं है। गरीब केवल तभी कोई हिस्सा "ले" सकते हैं जब कि पहले तीन वर्गोंका निबटारा हो जाये।

शेषके अधिकारियोंमें दूसरे लोगोंके साथ "मृत व्यक्तिके पिताकी 'सन्तान' —अर्थात् भाई, सगोत्र भाई, और उनके पुत्र भी शामिल हैं, वे कितने भी नीचे दर्जेके क्यों न हों।" धारा १ का नियम १२ कहता है: "यह आम कायदा है कि बहनकी अपेक्षा भाई दूना हिस्सा पायेगा। इसमें अपवाद सिर्फ उन भाई-बहनोंके बारेमें है, जिनकी माता एक ही होनेपर भी पिता भिन्न हों।" और धारा ११ के नियम २५ में कहा गया है: "जहाँ केवल लड़कियाँ और

लड़केकी लड़कियाँ ही हों और *भाई* न हों, वहाँ लड़कियों और लड़केकी लड़कियोंके अपना हिस्सा पा लेनेपर जो-कुछ बचे वह बहनें पायेंगी। अगर लड़की या लड़केकी लड़की एक ही हो तो यह शेष भाग आधा रहेगा, परन्तु उनकी संख्या दो या दोसे ज्यादा हो तो यह शेष एक-तिहाई रहेगा।" दोनों नियमोंको मिलाकर पढ़नेसे हमें यह निश्चय करनेमें बहुत मदद मिलती है कि प्रस्तुत विवादग्रस्त मामलेमें भाईका हिस्सा क्या है।

जिस पुस्तकसे मैंने ये उद्धरण दिये हैं उसमें नमूनोंके तौरपर ऐसे मामलोंके उदाहरण दिये गये हैं। निम्नलिखित उदाहरण अपने हलके साथ मिलता है: "*उदाहरण ७* — पति, पुत्र, भाई और तीन बहनें।" हलको पूरे विस्तारके साथ उद्धृत करनेकी जरूरत नहीं है। शेषका अधिकारी होनेके कारण भाईको *अपने हकसे* बीसमें से दो हिस्से मिलते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा कि भाई, और उनके न होने पर सौतेले भाई अपने ही अधिकारसे या तो हिस्सेदार होते हैं, या शेषके अधिकारी। इसलिए, प्रस्तुत विवादग्रस्त मामलेमें सर वाल्टरके मतके प्रति अधिकतम आदरके बावजूद मुझे कहना होगा कि, अगर भाई कुछ "लेता" ही है, तो वह *अपने अधिकारसे "लेता" है, न कि गरीबोंके प्रतिनिधिके रूपमें।* और अगर वह नहीं "लेता" (जो, अगर कानूनका पालन करना है तो ऐसे मामलेमें हो नहीं सकता), तो बची हुई जायदाद हिस्सेदारोंके बीच "फिरसे बँट जाती" है।

परन्तु रिपोर्टमें कहा गया है कि मैं और काजी लोग भिन्न मतके हैं। अगर आप "मैं"को निकाल दें और उसके स्थान पर "कानून"को रख दें (क्योंकि मैंने तो सिर्फ यही कहा है कि कानून क्या है), तो मैं कहूँगा कि काजियोंके मत और कानूनमें फर्क होना ही नहीं चाहिए। और अगर फर्क होता है, तो कानूनको नहीं, काजीको मुँहकी खानी पड़ेगी। तथापि, अगर काजीने वैसा ही बँटवारा मंजूर किया है, जैसा कि श्री टैथमके पाससे मेरे पास आई हुई रिपोर्टमें बताया गया है, तो इस मामलेमें मेरे और काजीके बीच कोई मतभेद नहीं है। और श्री टैथमने रिपोर्टके साथ मुझे जो पत्र भेजा है उससे तो मालूम होता है कि काजीकी मंजूर की हुई बँटवारेकी योजना यही है। काजीने इस बारेमें एक शब्द भी नहीं कहा कि सौतेले भाईको गरीबोंके प्रतिनिधिके रूपमें जायदादका हिस्सा मिलना चाहिए।

आखिरी बात — रिपोर्ट देखनेके बाद, मैं खास तौरसे कुछ मुसलमान मित्रोंसे मिला। सर वाल्टरके कथनानुसार उन्हें तो मुस्लिम कानूनका ज्ञान होना चाहिए।

और जब मैंने उन्हें निर्णयके बारेमें बताया तो वे आश्चर्यमें पड़ गये। बात उन्हें इतनी साफ दिखलाई पड़ती थी कि उन्हें सोचनेमें कोई समय नहीं लगा। उन्होंने कहा, "गरीबोंको बिला-वसीयत जायदादका कभी कोई हिस्सा नहीं मिलता। सौतेले भाईको अपने ही हकसे हिस्सा मिलना चाहिए।"

इसलिए मेरा निवेदन है कि न्यायाधीशका निर्णय मुस्लिम कानून, काजीके मत और दूसरे मुस्लिम सज्जनोंकी रायके प्रतिकूल है। अगर किसी मृत मुसलमानकी सम्पत्तिके हिस्से, जिनपर उसके रिश्तेदारोंका अधिकार है, तबतक अटकाये रखे जायें, जबतक कि रिश्तेदार यह साबित न कर दें कि वे "गरीबोंके प्रतिनिधि" हैं, तो यह सरासर एक कठिनाई हो जायेगी। यह शर्त लगानेका मंशा तो कानूनमें कभी था ही नहीं, और न मुसलमानी रिवाजोंमें ही यह मंजूर-शुदा है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल विटनेस, २८-३-१८९५

४८. स्मरणपत्र : प्रिटोरिया-स्थित एजेंटको

प्रिटोरिया
अप्रैल १६, १८९५

सेवामें
श्रीमान् सर जेकब्स डी'वेट, के० सी० एम० जी०
एजेंट, सम्राज्ञी-सरकार, प्रिटोरिया

गणराज्यके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे समितिके रूपमें काम करनेवाले प्रिटोरिया-निवासी तैयबखाँ तथा अब्दुल गनी और जोहानिसबर्ग-निवासी हाजी हबीब हाजी दादाका स्मरणपत्र

हम श्रीमान्से सादर निवेदन करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य सरकारके बीच भारतीय प्रश्नका जो पंच-फैसला हाल ही ब्लूमफांटीन — आरेंज फ्री स्टेट — में किया गया है, उसके बारेमें यह तय करनेके लिए परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) महोदयसे लिखा-पढ़ी की जाये कि क्या सम्राज्ञी-सरकार उससे संतोष मान लेगी। श्रीमान् जानते ही हैं, पंचने

फैसला किया है कि १८८५ का कानून ३ जिस रूपमें फोक्सराट [लोकसभा]के १८८६ के अधिनियमसे संशोधित हुआ है, इस सरकार द्वारा कार्यान्वित किया ही जाना चाहिए। उसने यह फैसला भी किया है कि जब-कभी उक्त कानूनके आशयके बारेमें कोई झगड़ा उठे तो मतभेदका निर्णय गणराज्यका उच्च न्यायालय करे।

गणराज्य सरकारने पंचके सामने जो विवरण-पुस्तिकाएँ (ग्रीन बुक्स) पेश की थीं उनमें से पुस्तक नं० २१८९४ के पृष्ठ ३१ और ३५ पर कुछ वक्तव्य दिये गये हैं। उनका आशय यह है कि उच्च न्यायालयके सामने पेश ईस्माइल सुलेमान एंड कंपनीकी कुछ अर्जियों पर निर्णय देते हुए मुख्य न्यायाधीशने कहा है कि जिन जगहोंमें व्यापार किया जाता है और जहाँ भारतीय निवास करते हैं उनमें कोई फर्क नहीं माना जा सकता। इन तथ्योंकी दृष्टिसे हम, उच्च न्यायालयकी मानहानि किये बिना, सादर निवेदन करते हैं कि यदि मुख्य न्यायाधीशके निर्णयसे सम्बन्ध रखनेवाला उपर्युक्त कथन सही है, तो तय है कि उपर्युक्त कानूनके मातहत जो भी मामला अदालतमें जायेगा उसका फैसला सम्राज्ञीकी गणराज्यवासी भारतीय प्रजाके विरुद्ध होगा। इस तरह, जो मामला समर्पण-पत्रके निर्देशोंके अनुसार पंचको सौंपा गया था उसका निर्णय उसने नहीं किया, बल्कि अमली तौरपर उसे गणराज्यके उच्च न्यायालयके निर्णयके लिए छोड़ दिया है। इसलिए हम आदरपूर्वक कहेंगे कि जहाँतक पंचको दिये गये निर्देशोंका सम्बन्ध है, उसने मामलेका निर्णय किया ही नहीं। अतएव श्रीमान्‌से हमारा सादर निवेदन है कि सम्राज्ञी-सरकारसे पत्र-व्यवहार करके जाना जाये कि क्या वह उपर्युक्त निर्णयसे संतोष मानेगी और उसे स्वीकार कर लेगी।

(ह०) तैयब हाजी खान मुहम्मद
अब्दुल गनी
हाजी हबीब हाजी दादा

[अंग्रेजीसे]

मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-स्थित ब्रिटिश उच्चायुक्तके ता० २९ अप्रैल, १८९५ के खरीता नं. २०४ का सहपत्र।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स नं. ४१७, जिल्द १४८।

४९. प्रार्थनापत्र[1] : नेटाल विधानसभाको

[डर्बन,
मई ५, १८९५ के पूर्व]

सेवामें

माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधानसभा, नेटाल

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, नेटालवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

हम इस उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें आपकी माननीय विधानसभाकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। उक्त विधेयक इस समय आपके विचाराधीन है।

प्रार्थियोंका सादर निवेदन है कि विधेयकके जिस अंशमें गिरमिटको फिरसे नया करने और उसे मंजूर न करनेवालोंपर कर लगानेकी व्यवस्था है, वह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण, बिलकुल अनावश्यक और ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंका सीधा विरोधी है।

विधेयक अन्यायपूर्ण है, इसको सिद्ध करनेके लिए, प्रार्थियोंका निवेदन है, बहुत कहनेकी जरूरत नहीं है। गिरमिटकी अधिकतम अवधिको पाँच वर्षसे अनिश्चित काल तकके लिए बढ़ा देना अपने-आपमें ही अन्यायपूर्ण है, क्योंकि इससे गिरमिटिया भारतीयोंके मालिकोंके सामने कठोर व्यवहार करने अथवा अत्याचार करनेका ज्यादा प्रलोभन पैदा होता है। उपनिवेशवासी मालिक लोग कितने भी दयालु क्यों न हों, वे रहेंगे तो हमेशा मनुष्य ही। और प्रार्थियोंके लिए यह बताना जरूरी नहीं कि जब मनुष्य स्वार्थकी प्रेरणासे काम करने लगता है तो उसका स्वभाव कैसा बन जाता है। इसके अलावा, प्रार्थी यह भी कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि उपर्युक्त विधेयक बिलकुल एकतरफा है। उससे मालिकको तो प्रत्येक रियायत मिलती है, मगर मजदूरको बदलेमें लगभग कुछ भी नहीं मिलता।

१. यह प्रार्थनापत्र *नेटाल एडवर्टाइज़र*के मई ५, १८९५ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि विधेयक अनावश्यक है, क्योंकि उसके पेश किये जानेका कोई कारण मौजूद नहीं है। उसका उद्देश्य उपनिवेशको किसी आर्थिक विनाशसे बचाना नहीं, और न किसी उद्योगकी उन्नतिमें मदद करना ही है। उलटे, जिन उद्योगोंके लिए भारतीय मजदूरोंकी विशेष आवश्यकता थी, उन्हें अब किसी असाधारण सहायताकी आवश्यकता नहीं रही। इस बातको मंजूर किया जा चुका है और १०,००० पौंड सहायताकी व्यवस्था अभी गत वर्ष ही रद की गई है। इससे साफ है कि ऐसे कानूनकी कोई सच्ची जरूरत नहीं है।

यह बतानेके लिए कि विधेयक ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंका प्रत्यक्ष विरोधी है, प्रार्थी आपकी माननीय सभाका ध्यान गत एक शताब्दीकी उन बड़ी-बड़ी घटनाओंकी ओर आकर्षित करते हैं, जिनमें ब्रिटेनने प्रमुख भाग लिया है। जबरिया मजदूरी ब्रिटिश परम्पराओंके सदैव प्रतिकूल रही है — भले ही वह गुलामीके भयानकतम रूपसे लेकर सौम्यतम ढंगकी बेगार तक कैसी भी क्यों न रही हो। और जहाँतक सम्भव हो सका है, हर जगह उसका उच्छेद कर दिया गया है। गिरमिटिया-प्रथा इस उपनिवेशके जैसी आसाममें भी है। अभी थोड़े ही समय पहले सम्राज्ञीकी सरकारने स्वीकार किया था कि गिरमिटिया प्रथा एक बुरी चीज है, और उसे तभीतक बरदाश्त किया जाना चाहिए जबतक कि वह किसी महत्त्वपूर्ण उद्योगको शुरू करने या सँभालनेके लिए आवश्यक हो, और पहला अनुकूल अवसर आते ही उसको मिटा देना चाहिए। प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि विचाराधीन विधेयक उपर्युक्त सिद्धान्तोंको भंग करनेवाला है।

यदि गिरमिटकी अवधि बढ़ानेका प्रस्ताव अन्यायपूर्ण, अनावश्यक और ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंका विरोधी है (जैसा कि, आपके प्रार्थियोंको आशा है, उन्होंने आपकी सम्माननीय सभाके सामने संतोषजनक रूपमें सिद्ध कर दिया है), तो कर लगानेका प्रस्ताव और भी ज्यादा वैसा है। यह तो दीर्घ कालसे स्वयंसिद्ध सत्य माना जा चुका है कि करका प्रयोजन सिर्फ सरकारी आय है। प्रार्थियोंके नम्र विचारसे, यह तो एक क्षणके लिए भी नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तावित करका लक्ष्य कोई ऐसा प्रयोजन सिद्ध करना है। प्रस्तावित करका संकल्पित अभिप्राय भारतीयोंको अपने गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेने पर उपनिवेशसे खदेड़ देना है। इसलिए यह कर वर्जनात्मक होगा और मुक्त व्यापारके सिद्धान्तोंके विरुद्ध बैठेगा।

इसके अतिरिक्त, प्रार्थियोंको अंदेशा है कि गिरमिटिया भारतीयोंको इससे अनुचित कष्ट पहुँचेगा, क्योंकि भारतसे सारा नाता तोड़कर सपरिवार यहाँ आये हुए भारतीयोंके लिए फिरसे भारत जाकर वहाँ जीविकोपार्जन करनेकी आशा करना बिलकुल असंभव है। प्रार्थी अपने अनुभवसे यह कहनेकी आज्ञा चाहते हैं कि साधारणतः वे भारतीय ही गिरमिट-प्रथाके मातहत इस उपनिवेशमें आते हैं जो भारतमें काम करके अपना उदर-पोषण नहीं कर सकते। भारतीय समाजका ताना-बाना ही ऐसा है कि भारतीय अपना घर छोड़ते ही नहीं। जब वे एक बार घर छोड़नेको बाध्य हो जाते हैं, तो वे भारत लौटकर धन कमानेकी तो बात दूर, अपनी रोटी कमा लेनेकी भी आशा नहीं कर सकते।

यह तो माना हुआ सत्य है कि भारतीय मजदूर उपनिवेशकी समृद्धिके लिए अनिवार्य हैं। अगर ऐसा है, तो प्रार्थियोंका निवेदन है कि जो भारतीय उपनिवेशकी समृद्धि बढ़ानेमें इतनी ठोस सहायता पहुँचाते हैं वे बेहतर रियायतके हकदार हैं।

कहना न होगा कि यह विधेयक एक वर्ग-विशेषसे सम्बन्ध रखनेवाला है। भारतीयोंके विरुद्ध उपनिवेशमें मौजूद द्वेषको यह उत्तेजन देता और बढ़ाता है। इस तरह यह ब्रिटिश प्रजाके दो वर्गोंके बीचकी खाईको चौड़ा करेगा। इसलिए प्रार्थी विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आपकी सम्माननीय विधानसभा यह फैसला करे कि विधेयकका गिरमिटको पुनः नया करने और कर लगानेसे सम्बन्ध रखनेवाला अंश ऐसा नहीं है, जिस पर आपकी सम्माननीय विधानसभा अनुकूल विचार कर सके। और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) अब्दुल्ला हाजी आदम
और अन्य अनेक

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।
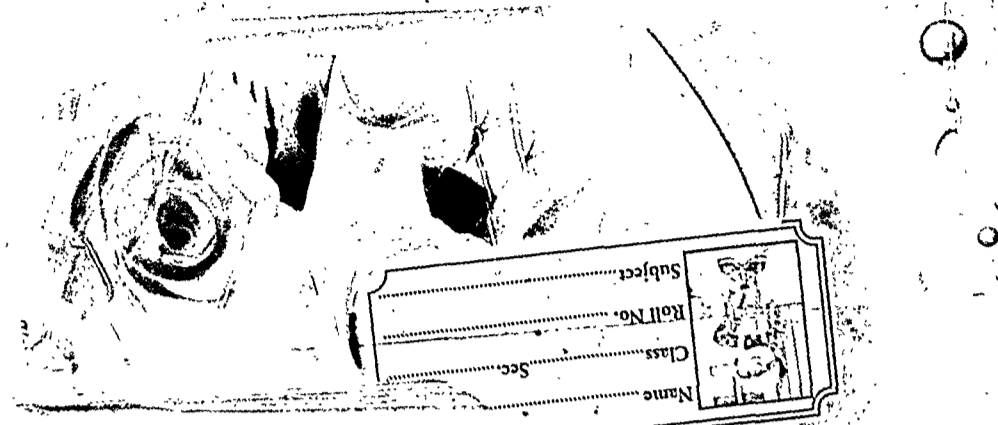
५०. पत्र : कमरुद्दीनको

पोस्ट वाक्स ६६
डर्वन, नेटाल
मई ५, १८९५

प्रिय श्री मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन,

आपके पाससे भारतीयोंकी सहियाँ मिलीं। डचोंकी सहियाँ लेकर तुरन्त प्रिटोरिया भिजवा दी होंगी। यह काम वहुत जरूरी है, इसलिए इसमें ढील नहीं होनी चाहिए। मैंने प्रिटोरियाको तार भी किया है, कि डचोंकी अर्जी[1]की नकल वहाँ भेजें। यह सव काम वुधवार तक समाप्त हो जाना चाहिए। क्या किया है, सो समाचार विस्तारसे लिखें।

सब हिन्दुस्तानियोंके इसमें मिहनत करनेकी पूरी जरूरत है। नहीं तो पीछे पछताना होगा।

आपका हितैपी,
मोहनदास गांधी

गांधीजीके अपने हस्ताक्षरोंमें लिखे गुजराती पत्रकी फोटो-नकलसे।

५१. अन्नाहारी मिशनरियोंकी टोली

इंग्लैंडमें मैंने श्रीमती एना किंग्जफ़र्डकी पुस्तक *परफेक्ट वे इन डाएट* [उत्तम आहार-पद्धति] में पढ़ा था कि दक्षिण आफ्रिकामें ट्रैपिस्ट[2] लोगोंकी एक वस्ती है और वे लोग अन्नाहारी हैं। तबसे ही मैं इन अन्नाहारियोंसे मिलनेका इच्छुक था। आखिर वह इच्छा पूरी हो गई है।

पहले मैं यह कह दूँ कि दक्षिण आफ्रिका, और खास तौरसे नेटाल, अन्नाहारियोंके लिए विशेष अनुकूल वना लिया गया है। भारतीयोंने नेटालको दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान-उपनिवेश वना दिया है। दक्षिण आफ्रिकाकी भूमिमें लगभग

१. देखिए, पृष्ठ २००।

२. सिस्तरूनी ईसाई साधुओंका एक पंथ, जो मौन तथा अन्य साधनाओंके लिए प्रसिद्ध है।

कोई भी चीज पैदा की जा सकती है, और सो भी भारी मात्रामें। केला, संतरा और अनन्नासकी उपज तो लगभग अक्षय है, और माँगसे वहुत ज्यादा है। फिर क्या ताज्जुव कि अन्नाहारी लोग नेटालमें खूव भले-चंगे रह सकते हैं? ताज्जुव तो सिर्फ इस वातका है कि इस तरहकी सुविधाओं और गर्म आवहवाके वावजूद उनकी संख्या इतनी कम है। परिणाम यह है कि वड़ी-वड़ी जमीनें अव भी उपेक्षित और वंजर पड़ी हैं। मुख्य भोजन-सामग्री आयात की जाती है, जवकि सारीकी सारी चीजोंको दक्षिण आफ्रिकामें ही पैदा कर लेना विलकुल सम्भव है, और जवकि विशाल नेटाल प्रदेशमें ४०,००० गोरोंकी छोटी-सी आवादी भारी मुसीवतमें जकड़ी हुई है। इस सवका कारण यही है कि वे कृपिके कार्यमें नहीं लगते।

जीवनकी अप्राकृतिक रीतिका एक विलक्षण किन्तु दुःखद परिणाम यह भी है कि भारतीय आवादीके प्रति, जिसकी संख्या भी ४०,००० है, जोरदार द्वेप-भाव फैला हुआ है। भारतीय, अन्नाहारी होनेके कारण, विना किसी कठिनाईके कृपि-कार्यमें लग जाते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि सारे उपनिवेशमें छोटे-छोटे खेत उनके ही हैं, और उनकी जोरदार होड़से गोरी आवादीको चिढ़ होती है। ऐसा वरताव करके वे 'खाय न खाने दे' की और आत्मघाती नीतिका अवलम्वन कर रहे हैं। वे देशके विशाल कृपि-साधनोंको अविकसित छोड़ रखना पसन्द करेंगे, परन्तु यह पसन्द नहीं करेंगे कि भारतीय उनका विकास करें। ऐसी मन्द वुद्धि और अदूरदर्शिताके परिणामस्वरूप जो उपनिवेश यूरोपीय तथा भारतीय निवासियोंकी दूनी या तिगुनी संख्याका भरण-पोपण करनेमें समर्थ है, वह कठिनाईसे केवल ८०,००० यूरोपीयों और भारतीयोंका भरण-पोपण करता है। ट्रान्सवालकी सरकार तो अपने द्वेप-भावमें यहाँतक वढ़ी-चढ़ी है कि, जमीन वहुत उपजाऊ होनेपर भी, साराका सारा गणराज्य धूलका एक रेगिस्तान वना हुआ है। अगर किसी कारणसे वहाँकी सोनेकी खानें न चल सकें तो हजारों लोग वेकार हो जायेंगे और, अक्षरशः, भूखों मर जायेंगे। क्या यहाँ एक भारी सवक सीखनेको नहीं है? मांस खानेकी आदत वास्तवमें समाजकी प्रगतिमें वाधक हुई है। इसके अलावा, जिन दो महान समाजोंको एकताके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर काम करना चाहिए उनके वीच उसने अप्रत्यक्ष रूपमें फूट पैदा कर दी है। यह महत्त्वपूर्ण वस्तुस्थिति भी देखने योग्य है कि उपनिवेशके भारतीयोंका स्वास्थ्य उतना ही अच्छा है जितना कि यूरोपीयोंका। मैं जानता हूँ कि यदि यूरोपीय या उनकी मांसकी वटलोइयाँ न

होतीं तो बहुत-से डाक्टर भूखों मरते होते। भारतीय अपनी कमखर्चीकी और शराबसे परहेजकी आदतोंके कारण सफलताके साथ यूरोपीयोंकी बराबरी कर सकते हैं। इन दोनों आदतोंका मूल अन्नाहार ही है। अलबत्ता, इतना तो समझ रखना चाहिए कि उपनिवेशके भारतीय शुद्ध अन्नाहारी नहीं हैं; वे सिर्फ व्यवहारमें अन्नाहारी हैं।

अब हम देखेंगे कि पाइनटाउनके निकटवर्ती मेरियन हिलके ट्रैपिस्ट लोग उपर्युक्त सत्यके कैसे स्थायी साक्षी हैं।

पाइनटाउन एक छोटा-सा गाँव है। वह डर्बनसे १६ मील, रेलमार्ग पर है। वह समुद्रके स्तरसे लगभग १,१०० फुटकी ऊँचाई पर है और उसकी आबहवा बहुत अच्छी है।

ट्रैपिस्ट मठ पाइनटाउनसे लगभग तीन मील पर है। वह एक पहाड़ी पर, या यों कहिये कि, पहाड़ियोंके एक समूह पर बना हुआ है। उस पहाड़ीको मेरियन हिल कहा जाता है। मैं अपने एक साथीके साथ वहाँ पैदल गया। छोटी-छोटी पहाड़ियोंके बीचसे, जो सब हरी घाससे छाई हुई हैं, यह यात्रा बड़ी ही आनन्दप्रद रही।

बस्तीमें पहुँचने पर हमने एक सज्जनको देखा, जो मुँहमें विलायती चिलम (पाइप) दबाये हुए था। हमने एकदम ताड़ लिया कि यह उस भ्रातृमण्डलका नहीं है। तथापि, वह हमें प्रेक्षकोंके कमरेमें ले गया। वहाँ प्रेक्षकोंके लिए एक रजिस्टर रखा हुआ था, जिसमें वे अपनी सम्मतियाँ दर्ज करते हैं। रजिस्टरसे मालूम हुआ कि वह १८९४ में शुरू किया गया था, परन्तु तबतक मुश्किलसे उसके बीस पृष्ठ भरे थे। सचमुच, मिशनकी जानकारी लोगोंको जितनी होनी चाहिए उतनी है ही नहीं।

इस समय भ्रातृमण्डलका एक सदस्य आया और उसने बहुत झुककर नमस्कार किया। हमें इमलीका पानी और अनन्नास दिये गये। ताजे हो जाने पर हम मार्गदर्शकके साथ, जहाँ-जहाँ वह हमें ले गया वहाँ-वहाँ, विभिन्न जगहें देखनेके लिए गये। जो भिन्न-भिन्न इमारतें दिखाई देती थीं वे सब ठोस लाल ईंटोंकी थीं। सब जगह शान्ति थी। यह शान्ति सिर्फ कारखानेके औजारों या देशी बच्चोंकी आवाजसे ही भंग होती थी।

बस्ती एक छोटा-सा, शान्त, आदर्श गाँव है। वह किसी व्यक्ति-विशेषकी सम्पत्ति नहीं, सच्चेसे सच्चे गणतन्त्रीय सिद्धान्तोंके आधार पर सबकी सम्पत्ति है। वहाँ स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्वके सिद्धान्तका पूरी-पूरी तरह

पालन किया जाता है। प्रत्येक पुरुष भाई है, प्रत्येक स्त्री वहन है। पुरुष-व्रतियों (मांक्स) की संख्या आश्रममें १२० है, और स्त्री-व्रतियोंकी लगभग ६० है। स्त्री-व्रतियोंको वहन (सिस्टर) कहा जाता है। वहनोंका विहार [निवास-स्थान] भाइयोंके विहारसे लगभग आधा मील है। भाई और वहन दोनों ही कड़े मौन-व्रत और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। मठाधीश (ऐवट) जिन लोगोंको इजाजत देता है उनके सिवा कोई दूसरे भाई या वहन वोल नहीं सकते। मठाधीश नेटालके ट्रैपिस्ट लोगोंका प्रमुख है। वोलनेकी इजाजत सिर्फ उन लोगोंको दी जाती है, जिन्हें खरीदी करने या देखने आनेवालोंकी व्यवस्था करनेके लिए शहर जाना पड़ता है।

भाई लोग लम्वा झव्वा पहनते हैं। छाती और पीठ पर एक काला कपड़ा होता है। वहनें सादेसे सादे लाल कपड़े पहनती हैं। कोई भी मोजे पहनता दिखलाई नहीं पड़ा।

भ्रातृमण्डलमें शामिल होनेके उम्मीदवारोंको पहले दो वर्षका व्रत लेना पड़ता है। इस वीच उन्हें नौसिखिया माना जाता है। दो वर्षके वाद या तो उन्हें आश्रम छोड़ देना पड़ता है या जीवन भरके लिए व्रत ले लेना पड़ता है। आदर्श ट्रैपिस्ट २ वजे रातको उठता है और चार घंटे प्रार्थना तथा ध्यानमें लगाता है। ६ वजे सुवह वह नाश्ता करता है, जिसमें डवल रोटी और काफ़ी या इसी तरहका कुछ सादा भोजन होता है। वारह वजे दिनको वह डवल रोटी तथा शोरवा और फलोंका भोजन करता है। ६ वजे शामको व्यालू करता है और ७ या ८ वजे सोने चला जाता है। ये भाई लोग जानवरोंका मांस, मछली या पक्षियोंका मांस — कुछ नहीं खाते। अंडे खाना तक छोड़ देते हैं। दूध लेते हैं, परन्तु उन्होंने वताया कि नेटालमें दूध सस्ता नहीं मिलता। वहनोंको हफ्तेमें चार दिन मांस खानेकी अनुमति है। यह पूछने पर कि इस तरहका फर्क क्यों पाला जाता है, उपकारशील मार्गदर्शकने कहा : "क्योंकि वहनें भाइयोंसे ज्यादा सुकुमार होती हैं।" इस तर्कका वल मेरी समझमें नहीं आया। मेरा साथी करीव-करीव अन्नाहारी है, परन्तु उसकी समझमें भी नहीं आया। यह समाचार हमारे लिए आश्चर्यजनक था। इससे हमें वहुत दुःख भी हुआ, क्योंकि हमने तो अपेक्षा की थी कि भाई और वहन दोनों ही अन्नाहारी होंगे।

वे डाक्टरकी सलाहके अलावा शराव नहीं पीते। खानगी उपयोगके लिए कोई अपने पास पैसा नहीं रखता। सव एक-समान धनी या एक-समान गरीव हैं।

हमें एक-एक इंच जगह देखने दी गई, परन्तु हमने कहीं भी कपड़े रखनेकी आलमारियाँ या सन्दूकें नहीं देखीं। आश्रमवासियोंको जबतक कामके लिए बाहर जानेकी इजाजत नहीं दी जाती, वे आश्रमकी सीमाके बाहर नहीं जाते। समाचारपत्र और गैर-धार्मिक पुस्तकें वे नहीं पढ़ते। जिन धार्मिक पुस्तकोंको पढ़नेकी अनुमति होती है उन्हें छोड़कर वे अन्य धार्मिक पुस्तकें भी नहीं पढ़ सकते। जिस चिलम लिये हुए व्यक्तिसे हम पहले-पहल मिले थे उससे हमने पूछा था कि क्या आप ट्रैपिस्ट हैं? उसने इस कठोर, तपोमय जीवनके कारण ही उत्तर दिया था: "डरो मत, मैं कोई भी होऊँ, मगर ट्रैपिस्ट नहीं हूँ।" और फिर भी वे भले भाई-बहन यह मानते नहीं दीख पड़े कि उनका जीवन दुस्सह परिस्थितियोंमें पड़ गया है।

एक प्रोटेस्टेंट धर्मगुरुने अपने श्रोताओंसे कहा था कि रोमन कैथलिक लोग दुर्बल, रोगी और दुःखी हैं। परन्तु, कैथलिक लोग कैसे हैं, यह निश्चय करनेके लिए अगर ट्रैपिस्ट लोगोंको कोई कसौटी माना जा सके तो, उलटे, वे स्वस्थ और प्रसन्न हैं। हम जहाँ भी गये, प्रफुल्ल मुसकान और विनम्र नमस्कारसे हमारा अभिनन्दन हुआ — भले ही हम किसी भाईसे मिले हों या बहनसे। मार्गदर्शक भी जब हमें उस जीवन-प्रणालीका वर्णन सुनाता था, जिसकी वह इतनी कद्र करता था, तब उस स्वयंवृत अनुशासनको दुःसह मानता हुआ दिखलाई नहीं पड़ता था। अमर श्रद्धा और पूर्ण, बेशर्त आज्ञापालनका इससे ज्यादा अच्छा उदाहरण अन्यत्र ढूँढ़े नहीं मिल सकता।

अगर उनका भोजन यथासम्भव सादेसे सादा है तो उनकी भोजनकी मेजें और उनके शयनके कमरे भी कम सादे नहीं हैं।

मेजें आश्रममें ही बनी हुई हैं और उनमें कोई वार्निश नहीं है। मेजपोशोंका उपयोग नहीं किया जाता। छुरियाँ और चम्मच डर्बनके बाजारमें उपलब्ध सस्तेसे सस्ते हैं। काँचके बर्तनोंके स्थान पर वे तामचीनीके बर्तन काममें लाते हैं।

शयनके लिए एक लंबा-चौड़ा कमरा है (परन्तु वह आश्रमवासियोंकी संख्याकी दृष्टिसे बड़ा नहीं है)। उसमें ८० बिस्तर हैं। सारी उपलब्ध जगहका बिस्तरोंके लिए उपयोग किया जाता है।

देशी लोगोंके हिस्सेमें, मालूम होता था, उन्होंने बिस्तरोंकी अति कर दी है। जैसे ही हम उनके सोनेके कमरेमें घुसे, हमने वहाँ बन्द और दम घोंटनेवाली हवा महसूस की। तमाम बिस्तर एक-दूसरेसे सटे हुए थे। उन्हें पृथक् करनेके लिए सिर्फ एक-एक तख्ता लगा था। चलनेके लिए भी जगह मुश्किलसे थी।

वे रंग-भेदमें विश्वास नहीं करते। देशी लोगोंके साथ वैसा ही वरताव किया जाता है, जैसा कि गोरोंके साथ। देशी लोग अधिकतर वच्चे हैं। उन्हें वही भोजन दिया जाता है, जो कि "भाइयों" को मिलता है। कपड़े भी उतने ही अच्छे होते हैं। आम तौरपर कहा जाता है कि काफिरोंको ईसाई वनाना व्यर्थ हुआ है। और इसमें कुछ सत्य न हो सो वात भी नहीं। परन्तु यह तो हर व्यक्ति — वड़ेसे वड़ा अविश्वासी भी मानता है कि ट्रैपिस्ट लोगोंकी मिशन, सचमुच, अच्छे देशी ईसाई वनानेमें अत्यन्त सफल सिद्ध हुई है। जव दूसरे पंथोंके मिशन स्कूल देशी लोगोंको पश्चिमी सभ्यताके तमाम भयानक दुर्गुण ग्रहण कर लेनेका अवसर देते हैं और उनपर नैतिक असर कभी-कभी ही डाल पाते हैं, तव ट्रैपिस्ट मिशनके देशी लोग सादगी, सद्गुण और शिष्टताके नमूने हैं। उन्हें राहगीरोंको नम्रतापूर्वक, फिर भी गौरवपूर्ण ढंगसे, अभिवादन करते देखना एक आनन्दकी वात थी।

मिशनमें लगभग १,२०० देशी लोग हैं। इनमें वच्चे और वयस्क सव शामिल हैं। उन सवने आलस्य, अकर्मण्यता और अंधविश्वासका जीवन छोड़कर उद्यम, उपयोगिता और एक परमात्माकी भक्तिका जीवन ग्रहण कर लिया है।

आश्रममें लोहारी, टीनसाजी, वढ़ईगीरी, जूते वनाने, चमड़ा पकाने, आदिके तरह तरहके काम-घर या कारखाने हैं। उनमें देशी लोगोंको ये सव उपयोगी उद्योग सिखाये जाते हैं। इनके अलावा अंग्रेजी और जूलू भाषाएँ भी पढ़ाई जाती हैं। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि यद्यपि इन प्रवासियोंमें करीव-करीव सभी जर्मन हैं, वे देशी लोगोंको जर्मन भाषा सिखानेका प्रयत्न कभी नहीं करते। यह उन उदात्त प्रवासियोंकी उच्चाशयताका परिचायक है। ये सव देशी लोग गोरोंके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर काम करते हैं।

वहनोंके विहारमें अस्तरी करने, सिलाई, बुनाई और तिनकोंके टोप वनानेके विभाग हैं। वहाँ देशी वालिकाओंको स्वच्छ वस्त्र पहने परिश्रमके साथ काम करते देखा जा सकता है।

मठसे लगभग दो मील पर छपाईका विभाग और एक जल-प्रपातसे चलने-वाली आटा-चक्की है। इमारत वहुत वड़ी है। वहाँ एक तेल निकालनेकी मशीन — घानी भी है, जिसमें मूँगफलीका तेल निकाला जाता है। कहना आवश्यक नहीं कि उपर्युक्त कारखानोंसे आश्रमवासियोंकी अधिकतर जरूरतें पूरी हो जाती हैं।

आश्रमवासी गरम आवहवामें होनेवाले अनेक प्रकारके फल अपने बागोंमें पैदा कर लेते हैं और आश्रम लगभग आत्मनिर्भर है।

वे अपने आसपास रहनेवाले देशी लोगोंसे प्रेम करते हैं और उनका आदर करते हैं। बदलेमें उन्हें भी देशी लोगोंका प्रेम और आदर प्राप्त होता है। आम तौरपर इन्हींमें से उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करनेवाले लोग मिलते हैं।

आश्रमका सबसे मुख्य पहलू यह है कि उसमें धर्म हर जगह दिखलाई पड़ता है। प्रत्येक कमरेमें एक क्रूस है और प्रवेश-द्वार पर पवित्र जलकी एक छोटी-सी टंकी है। प्रत्येक आश्रमवासी भक्तिभावसे इस जलको अपनी पलकों, माथे और छाती पर लगाता है। आटा-चक्कीको यदि शीघ्रतासे चलकर जायें तो भी कोई न कोई चीज क्रूसका स्मरण करा ही देती है। वहाँ जानेके लिए एक बड़ी सुन्दर पगडण्डी है। उसके एक ओर भव्य घाटी है, जिससे मधुरतम गान करता हुआ एक छोटा-सा झरना बहता है; दूसरी ओर छोटी-छोटी चट्टानें हैं, जिनपर कलवरीके दृश्योंका स्मरण करानेवाले तरह-तरहके खुदाव कर दिये गये हैं। पूरीकी पूरी घाटी वनस्पतियोंके हरे कालीनसे छाई हुई है, जिसमें जहाँ-तहाँ सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंके नगीने जड़े हैं। इससे अधिक मनोहर सैर या दृश्यावलीकी भली-भाँति कल्पना करना भी संभव नहीं है। ऐसे स्थानपर किये गये खुदाव मनपर अच्छा प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते। वे ऐसे नियत अन्तरपर किये गये हैं कि जैसे ही आदमी एक खुदावपर अपने विचार समाप्त करता है वैसे ही दूसरा खुदाव उसकी दृष्टिके सामने आ जाता है।

इस प्रकार उस रास्तेसे चलना किन्हीं भी दूसरे विचारों या बाहरी शोरगुलकी बाधासे मुक्त शांतिपूर्ण ध्यानका सतत अभ्यास बन जाता है। कुछ खुदाव ये हैं: "प्रभु ईशु पहली बार गिरे", "प्रभु ईशु दूसरी बार गिरे", "साइमन क्रूसको ले जाता है", "प्रभु ईशुको क्रूसमें कीलोंसे जड़ दिया गया", "प्रभु ईशुको उनकी माँकी गोदमें लिटा दिया गया", आदि-आदि।

हाँ, देशी लोग भी मुख्यतः अन्नाहारी हैं। यद्यपि उन्हें मांस खानेकी मनाही नहीं है, फिर भी आश्रममें उन्हें वह नहीं दिया जाता।

दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे आश्रमोंकी संख्या कोई बारह होगी। उनमें से अधिकतर नेटालमें हैं। कुल मिलाकर लगभग ३०० पुरुष-व्रती और १२० स्त्री-व्रती उनमें सम्मिलित हैं।

इस तरहके हैं हमारे नेटालके अन्नाहारी। उन्होंने अन्नाहारको धर्म नहीं बनाया। उसका आधार वे सिर्फ इस बातको मानते हैं कि अन्नाहारसे स्थूल

शरीरका दमन करनेमें सहायता मिलती है। शायद वे अन्नाहार-मण्डलोंके अस्तित्वसे भी अभिज्ञ नहीं हैं और अन्नाहार-सम्बन्धी किसी साहित्यको पढ़नेकी परवाह भी न करेंगे। फिर भी, इस टोली के साथ एक सांयोगिक समागमसे मनुष्यका हृदय प्रेम, उदारता और आत्म-त्यागकी भावनासे ओतप्रोत हो जाता है। यह आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे अन्नाहारकी विजयका सजीव प्रमाण है। ऐसी हालतमें, वह कौन-सा अन्नाहारी है, जो इस उदात्त टोली पर अभिमानसे सिर ऊँचा न कर लेगा? मैं व्यक्तिगत अनुभवसे जानता हूँ कि आश्रमकी यात्रा करनेके लिए लंदनसे नेटाल तककी यात्रा भी ज्यादा न होगी। आश्रम-यात्रा मन पर चिरस्थायी पवित्र प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। भले ही कोई प्रोटेस्टेंट, ईसाई, बौद्ध, या कुछ भी क्यों न हो, आश्रमको देखनेके बाद यह उद्‌गार निकाले बिना नहीं रह सकता कि "अगर रोमन कैथलिक पंथ यही है, तो इसके विरुद्ध कही गई प्रत्येक बात झूठ है।" मेरा खयाल है, इससे निर्णायक रूपमें सिद्ध हो जाता है कि किसी भी धर्मको उसके पालनेवाले अपने आचरणसे जैसा दिखाते हैं, वैसा ही वह दैवी अथवा शैतानी होता है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, १८–५–१८९५

५२. प्रार्थनापत्र : लार्ड रिपनको

प्रिटोरिया, द० आ० ग०
[मई, १८९५][1]

सेवामें

श्रीमान् परमश्रेष्ठ मार्क्विस ऑफ रिपन
सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेशमन्त्री, लंदन

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें प्रार्थियोंकी जो स्थिति है और खास तौरसे भारतीयोंके मामलेमें ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके पंच-फैसलेका उस पर

१. यह प्रार्थनापत्र १४ मईके बाद किसी समय भेजा गया था। सर जेकब्स डी'वेटने इसे ३० मई, १८९५को केपटाउन-स्थित उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) के पास भेजा था।
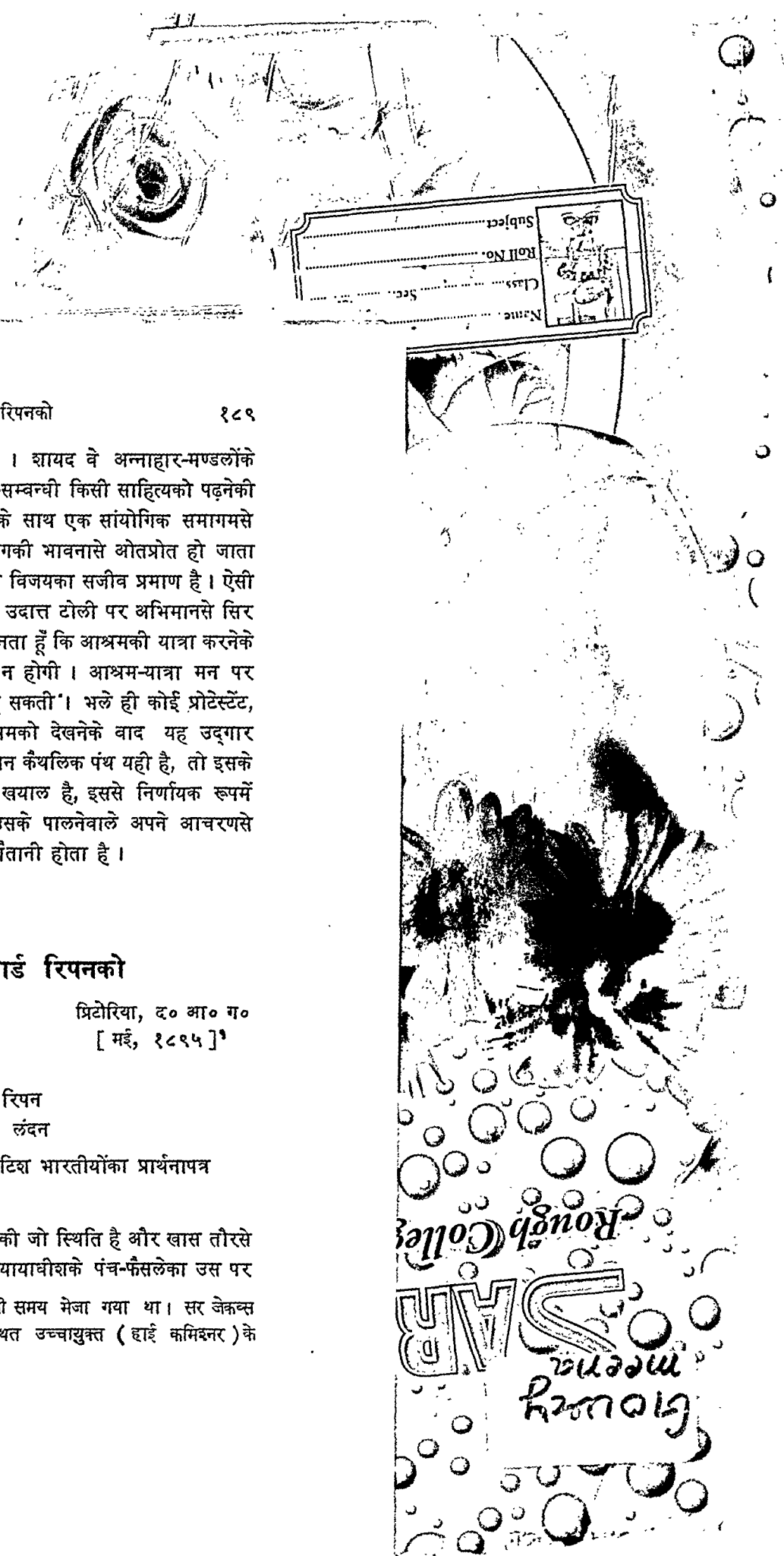
जो असर पड़ा है, उसके सम्बन्धमें प्रार्थी महानुभावके सामने आदरपूर्वक यह प्रार्थनापत्र पेश करनेकी इजाजत लेते हैं।

(२) आपके प्रार्थी चाहे व्यापारी हों, चाहे दूकानदारोंके सहायक, फेरीवाले, रसोइये, हजूरिये (वेटर), या मजदूर, सारे ट्रान्सवालमें बिखरे हुए हैं। फिर भी, जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें वे सबसे बड़ी संख्यामें बसे हैं। व्यापारी लगभग २०० हैं। उनकी चुकता पूंजी १,००,००० पौंड होगी। उनकी करीब तीन पेढ़ियाँ इंग्लैंड, डर्बन, पोर्ट एलिजावेथ, भारत तथा अन्य स्थानोंसे सीधे माल आयात करती हैं। इस तरह दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें उनकी शाखाएँ हैं, जिनका अस्तित्व मुख्यतः उनके ट्रान्सवालके व्यापार पर निर्भर करता है। शेष लोग छोटे-छोटे विक्रेता हैं। उनकी दूकानें विभिन्न स्थानोंमें हैं। गणराज्यमें लगभग २,००० फेरीवाले हैं। वे माल खरीदकर, घर-घर घूमकर बेचते हैं। जो लोग मजदूर हैं वे यूरोपीयोंके घरों या होटलोंमें साधारण नौकरोंके काम पर लगे हुए हैं। उनकी संख्या लगभग १,५०० है। उनमें से लगभग १,००० जोहानिसबर्गमें रहते हैं।

(३) राज्यमें अपनी चिन्ताजनक स्थितिकी विवेचनामें उतरनेके पहले प्रार्थी अत्यन्त आदरपूर्वक महानुभावको बताना चाहते हैं कि यद्यपि हमारा हिताहित दाँव पर चढ़ा था, हमसे पंच-फैसलेके बारेमें कभी एक बार भी सलाह नहीं की गई। हम यह भी बताना चाहते हैं कि जिस क्षण पंच-फैसलेका विषय छेड़ा गया था, उसी क्षण हमने पंच-फैसलेके सिद्धान्त और पंचके चुनाव दोनों पर आपत्ति प्रकट की थी। आपत्ति जबानी तौर पर प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटको सूचित कर दी गई थी। हम यह कहनेके लिए इस अवसरका उपयोग कर लेना चाहते हैं कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी शिकायतोंके बारेमें जिन प्रार्थियोंको समय-समय पर ब्रिटिश एजेंट महोदयकी सेवामें उपस्थित होनेका मौका पड़ा है, उनसे वे सदैव अत्यन्त शिष्टतासे मिले हैं और उनकी बातें उन्होंने उतने ही ध्यानसे सुनी हैं। प्रार्थी महानुभावका ध्यान इस बातकी ओर भी आकर्षित करते हैं कि सम्राज्ञीके उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) के पास केपटाउनको एक लिखित विरोध-पत्र भी भेजा गया था। तथापि, इस विषयकी चर्चा करनेमें प्रार्थियोंकी इच्छा ऑरेंज फ्री स्टेटके विद्वान मुख्य न्यायाधीशकी उच्चाशयता अथवा ईमानदारी पर आक्षेप करनेकी जरा भी नहीं है। वे सम्राज्ञीके अफसरोंकी बुद्धिमत्ता पर भी कोई आक्षेप करना नहीं चाहते। विद्वान मुख्य न्यायाधीशके भारतीय-विरोधी रुखसे प्रार्थी परिचित

थे। अतएव उन्होंने सोचा, और अब भी उनका नम्र खयाल यही है कि, न्यायाधीश महोदय जोरदार प्रयत्न करनेपर भी प्रश्न पर संतुलित विचार नहीं कर सकते थे। और ऐसा करना तो किसी भी मामलेको सही और उचित रूपसे समझनेके लिए बहुत जरूरी है। ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि पहलेसे मामलोंका परिचय रखनेवाले न्यायाधीशोंने उनके फैसले करनेसे अपने हाथ खींच लिए हैं। उन्होंने सोचा है कि कहीं वे पहलेसे जमी हुई धारणाओं अथवा पूर्वग्रहोंके कारण गलत निर्णय न कर डालें।

(४) सम्राज्ञी-सरकारकी ओरसे विद्वान पंचको मामलेके सम्बन्धमें निम्नलिखित निर्देश दिया गया था :

"पंचको स्वतन्त्रता होगी कि वह सम्राज्ञी-सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-सरकारकी ओरसे पेश किये गये दावोंमें से किसी एकके पक्षमें फैसला दे दे। वह उक्त अध्यादेशों (आर्डिनेन्सेज़) को विचाराधीन विषय सम्बन्धी खरीतोंके साथ पढ़कर उनपर भी अपनी समझके अनुसार उचित निर्णय देनेको स्वतन्त्र है।"

(५) पंच-फैसला, पत्रोंमें जैसा प्रकाशित हुआ है, यों है :

(क) सम्राज्ञी-सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके दावे खारिज किये जाते हैं। वे सिर्फ निम्नलिखित हद और अंश तक स्वीकार्य हैं :

(ख) दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यको अधिकार है और वह बाध्य है कि भारतीय व्यापारियोंके प्रति व्यवहार करनेमें फोक्सराट [लोकसभा] द्वारा १८८६ में संशोधित कानून नं० ३ (१८८५)को पूरा-पूरा अमलमें लाये। जो अन्य एशियाई व्यापारी ब्रिटिश प्रजा-जन हों उनके साथ भी ऐसा ही किया जाये। शर्त यह है कि (किसी व्यक्तिके द्वारा या उसकी ओरसे आपत्ति उठाई जाने पर कि उसके साथ किया जानेवाला व्यवहार संशोधित कानूनके अनुकूल नहीं है) देशके साधारण न्यायाधिकरणों [ट्रिब्यूनल्स]का निर्णय अन्तिम होगा।

(६) अब, प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि उपर्युक्त निर्णय विचारणीय विषयोंके अनुकूल न होनेके कारण निःसत्त्व है। इसलिए सम्राज्ञी-सरकार उसे माननेके लिए बाध्य नहीं है। जिस उद्देश्यको लेकर पंच-फैसला करानेका निश्चय किया गया था वह स्वयं ही विफल हो गया है। आदेश-पत्र पंचको यह विकल्प देता है कि वह *या तो* किसी एक सरकारके दावेको सही करार

दे दे, *या* अध्यादेशोंकी ऐसी व्याख्या कर दे, जो प्रस्तुत विषय सम्बन्धी खरीतोंका ध्यान रखते हुए, उसे सही जँचे। विद्वान पंचने स्वयं व्याख्या करनेके बजाय उसकी जिम्मेदारी दूसरोंको सौंप दी है। फिर, यह जिम्मेदारी ऐसे लोगों तक सीमित रखी गई है, जिनका पद ही उन्हें उन तमाम प्रमाणों और प्रक्रियाओंका उपयोग करने नहीं दे सकता, जिनका उपयोग इस कार्यके लिए किया जा सकता है। इतना ही नहीं, जिनका उपयोग करनेका पंचने खास निर्देश भी किया है और, जिनसे वे शायद ठीक कानूनी तो नहीं, मगर न्यायपूर्ण और उचित व्याख्या कर सकेंगे।

(७) हमारा निवेदन है कि निर्णय दो आधारों पर अवैध है। पहले तो इसलिए कि पंचने अपना अधिकार दूसरोंको सौंप दिया है। यह दुनियाका कोई पंच नहीं कर सकता। दूसरे, पंचने निर्देशोंका पालन नहीं किया, क्योंकि उसे जिस प्रश्नका निर्णय करनेका विशेष आदेश दिया गया था उसे उसने अनिर्णीत छोड़ दिया है।

(८) स्पष्ट है कि उद्देश्य यह *नहीं* था कि व्याख्याके प्रश्नका निर्णय अदालतमें कराया जाये, बल्कि यह था कि उसे हमेशाके लिए समाप्त कर दिया जाये। अगर ऐसा न होता तो सम्राज्ञी-सरकार व्याख्याके प्रश्नको लेकर इतना पत्र-व्यवहार कदापि न करती, जो ट्रान्सवाल ग्रीन बुक्स [हरी किताब], नं० १ और २ — सन् १८९४, में पाया जाता है। हमारा निवेदन है कि जिस प्रश्नका निर्णय सिर्फ कूटनीतिक और राजनीतिक तरीके पर होना था, और हो सकता है, उसका निर्णय, अगर पंच-फैसलेको वैध माना जाये तो, सिर्फ अदालती तरीकेके लिए छोड़ दिया गया है। और, जैसा कि सरकारकी ओरसे पेश किये गये मामलेमें खास तौरसे कहा गया है, ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशने इस्माइल सुलेमानके मामलेमें इस विषयपर अपना मत पहले ही व्यक्त कर दिया है। अगर यह सच है तो इस प्रश्नका फैसला क्या होगा, यह तय-सा ही है। इसके प्रमाणके लिए प्रार्थी महानुभावका ध्यान उन दिनोंके समाचारपत्रों, खास तौरसे *जोहानिसबर्ग टाइम्स* (साप्ताहिक संस्करण) के २७ अप्रैल, १८९५ के अंककी ओर आकर्षित करते हैं।

(९) परन्तु महानुभावके प्रति प्रार्थियोंके निवेदनका आधार ज्यादा ऊँचा और ज्यादा व्यापक है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रश्नका असर सम्राज्ञीके हजारों प्रजाजनोंपर पड़ता है, जिसके उचित हलपर सैकड़ों ब्रिटिश

प्रजाजनोंकी रोटीका सवाल निर्भर है और जिसके कानूनी हलसे सैकड़ों कुटुम्ब बरबाद तथा पैसे-पैसेके मुहताज हो सकते हैं, उसे महज अदालतके फैसलेके लिए न छोड़ा जायेगा। अदालतमें हर आदमीके हाथ बँधे होते हैं और इस तरहके विचारोंकी गुंजाइश नहीं होती। अगर आखिरकार ट्रान्सवाल सरकारका ही पक्ष बहाल रखा गया तो, जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध है, उसका अर्थ होगा न सिर्फ उनका पूर्ण व्यक्तिगत विनाश, बल्कि ट्रान्सवाल और भारत दोनोंमें रहने-वाले और उनपर निर्भर करनेवाले उनके रिश्तेदारों और नौकरोंका भी सर्वनाश। महानुभाव देखेंगे कि प्रार्थियोंके खिलाफ कुछ स्वार्थी लोगोंने गलत प्रचार किया है। अगर प्रार्थियोंको बिना किसी अपराधके, केवल उस प्रचारके ही कारण उनकी वर्तमान जगहोंसे खदेड़ दिया गया तो उनमें से कुछके लिए, जो लम्बे समयसे ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे हैं, उदर-पोषणके नये स्थान खोजना और जीवन-निर्वाह करना बिलकुल असम्भव हो जायेगा।

(१०) प्रश्न बहुत गंभीर है, और बहुत अधिक हित दाँवपर हैं। इसलिए हम महानुभावके विचारके लिए अपनी स्थितिका थोड़ा विस्तृत विवरण नीचे दे रहे हैं। हमारा नम्र अनुरोध है कि महानुभाव उसपर पूरा-पूरा ध्यान दें।

(११) १८८१ के समझौतेकी उपधारा १४वीं *देशी लोगोंको छोड़कर* शेष सबके हितोंका *समान रूपसे* संरक्षण करती है। उसका उल्लंघन दुर्भाग्यपूर्ण है। वह इस धारणासे किया गया है कि भारतीय आवश्यक स्वच्छताका पालन नहीं करते। यह धारणा गिने-चुने स्वार्थी लोगोंके गलत प्रचारके कारण बँधी है। १८८५ के तीसरे कानून-सम्बन्धी सारे पत्र-व्यवहारमें सम्राज्ञी-सरकारने जोरोंके साथ कहा है कि जनताके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भारतीयोंके लिए पृथक् गलियाँ भले ही निश्चित कर दी जायें, परन्तु उन्हें शहरोंके कुछ निश्चित भागोंमें ही व्यापार करनेके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। १८८५ के तीसरे कानूनका कुछ दिनों जोरोंसे विरोध करनेके बाद तत्कालीन उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) सर एच० रॉबिन्सनने १८८६ के संशोधनका विरोध समेटते हुए अपने २६ सितम्बर, १८८६ के पत्र (ग्रीन बुक नं० १, १८९४, पृ० ४६) में कहा: "यद्यपि संशोधित कानून अब भी लंदन-समझौतेकी १४वीं धाराका भंग करनेवाला है, महानुभावके इस मतके कारण कि वह *जनताके स्वास्थ्यकी रक्षा*के लिए आवश्यक है, मैं सम्राज्ञी-सरकारको उसका और विरोध करनेकी सलाह नहीं दूँगा।" पंच के हाथों मामलेके सौंपे जाने तथा १८८५ के तीसरे कानून-सम्बन्धी उल्लेखसे भी

साफ यही मालूम होता है कि समझौतेसे हटनेकी अनुमति केवल स्वच्छताके कारणोंसे दी गई थी।

(१२) प्रार्थी अत्यन्त आदरके साथ किन्तु जोरदार शब्दोंमें इस मान्यताका विरोध करते हैं कि ऐसे समझौता-त्यागके लिए स्वच्छता-सम्बन्धी कारण मौजूद हैं। प्राथियोंको आशा है कि वे सिद्ध कर सकते हैं, ऐसे कोई कारण मौजूद नहीं हैं।

(१३) प्रार्थी इसके साथ डाक्टरोंके तीन प्रमाणपत्र नत्थी कर रहे हैं। ये प्रमाणपत्र स्वयंस्पष्ट हैं। इनसे मालूम होता है कि भारतीयोंके मकान स्वच्छताकी दृष्टिसे यूरोपीयोंके मकानोंसे किसी तरह ओछे नहीं पड़ते (परिशिष्ट क, ख, ग)। प्रिटोरियामें प्रार्थियोंके मकानों और वस्तु-भंडारोंके अगल-वगल यूरोपीयोंके मकान और वस्तु-भंडार भी मौजूद हैं। अतएव हम चुनौती देते हैं कि हमारे मकानोंकी हमारे पड़ोसमें रहनेवाले यूरोपीयोंके मकानोंसे तुलना की जाये।

(१४) निम्नलिखित वेमाँगा प्रमाणपत्र अपनी बात आप ही कहेगा। १६ अक्तूबर, १८८५ को स्टैंडर्ड बैंकके तत्कालीन संयुक्त प्रवंधक श्री मिचेलने उच्चायुक्त सर एच० राविन्सनको लिखा था :

> **अगर मैं यह कहूँ तो अनुचित न माना जायेगा कि जहाँतक मैं जानता हूँ, वे (भारतीय व्यापारी) सबके सब हर तरहसे व्यवस्थित, उद्योगी और इज्जतदार हैं। उनमें से कुछ ऊँची स्थितिके और धनवान व्यापारी हैं। मारीशस, वम्वई तथा दूसरे स्थानोंमें उनकी बड़ी-बड़ी पेढ़ियाँ हैं — (ग्रीन वुक १, पृ० ३७)।**

(१५) लगभग ३५ सुविख्यात यूरोपीय पेढ़ियाँ

> **स्पष्ट घोषणा करती हैं कि उपर्युक्त भारतीय व्यापारी, जिनमें से अधिकांश वम्वईसे आये हैं, अपने व्यापार और रहनेके स्थानोंको स्वच्छ तथा स्वास्थ्य-नियमोंके अनुकूल रखते हैं। वास्तवमें वे उन्हें उतनी ही अच्छी हालतमें रखते हैं, जितनी अच्छी हालतमें यूरोपीय रखते हैं — (परिशिष्ट घ)।**

(१६) फिर भी, यह सही है कि ये वातें समाचारपत्रोंमें प्रकाशित नहीं होतीं। पत्र मानते हैं कि आपके प्रार्थी "गन्दे कीड़े" हैं। फोक्सराट [लोक सभा]को जो अर्जियाँ भेजी जाती हैं उनमें भी यही कहा जाता है। कारण स्पष्ट हैं। इन सव वहसोंमें भाग लेने या अपने वारेमें की जानेवाली तमाम

गलतबयानियोंसे परिचित रहने योग्य अंग्रेजी न जाननेके कारण, प्रार्थी हमेशा ऐसे प्रचारका खंडन करनेकी स्थितिमें नहीं होते। वे तभी यूरोपीय पेढ़ियों और डाक्टरोंके पास अपनी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतोंके बारेमें उनका अभिप्राय माँगने गये, जबकि उन्होंने देखा कि उनका अस्तित्व ही खतरेमें है।

(१७) परन्तु प्रार्थियोंको भी अपने बारेमें स्वयं निवेदन करनेका अधिकार तो है ही। वे समझ-बूझकर और निस्संकोच कह सकते हैं कि सामूहिक रूपमें उनके मकान भले ही भद्दे हों, और निस्सन्देह वे सजे-धजे तो हैं ही नहीं, फिर भी सफाईकी दृष्टिसे वे यूरोपीयोंके मकानोंकी अपेक्षा किसी तरह ओछे नहीं हैं। और जहाँतक उनकी व्यक्तिगत आदतोंका सम्बन्ध है, वे पूरे विश्वासके साथ कह सकते हैं कि वे ट्रान्सवालवासी यूरोपीयोंकी अपेक्षा, जिनके साथ उनका बार-बार सम्बन्ध आता है, ज्यादा पानी काममें लाते हैं, और ज्यादा बार स्नान करते हैं। परन्तु, प्रार्थियोंकी यह इच्छा जरा भी नहीं कि वे तुलना करके अपने-आपको अपने यूरोपीय भाइयोंसे श्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयत्न करें। यहाँ उन्हें जो यह तुलनाका मार्ग अंगीकार करना पड़ा है उसका एकमात्र कारण परिस्थितियोंकी प्रबलता है।

(१८) ग्रीन बुकके पृष्ठ १९-२१ पर दी हुई दो अच्छी-खासी अर्जियोंमें सब एशियाइयोंको पृथक् कर देनेकी प्रार्थना की गई है। उनमें तमाम एशियाइयों, चीनियों आदिको समग्र रूपमें धिक्कारा गया है। उनके कारण उपर्युक्त बातें कहना बिलकुल जरूरी हो गया। पहली अर्जीमें उन भयानक दुर्गुणोंको गिनाया गया है जो, उसमें कहे अनुसार, चीनियोंमें विशेष रूपसे हैं। दूसरी अर्जीमें पहलीका उल्लेख करते हुए तमाम एशियाइयोंको शामिल कर लिया गया है, और उन्हें धिक्कारा गया है। इसमें चीनियों, कुलियों और अन्य एशियाइयोंकी खास तौरसे चर्चा करते हुए "इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक चरित्रसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी तरहके अन्य घृणित रोगोंके कारण समाजके समक्ष उपस्थित खतरे"का उल्लेख किया गया है।

(१९) अधिक तुलनामें न उतरकर, और चीनियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नमें न जाकर, प्रार्थी अत्यन्त बलपूर्वक निवेदन करते हैं कि जहाँतक प्रार्थियोंका सम्बन्ध है, उपर्युक्त आरोप पूर्णतः निराधार हैं।

(२०) स्वार्थी आन्दोलनकारी कहाँतक गये हैं, यह बतानेके लिए प्रार्थी नीचे एक प्रार्थनापत्रका अंश उद्धृत करते हैं। यह प्रार्थनापत्र ऑरेंज फ्री स्टेटकी

संसद को दिया गया था। इसकी एक नकल प्रिटोरिया व्यापार-संघकी सम्मतिसे ट्रान्सवाल सरकारको भेजी गई थी:

> **ये लोग पत्नियों या स्त्री-सम्बन्धियोंके बिना राज्यमें आते हैं, इसलिए परिणाम स्पष्ट है। इनका धर्म इन्हें सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है — (ग्रीन बुक नं० १, १८९४, पृ० ३०)।**

(२१) प्रार्थी पूछते हैं कि क्या भारतके महान धर्मोंपर इससे भी ज्यादा निरंकुश कोई लांछन, या भारत-राष्ट्रका इससे भी बड़ा कोई अपमान हो सकता है?

(२२) उल्लिखित 'हरी किताबों' (ग्रीन बुक्स)से दीख पड़ेगा कि भारतीयोंके खिलाफ मामला तैयार करनेमें इसी तरहके कथनोंका उपयोग किया गया है।

(२३) सच्चा और एकमात्र कारण हमेशा छिपाया गया है। प्रार्थियोंको लाचार करनेका या उनके सम्मानके साथ जीविका उपार्जित करनेके मार्गमें प्रत्येक प्रकारकी बाधा डालनेका एकमात्र कारण व्यापारिक ईर्ष्या है। सारीकी सारी जेहाद प्रायः उन्हीं प्रार्थियोंके विरुद्ध है जो व्यापारी हैं। वे अपनी होड़से और अपनी मितव्ययी आदतोंके कारण जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव घटानेमें समर्थ हुए हैं। यह यूरोपीय व्यापारियोंके अनुकूल नहीं पड़ता। वे तो भारी मुनाफा कमाना चाहते हैं। भारतीयोंकी आदतें सीधी-सादी हैं। इसलिए वे थोड़े-से लाभसे सन्तुष्ट रहते हैं। उनके विरुद्ध आन्दोलनका एकमात्र कारण यही है। दक्षिण आफ्रिकामें हर कोई इसे भली-भाँति जानता है। दक्षिण आफ्रिकाके पत्रोंसे भी जाना जा सकता है कि बात ऐसी ही है। वे कभी-कभी स्पष्ट कह-कर द्वेषभावको सच्चे रूपमें प्रकट कर देते हैं। भारतीयोंके प्रश्नको तिरस्कारके साथ "कुलियोंका प्रश्न" कहा जाता है। उसकी चर्चा करते हुए यह बतानेके बाद कि सच्चा 'कुली' दक्षिण आफ्रिकाके लिए अनिवार्य है, *नेटाल एडवर्टा-इज़र*ने १५ सितम्बर, १८९३ के अंकमें ये उद्‌गार व्यक्त किये थे:

> **भारतीय व्यापारियोंका दमन करनेके और सम्भव हो तो उन्हें बाध्य करनेके कदम जितनी जल्दी उठाये जायें उतना ही अच्छा। ये लोग असली घुन हैं, जो समाजका कलेजा खाये जा रहे हैं।**

(२४) और भी, ट्रान्सवाल-सरकारके मुखपत्र प्रेसने इस प्रश्नकी विवेचना करते हुए लिखा है: "अगर एशियाई आक्रमण समयपर न रोका गया तो यूरोपीय दूकानदारोंको गरदनियाँ दे दी जायेंगी, जैसा कि नेटालमें और केप कालोनीके अनेक भागोंमें हुआ है।" यह पूराका पूरा लेख बड़ा मनोरंजक है। दक्षिण आफ्रिकामें गैर-गोरे लोगोंके प्रति यूरोपीयोंकी भावनाओंका यह एक अच्छा नमूना है। यद्यपि इसका साराका सारा रुख ही होड़से पैदा हुए भयका सूचक है, फिर भी यह हिस्सा विशेष लाक्षणिक है:

> अगर ये लोग हमारे ऊपर छा ही जानेवाले हैं, तो यूरोपीयोंका व्यापार करना असम्भव हो जायेगा। और, जिन लोगोंमें उपदंश तथा कोढ़ सामान्य रोग हैं, घृणित अनैतिकता जीवनकी साधारण चर्या है, उनके विशाल समुदायके निकट सम्पर्कसे अनिवार्य भयानक खतरा हममें से प्रत्येक व्यक्ति पर आ टूटेगा।

(२५) और फिर भी, इसके साथ संलग्न प्रमाणपत्रमें डा० वीलने अपना समझा-बूझा अभिप्राय यह दिया है कि "निम्नतम श्रेणीके भारतीय निम्नतम श्रेणीके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे तरीकेसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईके नियमोंका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।" (परिशिष्ट क)।

(२६) इसके अलावा, उक्त डाक्टरने लिखा है कि "किसी-न-किसी समय प्रत्येक राष्ट्रीयताके एक या अधिक लोग कोढ़ आदि बीमारियोंके अस्पतालमें रहे हैं, परन्तु भारतीय एक भी नहीं रहा।" जोहानिसबर्गके दो डाक्टरोंके प्रमाणपत्र इस आशयके भी हैं कि, "भारतीय अपनी ही स्थितिके यूरोपीयोंकी अपेक्षा किसी कदर ओछे नहीं हैं।" (परिशिष्ट ख और ग)।

(२७) अपने पक्षका और भी प्रमाण देनेके लिए प्रार्थी १३ अप्रैल, १८८९ के केप टाइम्सके एक अग्रलेखका अंश उद्धृत कर रहे हैं। उसमें भारतीयोंके पक्षको यथेष्ट न्यायके साथ पेश किया गया है:

> भारतीय और अरब व्यापारियोंके कार्योंके बारेमें सुबहके अखबारोंमें जब-तब कुछ लेखांश पढ़नेसे उस चीख-पुकारकी याद आ जाती है जो थोड़े ही दिन पहले ट्रान्सवालकी राजधानीमें 'कुली व्यापारियों' के सम्बन्धमें मची थी।

भारतीयोंके बारेमें एक अन्य पत्रके प्रशंसायुक्त वर्णनका उद्धरण देनेके बाद लेखमें कहा गया है:

उन आदरास्पद और कठोर परिश्रम करनेवाले लोगोंकी स्थितिको इतना गलत समझा गया है कि उनकी राष्ट्रीयताकी ही उपेक्षा हो गई है। उनपर एक ऐसा बुरा नाम जड़ दिया गया है, जो उन्हें उनके सहजीवियोंकी दृष्टिमें नितान्त निम्न स्तरपर रखनेवाला है। फिर, यदि उपर्युक्त याददेहानियोंके होते हुए कोई क्षणभरके लिए उनकी चर्चा छेड़ दे तो शायद वह क्षमा किया जानेकी न्यायपूर्वक अपेक्षा कर सकता है। उनकी आर्थिक प्रवृत्तियोंकी दृष्टिसे भी, जिनकी सफलतापर उनको बदनाम करनेवाले अनेक लोग ईर्ष्या करेंगे, वह आन्दोलन समझमें नहीं आता। वह तो प्रवृत्तियाँ चलानेवालोंको अर्धसभ्य धर्मावलम्बी देशी लोगोंकी कोटिमें ढकेल देगा, उन्हें पृथक् बस्तियोंमें ही रहनेके लिए बाध्य कर देगा और काफिरोंपर लागू किये गये कानूनोंसे भी सख्त कानूनोंके प्रतिबन्धमें रखेगा। ट्रान्सवाल और इस उपनिवेशमें यह धारणा फैली हुई है कि शान्त और नितान्त निर्दोष 'अरब' दूकानदार और उतने ही निर्दोष वे भारतीय, जो अपने बढ़िया मालके गट्ठर पीठपर लादे घर-घर घूमते हैं, 'कुली' हैं। इसका कारण जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसके बारेमें हमारा आलस्यमय अज्ञान है। अगर कोई सोचे कि काव्यमय तथा रहस्यपूर्ण पुराणोंवाले ब्राह्मणधर्मकी कल्पनाने 'कुली व्यापारियों' की भूमिमें ही जन्म पाया था, चौबीस शताब्दियोंके पूर्व उसी भूमिमें देवतुल्य बुद्धने आत्मत्यागके महान सिद्धान्तका प्रचार और पालन किया था और हम जो भाषा बोलते हैं उसके मौलिक तत्त्वोंकी खोजें उसी प्राचीन देशके पर्वतों और मैदानोंमें हुई थीं, तो वह अफसोस किये बिना नहीं रह सकता कि उस जातिके वंशजोंके साथ तत्त्वशून्य बर्बरों और बाह्य जगत्के अज्ञानमें डूबे हुए लोगोंकी सन्तानोंके तुल्य बरताव किया जाता है। जिन लोगोंने भारतीय व्यापारियोंके साथ बातचीत करनेमें कुछ मिनट भी बिताये हैं, वे यह देखकर शायद आश्चर्यमें पड़े होंगे कि वे तो विद्वानों और सज्जनोंसे बातें कर रहे हैं।.... और उसी ज्ञानभूमिके बच्चोंको आज 'कुली' कहकर अपमानित किया जा रहा है और उनके साथ काफिरोंका-सा व्यवहार हो रहा है।

अब तो ऐसा समय आ गया है कि जो लोग भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध चीख-पुकार मचाते हैं, वे उन्हें बतायें कि वे कौन हैं और क्या हैं। उनके घोरतम निन्दकोंमें अनेक ब्रिटिश प्रजाजन हैं, जो एक शानदार समाजकी सदस्यताके अधिकारों तथा विशेषाधिकारोंका उपभोग कर रहे हैं। अन्यायसे घृणा और औचित्यसे प्रेम उनका जन्मसिद्ध गुण है और जब उनका मामला होता है तब चाहे अपनी सरकारके प्रति हो, चाहे विदेशी सरकारके, वे अपने ही एक विशेष तरीकेसे अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओंका आग्रह भी रखते हैं। शायद यह उन्हें कभी सूझा ही नहीं कि भारतीय व्यापारी भी ब्रिटिश प्रजाजन हैं और वे उतने ही न्यायके साथ उन्हीं स्वतन्त्रताओं और अधिकारोंका दावा करते हैं। अगर पामर्स्टनके जमानेके एक वाक्यांशका प्रयोग किया जा सके, तो कमसे कम यह कहना होगा कि, जो अधिकार कोई दूसरेको देनेके लिए तैयार न हो, उनपर अपना दावा जताना ब्रिटिश स्वभावके बहुत विपरीत है। एलिजाबेथ-कालीन एकाधिकार जबसे मिटे तबसे सबको व्यापारका समान अधिकार प्राप्त हो गया है और यह ब्रिटिश संविधानका एक अंग-सा बन गया है। अगर कोई इस अधिकारमें हस्तक्षेप करे तो ब्रिटिश नागरिकताके विशेषाधिकार एकाएक उसके आड़े आ जायेंगे। भारतीय व्यापारी स्पर्धामें अधिक सफल हैं और वे अंग्रेज व्यापारियोंकी अपेक्षा कममें गुजारा कर लेते हैं — यह तर्क सबसे कमजोर और सबसे अन्यायपूर्ण है। ब्रिटिश वाणिज्यकी नींव ही दूसरे देशोंके साथ अधिक सफलतापूर्वक स्पर्धा करनेकी शक्तिपर रखी गई है। जब अंग्रेज व्यापारी चाहते हैं कि सरकार उनके प्रतिद्वन्द्वियोंके अधिक सफल व्यापारके खिलाफ हस्तक्षेप करके उन्हें संरक्षण प्रदान करे, तब तो सचमुच संरक्षण पागलपनकी हदतक पहुँच जाता है। भारतीयोंके प्रति अन्याय इतना स्पष्ट है कि अपने ही देशभाइयोंको इन लोगोंके साथ सिर्फ इसलिए आदिवासियोंके जैसा व्यवहार करनेकी कामना करते देखकर कि ये सफल व्यापारी हैं, शर्म आती है। वे प्रबल जातिके मुकाबलेमें इतने सफल हुए हैं, केवल यह कारण ही उन्हें उस अपमानजनक स्तरसे ऊपर उठा देनेके लिए पर्याप्त है।. . . . जिन लोगोंको समाचारपत्र, उच्च और हताश

दूकानदार 'कुली' कहकर पुकारते हैं उनसे भारतीय व्यापारी कोई बड़ी चीज हैं — यह बतानेके लिए इतना ही कहना काफी होगा।

(२८) उपर्युक्त उद्धरणसे यह भी दीख पड़ेगा कि यूरोपीयोंकी भावना स्वार्थसे अंधी न होनेपर भारतीयोंके विरुद्ध नहीं होती। परन्तु चूँकि उपर्युक्त 'हरी किताबों' (ग्रीन बुक्स) में सर्वत्र जोर दिया गया है कि राज्यके बर्गर और यूरोपीय निवासी दोनों ही भारतीयोंके विरोधी हैं, इसलिए प्रार्थी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके माननीय अध्यक्षके पास दो प्रार्थनापत्र भेज रहे हैं। एक प्रार्थनापत्रमें बताया गया है कि बर्गरोंकी एक बहुत बड़ी संख्या न केवल भारतीयोंके ट्रान्सवालमें स्वतन्त्रतापूर्वक निवास तथा व्यापार करनेकी विरोधी नहीं है, बल्कि यदि इन त्रासदायक कानूनोंका आखिरी परिणाम उनका राज्य छोड़कर चले जाना हुआ, तो वे लोग इसे एक संकट मानेंगे (परिशिष्ट ङ)। दूसरे प्रार्थनापत्रपर यूरोपीयोंने हस्ताक्षर किये हैं। उसमें बताया गया है कि हस्ताक्षर-कर्ताओंके मतसे, भारतीयोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतें यूरोपीयोंकी आदतोंसे किसी कदर हीन नहीं हैं और भारतीयोंके विरुद्ध आन्दोलनका कारण व्यापारिक ईर्ष्या-द्वेष है (परिशिष्ट च)। परन्तु यदि बात उलटी होती — अगर राज्यका प्रत्येक बर्गर और प्रत्येक यूरोपीय भारतीयोंका घोर विरोधी होता तो उसका भी, हमारा निवेदन है, मुख्य मुद्देपर कोई असर न पड़ता। हाँ, अगर इस विरोधके कारण कुछ ऐसे होते कि उनसे भारतीय समाजपर, जिसके खिलाफ ये भावनाएँ फैली हैं, कलंक लगता होता, तो बात दूसरी होती। छपनेको देते समय (१४-५-९५) तक डच प्रार्थनापत्रपर ४८४ बर्गरोंके और यूरोपीय प्रार्थनापत्रपर १,३४० यूरोपीयोंके हस्ताक्षर हो चुके हैं।

(२९) आरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशका निर्णय प्रश्नको जरा भी सरल नहीं करता। उससे प्रश्नका हल जरा भी आसान नहीं होता। नीचे लिखी बातोंसे यह स्पष्ट हो जायेगा।

निर्णयके बाद भी सम्राज्ञीके संरक्षणका सक्रिय प्रयोग ठीक उतना ही जरूरी रहेगा, जैसे कि निर्णय दिया ही न गया हो। अगर दलीलके लिए — और केवल दलीलके लिए ही — मान लिया जाये कि निर्णय उचित और अन्तिम है, और ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशने फैसला कर दिया है कि भारतीयोंको सरकार द्वारा निश्चित जगहोंमें ही रहना तथा व्यापार करना होगा, तो एकदम प्रश्न उठता है कि उन्हें कहाँ रखा जायेगा? क्या उन्हें निचली जमीनपर बसाया जायेगा, जहाँ सफाईके नियमोंका पालन असम्भव है और जो शहरोंसे इतनी

दूर हैं कि भारतीयोंके लिए व्यापार करना और सभ्यतासे रहना बिलकुल असम्भव हो जायेगा? यह बिलकुल सम्भव है। मलायी लोगोंके बसनेके लिए १८९३ में रहनेके अयोग्य स्थान निश्चित करनेके विरुद्ध श्रीमान ब्रिटिश एजेंटने ट्रान्सवाल सरकारको जो निम्नलिखित जोरदार विरोधपत्र भेजा था (ग्रीन बुक नं० २, पृ० ७२) उससे यह सम्भावना स्पष्ट दीख पड़ेगी :

जिस स्थानका उपयोग शहरका कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेके लिए होता है और जहाँ शहर और बस्तीके बीचके नालेमें झिरझिरकर जानेवाले पानीके सिवा दूसरा पानी है ही नहीं, उसपर बसी हुई छोटी-सी बस्तीमें लोगोंको ठूँस देनेका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि उनके बीच भयानक किस्मके बुखार और दूसरे रोग फैल जायेंगे। इससे उनके प्राण और शहरमें रहनेवाले लोगोंका स्वास्थ्य भी खतरेमें पड़ जायेगा। परन्तु इन गम्भीर आपत्तियोंके अलावा, इन लोगोंमें से कुछके पास बताई गई जमीनपर (या और कहीं) वैसे मकान बना लेनेके साधन भी नहीं हैं, जैसेमें रहनेकी इनको आदत है। इसलिए इन्हें इनके वर्तमान मकानोंसे निकालनेका परिणाम इन सबका प्रिटोरिया छोड़कर चले जाना होगा। इससे इन्हें जो कठिनाइयाँ होंगी उनका तो कहना ही क्या, जो गोरे लोग इनसे मजदूरी कराते हैं उन्हें भी भारी असुविधा और हानिका सामना करना पड़ेगा। . . . .

(३०) उसी किताबके आखिरी पृष्ठपर अपने २१ मार्च, १८९४ के खरीतेमें उच्चायुक्तने कहा है :

. . . . सम्राज्ञी-सरकार मानती है कि पंच-फैसला एशियाकी उन सब आदिमजातियोंपर लागू होगा, जो ब्रिटिश प्रजा हों।

(३१) अगर इस खरीतेकी दृष्टिसे पंच-फैसला एशियाकी आदिमजातियों-पर लागू होना है, तो प्रश्न यह उठता है कि यदि तमाम एशियाइयोंको ही आदिमजातिके लोग न मान लिया जाये तो क्या ट्रान्सवालमें कोई भी एशियाई आदिमजातिके हैं? और, हमारा विश्वास है, सारेके सारे एशियाइयोंको आदिम-जातिके मान लेनेकी धृष्टता तो क्षण भरके लिए भी नहीं की जायेगी। इसलिए, निश्चय ही प्रार्थी आदिमजातिके लोगोंकी श्रेणीमें नहीं आयेंगे।

(३२) अगर भारतीयोंके प्रति सारे विरोधका मूल सफाई ही है, तब तो निम्नलिखित प्रतिबन्ध बिलकुल समझमें आने योग्य नहीं है :

(१) काफिरोंकी तरह भारतीय भी अचल सम्पत्तिके मालिक नहीं हो सकते।

(२) भारतीयोंके लिए अपने नाम पंजीकृत (रजिस्टर्ड) कराना अनिवार्य है, जिसका शुल्क ३ पौंड १० शिलिंग होगा।

(३) जबतक भारतीयोंके पास पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) के टिकट न हों तबतक गणराज्यसे गुजरनेमें उन्हें, देशी लोगोंके समान, परवाना दिखा सकना चाहिए।

(४) रेलगाड़ियोंमें वे पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा नहीं कर सकते। वे देशी लोगोंके साथ उसी डिब्बेमें बाँध दिये जाते हैं।

(३३) इन तमाम अपमानोंका डंक तब और भी पीड़ाजनक हो उठता है जब यह स्मरण आता है कि अनेक प्रार्थी डेलागोआ-बेमें बड़ी-बड़ी जायदादोंके मालिक हैं। वहाँ उनका इतना आदर है कि उन्हें रेलगाड़ीका तीसरे दर्जेका टिकट लेने ही नहीं दिया जाता। वहाँ यूरोपीय खुशीके साथ उनका स्वागत करते हैं। उन्हें परवाने नहीं रखने पड़ते। फिर, ट्रान्सवालमें, प्रार्थी पूछते हैं, उनके साथ भिन्न व्यवहार क्यों होना चाहिए? क्या उनकी सफाईकी आदतें ट्रान्सवालमें प्रवेश करते ही गन्दी हो जाती हैं? अक्सर देखा जाता है कि वही यूरोपीय उसी भारतीयके साथ डेलागोआ-बे और ट्रान्सवालमें भिन्न व्यवहार करता है।

(३४) परवानेका कानून कितना त्रासदायक है, यह बतानेके लिए प्रार्थी इसके साथ श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादाका हलफनामा नत्थी कर रहे हैं, जो स्वयंस्पष्ट है (परिशिष्ट छ)। हलफनामेके साथ एक पत्रकी नकल है (परिशिष्ट ज)। उससे मालूम हो जायेगा कि श्री हाजी मुहम्मद कौन हैं। दक्षिण आफ्रिकाके वे एक अग्रगण्य भारतीय हैं। प्रार्थियोंने सिर्फ उदाहरणके तौरपर और यह बतानेके लिए हलफनामा नत्थी किया है कि जब एक अग्रगण्य भारतीय अपमान और प्रत्यक्ष कठिनाइयाँ सहे बिना यात्रा नहीं कर सकता, तब दूसरे भारतीयोंका भाग्य क्या होगा। अगर जरूरी हो तो दुर्व्यवहारके ऐसे सैकड़ों मामलोंको पूरी-पूरी तरह साबित किया जा सकता है।

(३५) यह भी कहा गया है कि भारतीय परोपजीवी बनकर रहते हैं और खर्च कुछ नहीं करते। जहाँतक भारतीय मजदूरों और उनके बच्चोंका सम्बन्ध है, यह आरोप जरा भी ठहर नहीं सकता। उन्हें तो उनके प्रति सबसे ज्यादा मनोमालिन्य रखनेवाले यूरोपीय भी परोपजीवी नहीं मानते। प्रार्थी अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि जहाँतक बहुसंख्य मजदूरोंका

सम्बन्ध है, वे अपने रहन-सहनपर वित्तसे ज्यादा खर्च करते हैं, और अपने परिवारोंके साथ बसे हुए हैं। व्यापारी भारतीयोंके बारेमें, जो सारे राग-द्वेषके लक्ष्य हैं, थोड़ा-सा स्पष्टीकरण आवश्यक हो सकता है। प्रार्थियोंमें जो व्यापारी हैं वे इस बातसे इनकार नहीं करते कि वे भारतमें अपने अवलम्बितोंको रुपया भेजते हैं। उलटे, वे इसे स्वीकार करनेमें गौरव मानते हैं। परन्तु ये रकमें उनके खर्चके अनुपातमें कुछ भी नहीं हैं। वे सफलतापूर्वक प्रतिद्वन्द्विता सिर्फ इस कारणसे कर पाते हैं कि वे यूरोपीय व्यापारियोंकी अपेक्षा विलासकी वस्तुओं-पर खर्च कम करते हैं। फिर भी उन्हें यूरोपीय मकान-मालिकोंको किराया, देशी नौकरोंको मजदूरी और डच पशु-पालकोंको मांसके लिए जानवरोंका मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है। अन्य सामग्रियाँ, जैसे, चाय, काफी आदि भी उपनिवेशमें ही खरीदनी पड़ती हैं।

(३६) तो फिर, सच्चा सवाल यह नहीं है कि भारतीयोंको इस गलीमें रहना है या उसमें। वह तो बल्कि यह है कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें उनकी क्या हैसियत रहनी है। क्योंकि, ट्रान्सवालमें जो कुछ किया जाता है उसका असर अन्य दो उपनिवेशोंकी कार्रवाइयोंपर भी पड़ेगा। साधारण रूपसे इस विषयमें सब लोगोंका एक ही मत दिखलाई पड़ता है कि, इस सवालका निबटारा सबकी दृष्टिसे एक सर्वमान्य आधारपर करना होगा। स्थानिक परिस्थितियोंके अनुकूल उसमें आवश्यक संशोधन किये जा सकते हैं।

(३७) जहाँतक भावना *व्यक्त की गई* है, वह भारतीयोंको काफिरोंकी स्थितिमें गिरा देनेकी है। परन्तु यूरोपीय समाजके एक बड़े हिस्सेकी भावना इसकी बिलकुल उलटी है। वह जोरोंसे व्यक्त तो नहीं की गई, फिर भी जहाँ-तहाँ समाचारोंमें ध्वनित होती रहती है।

(३८) नेटाल उपनिवेश दूसरे दक्षिण आफ्रिकी राज्योंको एक 'कुली' सम्मेलनके लिए आमन्त्रित कर रहा है। इस प्रकार 'कुली' शब्दको सरकारी तौरपर काममें लाया गया है। इससे मालूम होता है कि भारतीयोंके खिलाफ व्यक्त भावना कितनी उग्र है और अगर सम्मेलन कर सका तो वह इस प्रश्नके बारेमें क्या करेगा। पंचके सामने पेश किये हुए मामलेमें ट्रान्सवाल-सरकारने कहा है कि 'कुली' शब्द एशियासे आये हुए किसी भी व्यक्तिपर लागू होता है।

(३९) जब दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध इतनी उग्र भावना फैली हुई है, जब उस भावनाका मूल स्वार्थमय आन्दोलन है (जैसा कि, आशा है,
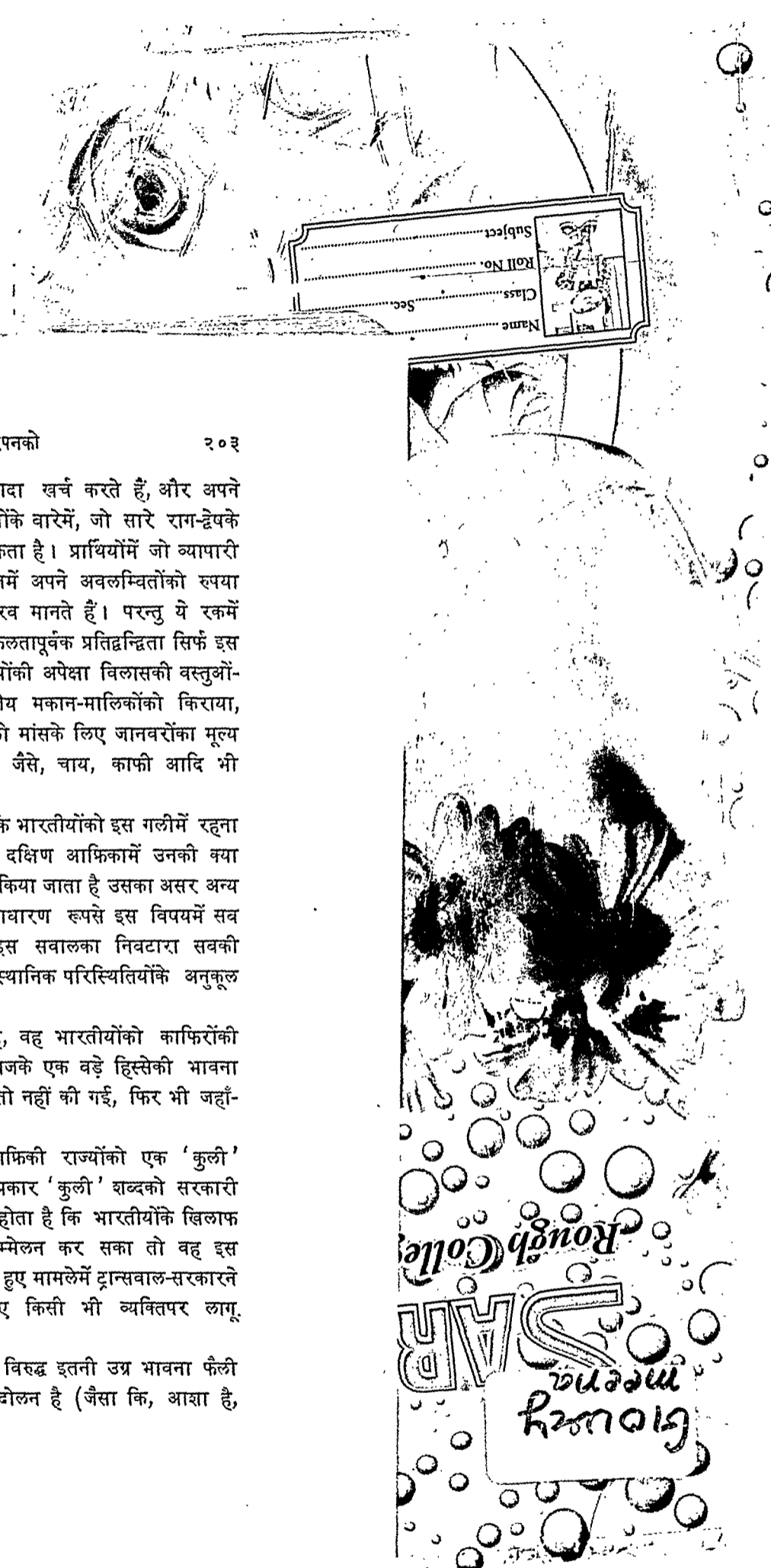
ऊपर पर्याप्त रूपसे दर्शा दिया गया है), जब यह ज्ञात है कि वह भावना सब यूरोपीयोंकी नहीं है, जब दक्षिण आफ्रिकामें धनके लिए आम तौरपर छीना-झपटी मची हुई है, जब लोगोंकी नैतिक अवस्था विशेष ऊँची नहीं है, जब भारतीयोंकी आदतोंके खिलाफ बड़ीसे बड़ी गलतबयानियाँ की जा रही हैं, जिनसे विशेष कानूनका आविर्भाव हुआ है, तब, प्रार्थियोंका निवेदन है, महानुभावसे यह प्रार्थना करना बहुत ज्यादा न होगा कि प्रार्थियोंके विरुद्ध जो वक्तव्य प्राप्त हुए हों और भारतीय समस्याके जो हल सुझाये गये हों, उन्हें ग्रहण करनेमें महानुभाव अधिकसे अधिक सावधानी बरतें।

(४०) प्रार्थी महानुभावके विचारके लिए यह निवेदन भी करना चाहते हैं कि उन्हें न केवल १८५८ की घोषणासे ही सम्राज्ञीकी अन्य प्रजाओंके बराबर अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हैं, बल्कि स्वयं महानुभावने अपने खरीतेके द्वारा इस प्रकारके व्यवहारका विशेष आश्वासन दिया है। खरीतेमें कहा गया है:

> **सम्राज्ञी-सरकारकी इच्छा है कि सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाओंके साथ उनकी अन्य प्रजाओंकी बराबरीका व्यवहार किया जाये।**

(४१) यह स्थानिक नहीं, मुख्यतः साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न है। इस प्रश्नके निबटारेका असर उन दूसरे उपनिवेशों और देशोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता, जहाँ पारस्परिक संधिके द्वारा सम्राज्ञीकी प्रजाओंको व्यापार आदिकी स्वतन्त्रता है, और जहाँ जाकर सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजन भी बस सकते हैं। फिर, इस प्रश्नका असर दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी बहुत बड़ी आबादीपर पड़ता है। जो लोग दक्षिण आफ्रिकामें बसे हैं उनके लिए यह लगभग जीवन और मरणका प्रश्न है। लगातार दुर्व्यवहारसे उनका ह्रास हुए बिना नहीं रह सकता। यहाँतक कि वे अपनी सभ्य आदतोंसे गिरकर आदिवासी देशी लोगोंके स्तरपर पहुँच जायेंगे। और फिर, अबसे एक पीढ़ी बाद, इस प्रकार अधःपतनके मार्गपर चलते हुए भारतीयोंकी सन्तानों और देशी लोगोंकी आदतों, रीति-नीति और विचारोंमें बहुत कम अन्तर रह जायेगा। इस तरह देशान्तर-प्रवासका उद्देश्य ही विफल हो जायेगा और सम्राज्ञीकी प्रजाका एक भारी भाग सभ्यताके पैमानेमें ऊपर चढ़नेके बदले नीचे गिर जायेगा। ऐसी स्थितिका परिणाम विनाशकारी हुए बिना नहीं रह सकता। किसी आत्मसम्मानी भारतीयको दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा करनेका साहस तक न होगा। भारतीयोंके सारेके सारे उद्योगका गला घुट जायेगा। प्रार्थियोंको कोई सन्देह नहीं है कि जिस

स्थानमें सर्वोच्च सत्ता सम्राज्ञीकी है, या जहाँ ब्रिटिश झंडा फहराता है, वहाँ महानुभाव इस तरहकी दुःखद घटना कदापि न होने देंगे।

(४२) प्रार्थी आदरके साथ बताना चाहते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय-विरोधी भावनाओंकी वर्तमान हालतके रहते हुए यदि सम्राज्ञी-सरकार प्रार्थियोंके विरुद्ध की जानेवाली स्वार्थपूर्ण चीख-पुकारके सामने झुक गई तो यह प्रार्थियोंके प्रति गम्भीर अन्यायका कार्य होगा।

(४३) अगर यह सच है कि प्रार्थियोंकी सफाई-सम्बन्धी आदतें यूरोपीय समाजके स्वास्थ्यको खतरेमें डालने योग्य नहीं हैं, और अगर यह भी सच है कि उनके विरुद्ध आन्दोलनका कारण व्यापारिक ईर्ष्या है, तो आरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशका निर्णय आदेशोंके बिलकुल अनुकूल हो तो भी बन्धनकारक नहीं हो सकता। क्योंकि, उस हालतमें तो जिसलिए सम्राज्ञी-सरकारने समझौतेसे हटकर कार्य करने की अनुमति दी है, उस कारणका अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

(४४) फिर भी, अगर महानुभावको प्रार्थियोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतोंके बारेमें यहाँ कही गई बातोंपर सन्देह हो तो, निवेदन है कि, प्रार्थियोंके बहुत बड़े हित दाँवपर चढ़े हैं और उनकी सफाई-सम्बन्धी आदतोंके बारेमें परस्पर-विरोधी बयान दिये गये हैं। दक्षिण आफ्रिकामें उनके विरुद्ध भावनाएँ भी बहुत उग्र हैं। इन सब दृष्टियोंसे, प्रार्थियोंका विनम्र अनुरोध है, विचार किया जाये और समझौतेका उल्लंघन करनेकी अन्तिम अनुमति देनेके पहले परस्पर-विरोधी वक्तव्योंके सत्यासत्यकी निष्पक्ष जाँच और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी *मान-मर्यादा*के सारे प्रश्नकी छानबीन करा ली जाये।

अन्तमें प्रार्थी अपना मामला महानुभावके हाथोंमें छोड़ते हैं। वे सच्चे दिलसे प्रार्थना और पूरी आशा करते हैं कि उन्हें रंग-भेदका शिकार न होने दिया जायेगा। उनकी यह भी प्रार्थना और आशा है कि सम्राज्ञी-सरकार दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें भारतीयोंके साथ ऐसा व्यवहार करनेकी अनुमति नहीं देगी, जो उन्हें पतित और अस्वाभाविक स्थितिमें डाल दे और ईमानदारीके साथ जीविकोपार्जन करनेके साधनोंसे वंचित कर दे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।[1]

[अंग्रेजीसे]

१. छपी हुई मूल अंग्रेजी नकलमें हस्ताक्षर नहीं है।

परिशिष्ट क

मैं इस पत्रके द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैं गत पाँच वर्षोंसे प्रिटोरिया नगरमें साधारण चिकित्सकका धंधा कर रहा हूँ।

इस अवधिमें, और खास तौरसे तीन वर्ष पहले, जब भारतीयोंकी संख्या अबसे ज्यादा थी, उनके बीच मेरा धंधा खासा अच्छा रहा है।

मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गंदगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि जिस समय शहर और जिलेमें चेचकका प्रकोप था — और जिलेमें अब भी है — तब प्रत्येक राष्ट्रके एक या अधिक रोगी तो कभी-न-कभी संक्रामक रोगोंके चिकित्सालयमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।

मेरे खयालसे, आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है शर्त हमेशा यह है कि, सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।

एच० प्रायरवील
बी० ए०, एम० बी०, बी० सी-एच० (कैंटब)

२७ अप्रैल, १८९५,
प्रिटोरिया, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य

परिशिष्ट ख

जोहानिसबर्ग
१८९५

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने पत्र-वाहकोंके मकानोंका निरीक्षण किया है। वे स्वच्छ तथा आरोग्यजनक हालतमें हैं। वास्तवमें तो वे ऐसे हैं कि उनमें कोई भी यूरोपीय रह सकता है। मैं भारतमें रहा हूँ। मैं प्रमाणित कर सकता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें उनके मकान उनके भारतके मकानोंसे कहीं बेहतर हैं।

सी० पी० रिंपक
एम० आर० सी० पी० और एल० आर० सी० एस० (लंदन)
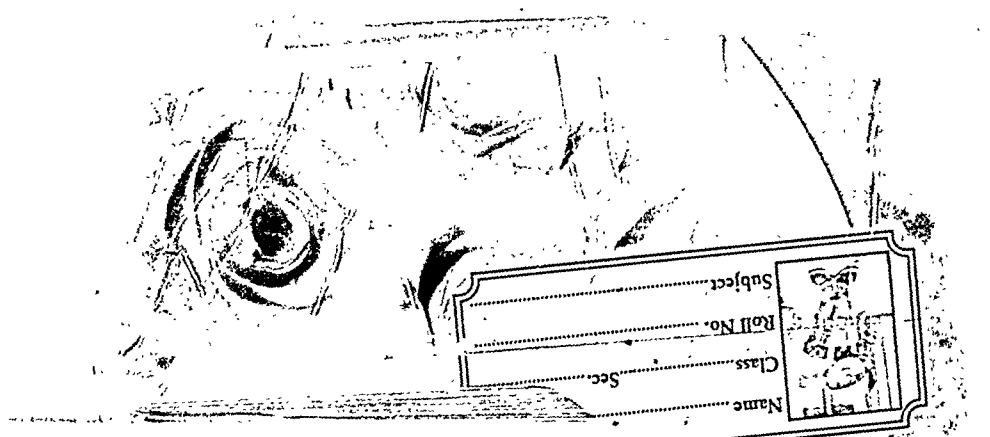
परिशिष्ट ग

जोहानिसबर्ग
१४ मार्च, १८९५

मुझे अपने धंधेके सिलसिलेमें जोहानिसबर्गके उच्चतर भारतीय वर्ग (बम्बईसे आये हुए व्यापारियों आदि)के घरोंमें जानेके मौके अक्सर मिलते हैं। इस आधारपर मैं यह मत देता हूँ कि वे अपनी आदतों और घरेलू जीवनमें अपने समकक्ष यूरोपीयोंके बराबर ही स्वच्छ हैं।

डॉ० नामेचर, एम० डी०, आदि

परिशिष्ट घ

जोहानिसबर्ग
१४ मार्च, १८९५

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवालोंको सूचना मिली है कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके भारतीय व्यापारियोंके प्रश्नपर पंच-फैसला आयोग (आर्बिट्रेशन कमिशन) इस समय ब्लूमफांटीनमें अपनी बैठकें कर रहा है। हमें यह भी बताया गया है कि उक्त व्यापारियोंके विरुद्ध यह आरोप है कि उनकी गंदी आदतोंके कारण उनका यूरोपीय आबादीके बीच रहना खतरनाक है। इसलिए हम इस वक्तव्यके द्वारा स्पष्ट रूपसे घोषणा करते हैं कि:

प्रथम — उक्त भारतीय व्यापारी, जिनमें से अधिकतर बम्बईसे आये हैं, अपने व्यापारके स्थानों और मकानोंको स्वच्छ और समुचित आरोग्यजनक हालतमें — वास्तवमें, ठीक यूरोपीयोंके बराबर ही अच्छी हालतमें — रखते हैं।

द्वितीय — उन्हें 'कुली' या 'नीची जाति'के ब्रिटिश भारतवासी कहना सरासर गलत है, क्योंकि वे निश्चयपूर्वक भारतकी अच्छी और ऊँची जातियोंके हैं।

हेमान गॉर्डन एंड को०
ब्रैड एंड मायर्स्स
लिंडसे एंड इन्स
गस्टाव श्नाइडर
सी० लीवे
क्रिस्टोफर पी० रिंपक

ए० वेंटवर्थ वाल
पी० पी०, जे० गार्लिक
एच० वुडक्राफ्ट
पी० पी०, गार्डन मिचेल एंड को०,
जोहानिसबर्ग, द० आ० ग०
आर० कोर्टर

पी० वार्नेट एंड को०
पी० पी०, इज़राएल ब्रदर्स
एच० क्लैपहम
पी० पी०, पेन ब्रदर्स
एच० एफ० वेयर्ट
जेज़िफ़ लाज़रस एंड को०
जिओ० जास० केट्ल् एंड को०
वार्टन्स ब्रदर्स
पी० पी०, जे० डबल्यू० जैगर एंड को०,
टी० चार्ली
आर० जी० क्रैमर एंड को०
पी० पी०, होल्ट एंड होल्ट बी० इमैन्युएल
ऐडम एलेक्ज़ैंडर
बी० एलेक्ज़ैंडर
ए० बेहरेन्स
एस० कोलमैन
एलेक्ज़ैंडर पी० के
पी० पी०, जी० कोएनिग्जबर्ग
जे० एच० हापकिन्स
पी० पी०, लीबरमान वेल्स्टेड एंड को०,
जे० एच० हापकिन्स
जे० एच० हापकिन्स
श्लोम एंड आर्म्सबर्ग
पी० पी०, ह्यूगो बिंजेन
जास० डबल्यू० सी०
पी० पी०, एच० हर्नबर्ग एंड को०,
जनरल मर्चैंट्स एंड इम्पोर्टर्स,
जोहानिसबर्ग
ई० नील
जे० कुर्टिग
एन० डबल्यू० लिविस
स्पेन्स एंड हरी
फ्राइजमैन एंड शैपिरो
जे० फाजेलमैन
टी० रेट्स एंड को०
पी० पी०, बी० गंडेलफिंगर
जे० गंडेलफिंगर

परिशिष्ट ङ

(सही अनुवाद)

सेवामें
श्रीमान् अध्यक्ष महोदय, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य, प्रिटोरिया

नम्र निवेदन है कि,

गणराज्यवासी कतिपय स्वार्थी यूरोपीयोंने इस आशयकी ठेठ गलतबयानियाँ की हैं कि इस राज्यके बर्गर भारतीयोंके इस राज्यमें रहने और व्यापार करनेके विरोधी हैं। वे भारतीयोंके खिलाफ आन्दोलन भी कर रहे हैं। इस सबकी दृष्टिसे हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले बर्गर आदरपूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि भारतीयोंके इस राज्यमें रहने और व्यापार करनेका विरोध करना तो बहुत दूर, उलटे हम उन्हें शान्तिप्रिय और कानूनका पालन करनेवाले, अतः वांछनीय मानते हैं। गरीबोंके लिए
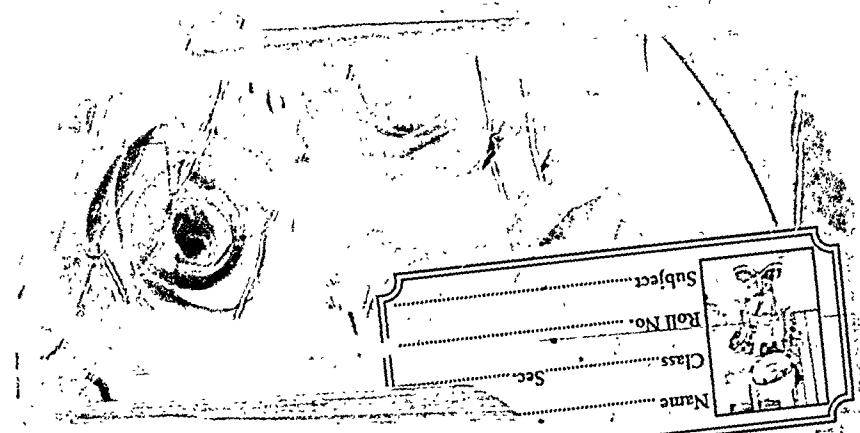
तो वे वरदान जैसे ही हैं, क्योंकि वे अपनी जोरदार होड़के द्वारा जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव सस्ते रखते हैं। उनके लिए ऐसा करना उनकी कमखर्च और संयमी आदतोंके कारण सम्भव है।

हम निवेदन करनेकी इजाजत चाहते हैं कि उनका राज्यसे चले जाना हमारे लिए घोर संकटका कारण बन जायेगा। हममें से जो लोग व्यापारिक केन्द्रोंसे बहुत दूर रहते हैं और अपनी रोजमर्राकी जरूरतें पूरी करनेके लिए भारतीयोंपर निर्भर करते हैं, वे तो खास तौरसे संकटमें पड़ेंगे। इसलिए उनकी स्वतन्त्रताको मर्यादित करनेवाला और अन्ततः उनको, खास तौरसे व्यापारियों और फेरीवालोंको, निकाल देनेके लक्ष्यवाला कोई भी कानून हमारे आराम-चैनमें बाधक हुए बिना न रहेगा। इसलिए हम नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं कि सरकार ऐसे कोई कदम न उठाये जिनसे भारतीय डरकर ट्रान्सवालसे चले जायें।

[अनेक बर्गरोंके हस्ताक्षर]

परिशिष्ट च

सेवामें
श्रीमान् अध्यक्ष, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य
प्रिटोरिया

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, गणराज्यके यूरोपीय निवासी भारतीय-विरोधी आन्दोलनका विरोध करते हैं। यह आन्दोलन भारतीयोंको इस देशमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहने और व्यापार करने न देनेके उद्देश्यसे कुछ स्वार्थी लोगोंने छेड़ा है।

जहाँतक हमारे अनुभवका सम्बन्ध है, हमें विश्वास है कि भारतीयोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतें यूरोपीयोंकी आदतोंसे किसी प्रकार हीन नहीं हैं। और उनके बीच — खास तौरसे भारतीय व्यापारियोंके बीच — छुतहे रोगोंके प्रसारके बारेमें कही गई बातें निश्चय ही बेबुनियाद हैं।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि आन्दोलनका मूल उनकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतें नहीं, बल्कि व्यापार-सम्बन्धी ईर्ष्या है। कारण यह है कि अपने कमखर्च रहन-सहन और संयमी आदतोंके कारण वे जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव सस्ते रखते हैं। इस तरह वे राज्यके गरीब लोगोंके लिए अतुल वरदानरूप सिद्ध हुए हैं।

हम नहीं मानते कि उन्हें पृथक् क्षेत्रोंमें रहने या वहीं व्यापार करनेके लिए बाध्य करनेका कोई भी मजबूत कारण मौजूद है।

इसलिए हम नम्रतापूर्वक श्रीमान्से अनुरोध करते हैं कि ऐसा कोई कानून न तो मंजूर किया जाये न बरदाश्त ही किया जाये, जिसका मंशा उनकी स्वतन्त्रतापर
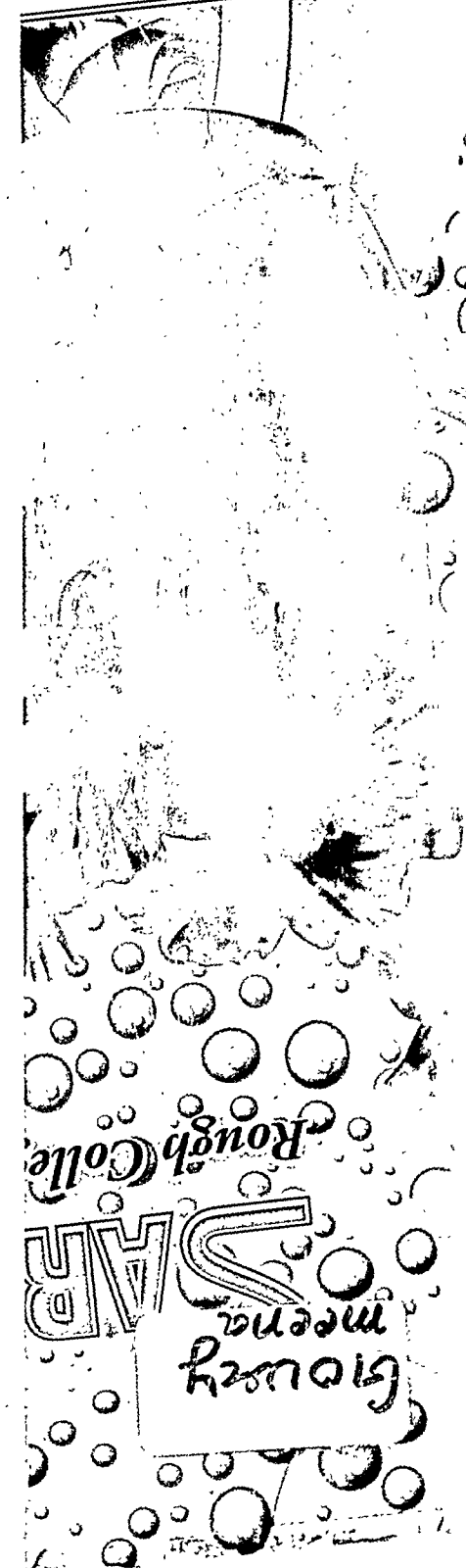
प्रतिबन्ध लगाना हो, और जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः वे गणराज्य छोड़कर चले जायें। यह परिणाम उनकी जीविकाके साधनोंपर ही आघात करनेवाला होगा और, इसलिए, हमारा नम्र निवेदन है, एक ईसाई देशमें आत्मसन्तोषके साथ इसका खयाल नहीं किया जा सकता।

[उपर्युक्त प्रार्थनापत्र अंग्रेजी और आफ्रिकन — दोनों भाषाओंमें छपा है। फाइल की हुई प्रतिमें प्रार्थियोंके हस्ताक्षर नहीं हैं।]

परिशिष्ट छ

मेरा नाम हाजी मुहम्मद हाजी दादा है। मैं हाजी मुहम्मद हाजी दादा एंड कम्पनी, मर्चेंट्स, डर्बन, प्रिटोरिया, डेलागोआ-बे आदिका प्रवन्धक और बड़ा साझेदार हूँ। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि:

(१) सन् १८९४ में किसी समय मैं घोड़ागाड़ी द्वारा जोहानिसबर्गसे चार्ल्सटाउन जा रहा था।

(२) जब मैं ट्रान्सवालकी सीमापर पहुँचा तब एक वर्दीधारी यूरोपीय मेरे पास आया। उसके साथ एक अन्य व्यक्ति भी था। उसने मुझसे परवाना दिखानेको कहा। मैंने जवाब दिया कि मेरे पास परवाना नहीं है। इसके पहले मुझसे कभी माँगा भी नहीं गया।

(३) इसपर उसने अशिष्टताके साथ मुझसे कहा कि तुम्हें परवाना लेना होगा।

(४) मैंने उससे ले आनेको कहा और उसका पैसा देनेकी तैयारी दिखाई।

(५) तब उसने बहुत अशिष्टतासे मुझे अपने साथ परवाना अधिकारीके पास चलनेको कहा। मुझे धमकी भी दी कि मानोगे नहीं तो गाड़ीसे बाहर घसीट लूँगा।

(६) अधिक संकटको टालनेके लिए मैं उतर पड़ा। उसने मुझे दो मील पैदल चलाया और खुद घोड़े पर गया।

(७) दफ्तर पहुँचनेपर मुझे परवाना लेनेके लिए बाध्य नहीं किया गया। सिर्फ इतना पूछा गया कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। फिर मुझसे चले जानेको कह दिया गया।

(८) जो आदमी घोड़ेपर सवार था और जो मेरे साथ गया था वह भी मुझे छोड़कर चला गया। मुझे दो मील वापस पैदल जाना पड़ा। वहाँ जाकर मैंने देखा कि घोड़ागाड़ी चली गई है।

(९) यद्यपि मैंने चार्ल्सटाउन तकका किराया दे दिया था, मुझे दो मीलसे ज्यादा पैदल चलकर वहाँ जाना पड़ा

(१०) मुझे व्यक्तिगत जानकारी है कि ऐसी ही हालतोंमें अन्य अनेक भारतीयोंको ऐसा ही कष्ट और अपमान सहना पड़ा है।

(११) कुछ दिन पूर्व, मुझे डेलगोआ-बे से दो मित्रोंके साथ प्रिटोरिया जाना पड़ा था।

(१२) ट्रान्सवालमें यात्रा कर सकें, इसके लिए हम सबको, ठीक देशी लोगोंके समान, परवानोंसे लैस हो जानेके लिए बाध्य किया गया।

हाजी मुहम्मद हाजी दादा

आज २४ अप्रैल, १८९५ को प्रिटोरियामें मेरे सामने हलफपर बयान दिया गया।

एनवारालोहेरी

बी० रासक

परिशिष्ट ज

पाइंट, पोर्ट नेटाल
२ मार्च, १८९५

तार और केबुलका पता : "बोटिंग"

पाससे

दी आफ्रिकन बोटिंग कम्पनी लिमिटेड

सेवामें

श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा (हाजी मुहम्मद हाजी दादा एंड को०)

प्रिय महोदय,

आप भारतकी यात्रापर जानेवाले हैं। यह जानकर हम आपकी व्यापारिक योग्यताके बारेमें अपना बहुत ऊँचा सराहना-भाव अंकित करते हैं। सराहनाके इस भावको हम आपके साथ अपने व्यापारिक सम्बन्धके गत पन्द्रह वर्षोंमें साबित कर चुके हैं। हमें यह कहते हुए बहुत आनन्द है कि यहाँ आपके निवासकालमें व्यापारिक समाजके किसी व्यक्तिने कभी आपकी ईमानदारीपर सन्देह नहीं किया। हमें विश्वास है कि आप फिर नेटाल आयेंगे और तब, हमें आशा है, हम आपके साथ अपना व्यापारिक सम्बन्ध फिरसे स्थापित करेंगे। आशा है, आपकी यात्रा आनन्दमय होगी।

आपके विश्वासपात्र
आफ्रिकन बोटिंग कम्पनीके लिए
(ह०) चार्ल्स टी० हिचिन्स

यह प्रार्थनापत्र, परिशिष्टों-सहित, एक छपी हुई अंग्रेजी प्रतिके फोटोसे लिया गया है।

५३. प्रार्थनापत्र[1] : लार्ड एलगिनको

[मई, १८९५]

सेवामें

परमश्रेष्ठ, परम माननीय लार्ड एलगिन, पी०सी०, जी० एम० एस० आई०, जी० एम० आई० ई०, आदि-आदि
वाइसराय और गवर्नर-जनरल, भारत
कलकत्ता

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे इस प्रार्थनापत्र द्वारा सम्राज्ञीके दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंके सम्बन्धमें निवेदन करनेकी इजाजत लेते हैं।

प्रार्थी यहाँ उन तथ्यों और तर्कोंको दुहराना नहीं चाहते जो उन्होंने परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीके नाम एक हजारसे अधिक व्यक्तियोंके हस्ताक्षरसे भेजे गये इसी प्रकारके एक प्रार्थनापत्र[2] में दिये हैं। बदलेमें, उस प्रार्थनापत्रकी और उसके सहपत्रोंकी एक नकल इसके साथ नत्थी करके प्रार्थी अनुरोध करते हैं कि महानुभाव उसे देख लें।

पक्के विचार-विमर्शके बाद हम प्रार्थी इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि महानुभाव भारतमें सम्राज्ञीके प्रतिनिधि और समस्त भारतके वास्तविक शासक हैं; अतएव यदि हम महानुभावके सीधे संरक्षणकी याचना न करें और यदि महानुभाव ऐसा संरक्षण देनेकी कृपा न करें तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके ही नहीं, समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थिति अत्यन्त निःसहाय हो जायेगी। और, दक्षिण आफ्रिकाके उद्यमी भारतीयोंको, बिना किसी अपराधके, जबरन दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगोंके स्तरपर गिरा दिया जायेगा।

१. यह प्रार्थनापत्र जेकब्स डी'वेटने मई ३०, १८९५ को लार्ड रिपनके नाम प्रार्थनापत्रके साथ केपटाउन-स्थित उच्चायुक्तके पास भेजा था।
२. लार्ड रिपनको प्रार्थनापत्र — देखिए, पृष्ठ १८९।
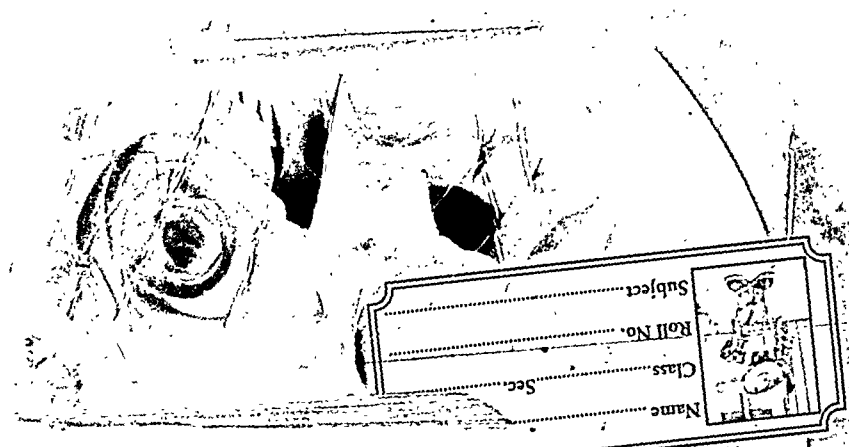
मान लीजिए, कोई बुद्धिमान अजनवी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें आता है। उसे बताया जाता है कि इस राज्यमें एक वर्ग ऐसे लोगोंका है जो अचल सम्पत्ति नहीं रख सकते; बिना परवानोंके राज्यमें घूम-फिर नहीं सकते; व्यापारके लिए राज्यमें प्रवेश करते ही सिर्फ उनको साढ़े तीन पौंडका एक विशेष पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ता है; वे व्यापार करनेके परवाने नहीं पा सकते; उन्हें शीघ्र ही शहरोंसे बहुत दूरके स्थानोंमें हट जानेका आदेश दे दिया जायेगा; वे केवल उन्हीं स्थानोंमें निवास तथा व्यापार कर सकेंगे; और, वे ९ बजे रातके बाद अपने घरोंसे निकल नहीं सकते। इतना बतानेके बाद उस अजनबीसे कहा जाये कि अनुमान लगाओ, इन खास निर्योग्यताओंका कारण क्या होगा। तो, क्या वह ऐसा निष्कर्ष न निकालेगा कि वे लोग बिलकुल गुंडे, अराजक और राज्य तथा समाजके लिए राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक होंगे? इसपर भी प्रार्थी महानुभावको विश्वास दिलाते हैं कि जो भारतीय उपर्युक्त सब निर्योग्यताओंके अधीन जीवन-यापन कर रहे हैं वे न तो गुंडे हैं और न अराजक हैं। उलटे, वे दक्षिण आफ्रिकाके और खासकर दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके सबसे ज्यादा शान्तिप्रिय और कानूनका पालन करनेवाले लोगोंमें हैं।

प्रमाण यह है कि, जोहानिसबर्गमें यूरोपीय समाजके ऐसे लोग हैं, जो राज्यके लिए सच्चे खतरेके हेतु बने हुए हैं। हाल ही में उन्होंने अपनी प्रवृत्तियोंसे पुलिस-बलमें वृद्धि करना जरूरी कर दिया है और खुफिया विभागपर बहुत भार लाद दिया है। परन्तु भारतीय समाजने इन विषयोंमें राज्यको चिन्ताका कोई कारण नहीं दिया।

इसके समर्थनमें प्रार्थी आपका ध्यान सारे दक्षिण आफ्रिकाके अखबारोंकी ओर आकर्षित करते हैं।

जिस सक्रिय आन्दोलनसे भारतीयोंकी वर्तमान हालत हुई है उसमें भी भारतीयोंपर इस प्रकारके आरोप मढ़नेकी इच्छा नहीं की गई।

भारतीयोंपर केवल एक आरोप लगाया गया है कि वे समुचित स्वच्छताका पालन नहीं करते। प्रार्थियोंका विश्वास है कि परमश्रेष्ठ, परम माननीय लार्ड रिपनको भेजे गये निवेदनमें इस आरोपको पूर्णतः निराधार सिद्ध किया जा चुका है। फिर भी यदि मान लिया जाये कि आरोपमें कुछ आधार है ही, तो स्पष्ट है कि वह भारतीयोंको अचल सम्पत्ति रखने, या देशमें स्वेच्छा तथा स्वतन्त्रताके साथ घूमने-फिरनेसे रोकनेका कारण नहीं हो सकता। वह भारतीयोंपर साढ़े तीन पौंडका विशेष भुगतान लादनेका कारण भी नहीं हो सकता।

यह कहा जा सकता है कि अब तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकारने कतिपय कानून मंजूर कर लिये हैं। ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशने अपना निर्णय भी दे दिया है। और, उस निर्णयसे सम्राज्ञी-सरकार बँधी हुई है।

प्रार्थियोंकी नम्र मान्यता है कि साथके कागजातमें इन आपत्तियोंका जवाब दिया जा चुका है। लंदन-समझौता सम्राज्ञीकी सब प्रजाओंके अधिकारोंका विशेष रूपसे संरक्षण करता है। यह एक माना हुआ सत्य है। सम्राज्ञी-सरकारने समझौतेसे विलग होने और पंच-फैसला करानेकी अनुमति *स्वच्छताके आधार*पर दी थी। और प्रार्थियोंको बताया गया है कि समझौतेकी इस प्रकार अवहेलना करनेकी अनुमति महानुभावके पूर्वाधिकारीसे परामर्श किये बिना ही दी गई थी। इस तरह, जहाँतक भारत-सरकारका सम्बन्ध है, प्रार्थियोंका निवेदन है, वह अनुमति बन्धनकारक नहीं है। यह तो स्वयंस्पष्ट है कि भारत-सरकारसे परामर्श किया जाना चाहिए था। और अगर महानुभावका इरादा वर्तमान अवस्थामें और केवल इसी आधारपर प्रार्थियोंकी ओरसे हस्तक्षेप करनेका न हो तो प्रार्थियोंका निवेदन है कि जिन कारणोंसे यह अनुमति दी गई वे न तो तब मौजूद थे, न अब मौजूद हैं। वास्तवमें सम्राज्ञी-सरकारको गलतबयानी द्वारा गलत मार्ग दिखाया गया है, इसलिए ये बातें महानुभावसे हस्तक्षेपकी प्रार्थना करनेके लिए और महानुभावके उस प्रार्थनाको मान्य करनेके लिए काफी औचित्य रखती हैं।

और इसमें निहित समस्याएँ इतनी महत्त्वपूर्ण और इतनी साम्राज्यव्यापी हैं कि प्रार्थियोंने स्वच्छता-सम्बन्धी आरोपका जो कड़ा किन्तु आदरपूर्ण विरोध किया है उसकी दृष्टिसे पूरी जाँचके बिना इस प्रश्नका ऐसा निबटारा नहीं किया जा सकता, जिससे दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर अन्याय न हो।

महानुभावका मूल्यवान समय और अधिक लिये बिना प्रार्थी फिरसे अनुरोध करते हैं कि महानुभाव इसके साथके कागजातपर पूरा ध्यान दें। अन्तमें, प्रार्थी सच्चे दिलसे आशा करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंको महानुभावका संरक्षण उदारतापूर्वक प्रदान किया जायेगा।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि।

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।
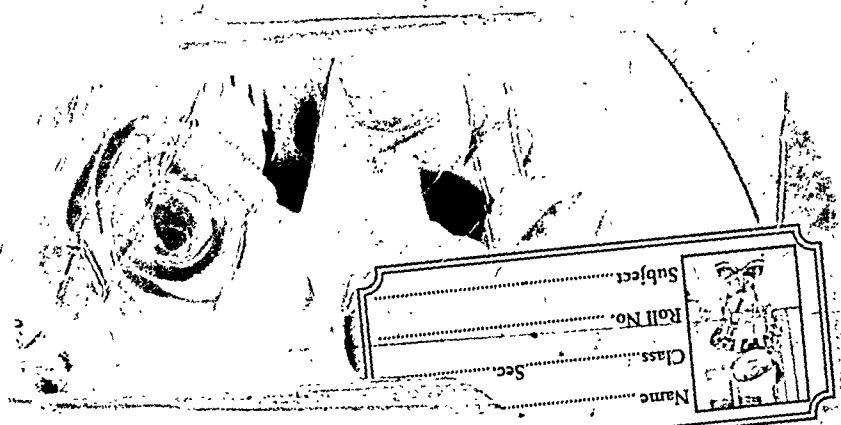
५४. प्रार्थनापत्र[1] : नेटाल विधानपरिषदको

डर्बन
[जून, १८९५ के पूर्व]

सेवामें

माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधानपरिषद

नेटाल उपनिवेशमें व्यापारियोंकी हैसियतसे रहनेवाले
निम्न हस्ताक्षरकर्ता भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी उपनिवेशवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें आपकी सम्माननीय परिषदके सामने यह प्रार्थनापत्र पेश कर रहे हैं। इसका सम्बन्ध विधेयकके उस अंशसे है, जिसका असर गिरमिटकी वर्तमान अवधिपर पड़ता है और जिसके द्वारा गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेनेके बाद उपनिवेशमें ठहरनेके इच्छुक भारतीयोंको तीन पौंड सालाना देकर परवाना लेनेके लिए बाध्य करनेकी व्यवस्था की गई है।

प्रार्थियोंका सादर निवेदन है कि उपर्युक्त दोनों उपधाराएँ बिलकुल अन्यायपूर्ण और अनावश्यक हैं।

प्रार्थी इस सम्माननीय सदनका ध्यान इस विषयमें भारत भेजे गये प्रतिनिधियों — श्री बिन्स और श्री मेसनकी रिपोर्टके इस अंशकी ओर आकर्षित करते हैं :

> यद्यपि भारत-सरकारसे बार-बार अनुरोध किया गया, अबतक किसी देशको — जिसमें भी कुली गये हैं — न तो गिरमिटकी अवधि फिर नई करनेकी मंजूरी दी गई है और न गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद उनका लाजिमी तौरपर लौटा दिया जाना ही मंजूर किया गया है।

इस तरह तमाम ब्रिटिश उपनिवेशोंमें इस समय जो व्यवहार होता है उससे विधेयककी उपधाराएँ बिलकुल अलग और बिगाड़की ओर ले जानेवाली हैं।

अगर मान लिया जाये कि गिरमिटमें बँधनेके समय गिरमिटिया भारतीयोंकी औसत उम्र २५ वर्ष होती है, तो दस वर्ष तक काम करानेकी अपेक्षा

१. यह प्रार्थनापत्र जून २६, १८९५ के *नेटाल मर्क्युरी*में प्रकाशित हुआ था।

रखनेवाले विवेयकके अधीन उनकी उम्रका सर्वोत्तम भाग सिर्फ गुलामीमें बीत जायेगा।

एक भारतीयके लिए लगातार दस वर्ष तक उपनिवेशमें रहकर भारत लौटना मूर्खता मात्र होगा। उसके तमाम आत्मीयताके सम्बन्ध तवतक कट जायेंगे, और ऐसा भारतीय अपनी ही मातृभूमिमें अपेक्षाकृत पराया वन जायेगा। भारतमें काम पाना करीव-करीव असम्भव होगा। व्यापारके क्षेत्रमें पहलेसे ही वहुत भीड़ है और उसके पास इतनी सम्पत्ति भी नहीं होगी कि वह अपनी पूँजीपर गुजर कर सके।

दस वर्षकी कुल कमाई ८७ पौंड होती है। अगर गिरमिटिया इन तमाम दस वर्षोंमें ५० पौंड वचा ले और अपने कपड़ों तथा दूसरी आवश्यकताओंपर सिर्फ ३७ पौंड खर्च करे, तो भी उस पूँजीका व्याज इतना काफी न होगा कि वह भारत-जैसे गरीव देशमें भी अपना जीवन-निर्वाह कर सके। इसलिए, अगर ऐसा भारतीय वापस जानेका साहस करे भी तो वह गिरमिट प्रथामें वँधकर फिर लौट आनेके लिए वाध्य हो जायेगा और उसकी सारीकी सारी जिन्दगी गुलामीमें ही कटेगी। इसके अलावा, अगर किसी गिरमिटिया भारतीयका कुटुम्व हो तो इन दस वर्षों तक वह उसकी विलकुल परवाह न कर सकेगा। और कुटुम्व-वाला तो ५० पौंडकी वचत भी नहीं कर पायेगा। प्रार्थियोंको परिवारवाले गिर-मिटिया भारतीयोंके अनेक उदाहरण मालूम हैं। वे कोई वचत नहीं कर पाये।

जहाँतक तीन पौंडी परवानेकी दूसरी उपधाराका सम्वन्ध है, प्रार्थियोंका निवेदन है कि वह व्यापक असन्तोष और अत्याचारको जन्म देनेवाली होगी। प्रार्थियोंके नम्र खयालसे, यह समझना कठिन है कि सम्राज्ञीकी प्रजाके एक ही वर्गको, और सो भी उपनिवेशके लिए सवसे ज्यादा उपयोगी वर्गको, यह कर मढ़नेके लिए क्यों चुना जाये।

हम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि जो आदमी दस वर्ष तक गुलामीकी हालतमें उपनिवेशमें रह चुका हो उसे, वादमें, स्वतन्त्र नागरिककी हैसियतसे रहनेके लिए, भारी कर चुकानेको वाध्य करना सामान्य न्याय और औचित्यके सिद्धान्तोंके अनुरूप नहीं है।

माना कि ये धाराएँ सिर्फ उन लोगोंपर लागू होंगी, जो कानून वन जानेके वाद उपनिवेशमें आयेंगे और वे अपने आनेकी शर्तोंको पहलेसे जानते होंगे। परन्तु इससे उक्त उपधाराएँ आपत्तिरहित नहीं वन जातीं। कारण यह है कि इकरार करनेवाले दोनों पक्षोंको कार्रवाई करनेकी वरावर स्वतन्त्रता

नहीं होगी। गरीबीकी मारसे व्याकुल होकर और अपने परिवारका पालन-पोषण करना असम्भव देखकर जब कोई भारतीय गिरमिटपर हस्ताक्षर करता है, तब उसे स्वतन्त्रतासे हस्ताक्षर करनेवाला नहीं कहा जा सकता। ऐसे आदमी देखे गये हैं जिन्होंने तात्कालिक कष्टोंसे छूटनेके लिए इससे भी ज्यादा सख्त बातोंको मंजूर किया है।

इसलिए, प्रार्थी नम्रतापूर्वक आशा और प्रार्थना करते हैं कि उपर्युक्त उप-धाराओंको यह सम्माननीय सदन स्वीकार न करे। और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि।

(ह०) अब्दुल्ला हाजी आदम
और अन्य अनेक भारतीय

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

५५. प्रार्थनापत्र : श्री चेम्बरलेनको

[डर्बन
अगस्त ११, १८९५]

सेवामें

परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
सम्राज्ञी-सरकार, लन्दन

नेटाल उपनिवेशवासी नीचे हस्ताक्षर करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्रतापूर्वक निवेदन है कि,

नेटालकी विधानसभा और विधानपरिषदने हालमें ही भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयक (इंडियन इमिग्रेशन ला अमेंडमेंट बिल) मंजूर किया है। उसके सम्बन्धमें अर्ज करनेके लिए प्रार्थी नेटाल उपनिवेशवासी भारतीयोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे आदरपूर्वक महानुभावकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। हम प्रार्थी विधेयकके बारेमें उस हदतक अर्ज करना चाहते हैं, जहाँतक उसका असर गिरमिटियोंकी वर्तमान स्थितिपर पड़ता है और जहाँतक वह कानून अपने दायरेमें आनेवाले तथा उपनिवेशमें स्वतन्त्र नागरिकोंके रूपमें रहनेके

इच्छुक भारतीयोंको प्रतिवर्ष ३ पौंड शुल्कका विशेष परवाना निकालनेके लिए वाध्य करता है।

(२) प्रार्थियोंने ऊपरके विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली उपधाराओंको निकलवा देनेके उद्देश्यसे दोनों सदनोंको आदरयुक्त प्रार्थनापत्र भेजे थे। परन्तु यह बताते हुए खेद होता है कि उनका कोई लाभ नहीं हुआ। प्रार्थनापत्रों[1]की नकलें इसके साथ संलग्न हैं और उनपर क्रमशः *क* तथा *ख* चिह्न लगा दिये गये हैं।

(३) उपर्युक्त विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली उपधाराएँ निम्नलिखित हैं :

उपधारा (क्लाज़) २ — जिस तारीखसे यह कानून अमलमें आयेगा उससे और उसके बाद, १८९१ के भारतीय प्रवासी कानून (इंडियन इमिग्रेशन ला) की अनुसूची *ख* तथा *ग*के अनुसार, जिनका उल्लेख उस कानूनके खंड (सेक्शन) ११ में हुआ है, भारतीय प्रवासी जिन इकरारनामोंपर हस्ताक्षर करेंगे उनमें गिरमिटिया भारतीयोंकी ओरसे निम्नलिखित शब्दोंमें एक प्रतिज्ञा होगी :

हम यह भी मंजूर करते हैं कि अवधि समाप्त होने या अन्य तरीकेसे इकरारनामा खत्म होनेके बाद हम या तो भारत लौटेंगे या समय-समयपर किये जानेवाले इकरारनामेके अनुसार नेटालमें रहेंगे। शर्तें ये हैं कि नई प्रतिज्ञाबद्ध सेवाकी हरएक अवधि दो वर्षकी होगी और इस इकरारनामेमें वेतनकी जो व्यवस्था की गई है उसके बाद प्रत्येक वर्षका मासिक वेतन इस प्रकार होगा — पहले वर्ष १६ शिलिंग, दूसरे वर्ष १७ शिलिंग, तीसरे वर्ष १८ शिलिंग, चौथे वर्ष १९ शिलिंग और पाँचवें तथा बादके हर वर्ष २० शिलिंग मासिक।

उपधारा ६ इस प्रकार है :

इस कानूनके खंड २ में दी हुई प्रतिज्ञा करनेवाले प्रत्येक गिरमिटिया भारतीयको, जो नेटालमें फिरसे मजदूरीका इकरारनामा लिखने या भारत लौटनेसे इनकार करे, या उसकी उपेक्षा करे, या उसमें चूक जाये, हर वर्ष उपनिवेशमें रहनेके लिए एक परवाना निकालना होगा। वह उसके

१. देखिए, पृष्ठ १७९-८१ और २१५-१७।

जिलेके मजिस्ट्रेटसे प्राप्त होगा। उस परवानेके लिए उसे तीन पौंड वार्षिक शुल्क देना होगा। यह शुल्क कोई भी 'क्लार्क आफ पीस' या तदर्थ नियुक्त अधिकारी सरसरी कार्रवाई द्वारा वसूल कर सकता है।

ऊपर उद्धृत उपधारा २ में उल्लिखित अनुसूची ख का मजदूरीकी अवधि-सम्बन्धी अंश यह है :

> हम . . . से नेटाल जानेवाले निम्न हस्ताक्षरकर्ता प्रवासी प्रतिज्ञा करते हैं कि नेटाल-स्थित भारतीय प्रवासी-संरक्षक हमें जिस मालिकके पास भेजेगा उसका काम हम करेंगे। शर्त यह है कि हमें नीचे अपने-अपने नामके सामने लिखी हुई मजदूरी और दूसरा अतिरिक्त खर्च हर माह नकद दिया जायेगा।

(४) ऊपर दिये अंशोंसे मालूम होगा कि यदि विचाराधीन विधेयक कानून बन गया तो अगर कोई गिरमिटिया भारतीय अपनी गिरमिटिया सेवाके पहले पांच वर्षोंके बाद उपनिवेशमें बसना चाहेगा तो उसे सदा गिरमिटिया बन-कर रहना होगा, या तीन पौंड वार्षिक कर देना होगा। प्रार्थियोंने 'कर' शब्दका उपयोग जानबूझकर किया है, क्योंकि मूल विधेयकमें कमेटीके पाससे गुजरनेके पहले इसी शब्दका उपयोग किया गया था। प्रार्थियोंका निवेदन है सिर्फ नाम बदल देनेसे — करके बदले परवाना कहनेसे — विधेयक कम आघातकारी नहीं हो जाता; बल्कि उससे विधेयक बनानेवालोंके इस ज्ञानका परिचय मिलता है कि उपनिवेशमें रहनेवाले एक खास वर्गके लोगोंपर एक खास व्यक्ति-कर लगाना ब्रिटिश न्याय-भावनाके बिलकुल विपरीत है।

(५) अब, प्रार्थी नम्रतापूर्वक किन्तु दृढ़ताके साथ निवेदन करते हैं कि गिर-मिटकी अवधिको पांच वर्षसे बढ़ाकर लगभग अनिश्चित कालतक की कर देना अत्यन्त अन्यायपूर्ण है। वह इसलिए खास तौरसे अन्यायपूर्ण है कि जहाँतक गिरमिटिया भारतीयों द्वारा संरक्षित या प्रभावित उद्योगोंका सम्बन्ध है, इस प्रकारका कानून नितान्त अनावश्यक है।

(६) इन उपधाराओंका आविर्भाव १८९४ में नेटाल-सरकार द्वारा भारत भेजे गये आयोग और श्री बिन्स तथा श्री मेसनकी रिपोर्टके कारण हुआ है। वह आयोग इन दो प्रतिनिधियोंका बना था। रिपोर्टमें इस प्रकारका कानून बनानेके लिए जो कारण बताये गये हैं वे "प्रवासी-संरक्षककी वार्षिक रिपोर्ट

१८९४"के पृष्ठ २० और २१ पर दिये हैं। प्रार्थी आयुक्तोंकी रिपोर्टका निम्नलिखित अंश उद्धृत करनेकी इजाजत लेते हैं :

> एक ऐसे देशमें, जहाँ देशी लोगोंकी आबादी यूरोपीयोंकी आबादीसे संख्यामें इतनी अधिक है, भारतीयोंका अमर्यादित संख्यामें बसना वांछनीय नहीं माना जाता। और सामान्य लोगोंकी इच्छा यह है कि जब वे अपने गिरमिटकी अन्तिम अवधि समाप्त कर लें तब भारतको लौट जायें। २५,००० के लगभग स्वतन्त्र भारतीय तो उपनिवेशमें बसे हुए हैं ही। इनमें से अनेकने अपने मुफ्त वापसी टिकट रद हो जाने दिये हैं। यह संख्या व्यापार करने-वाले बनियोंकी भारी आबादीके अलावा है!

(७) इस प्रकार, इस विशेष व्यवस्थाके कारण सिर्फ राजनीतिक हैं। सही बात तो यह है कि बहुत ज्यादा भीड़भाड़ हो जानेका कोई प्रश्न ही नहीं है। एक नये बसे हुए देशमें, जहाँ विशाल भूमिक्षेत्र अभी जनहीन और बंजर पड़े हैं, ऐसा कोई प्रश्न हो ही नहीं सकता।

(८) उसी रिपोर्टमें आयुक्तोंने आगे कहा है :

> अरबोंके बारेमें व्यापारियों और दूकानदारोंमें बड़ी उग्र भावना फैली हुई है। ये अरब सबके सब व्यापारी हैं, मजदूर नहीं। परन्तु चूँकि इनमें से अधिकतर ब्रिटिश प्रजा हैं और किसी प्रकारके इकरारनामेके अधीन उपनिवेशमें नहीं आते, इसलिए मंजूर कर लिया गया है कि उनके मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।
>
> *　　　　*　　　　*
>
> कुली लोग किसी बड़ी मात्रामें यूरोपीयोंके प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं। समुद्र-तटपर यूरोपीयोंका खेती-बाड़ी करना असंभव है। परन्तु बाग सारेके सारे वहीं हैं। वहाँ कुलियों तथा देशी लोगोंको छोड़कर दूसरे नौकरोंकी संख्या हमेशा ही बहुत कम रही है।
>
> *　　　　*　　　　*
>
> यद्यपि हमारा निश्चित मत है कि अबतक जो भारतीय मजदूर *यहाँ बसे हैं*, (अक्षरोंका फर्क प्रार्थियोंने किया है), उनसे उपनिवेशको भारी लाभ पहुँचा है, फिर भी हम भविष्यका खयाल टाल नहीं सकते। दक्षिण आफ्रिकामें अबतक देशी लोगोंकी भारी समस्या हल करनेको बाकी है।

उसके होते हुए हम उस चिन्तासे भी मुक्त नहीं हो सकते, जो अब महसूस की जा रही है। अगर कुली-जनसंख्याके एक भारी भागने वापसी टिकटका फायदा उठा लिया होता तो भयका कारण कम रहता।

(९) उपर्युक्त उद्धरण, गिरमिट-मुक्त भारतीयोंको उपनिवेशमें बसनेसे रोकनेवाले कानूनके लिए बताये गये कारणोंके अंश हैं। परन्तु, प्रार्थियोंका अत्यन्त आदरके साथ निवेदन है कि इनसे बिलकुल उलटी ही बात सिद्ध होती है। क्योंकि, आपके अधिकतर प्रार्थी जिन भारतीय व्यापारियोंमें से हैं, वे "किसी प्रकारके इकरारनामेके अधीन उपनिवेशमें नहीं आते"। यदि उनके मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, तो गिरमिटिया भारतीयोंके मामलेमें तो और भी नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि वे भी समान रूपमें ब्रिटिश प्रजा हैं और यों कहना चाहिए कि उन्हें इस उपनिवेशमें निमन्त्रण देकर बुलाया गया है। इसके अलावा उनका वास (आयुक्तोंके अपने ही शब्दोंमें) "उपनिवेशके लिए बहुत लाभप्रद हुआ है।" इसलिए उपनिवेशियोंकी शुभेच्छा और उनके द्वारा हिफाजतके वे विशेष अधिकारी हैं।

(१०) और, अगर 'कुली' लोग "किसी बड़ी हदतक यूरोपीयोंके प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं" तो फिर, प्रार्थी नम्रतापूर्वक पूछना चाहते हैं कि ऐसे कानूनके बनानेमें औचित्य क्या है, जिससे गिरमिटिया भारतीयोंका शान्तिपूर्वक और ईमानदारीसे अपनी रोटी कमाना कठिन हो जाये? गिरमिटिया भारतीयोंमें कोई ऐसे खास दोष हैं, जो उन्हें समाजके खतरनाक सदस्य बना देते हैं और, इसलिए ऐसे कानून बनाना उचित है, सो बात तो निश्चय ही सही नहीं है। भारतीय राष्ट्रका शान्तिप्रिय स्वभाव और उसकी सौम्यता लोक-प्रसिद्ध है। अपने अधिकारियोंके प्रति आज्ञाकारिता भी उसके चरित्रकी कम प्रमुख विशेषता नहीं है। आयुक्त इसके विरुद्ध बात नहीं कह सकेंगे, क्योंकि प्रवासी-संरक्षकने, जो आयुक्तोंमें से ही एक था, अपनी रिपोर्टमें उसी पुस्तकके पृ० १५ पर कहा है :

> मैं जानता हूँ कि बहुत-से लोग भारतीयोंकी जातिगत रूपमें निन्दा करते हैं। फिर भी, यदि ये लोग अपने चारों ओर नजर दौड़ायें तो यह देखे बिना न रह सकेंगे कि उन्हींमें से सैकड़ों भारतीय ईमानदारी और शान्तिके साथ अपने अनेकानेक उपयोगी तथा वांछनीय धंधोंमें लगे हैं।

* * *

मुझे यह कह सकनेमें खुशी है कि उपनिवेशवासी भारतीय आम तौर-पर समाजके समृद्धिशाली और उद्यमी अंग हैं। वे *कानूनका पालन करनेवाले* भी हैं, और उनकी ये सब वृत्तियाँ जारी हैं।

(११) बताया गया है कि माननीय महान्यायवादीने विधेयकका दूसरा वाचन पेश करते हुए कहा था कि :

हमारा ऐसा कोई इरादा नहीं है कि मजदूरोंके आनेमें बाधा डालकर किसी उद्योगको हानि पहुँचाई जाये। परन्तु ये भारतीय स्थानिक उद्योगोंके विकासके लिए मजदूर बनाकर लाये गये हैं; इस मंशासे नहीं कि विभिन्न राज्योंमें जिस दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका निर्माण हो रहा है उसके ये अंग बन जायें।

(१२) विद्वान महान्यायवादीके प्रति अधिकसे अधिक सम्मानके साथ प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि उपर्युक्त आक्षेपसे विचाराधीन उपधाराएँ एकदम निन्दनीय प्रमाणित हो जाती हैं। हमें विश्वास है कि सम्राज्ञीकी सरकार विधेयकको अनुमति देकर ऐसे आक्षेपोंका समर्थन नहीं करेगी।

(१३) प्रार्थी मानते हैं कि जिन कानूनोंका रुख मनुष्योंको सदा गुलामीमें जकड़े रहनेका हो उन्हें बरदाश्त करना ब्रिटिश संविधानकी भावनाके प्रतिकूल है। कहनेकी जरूरत नहीं कि अगर यह विधेयक मंजूर हो गया तो यह वही करनेवाला है।

(१४) सरकारी मुखपत्र *नेटाल मर्क्युरी*ने ११ मई, १८९५ के अंकमें उक्त विधेयकको इस प्रकार न्यायसंगत ठहराया है :

तथापि, इतना तो सरकार मंजूर नहीं कर सकती कि जिन लोगोंने उचित मजदूरीपर उपनिवेशियोंको मदद करनेका इकरार किया है, उन्हें अपना इकरार तोड़ने और उपनिवेशियोंके प्रतिस्पर्धी बनकर रहने दिया जाये — उन उपनिवेशियोंके प्रतिस्पर्धी बनकर, जिनकी केवल सेवा करनेके लिए वे यहाँ आये हैं, किसी दूसरे हेतुके लिए नहीं, किसी दूसरी शर्तके लिए नहीं। अन्यथा करनेका अर्थ सही और गलतके बीचका सारा भेद मिटा देना और कानून तथा औचित्यके अस्तित्वकी उपेक्षा करना होगा। इसमें किसी प्रकारकी सख्ती नहीं, न उसकी कोई इच्छा ही है; न कुछ और ही ऐसा है, जो निष्पक्ष विचार करनेपर आपत्तिजनक ठहर सके।

(१५) उपर्युक्त उद्धरण प्रार्थियोंने यह बतानेके लिए दिया है कि भारतीयोंके विरुद्ध उत्तरदायी क्षेत्रोंमें भी कैसी भावना फैली हुई है। और, इस भावनाका कारण सिर्फ यही है कि कुछ — बहुत थोड़े — लोग न केवल गिरमिटके मातहत और उसकी अवधिमें, बल्कि अवधि समाप्त हो जानेके बाद भी लम्बे समय तक मजदूरोंकी हैसियतसे सेवा करनेके पश्चात्, उपनिवेशमें व्यापार करनेका साहस करते हैं।

(१६) प्रार्थियोंको दृढ़ विश्वास है, सम्राज्ञीकी सरकार इस बयानको मंजूर नहीं करेगी कि उपनिवेशके कल्याणके लिए अनिवार्य माने गये लोगोंसे उपनिवेशमें निरन्तर गुलामीमें रहने या ३ पौंड वार्षिक कर देकर, *नेटाल एडवर्टाइज़र* (९–५–९५) के शब्दोंमें, 'स्वतन्त्रता खरीदने' की माँग करना "न तो सख्ती है न अन्याय है।"

(१७) उपधाराओंमें अन्याय इतना स्पष्ट और प्रबल दिखाई पड़ता है कि *नेटाल एडवर्टाइज़र*ने भी उसे महसूस किया है। यह पत्र भारतीयोंका पक्षपाती बिलकुल ही नहीं है। उसने १६ मई, १८९५ को निम्नलिखित शब्दोंमें अपना विचार व्यक्त किया है :

> विधेयक (बिल) की दण्ड-सम्बन्धी उपधारा मूलतः इस आशयकी थी कि जो भारतीय भारत न लौटे, उसे "सरकारको एक वार्षिक कर देना चाहिए।" मंगलवारको महान्यायवादीने प्रस्ताव किया कि इसे इन शब्दोंमें बदल दिया जाये : "उपनिवेशमें रहनेके लिए एक परवाना निकालना चाहिए", जिसके लिए तीन पौंडकी रकम देनी होगी। निश्चय ही यह एक बेहतर परिवर्तन है। इससे वही उद्देश्य कम अप्रिय तरीकेसे पूरा हो जाता है। फिर भी, कुली प्रवासियोंपर एक विशेष कर लगानेके इस प्रस्तावसे एक मोटा प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। यदि साम्राज्यके ही एक अन्य भागसे आनेवाले कुलियोंपर यह निर्योग्यता लादी जाती है, तो निश्चय ही इसका क्षेत्र अन्य गैर-यूरोपीय जातियों तक भी बढ़ाया जाना चाहिए। उदाहरणके लिए, वह चीनियों, अरबों, राज्यके बाहरसे आनेवाले काफिरों और इस तरहके सभी यात्रियोंपर लागू होना चाहिए। कुलियोंको खास तौरसे चुनकर उनपर ही इस प्रकारकी रुकावटें लगाना और दूसरे सब *विदेशियों*को बिना किसी विघ्न-बाधा और निर्योग्यताके
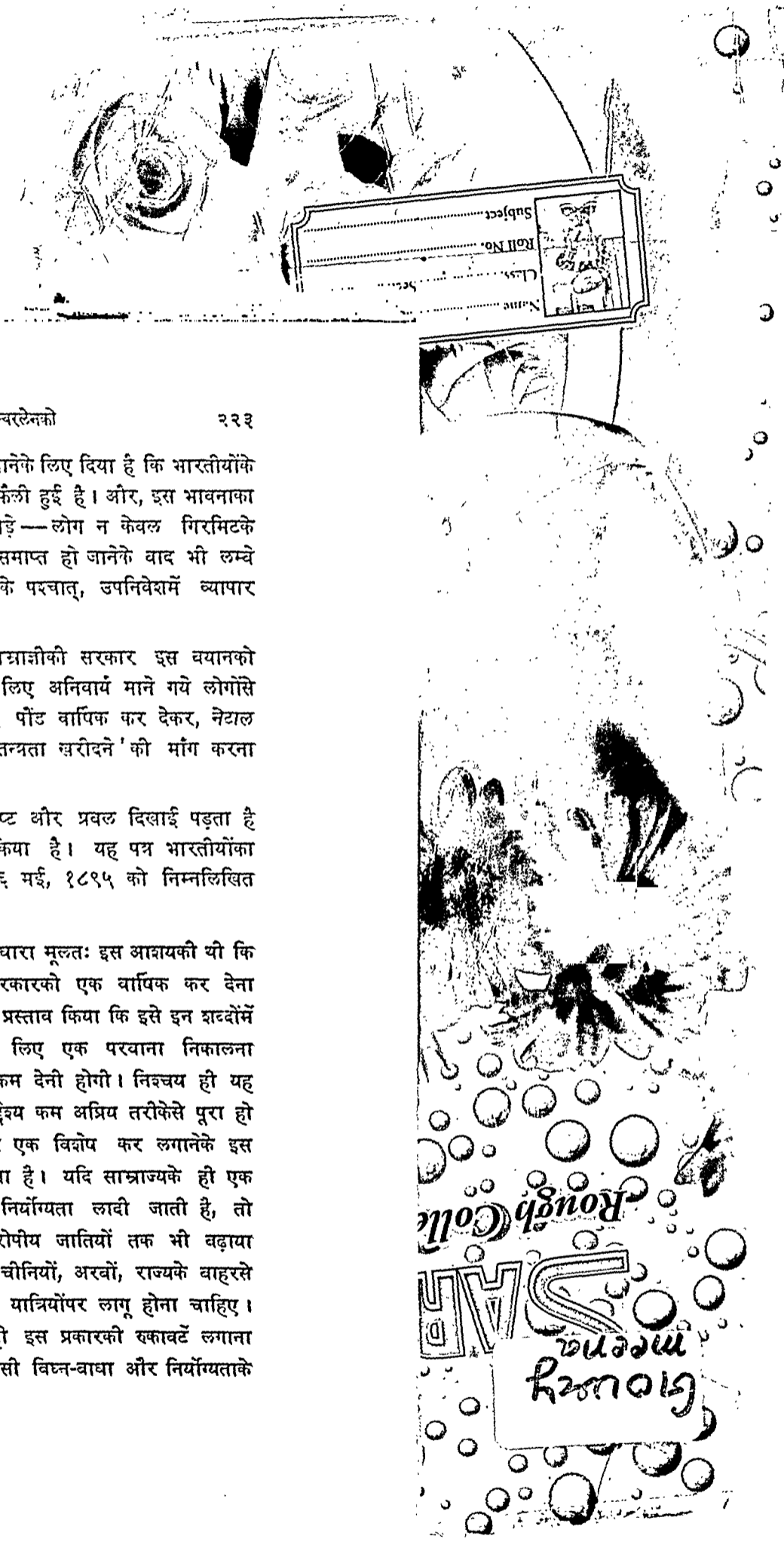
बसने देना न्याय नहीं है। अगर विदेशियोंपर कर लगानेकी प्रथा शुरू करनी ही है, तो उसका आरम्भ उन जातियोंसे होना चाहिए जो अपने देशमें ब्रिटिश झंडेके अधीन नहीं हैं। उन जातियोंसे नहीं जो, हम पसन्द करें या न करें, उसी सम्राज्ञीकी प्रजा हैं, जिसकी हम हैं। हमें असाधारण रुकावटें लादना है तो उसके लिए ये लोग पहले नहीं, अन्तिम होने चाहिए।

(१८) प्रार्थी निवेदन करते हैं कि यह व्यवस्था किसी भी न्यायशील व्यक्तिको जरा भी पसन्द नहीं आई। भारत सरकारको, वह कितनी ही अनिच्छुक क्यों न रही हो, गिरमिटकी अवधि असीमित रूपमें बढ़ा देनेके लिए नेटालके प्रतिनिधियोंने किस तरह राजी किया, यह जाननेका दावा प्रार्थी नहीं करते। परन्तु हम यह आशा अवश्य करते हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंके मामलेपर, जिस रूपमें उसे यहाँ पेश किया गया है, भारत तथा ब्रिटेन दोनोंकी सरकारें पूरा ध्यान देंगी। और, एकतरफा आयोगकी दलीलोंपर दी गई किसी भी मंजूरीके कारण गिरमिटिया भारतीयोंके मामलेको बिगड़ने न दिया जायेगा।

(१९) तात्कालिक सन्दर्भके लिए, प्रार्थी नेटालके गवर्नरके नाम वाइसराय महोदयके १७ सितम्बर, १८९४ के खरीतेके निम्नलिखित अंश यहाँ उद्धृत करते हैं :

> मैंने खुद वर्तमान व्यवस्थाका जारी रहना पसन्द किया होता, जिसके अधीन गिरमिटियोंके लिए अवधि पूरी हो जानेके बाद स्वतन्त्र रूपसे उपनिवेशमें बस जानेका मार्ग खुला रहता है। जिन विचारोंके अनुसार ब्रिटिश झंडेके अधीन किसी भी उपनिवेशमें सम्राज्ञीके किसी भी प्रजाजनके बसनेमें रुकावट आती है, उनके साथ मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। परन्तु नेटालमें भारतीय प्रवासियोंके प्रति इस समय जो भावनाएँ प्रकट की जा रही हैं उनका खयाल करके मैं आयुक्तोंके पिछले अनुच्छेदमें उल्लिखित २० जनवरी, १८९४ के स्मरणपत्रके सुझाव (कसे न्‍तक) निम्नलिखित शर्तोंपर स्वीकार करनेको तैयार हूँ :
>
> (क) किसी भी कुलीको शुरूमें ही इस इकरार पर भरती किया जायगा कि अगर उसने गिरमिटकी अवधिके बाद उन्हीं शर्तोंपर फिरसे

इकरार करना पसन्द न किया तो उसे अवधिके अन्दर या उसके समाप्त होनेपर तत्काल भारत लौटना होगा।

(ख) जो कुली लौटनेसे इनकार करें उन्हें किसी भी हालतमें फौजदारी कानूनके अनुसार दण्ड नहीं दिया जायेगा, और

(ग) प्रत्येक नया इकरारनामा दो वर्षके लिए होगा। पहली अवधिके और वादकी प्रत्येक अवधिके अन्तमें मुफ्त वापसी टिकटकी व्यवस्था की जायेगी।

वर्तमान व्यवस्थामें में सम्राज्ञी-सरकारकी अनुमति प्राप्त होनेपर जो परिवर्तन मंजूर करनेको राजी हूँ, वे संक्षेपमें इस प्रकार हैं :[1]

(२०) प्रार्थी राहत महसूस करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकारने अवतक आयुक्तोंके सुझावोंको मंजूर नहीं किया है।

(२१) अनिवार्य वापसी या फिरसे इकरार करनेकी कल्पना जवसे शुरू हुई तभीसे वह कितनी अधिक अन्यायपूर्ण मालूम होती रही है, इसे और भी स्पष्ट करनेके लिए प्रार्थी नेटालमें १८८५ में बैठे प्रवासी-आयोग (इमिग्रेशन कमिशन) की रिपोर्ट और उसके सामने ली गई गवाहियोंके उद्धरण देने की इजाजत चाहते हैं।

(२२) आयुक्तोंमें से एक श्री जे० आर० सांडर्सने अतिरिक्त रिपोर्टमें जोरोंके साथ अपने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं :

> यद्यपि आयोगने ऐसा कानून वनानेकी कोई सिफारिश नहीं की कि अगर भारतीय अपने गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद नया इकरार करनेको तैयार न हों तो उन्हें भारत लौटनेके लिए बाध्य किया जाये, फिर भी मैं ऐसे किसी भी विचारकी जोरोंसे निन्दा करता हूँ। मेरा पक्का विश्वास है कि आज जो अनेक लोग इस योजनाकी हिमायत कर रहे हैं वे जब समझेंगे कि इसका अर्थ क्या होता है तब वे भी मेरे समान ही जोरोंसे इसे ठुकरा देंगे। भले ही भारतीयोंका आना रोक दीजिए और उसका फल भोगिए, परन्तु एसा कुछ करनेकी कोशिश मत कीजिए जो, मैं सावित कर सकता हूँ, भारी अन्याय है।

१. प्राप्त अंग्रेजी प्रतिमें यह संक्षेप नहीं दिया गया।

यह इसके सिवा क्या है कि हम अपने अच्छे और बुरे दोनों तरहके नौकरोंका ज्यादासे ज्यादा लाभ उठा लें और जब उनकी अच्छीसे अच्छी उम्र हमें फायदा पहुँचानेमें कट जाये तब (अगर हम कर सकें तो, मगर कर नहीं सकते) उन्हें अपने देश लौट जानेके लिए बाध्य करें और इस प्रकार उन्हें अपने पुरस्कारका सुख भोगने देनेसे इनकार कर दें? और आप उन्हें भेजेंगे कहाँ? उन्हें उसी भुखमरीकी परिस्थितिको झेलनेके लिए फिर क्यों वापस भेजा जाये, जिससे अपनी जवानीके दिनोंमें भागकर वे यहाँ आये थे? अगर हम शाइलाक[1]के समान एक पौंड मांस ही चाहते हैं तो, विश्वास रखिए, शाइलाकका ही प्रतिफल भी हमें भोगना होगा।

आप चाहें तो भारतीयोंका आगमन रोक दें। अगर अभी खाली मकान काफी न हों तो अरबों या भारतीयोंको, जो आधेसे कम आबाद देशकी उपज व खपतकी शक्ति बढ़ाते हैं, निकालकर और खाली करा लें। परन्तु इस एक विषयको उदाहरणके तौरपर उठाकर जाँचिए, और इसके परिणामोंका पता लगाइए। पता लगाइए कि, किस तरह मकानोंके खाली पड़े रहनेसे जायदाद और सेक्युरिटीजकी कीमत घटती है और कैसे, इसके बाद, इमारतोंके व्यापारमें और उसपर निर्भर करनेवाले दूसरे व्यापारों तथा दूकानोंमें गतिरोध आना अनिवार्य हो जाता है। देखिए कि, इससे गोरे मिस्त्रियोंकी माँग कैसे कम होती है, और इतने लोगोंकी खर्च करनेकी शक्ति कम हो जानेसे कैसे राजस्वमें कमीकी अपेक्षा करनी होगी। फिर, छँटनीकी या कर बढ़ानेकी या दोनोंकी जरूरत! इस परिणामका और दूसरे परिणामोंका, जो इतने अधिक हैं कि उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, मुकाबला कीजिए, और फिर अगर अंधी जाति-भावना या ईर्ष्या ही प्रबल होती है, तो वही हो! उपनिवेश भारतीयोंके आगमनको जरूर रोक सकता है, और 'लोक-प्रियताके

१. शेक्सपियरके नाटक "मर्चेंट आफ़ वेनिस" का खलनायक। वह, शर्तके अनुसार, कर्जके बदले अपने कर्जदार मित्रके शरीरसे एक पौंड मांस काट लेनेपर अड़ गया था। आखिर अदालतमें उससे कहा गया कि वह एक पौंड मांस काट ले, न कम हो न ज्यादा, और न एक बूँद भी खून ही निकले। इस तरह उसे धन और मांस दोनोंसे हाथ धोना पड़ा।

दीवाने' जितना चाहेंगे उससे कहीं अधिक सरलताके साथ और स्थायी रूपमें रोक सकता है। परन्तु सेवाके अन्तमें उन्हें जबरन निकाल देना उसके वशकी बात नहीं है। और मैं उससे अनुरोध करता हूँ कि इसकी कोशिश करके वह एक अच्छे नामको कलंकित न करे।

(२३) भूतपूर्व विधानपरिषदके भूतपूर्व सदस्य और वर्तमान महान्याय-वादी (माननीय श्री एस्कम्ब)ने आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा था (पृ० १७७) :

जहाँतक अवधि पूरी कर लेनेवाले भारतीयोंका सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि किसी व्यक्तिको, जबतक वह अपराधी न हो और उस अपराधके लिए उसे देशनिकाला न दिया गया हो, दुनियाके किसी भी भागमें जानेके लिए बाध्य किया जाना चाहिए। मैंने इस प्रश्नके बारेमें बहुत-कुछ सुना है। मुझसे बार-बार अपना दृष्टिकोण बदलनेको कहा गया है, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। एक आदमी यहाँ लाया जाता है। *सिद्धान्ततः रजामंदीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके* (अक्षरोंमें अन्तर प्रार्थियोंने किया है) लाया जाता है। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ पाँच वर्ष दे देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है। शायद पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। यहाँ अपना घर बसा लेता है। ऐसी हालतमें मेरे न्याय और अन्यायके विचारसे, उसे वापस नहीं भेजा जा सकता। भारतीयोंसे जो कुछ काम आप ले सकते हैं वह लेकर उन्हें चले जानेका आदेश दें, इससे तो यह कहीं अच्छा होगा कि आप उनको यहाँ लाना ही बिलकुल बन्द कर दें। ऐसा दीखता है कि उपनिवेश या उपनिवेशका एक भाग भारतीयोंको बुलाना तो चाहता है, परन्तु उनके आगमनके परिणामोंसे बचना चाहता है। जहाँतक मैं जानता हूँ, भारतीय हानि पहुँचानेवाले लोग नहीं हैं। कुछ बातोंमें तो वे बहुत परोपकारी हैं। फिर, ऐसा कोई कारण तो मेरे सुननेमें कभी नहीं आया, जिससे किसी व्यक्तिको पाँच वर्ष तक चाल-चलन अच्छा रखनेपर भी देशनिकाला दे दिया जाये, और इस कार्यको उचित ठहराया जा सके। मैं नहीं समझता कि किसी भारतीयको, उसकी पाँच वर्षकी सेवा समाप्त

होनेपर पुलिसकी निगरानीमें रखना चाहिए। हाँ, अगर वह अपराधी वृत्तिका हो तो बात दूसरी है। में नहीं जानता कि अरबोंको क्यों पुलिसकी निगरानीमें यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक रखा जाना चाहिए। कुछ अरबोंके सम्बन्धमें तो यह बात बिलकुल हास्यास्पद है। वे बहुत साधन-सम्पन्न हैं। उनके सम्बन्ध भी बहुत फैले हुए हैं। अगर उनके साथ कारोबार करना ज्यादा फायदेमन्द हो, तो व्यापारमें उनका उपयोग हमेशा किया जाता है।

(२४) प्रार्थी आपका ध्यान उपर्युक्त उद्धरणकी ओर आकर्षित करते हुए खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि जिन महाशयने दस वर्ष पूर्व उपर्युक्त विचार व्यक्त किये थे, वही अब इस विधेयकको पेश करनेवाले सदस्य हैं।

(२५) श्री एच० बिन्सने, जो श्री मेसनके साथ प्रतिनिधिके रूपमें भारत-सरकारको भारतीय मजदूरोंकी अनिवार्य वापसी या फिरसे प्रतिज्ञाबद्ध करनेकी योजनापर राजी करने गये थे, आयोगके सामने अपनी गवाहीमें यह कहा था :

मैं समझता हूँ कि गिरमिटकी अवधि समाप्त होनेपर तमाम भारतीय मजदूरोंको भारत लौटनेके लिए बाध्य करनेका जो विचार पेश किया गया है, वह भारतीयोंके लिए नितान्त अन्यायपूर्ण है। भारत-सरकार उसे कभी मंजूर नहीं करेगी। मेरे खयालसे स्वतन्त्र भारतीय आबादी समाजका सबसे उपयोगी अंग है। ये भारतीय एक बहुत बड़े अनुपातमें — साधारणतः जो माना जाता है उससे कहीं बड़े अनुपातमें — उपनिवेशकी नौकरियोंमें लगे हुए हैं। खास तौरसे वे शहरों और गांवोंमें घरेलू नौकरोंका काम कर रहे हैं। . . . . . स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी होनेके पहले पीटरमैरित्सबर्ग और डर्बन नगरोंमें फल, शाक-सब्जी और मछली बिलकुल नहीं मिलती थी। यूरोपसे कभी कोई ऐसे प्रवासी यहाँ नहीं आये, जिन्होंने बड़े पैमानेपर बागवानी या मछलीके धंधेमें रुचि दिखाई हो। और, मेरा खयाल है कि अगर स्वतन्त्र भारतीय न हों तो पीटरमैरित्सबर्ग और डर्बनके बाजार उतने ही अभावग्रस्त रहेंगे, जितने कि दस वर्ष पूर्व थे। (पृ० १५५-१५६)

(२६) वर्तमान मुख्य न्यायाधीश और तत्कालीन महान्यायवादीने यह मत व्यक्त किया था :

> भारतीय जिन कानूनोंके अनुसार उपनिवेशमें लाये जाते हैं उनकी शर्तोंमें कोई भी परिवर्तन करनेपर मुझे आपत्ति है। मेरे खयालसे, जो भारतीय भारी संख्यामें तटवर्ती प्रदेशमें जाकर बसे, उन्होंने बहुत बड़ी मात्रामें वह कमी पूरी की है, जो यूरोपीयोंसे पूरी नहीं हो सकी थी। जो जमीन उनके न होनेपर बंजर पड़ी रहती उसे उन्होंने जोता है और ऐसी फसलें पैदा की हैं, जो उपनिवेशवासियोंके सच्चे लाभकी हैं। जो बहुत-से लोग मुफ्त वापसी टिकटका फायदा उठाकर भारत वापस नहीं गये वे विश्वस्त और अच्छे घरेलू नौकर साबित हुए हैं। (पृ० ३२७)

(२७) उस वृहद् रिपोर्टसे और भी अनेक उद्धरण देकर बताया जा सकता है कि इस व्यवस्थाके बारेमें उपनिवेशके सबसे बड़े लोगोंके विचार क्या थे।

(२८) प्रार्थी श्री विन्स और मेसनकी रिपोर्टके निम्नलिखित अंशपर भी आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं :

> यद्यपि अनुमति बार-बार माँगी गई है, फिर भी जहाँ-कहीं भी कुली गये हैं, भारत सरकारने अबतक इकरारनामा दुहरानेकी अनुमति किसी देशको नहीं दी है। गिरमिटकी अवधि समाप्त होनेपर अनिवार्य वापसी की शर्त भी किसी मामलेमें मंजूर नहीं की गई।

(२९) कानूनका समर्थन करते हुए उपनिवेशमें कहा गया है कि जहाँ दोनों पक्ष स्वेच्छासे किसी बातको मंजूर करते हैं वहाँ अन्याय हो ही नहीं सकता। और भारतीयोंको नेटाल आनेके पहले मालूम ही रहेगा कि उन्हें किन शर्तोंपर यहाँ आना है। विधानपरिषद और विधानसभाको भेजे गये प्रार्थनापत्रमें इस विषयकी विवेचना की गई है। प्रार्थी फिरसे कह देनेकी इजाजत लेते हैं कि जब इकरार करनेवाले पक्षोंकी स्थिति बराबर नहीं है, तब यह तर्क बिलकुल लागू नहीं होता। जो भारतीय, श्री सांडर्सके शब्दोंमें, "भुखमरीसे भाग निकलनेके लिए" इकरारमें बँधता है, उसे स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता।

(३०) अभी, १८९४ में ही, संरक्षककी रिपोर्टमें भारतीयोंके उपनिवेशके लिए अनिवार्य होनेकी बात कही गई है। इस विषयके प्रमाणोंकी चर्चा करते हुए संरक्षकने पृष्ठ १५ पर कहा है :

> **अगर थोड़े-से समयके लिए भी इस उपनिवेशसे सारेके सारे भारतीयोंको हटा लेना सम्भव हो तो, मेरा पक्का विश्वास है, केवल कुछ अपवादोंको छोड़कर, तमाम वर्तमान उद्योग बैठ जायेंगे। और इसका एकमात्र कारण विश्वस्त मजदूरोंका अभाव होगा। इस वस्तुस्थितिकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि देशी लोग आम तौरपर काम करनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए सारे उपनिवेशमें मंजूर किया जाता है कि भारतीय मजदूरोंके बिना महत्त्वके किसी भी उद्योगको — चाहे वह कृषि हो या कोई अन्य — सफलतापूर्वक चलाना असम्भव है। इतना ही नहीं, नेटालका प्रायः प्रत्येक घर बिना नौकरोंका हो जायेगा।**

(३१) अगर जिसे तज्ज्ञ-मत कहा जा सकता है, उसकी सारीकी सारी धारा शुरूसे आखिरतक भारतीयोंकी उपयोगिता ही सिद्ध करनेवाली है तो, प्रार्थियोंका निवेदन है, यह कहना ज्यादती न होगी कि ऐसे लोगोंको निरन्तर गुलामीमें रखना या उन्हें तीन पौंड वार्षिक कर देनेके लिए — चाहे वे दे सकते हों या नहीं — बाध्य करना, कमसे कम कहा जाये तो, बिलकुल एकपक्षीय और स्वार्थमय कार्रवाई है।

(३२) प्रार्थी आदरपूर्वक आपका ध्यान इस वस्तुस्थितिकी ओर आकर्षित करते हैं कि यदि विधेयक कानूनमें परिणत हो गया तो भारतीयोंके देशान्तर-वासका मूल उद्देश्य ही हर तरहसे निष्फल हो जायेगा। अगर देशान्तर-वासका उद्देश्य यह है कि उससे अन्ततः भारतीय अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें समर्थ हों, तो वह उद्देश्य उन्हें निरन्तर इकरारमें बाँधे रहनेसे निश्चय ही पूरा न होगा। अगर उद्देश्य भारतके घने भागोंकी भीड़ कम करना हो तो वह भी विफल ही होगा। क्योंकि, कानूनका ध्येय उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या बढ़ने न देना है। उसके पीछे मंशा यह है कि जो लोग गिरमिटकी जुआड़ीका भार वहन करने योग्य नहीं रहे उन्हें जबरन भारत वापस कर दिया जाये और उनके बदले नये आदमी ले आये जायें। इसलिए, प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि पहलेकी स्थितिसे बादकी स्थिति ज्यादा खराब होगी। क्योंकि, जहांतक नेटालमें निकासका सम्बन्ध है, घनी आबादीके हलकोंमें भारतीयोंकी

संख्या तो वही रहेगी, और जो लोग अपनी इच्छाके विरुद्ध नेटालसे वापस आयेंगे वे अतिरिक्त चिन्ता तथा कष्टके कारण बन जायेंगे। क्योंकि, उन्हें न तो काम पानेकी आशा होगी और न अपने जीवन-निर्वाहके लिए उनके पास कोई पूंजी ही होगी। फलतः उनका पालन शायद सरकारी खर्चसे करना पड़ेगा। इस आपत्तिके जवाबमें कहा जा सकता है कि इसके पीछे एक ऐसी मान्यता है, जो कभी सच न उतरेगी। अर्थात्, भारतीय खुशीसे वार्षिक कर चुका देंगे। इसपर प्रार्थी कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि अगर ऐसा तर्क किया जाये तो उससे वास्तवमें यही सिद्ध होगा कि इकरारको दुहरानेकी और कर-सम्बन्धी उपधाराएँ बिलकुल बेकार हैं, क्योंकि उनसे वांछित परिणाम नहीं होगा। और, यह तो कभी कहा ही नहीं गया कि उसका उद्देश्य आमदनी बढ़ाना है।

(३३) इसलिए प्रार्थी निवेदन करते हैं कि यदि ये उपनिवेश भारतीयोंको बरदाश्त नहीं कर सकते तो, हमारी रायसे, उसका एकमात्र उपाय यह है कि भविष्यमें नेटालको मजदूर भेजना बिलकुल बंद कर दिया जाये। कमसे कम हालमें तो यही हो सकता है। प्रार्थी ऐसी व्यवस्थाका नम्रतापूर्वक परन्तु जोरोंके साथ विरोध करते हैं, जिससे साराका सारा लाभ एक पक्षको और सो भी उस पक्षको मिलता है, जिसे उसकी सबसे कम जरूरत है। इस प्रकार गिरमिटिया भारतीयोंका आना रोक देनेसे भारतके घनी आबादीके हलकोंपर बहुत बुरा असर नहीं पड़ेगा।

(३४) अबतक प्राथियोंने गिरमिट और परवाना दोनोंकी धाराओंकी एक साथ विवेचना की है। जहाँतक परवानेका सम्बन्ध है, हम आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि ट्रान्सवालमें भी — जो एक पराया राज्य है — सरकारने अपनी इच्छा और अपने खर्चसे आनेवाले भारतीयों पर वार्षिक कर नहीं लगाया। वहाँ सिर्फ एक बार ३ पौंड १० शिलिंगका परवाना ही लेना जरूरी है। इसपर भी, हमें मालूम हुआ है, सम्राज्ञी-सरकारको प्रार्थनापत्र तो भेजा ही गया है। इसके अलावा, यहाँका परवाना अत्यन्त अनिष्टकारी ढंगका वार्षिक कर है। इसका अभागा शिकार इसे देनेका सामर्थ्य रखता हो या न रखता हो, उसे देना तो पड़ेगा ही। बहसके समय एक सदस्यने पूछा कि अगर कोई भारतीय इस करपर आपत्ति करे या इसे न चुकाये तो यह वसूल कैसे किया जायेगा? इसपर माननीय महान्यायवादीने उत्तर दिया कि न देनेवाले भारतीयके घरमें सरसरी कार्रवाईसे कुर्क कर लेनेके लिए हमेशा ही काफी माल मिल जायेगा।

अन्तमें, प्रार्थियोंका निवेदन है कि परवाना-सम्बन्धी धाराको पेश करनेसे वाइसरायके उपर्युक्त खरीतेमें निर्धारित मर्यादाका अतिक्रमण होता है।

अतएव, हम व्यग्रतापूर्वक प्रार्थना और दृढ़ आशा करते हैं कि जिन धाराओंकी यहाँ विवेचना की गई है उन्हें सम्राज्ञी-सरकार स्पष्टतः अन्याययुक्त मानेगी और, इसलिए, उपर्युक्त भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकको अनुमति नहीं देगी। अथवा, वह ऐसी अन्य राहतें प्रदान करेगी, जिनसे न्यायका उद्देश्य पूरा हो।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि-आदि।

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

५६. प्रार्थनापत्र: लार्ड एलगिनको

[डर्बन
अगस्त ११, १८९५]

सेवामें

महामहिम, परम माननीय लार्ड एलगिन
वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल (सपरिषद), भारत
कलकत्ता

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटाल-निवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्रतापूर्वक निवेदन है कि,

प्रार्थी सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजन हैं और महानुभावका ध्यान अपने उस विनम्र प्रार्थनापत्र[1]की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जो उन्होंने भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयक (इंडियन इमिग्रेशन ला अमेंडमेंट बिल) के बारेमें सम्राज्ञी-सरकारको भेजा है। यह विधेयक हालमें ही नेटालकी विधानसभा और विधानपरिषदने मंजूर किया है। इसका आंशिक आधार नेटालके गवर्नर महोदयके नाम महानुभावका तत्सम्बन्धी खरीता है, जिसकी एक नकल इसके साथ नत्थी की जा रही है।

१. देखिए, पृष्ठ २१७।

उपर्युक्त प्रार्थनापत्रकी ओर महानुभावका ध्यान आकर्षित करनेके अलावा, प्रार्थी विधेयकके सम्बन्धमें आदरके साथ निम्नलिखित निवेदन करना चाहते हैं।

प्रार्थियोंको यह देखकर खेद हुआ है कि महानुभाव मजदूरोंके अनिवार्य रूपसे, पुनः प्रतिज्ञाबद्ध किये जाने अथवा अनिवार्य रूपसे भारत लौटा दिये जानेके सिद्धान्तको स्वीकार करनेके लिए रजामन्द हैं।

प्रार्थियोंको इस बातका भी खेद है कि जब नेटालके प्रतिनिधि[1] भारतके लिए रवाना हुए थे उस समय प्रार्थियोंने महानुभावको अपनी अर्जी नहीं भेजी। ऐसी कार्रवाईकी राहमें किन कारणोंसे रुकावट पड़ी, इसकी चर्चा करना व्यर्थ होगा। फिर भी, यदि विधेयकने कानूनका रूप ले लिया तो उससे होने-वाला अन्याय बहुत बड़ा होगा। इसलिए प्रार्थियोंको आशा है कि उसे टालनेमें प्रार्थियोंके अर्जी न देनेको बाधक न माना जायेगा।

प्रार्थी अधिकतम आदरके साथ बतानेकी इजाजत लेते हैं कि यदि अनिवार्य वापसीकी शर्तका पालन करनेपर फौजदारी कानूनका प्रयोग न किया जा सका तो इकरारनामेमें इस तरहकी उपधाराका समावेश करना सरासर हानिकारक नहीं तो बिलकुल व्यर्थ जरूर होगा। क्योंकि, उससे इकरारी पक्षको अपना इकरार तोड़नेका प्रोत्साहन मिल सकता है, और कानून ऐसी अवहेलनाकी उपेक्षा करेगा। ऐसी उग्र एहतियाती कार्रवाईमें पहलेसे ही यह मान्यता है कि इकरारनामा अन्यायपूर्ण है। इसलिए प्रार्थियोंका निवेदन है कि उसकी मंजूरी प्राप्त करनेके लिए जो कारण दिये गये हैं वे बिलकुल अपर्याप्त हैं। और क्या कोई कारण ऐसे भी हैं, जिनसे उसे न्यायसंगत ठहराया जा सके?

जैसा कि साथ नत्थी किये गये पत्रमें इशारा है, प्रार्थी महानुभावसे विनती करते हैं कि जिन उपधाराओंपर आपत्ति की गई है, उनमें से किसीके लिए अनुमति न दी जाये। बल्कि, इसके साथ नत्थी पत्र[2]में श्री जे० आर० सांडर्स और माननीय श्री एस्कम्बका जो जोरदार मत उद्धृत किया गया है उसके अनुसार नेटालको प्रवासी भेजना बंद कर दिया जाये।

सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी भी अंगको, भले ही वह गरीबसे गरीब क्यों न हो, व्यावहारिक रूपमें गुलाम बना लिया जाये, या उसपर कोई विशेष,

१. देखिए, पृष्ठ २१९।
२. देखिए, पृष्ठ २२५–२८।
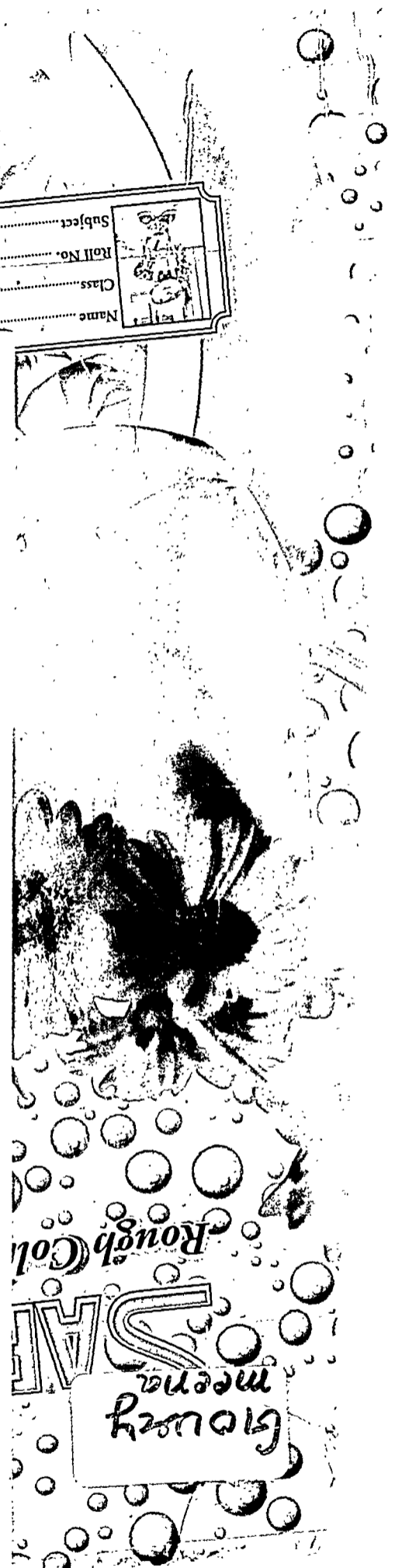
हानिकारक व्यक्ति-कर लादा जाये, ताकि उपनिवेशी जिन लोगोंसे पहले ही अधिकसे अधिक लाभ उठा रहे हैं उनसे, किसी प्रकारका बदला चुकाये बिना, और भी अधिक लाभ उठानेकी अपनी सनक या इच्छा पूरी कर सकें — इसका प्रार्थी आदरके साथ विरोध करते हैं। अनिवार्य रूपसे पुनः इकरार कराने या उसके बदलेमें व्यक्ति-कर वसूल करनेके विचारको प्रार्थियोंने सनक कहा है। उनका विश्वास है कि उन्होंने सही शब्दका प्रयोग किया है। क्योंकि, प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है, अगर उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या तिगुनी भी हो जाये तो भी खतरेका कोई कारण उपस्थित न होगा।

परन्तु प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि ऊपर-जैसे विषयका निर्णय करनेमें उपनिवेशकी इच्छा ही महानुभावकी मार्गदर्शिका नहीं हो सकती। उपधाराओंसे प्रभावित होनेवाले भारतीयोंके हितोंका भी खयाल करना जरूरी है। और हमें उचित आदरपूर्वक यह कहनेमें कोई पसोपेश नहीं है कि यदि कभी उन उपधाराओंको स्वीकार कर लिया गया तो सम्राज्ञीकी अत्यन्त निस्सहाय भारतीय प्रजाके प्रति एक गम्भीर अन्याय होगा।

हमारा निवेदन है कि पाँच वर्षका इकरारनामा काफी लम्बा होता है। उसे अमित समय तक बढ़ा देनेका अर्थ होगा कि जो भारतीय व्यक्ति-कर देने या भारत लौटनेमें असमर्थ हो, उसे हमेशा बिना स्वतन्त्रताके, बिना कभी अपनी स्थिति सुधरनेकी आशाके रहना होगा। यहाँतक कि, वह अपनी झोंपड़ी, अपनी तुच्छ आमदनी और अपने फटे-पुराने कपड़े बदलकर ज्यादा अच्छे मकान, तृप्तिकारक भोजन और आदरके योग्य कपड़ोंका विचार भी नहीं कर सकेगा। उसे अपने बच्चोंको अपनी रुचिके अनुसार शिक्षा देने या अपनी पत्नीको आनन्द अथवा मनोरंजनके द्वारा सांत्वना प्रदान करनेका भी विचार नहीं करना होगा। प्रार्थियोंका निवेदन है कि इस जीवनसे भारतमें स्वतन्त्रताके साथ और अपनी ही हालतके मित्रों तथा सम्बन्धियोंके बीच आधी भुखमरीका जीवन ही ज्यादा अच्छा और ज्यादा इष्ट होगा। ऐसी हालतमें रहते हुए भारतीय अपना जीवन सुधारनेकी आशा कर सकते हैं, और उन्हें उसका मौका भी मिल सकता है। परन्तु यहाँकी हालतोंमें वैसा कभी नहीं हो सकता। हमारा विश्वास है कि मजदूरोंके प्रवासको प्रोत्साहित करनेका उद्देश्य यह कभी नहीं था।

इसलिए, आखिरमें प्रार्थी उत्कटतासे निवेदन तथा दृढ़ आशा करते हैं कि यदि उपनिवेश उपर्युक्त आपत्तिजनक व्यवस्थाके स्वीकार हुए बिना भारतीय

मजदूरोंको नहीं चाहता, तो महानुभाव भविष्यमें नेटालको मजदूर भेजना बंद कर देंगे, या दूसरी ऐसी राहतें देंगे, जो न्यायापूर्ण मालूम हों।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिको फोटो-नकलसे।

५७. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी पहली कार्यवाही

अगस्त, १८९५

स्थापना

१८९४ के जुलाई महीनेमें नेटाल-सरकारने विधानसभामें एक विधेयक पेश किया था। उसे मताधिकार कानून संशोधन विधेयक कहा जाता है। ऐसा माना गया कि उक्त विधेयकसे उपनिवेशवासी भारतीयोंका अस्तित्व खतरेमें पड़ता है। इसलिए उसे मंजूर न होने देनेके लिए क्या कार्रवाई की जाये, इस विषयपर विचार करनेके लिए दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनीके मकानमें सभाएँ की गईं। दोनों सदनोंको प्रार्थनापत्र भेजे गये और प्रतिनिधियोंने डर्बनसे पीटरमैरित्सबर्ग जाकर दोनों सदनोंके सदस्योंसे मुलाकातें कीं। तथापि विधेयक दोनों सदनोंमें स्वीकार हो गया। इस सम्बन्धमें जो आन्दोलन हुआ, उसके परिणामस्वरूप सब भारतीयोंको एक स्थायी संस्था बनानेकी आवश्यकता महसूस हुई, जो भारतीयोंके सम्बन्धमें उपनिवेशकी पहली उत्तरदायी सरकारकी प्रतिगामी वैधानिक प्रवृत्तियोंका मुकाबला और भारतीयोंके हितोंका संरक्षण करे।

दादा अब्दुल्लाके मकानमें कुछ आरम्भिक बैठकें होनेके बाद २२ अगस्तको भारी उत्साहके बीच नेटाल भारतीय कांग्रेसकी रस्मी तौरपर स्थापना हुई। भारतीय समाजके सब प्रमुख सदस्य कांग्रेसमें शामिल हो गये। पहली शामको ७६ सदस्योंने अपने नाम लिखाये। धीरे-धीरे सूची २२८ तक बढ़ गई। श्री अब्दुल्ला हाजी आदम अध्यक्ष चुने गये। अन्य प्रमुख सदस्योंको उपाध्यक्ष

बनाया गया। श्री मो० क० गांधी अवैतनिक मन्त्री चुने गये। एक छोटी-सी कमेटी भी बनाई गई। परन्तु चूंकि कांग्रेसके शुरू-शुरूके दिनोंमें अन्य सदस्योंने भी कमेटीकी बैठकोंमें शामिल होनेकी इच्छा प्रकट की, इसलिए कमेटीको आप ही आप भंग हो जाने दिया गया और सब सदस्योंको बैठकोंमें आनेके लिए आमन्त्रित किया जाता रहा।

वित्तीय स्थिति

कमसे कम मासिक चन्दा ५ शिलिंग रखा गया था। अधिकसे अधिक रकम बाँधी नहीं गई थी। दो सदस्योंने दो-दो पौंड मासिक चन्दा दिया। एकने २५ शिलिंग, १० ने २०-२० शिलिंग, २५ ने १०-१० शिलिंग, ३ ने ७ शि० ६ पें० व ३ ने ५ शि० ३ पेंस प्रत्येक, २ ने ५ शि० १ पेंस प्रत्येक, और ८७ ने ५-५ शिलिंग मासिक चन्दा देना स्वीकार किया। नीचे दी हुई तालिकासे विभिन्न वर्गोंके चन्दादाताओंकी संख्या, उनके दिये हुए चन्दे और बकाया चन्देका विवरण मिल जायेगा[1]:

वर्ग पौं० शि० पें०	संख्या	वार्षिक पौं० शि० पें०	वसूली पौं० शि० पें०	बकाया पौं० शि० पें०
०-४०-०	२	४८–०–०	४८–०–०	कुछ नहीं
०-२५-०	१	१५–०–०	१५–०–०	कुछ नहीं
०-२०-०	१०	१२०–०–०	९३–०–०	२७–०–०
०-१०-०	२२	१३२–०–०	८८–५–०	४३-१५-०
०–७–६	३	१३-१०-०	८-१२-६	४-१७-६
०–५–३	२	६–६–०	३–८–३	२-१७-९
०–५–१	२	६–२–०	५–६–९	०-१५-३
०–५–०	१८७	५५९-१०-०	२७३–५–०	२८६-१५-०
	२२८	९००–८–०	५३५-१७-६	३६६–०–६

ऊपरके हिसाबसे मालूम होगा कि ९०० पौंड ६ शिलिंगकी सम्भव आयमें से कांग्रेस अबतक सिर्फ ५०० पौंड १७ शि० ६ पें० या ५९% रकम वसूल कर सकी है। ५ शिलिंग देनेवालोंमें बकाया सबसे ज्यादा है। इसके कारण कई

१. इस हिसाबके योगोंमें, शायद भूलसे, गलतियाँ रह गई हैं।

हैं। यह याद रखना चाहिए कि कुछ लोग बहुत देरसे सदस्य बने थे और स्वाभाविक है कि उन्होंने सारे वर्षका चन्दा नहीं दिया। कई लोग भारत चले गये हैं। कुछ लोग इतने गरीब हैं कि वे दे ही नहीं सकते। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि सबसे बड़ा कारण देनेकी अनिच्छा है। फिर भी अगर कुछ कार्यकर्ता आगे बढ़कर मिहनत करें तो ३०% बकाया रकम वसूल हो जाना सम्भव है। बेनेट-मामलेके लिए साधारण तथा विशेष दान और न्यूकैसल तथा चार्ल्सटाउनसे प्राप्त चन्देका ब्योरा[1] इस प्रकार है:

यह ब्योरा पूरा-पूरा दिया गया है, क्योंकि छपे हुए ब्योरेमें ये नाम नहीं हैं। इस तरह कुल आय निम्नलिखित है:

चन्दा	पौंड	५३५-१७-६
दान	पौंड	८०-१७-०
	पौंड	६१६-१४-६

उपर्युक्त हिसाब छपे हुए ब्योरेके आधारपर लगाया गया है।

बैंकमें जमा रकम ५९८ पौंड १९ शि० ११ पेंस है। ऊपर दी हुई रकम पूरी करनेके लिए इस रकममें नकद खर्च और खातेमें तवादलेकी रकमें जोड़नी होंगी।

नकद खर्च ७ पौंड ५ शि० १ पेंसका हुआ है। तवादलेकी रकम १० पौंड १० शि० है। इसमें श्री नायडूके १० पौंड, श्री अब्दुल कादिरके २ पौंड और श्री मूसा एच० आदमके १० शि० शामिल हैं, जो उन्हें भाड़ेके रूपमें पाने थे। तीनोंने ये रकमें वसूल न करके चन्देमें कटा दी हैं।

इस तरह:	पौंड	५९८-१०-११
		७-५-१
		१०-१०-०
	पौंड	६१६-१५-०

छपी हुई सूचीसे जमा रकमकी तुलना करनेपर ६ पेंसका फर्क दीख पड़ता है। ये ६ पेंस पाये तो गये हैं, परन्तु सूचीमें दिखाये नहीं गये। यह इसलिए

१. यह ब्योरा छोड़ दिया गया है।

हुआ कि एक सदस्यने एक बार २ शि० ६ पेंस दिये और दूसरी बार ३ शि० दिये थे। ३ शिलिंगको सूचीमें ठीक तरहसे दिखाया नहीं जा सका।

आजतक चेक द्वारा १५१ पौंड ११ शि० १$\frac{1}{2}$ पेंस खर्च हुए हैं। पूरा विवरण इसके साथ संलग्न है। इसके बाद बैंकमें पौंड ४४७–८–९$\frac{1}{2}$ शेष रहे हैं। देनदारी अभी चुकता नहीं हुई और प्रवासियों-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र तथा टिकटोंका खर्च नीचे बताया गया है।

चेक देनेके नियमोंका पूरी तरहसे पालन किया गया है। यद्यपि अवैतनिक मन्त्रीको केवल अपने हस्ताक्षरोंसे ५ पौंड तककी चेक देनेका अधिकार है, फिर भी इस अधिकारका उपयोग कभी नहीं किया गया। चेकोंपर अवैतनिक मन्त्री और श्री अब्दुल करीमने हस्ताक्षर किये हैं। श्री अब्दुल करीमकी गैरहाजिरीमें श्री दोरास्वामी पिल्ले तथा श्री पी० दावजी और उनकी भी गैरहाजिरीमें श्री हुसेन कासिमके हस्ताक्षर करा लिये गये हैं।

कांग्रेसकी प्रवृत्ति: उसका काम, उसके कार्यकर्ता और उसकी कठिनाइयाँ

आखिरी बातकी चर्चा पहले करें, तो कांग्रेसको काफी मुसीबतोंसे गुजरना पड़ा है। यह अनुभव जल्दी ही हो गया था कि चन्दा उगाहनेका काम बड़ा कठिन है। अनेक सुझाव पेश किये गये थे, लेकिन कोई भी पूरी तरह सफल सिद्ध नहीं हुआ। आखिरकार कुछ कार्यकर्ताओंने स्वेच्छासे काम किया और उनके परिश्रमके फलस्वरूप ४४८ पौंडकी भी जमा दिखाना सम्भव हो सका है। सर्वश्री पारसी रुस्तमजी, अब्दुल कादिर, अब्दुल करीम, दोरास्वामी, दावजी कयराडा, रंदेरी, हुसेन कासिम, पीरन मुहम्मद, जी० एच० मियाखाँ और अमोद जीवाने किसी-न-किसी समयपर चन्दा उगाहनेका प्रयत्न किया है। इनमें से सब या अधिकतर एकसे ज्यादा बार चन्देके लिए घूमे हैं। श्री अब्दुल कादिर अकेलेने ही अपने खर्चसे पीटरमैरित्सबर्ग जाकर लगभग ५० पौंडकी रकम वसूल की। अगर वे ऐसा न करते तो इसमें से अधिकांश रकम कांग्रेसको न मिलती। श्री अब्दुल करीम अपने खर्चसे वेरुलम गये और उन्होंने लगभग २५ पौंड वसूल किये।

चेक पर हस्ताक्षर करनेके बारेमें प्रमुख सदस्योंके बीच मतभेद भी था। मूल नियम यह था कि उनपर अवैतनिक मन्त्रीके हस्ताक्षर और इन सदस्योंमें से किसी एकके प्रति-हस्ताक्षर हों: श्री अब्दुल्ला एच० आदम, श्री

मूसा हाजी कासिम, श्री पी० दावजी मुहम्मद, श्री हुसेन कासिम, श्री अब्दुल कादिर और श्री दोरास्वामी पिल्ले। एक सुझाव यह था कि अधिक सदस्य हस्ताक्षर करें। एक समय तो इस मतभेदसे कांग्रेसकी हस्तीपर ही खतरा आ गया था। परन्तु सदस्योंकी सद्‌बुद्धि और उनकी ऐसे संकटको टालनेकी चिन्तासे घटाएँ छिन्न-भिन्न हो गईं। और उपर्युक्त परिवर्तन सर्वानुमतिसे स्वीकृत हो गया।

जैसे ही डर्बनमें कांग्रेसका काम कुछ ठीक तरहसे चलने लगा, सर्वश्री दाऊद मुहम्मद, मूसा हाजी आदम, मुहम्मद कासिम जीवा, पारसी रुस्तमजी, पीरन मुहम्मद और अवैतनिक मन्त्री सदस्य बनानेके लिए अपने खर्चसे पीटर-मैरित्सवर्ग गये। वहाँ एक सभा हुई और लगभग ४८ सदस्य बने। इसी तरहकी एक दूसरी सभा वेरुलममें हुई। वहाँ करीव ३७ सदस्य वने। सर्वश्री हुसेन कासिम, हाजी, दाऊद, मूसा हाजी कासिम, पारसी रुस्तमजी और अवैतनिक मन्त्री वहाँ गये थे। श्री अमद भायात, श्री हाजी मुहम्मद और श्री कमरुद्दीनने पीटरमैरित्सवर्गमें तथा श्री इब्राहीम मूसाजी अमद, श्री अमद मेतर और श्री पी० नायडूने वेरुलममें सक्रिय सहायता दी।

श्री अमीरुद्दीनने कांग्रेसके सदस्य न होते हुए भी उसके लिए वहुत जरूरी काम किया। श्री एन० डी० जोशीने गुजरातीमें कार्यवाहीकी पक्की नकल करनेकी कृपा की है।

कांग्रेसके इस पहले वर्षके प्रारम्भिक कालमें श्री सोमसुन्दरम्‌ने सभाओंमें दुभाषियेका काम करके और परिपत्रोंका वितरण करके सहायता पहुँचाई। न्यूकैसिल और चार्ल्सटाउनमें भी काम किया गया। वहाँ सदस्योंने दूसरे वर्षके लिए नाम लिखा दिये हैं।

श्री मुहम्मद सीदत, श्री सुलेमान इब्राहीम और श्री मुहम्मद मीरने न्यूकैसिलमें अथक कार्य किया है। वे और श्री दाऊद आमला अपने खर्चसे चार्ल्सटाउन भी गये। चार्ल्सटाउनके लोगोंने वड़ा शानदार परिणाम दिखाया। एक घंटेके अन्दर तमाम हाजिर लोग सदस्य वन गये। श्री दीनदार, श्री गुलाम रसूल और वांडाने वहुत सहायता की। ब्रिटिश सरकारको भेजे गये मताधिकार प्रार्थनापत्र, ट्रान्सवाल प्रार्थनापत्र और प्रवासी-प्रार्थनापत्रके सम्वन्धमें इंग्लैंड तथा भारतमें रहनेवाले प्रवासी भारतीयोंके मित्रोंको लगभग १,००० पत्र भेजे गये।

प्रवासी कानूनका मंशा उन लोगोंपर तीन पौंडका कर लगानेका है, जो गिरमिटको नया करानेसे इनकार करें। उसका जोरोंसे विरोध किया गया। संसदके दोनों सदनोंको प्रार्थनापत्र दिये गये।

ट्रान्सवाल-प्रार्थनापत्र सीधे कांग्रेसके तत्त्वावधानसे तो नहीं भेजा गया, फिर भी कांग्रेसके कामके सिंहावलोकनमें उसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता।

कांग्रेसकी भावना या उसके ध्येयके अनुसार दोनों सदनोंके सदस्योंके नाम एक खुली चिट्ठी लिखी गई थी, जिसका वितरण इस उपनिवेश तथा दक्षिण आफ्रिकामें किया गया। अखबारोंने व्यापक रूपसे उसकी चर्चा की और उससे भारी मात्रामें सहानुभूतिपूर्ण खानगी पत्र-व्यवहारको प्रेरणा मिली। नेटालके भारतीयोंकी स्थितिके सम्बन्धमें समय-समयपर पत्र भी प्रकाशित हुए। भूतपूर्व अध्यक्षने डाकघरमें एक ओर यूरोपीयोंके लिए और दूसरी ओर देशी लोगों तथा भारतीयोंके लिए निर्दिष्ट पृथक् प्रवेश-द्वारोंके सम्बन्धमें सरकारके साथ पत्र-व्यवहार भी किया।

परिणाम बिलकुल ही असन्तोषजनक नहीं हुआ। अब तीनों समाजोंके लिए पृथक् प्रवेश-द्वारोंकी व्यवस्था की जायेगी। गिरमिटिया भारतीयोंके बीच भी काम किया गया है। बालसुन्दरम्के साथ उसके मालिकने बहुत बुरा व्यवहार किया था। उसका तबादला श्री ऐस्क्यूके पास कर दिया गया गया है।

मोहर्रमके त्योहार तथा कोयलेके बदले लकड़ियाँ दी जानेके मामलेमें रेलवे विभागके गिरमिटिया भारतीयोंकी ओरसे भी कांग्रेसने हस्तक्षेप किया। इस विषयमें मजिस्ट्रेटने बहुत सहानुभूति प्रदर्शित की।

तुओहीका मामला भी उल्लेखनीय है। फैसला इस्माइल अमोदके पक्षमें दिया गया, जिनकी टोपी एक सार्वजनिक स्थानपर जबरदस्ती उतार ली गई थी और जिनके साथ दूसरा दुर्व्यवहार भी किया गया था।

विख्यात बेनेट-मुकदमेमें कांग्रेसका बहुत खर्च हुआ। परन्तु हमारा विश्वास है कि वह धन पानीमें नहीं गया। मजिस्ट्रेटके विरुद्ध हम फैसला नहीं करा सकेंगे यह तो पहले ही से तय बात थी। हम श्री म्योरकामके प्रतिकूल परामर्श देनेके बावजूद अदालतमें गये थे। उसमें स्थिति बहुत स्पष्ट हो गई है और अब हम जानते हैं कि अगर भविष्यमें इसी तरहका कोई मामला खड़ा हो जाये तो हमें ठीक क्या करना होगा।

भारतीय पक्षको उपनिवेशके यूरोपीयोंकी तो बहुत सक्रिय सहायता नहीं मिली, फिर भी भारत तथा इंग्लैंडमें बहुत सहानुभूति जाग्रत हो गई है। लंदन *टाइम्स* और *टाइम्स आफ इंडिया*ने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंका सक्रिय समर्थन किया है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी बहुत सावधान हो गई है। सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर, श्री एम० ए० वेब, माननीय फीरोजशाह मेहता, माननीय फजलभाई विसराम तथा अन्य व्यक्तियोंके पाससे सहानुभूतिके पत्र प्राप्त हुए हैं। अन्य भारतीय और ब्रिटिश पत्रोंने भी हमारी शिकायतोंको अनुकूल दृष्टिसे देखा है।

श्री ऐस्क्यू कांग्रेसकी बैठकोंमें शामिल होनेवाले एकमात्र यूरोपीय रहे हैं। जनताके सामने कांग्रेसकी स्थापनाकी अबतक अधिकारी रूपसे घोषणा नहीं की गई, क्योंकि जबतक उसके स्थायी रूपसे चलनेका विश्वास न हो जाये तबतक घोषणा न करना ही उचित समझा गया था। उसने बहुत खामोशीसे काम किया है।

भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अब्दुल्ला हाजी आदमकी भारत-विदाईपर उन्हें एक मानपत्र दिया गया था। यह उचित ही होगा कि कांग्रेसके कार्यके इस सिंहावलोकनकी परिसमाप्ति उसके उल्लेखके साथ की जाये।

कांग्रेसको भेंटें

भेंटें नाना प्रकारकी और बहुत-सी प्राप्त हुईं। भेंटें देनेवालोंमें श्री पारसी रुस्तमजी अग्रगण्य हैं। उन्होंने कांग्रेसको तीन बत्तियाँ, मेजपोश, एक घड़ी, एक पर्दा, कलमदान, कलमें, स्याहीसोख तथा फूलदान प्रदान किये। वे सारे वर्ष तेल भी पुराते रहे। हर बैठकके दिन वे सभा-भवनको झाड़ने-बुहारने और उसमें दिया-बत्ती करनेके लिए अपने आदमियोंको भेजते रहे, और यह काम समयकी असाधारण पाबन्दीके साथ किया गया। उन्होंने कांग्रेसको ४,००० परिपत्र भी दिये। श्री अब्दुल कादिरने सदस्य-सूची मुफ्त छपा दी।

श्री सी० एम० जीवाने २,००० परिपत्र मुफ्त छपवा कर दिये। इनका कागज कुछ तो श्री हाजी मुहम्मदने और कुछ श्री हुसेन कासिमने दिया।

श्री अब्दुल्ला हाजी आदमने एक शतरंजी और श्री मानेकजीने एक मेज भेंट की।

श्री प्रागजी भीमभाईने १,००० लिफाफे दिये।

अवैतनिक मन्त्रीने नियामावलीको अंग्रेजी और गुजरातीमें भारतसे छपवा मँगाया और साधारण पाक्षिक परिपत्रोंके लिए कागज, टिकट आदि दिये।

श्री लारेन्स, जो कांग्रेसके सदस्य नहीं हैं, खामोश उत्साहके साथ परिपत्र बाँटनेका काम करते रहे।

विविध

सभाओंमें उपस्थिति बहुत ही कम रही और समयकी पाबन्दीकी दुःखद उपेक्षा की गई। तमिल सदस्योंने कांग्रेसके कार्यमें ज्यादा उत्साह नहीं दिखाया। कुछ भी होता, वे चन्दा देनेकी शिथिलताका बदला ठीक समय-पर और नियमित रूपसे सभाओंमें उपस्थित होकर तो चुका ही सकते थे। छोटी-छोटी रकमोंका दान प्राप्त करनेके लिए श्री अब्दुल्ला हाजी आदम, श्री अब्दुल कादिर, श्री दोरास्वामी पिल्ले और अवैतनिक मन्त्रीने एक, दो और ढाई शिलिंगके टिकट जारी किये हैं। परन्तु इस योजनाके परिणामोंके बारेमें अभी कोई अनुमान लगाना सम्भव नहीं है।

एक प्रस्ताव इस आशयका स्वीकार किया गया है कि कर्मठ कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित करनेके लिए तमगे दिये जायें। परन्तु तमगे अबतक बनवाये नहीं गये हैं।

मृत्यु और विदाई

दुःखके साथ अंकित करना पड़ता है कि कुछ मास पूर्व श्री दिनशाका देहान्त हो गया।

लगभग १० सदस्य भारत चले गये हैं। उनमें भूतपूर्व अध्यक्ष श्री हाजी आदमके अलावा श्री हाजी सुलेमान, श्री हाजी दादा, श्री मानेकजी, श्री मुतुकृष्ण और श्री रणजीतसिंह शामिल हैं। इन्होंने कांग्रेसकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया है।

लगभग २० सदस्योंने अपना चन्दा कभी दिया ही नहीं। उन्हें भी कांग्रेसमें कभी शामिल न होनेवाले ही मानना चाहिए।

सुझाव

सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह होना चाहिए कि चन्दा जो कुछ भी हो, पूरे वर्षके लिए पेशगी देनेका नियम बना दिया जाये।

अन्य सूचनाएँ

यह स्मरण रखना चाहिए कि कुछ खर्च ऐसा है जो यद्यपि कांग्रेसने मंजूर कर दिया था, फिर भी कभी किया नहीं गया। कमखर्चीका सख्तीके साथ पालन किया गया है। कांग्रेसकी नींव दृढ़ करनेके लिए कमसे कम २,००० पौंडकी आवश्यकता है।

साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित एक अंग्रेजी नकलसे।

५८. भारतीयोंका मताधिकार

डर्बन
सितम्बर २, १८९५

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके बारेमें हालके तारोंपर आपने जो टीका-टिप्पणी की है उसपर मैं कुछ विचार व्यक्त करनेकी धृष्टता करता हूँ। आपने पहली ही बार यह नहीं कहा है कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग भारतीयोंको अपने बराबर ही राजनीतिक अधिकार देनेपर आपत्ति करते हैं, क्योंकि उन्हें भारतमें ये अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इसी तरह, आप यह भी कहते आये हैं कि आपको उन्हें वे अधिकार देनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी, जिनका उपभोग वे भारतमें करते हैं। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, मैं यहाँ भी दुहराता हूँ कि, कमसे कम सैद्धान्तिक दृष्टिसे तो भारतमें भारतीयोंको यूरोपीयोंके बराबर राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं ही। १८३३ के अधिकार-पत्र (चार्टर) और १८५८ की घोषणामें भारतीयोंको उन्हीं अधिकारों और विशेषाधिकारोंका आश्वासन दिया गया है, जिनका उपभोग सम्राज्ञीकी दूसरी प्रजाएँ करती हैं। और इस उपनिवेश तथा दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंके भारतीयोंको अगर सिर्फ वही अधिकार प्राप्त हो जायें, जिनका

उपभोग ऐसी ही परिस्थितियोंमें वे भारतमें कर सकते हैं, तो उन्हें पूरा सन्तोष हो जायेगा।

भारतमें जहाँ भी यूरोपीयोंको मत देनेका अधिकार है, वहाँ भारतीय उससे वंचित नहीं हैं। अगर म्यूनिसिपल चुनावोंमें यूरोपीय मत दे सकते हैं, तो भारतीय भी दे सकते हैं। अगर यूरोपीय लोग विधानपरिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के निर्वाचित सदस्य बन सकते हैं, या उनके सदस्योंका चुनाव कर सकते हैं, तो भारतीय भी वह कर सकते हैं। अगर यूरोपीय ९ बजे रातके बाद आजादीसे घूम-फिर सकते हैं, तो भारतीय भी घूम-फिर सकते हैं। हाँ, भारतीयोंको यूरोपीयोंके बराबर शस्त्रास्त्र रखनेकी स्वतन्त्रता जरूर नहीं है। तो, दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको भी शस्त्रास्त्र-सज्जित होनेकी कोई बड़ी उत्कण्ठा नहीं है। भारतमें व्यक्ति-कर (पोल टैक्स) देना नहीं पड़ता। इसलिए क्या आप हालके प्रवासी अधिनियम (इमिग्रेशन ऐक्ट) का विरोध करनेका सौजन्य दिखाएँगे और इस प्रकार असहाय गिरमिटिया भारतीयोंकी कृतज्ञता अर्जित करेंगे? यह राजनीतिक समानताका वही मान्य सिद्धान्त है, जिसके कारण श्री नौरोजी ब्रिटिश लोकसभाके सदस्य हो सके हैं।

अगर भारतीयोंको सबके बराबर अधिकार देनेमें आपको यह आपत्ति है कि इस उपनिवेशका निर्माण ब्रिटिश धन और शक्तिसे किया गया है तो जर्मनों और फ्रांसीसियोंके बारेमें भी आपको स्पष्टतः आपत्ति करनी चाहिए। इस सिद्धान्तके अनुसार तो, पहले-पहल यहाँ आकर अपना खून बहानेवाले अगुओंके वंशज इंग्लैंडसे आकर उन्हें खदेड़नेवाले लोगोंके बारेमें भी आपत्ति उठा सकते हैं। क्या यह एक संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण दृष्टि नहीं है? कभी-कभी आपके अग्रलेखोंमें बहुत ऊँची और भूतदयायुक्त भावनाओंकी अभिव्यक्ति मिलती है। दुर्भाग्यवश, जब आप भारतीयोंके प्रश्नपर लिखते हैं तब ये भावनाएँ एक ओर रख दी जाती हैं। और फिर भी, आप पसन्द करें या न करें, भारतीय आपके बन्धु-प्रजाजन तो हैं ही। इंग्लैंड नहीं चाहता कि भारतपर से उसका अधिकार चला जाये। और साथ ही वह उसपर कठोरताके साथ शासन भी करना नहीं चाहता। उसके राजनीतिज्ञोंका कहना है कि वे ब्रिटिश शासनको भारतमें इतना अधिक लोकप्रिय बना देना चाहते हैं कि फिर भारतीय किसी दूसरे शासनको पसन्द

ही न करें। तब क्या जैसे विचार आपने व्यक्त किये हैं उनसे उन इच्छाओंकी पूर्तिमें बाधा नहीं पड़ेगी?

मैं ऐसे बहुत कम भारतीयोंको जानता हूँ जो चाहे कमाते एक हजार पौंड हों, परन्तु रहते ऐसे हैं, मानो सिर्फ पचास पौंड ही कमाते हैं। सच बात तो यह है कि उपनिवेशमें कोई भारतीय ऐसा है ही नहीं जो अकेला एक हजार पौंड वार्षिक कमाता हो। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके व्यापारको देखकर कल्पना की जा सकती है कि वे "ढेरका ढेर धन कमाते होंगे।" कुछका व्यापार सचमुच बहुत बड़ा है, परन्तु मुनाफा वैसा नहीं है; क्योंकि उसमें हिस्सेदारी कई लोगोंकी है। भारतीयोंको व्यापार पसन्द है, और जबतक वे भली-भांति जीवन व्यतीत करनेके लिए काफी कमाई करते हैं तबतक उन्हें अपने मुनाफेमें दूसरोंके बड़े-बड़े हिस्से रखनेमें बुरा नहीं मालूम होता। वे सिंह-भाग पानेका आग्रह नहीं रखते। ठीक यूरोपीयोंके समान ही उनको भी अपना पैसा खर्च करनेका शौक होता है। केवल उतनी अंधाधुंधीसे वे खर्च नहीं करते। बम्बईमें जिन व्यापारियोंने भी भारी सम्पत्ति इकट्ठी की है, उन्होंने अपने महल बनाये हैं। मोम्बासाकी एकमात्र विशाल इमारत एक भारतीयकी बनाई हुई है। ज़ंज़ीबारमें भारतीय व्यापारियोंने खूब धन कमाया है, फलतः उन्होंने महल खड़े किये हैं। और कुछने तो रंग-महल भी बनाये हैं। अगर डर्बन या दक्षिण आफ्रिकामें किसी भारतीयने ऐसा नहीं किया तो इसका कारण यह है कि उन्होंने ऐसा करनेके लिए काफी धन नहीं कमाया। महोदय, मुझे क्षमा कीजिएगा, परन्तु आप थोड़ी और बारीकीसे इस प्रश्नका अध्ययन करें तो आपको मालूम हो जायेगा कि भारतीय इन उपनिवेशमें भरसक खर्च करते हैं—वे सिर्फ इतनी सावधानी रखते हैं कि कहीं संकटमें न पड़ जायें। यह कहना कि जो लोग अच्छी कमाई करते हैं वे अपनी दूकानोंके फर्शपर सोते हैं, मैं कहूँगा, गलत है। अगर आप धोखेमें रहना न चाहते हों और कुछ घंटोंके लिए अपनी सम्पादकीय कुर्सी छोड़नेके लिए तैयार हों तो मैं आपको कुछ भारतीय दूकानोंमें ले चलूँगा। तब शायद आप अभीकी अपेक्षा उनके बारेमें कम कठोरताके साथ विचार करेंगे।

मेरा नम्र विश्वास है कि भारतीय प्रश्न कमसे कम ब्रिटिश उपनिवेशोंके लिए तो स्थानिक और साम्राज्य-व्यापी दोनों महत्त्व रखता है। और मैं निवेदन करता हूँ कि उसपर विचार करनेमें आवेशसे काम लेना, या पहलेसे स्थिर

की हुई धारणाओंको मूर्त रूप देनेके लिए तथ्योंकी ओरसे आँखें मूँद लेना उस प्रश्नको हल करनेका सही तरीका नहीं है। उपनिवेशके जिम्मेदार लोगोंका कर्तव्य है कि वे दोनों समाजोंके बीचकी खाई चौड़ी न करें, बल्कि सम्भव हो तो उसे पूरें। भारतीयोंको इस उपनिवेशमें आमन्त्रित करके जिम्मेदार उप-निवेशी उन्हें कोस कैसे सकते हैं? भारतीय मजदूरोंको लानेके प्राकृतिक परिणामोंसे वे भाग कैसे सकते हैं?

आपका, आदि,
मो॰ क॰ गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ५–९–१८९५

५९. भारतीयोंका मताधिकार

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको मताधिकार देनेके बारेमें गांधीजीकी दलीलोंका प्रतिवाद करते हुए श्री टी॰ मार्स्टन फ्रांसिसने, जो अनेक वर्षोंतक भारतमें रह चुके थे, सितम्बर ६, १८९५ को *नेटाल मर्क्युरी*को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने कहा था कि यद्यपि भारतमें भारतीयोंको म्यूनिसिपल चुनावोंमें मत देने और विधानपरिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल)के सदस्य बननेका अधिकार प्राप्त है, फिर भी नियम इस तरहके बने हैं कि उनका पक्ष कभी यूरोपीय सदस्योंके पक्षसे प्रबल नहीं हो सकता, और न कभी वे यह अहंकारपूर्ण दावा ही कर सकते हैं कि उन्हें सर्वोच्च सत्ता प्राप्त है। म्यूनिसिपैलिटियोंका अध्यक्ष सदैव एक आई॰ सी॰ एस॰ अधिकारी होता है और कमिश्नर, गवर्नर, वाइसराय, भारत-मन्त्री और अन्ततः ब्रिटिश संसद भारतकी म्यूनिसिपैलिटियों तथा विधान-संस्थाओंपर रोक लगा सकती है। इसका उत्तर गांधीजीने निम्नलिखित दिया था:

डर्बन
सितम्बर १५, १८९५

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

भारतीयोंके प्रश्नपर श्री मार्स्टन फ्रांसिसके पत्रके उत्तरमें मैं कुछ विचार व्यक्त करनेकी ढिठाई कर रहा हूँ।

मैं मानता हूँ कि भारतीय म्युनिसिपैलिटियों और, वैसे ही, विधान-परिषदोंके बारेमें भी आपके पत्र-लेखकका कथन पूर्णतः सही नहीं है। केवल एक उदाहरण ले लीजिए। मैं नहीं समझता कि भारतीय म्यूनिसिपैलिटियोंके अध्यक्ष आई० सी० एस० अफसर ही होते हैं। बम्बई कारपोरेशनके वर्तमान अध्यक्ष एक सालिसिटर हैं।

मैंने यह दावा कभी नहीं किया — और न अब करता हूँ — कि मताधिकार भारतमें उतना ही व्यापक है जितना यहां है। यह कहना भी व्यर्थ होगा कि भारतकी विधानपरिषदें उतनी ही प्रातिनिधिक हैं, जितनी कि यहांकी हैं। तथापि, जिस बातका मैं निश्चयपूर्वक दावा करता हूँ वह यह है कि भारतमें मताधिकारकी मर्यादाएँ कुछ भी हों वह बिना रंग-भेदके सबको प्राप्त है। इस बातका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता कि प्रातिनिधिक शासनको समझनेकी भारतीयोंकी योग्यता मान्य की जा चुकी है। श्री फ्रांसिसका जो यह कथन है कि मताधिकारकी योग्यता भारतमें वही नहीं मानी जाती जो नेटालमें मानी जाती है, उससे तो कभी इनकार किया ही नहीं गया। इस तरहकी कसौटीके अनुसार तो यूरोपसे आनेवाले लोगोंको भी मताधिकार नहीं मिल सकेगा, क्योंकि विभिन्न यूरोपीय राज्योंमें मताधिकारकी योग्यता ठीक वही नहीं है जो यहां है।

इस सप्ताहकी डाकसे ताजेसे ताजा प्रमाण प्राप्त हुआ है कि भारतीय इस विषयकी एकमात्र सच्ची कसौटीपर, जो यह है कि वे प्रतिनिधित्वका सिद्धान्त समझते हैं या नहीं, कभी ओछे नहीं उतरे। मैं टाइम्समें प्रकाशित "भारतीय मामलात"-सम्बन्धी लेखसे निम्नलिखित उद्धरण दे रहा हूँ :

परन्तु जिन भारतीय सैनिकोंने मान्यता कमाई है, उनकी वीरता अगर हमारे अन्दर अभिमान जगाती है कि हमारे बन्धु-प्रजाजन ऐसे हैं ... सचमुच उस भयानक घाटीमें उन्होंने अपने साथियोंके प्रति जिस भव्य आत्म-त्यागका परिचय दिया था, उससे बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता ... सच बात तो यह है कि भारतीय योग्य सह-प्रजाजन माने जानेका अधिकार अनेक तरीकोंसे कमा रहे हैं। समर-भूमि सदा ही विभिन्न जातियोंके बीच सम्मानयुक्त समानता स्थापित करनेका सरल साधन रही है; परन्तु भारतीय तो नागरिक-जीवनके मन्दतर और कठिनतर तरीकोंसे भी हमारा

सम्मान प्राप्त करनेका अधिकार सिद्ध कर रहे हैं। तीन वर्ष पूर्व भारतीय विधानपरिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल)को आंशिक निर्वाचनके आधारपर बढ़ानेका जो प्रयोग किया गया था, उससे बड़ा प्रयोग अधीन राज्योंके वैधानिक शासनमें पहले कभी नहीं हुआ था। . . . अनेक बहसें बहुत मददगार रहीं। और जहाँतक बंगालका — उस प्रान्तका सम्बन्ध है, जहाँ निर्वाचन-पद्धति बड़ीसे बड़ी कठिनाइयोंसे व्याप्त मालूम होती थी, वहाँ भी एक कड़ी कसौटीके बाद प्रयोग सफल सिद्ध हो गया है।

जैसा कि सभी को मालूम है, यह लेख भारतके एक ऐसे इतिहासज्ञ[1] और भारतीय अफसरकी कलमसे निकला है, जिसने भारतमें तीस वर्षसे अधिक सेवा की है। कुछ लोगोंको मताधिकारका अपहरण अपने आपमें बड़ी निरर्थक चीज मालूम हो सकती है। परन्तु भारतीय समाजपर उसका जो परिणाम होगा उसकी कल्पना करना भी बहुत भयानक है। दूसरी ओर, यूरोपीय उपनिवेशियोंको, मेरा विश्वास है, उससे बिलकुल ही लाभ नहीं है। हाँ, अगर किसी जाति या राष्ट्रको नीचे गिरानेमें, या उसे अधःपतनकी अवस्थामें रखनेमें ही कोई सुख मिलता हो तो बात अलग है। "गोरे लोगों या पीले लोगोंके शासन करने"का तो सवाल ही नहीं है, और मुझे आशा है कि मैं कभी भविष्यमें बता सकूँगा कि इस विषयमें जो भय पोस रखा गया है वह बिलकुल निराधार है।

शायद श्री फ्रांसिसके पत्रके कुछ अंशोंसे मालूम होगा कि उन्हें भारत छोड़े बहुत लम्बा समय हो गया है। वहाँ नागरिक कमिश्नर के पदसे अधिक जिम्मेदार पद बहुत कम होते हैं। फिर भी हाल ही में भारत-मन्त्रीने उस पदपर एक भारतीयको नियुक्त करनेमें बुद्धिमत्ता समझी है। श्री फ्रांसिस जानते हैं कि भारतमें प्रधान न्यायाधीशका अधिकार-क्षेत्र कितना बड़ा होता है। और बंगाल तथा मद्रास दोनोंमें उस पदको भारतीयोंने सुशोभित किया है। जो लोग दोनों जातियों — ब्रिटिश और भारतीयों — को "प्रेमकी रेशमी डोरीसे" बाँधना चाहते हैं, उनके लिए दोनोंके बीच अगणित सम्पर्क-स्थल खोज लेना कठिन न होगा। दोनोंके तीन धर्मोंमें भी, दिखाऊ विरोधके

१. सर विलियम विल्सन हंटर; देखिए, पृष्ठ २६३।

बावजूद, बहुत-सी बातें एक-सी हैं; और इन तीनोंकी एक त्रिमूर्ति बना देना बुरा न होगा।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्करी, २३-९-१८९५

६०. भारतीय कांग्रेस

डर्बन
सितम्बर २३, १८९५

सेवामें
सम्पादक
नेटाल एडवर्टाइज़र

महोदय,

अपने शनिवारके अंकमें आपने "भारतीय कांग्रेस" या, अधिक ठीक, "नेटाल भारतीय कांग्रेस" पर जो आक्षेप किये हैं वे असामयिक हैं। कारण यह है कि जिस मामले'में कांग्रेसका नाम आया है उसका फैसला अबतक नहीं हुआ है। जिन परिस्थितियोंमें कांग्रेसको इस मामलेमें शामिल किया गया है उनपर अगर मैं कुछ कहूँ तो अदालतकी मानहानि करनेकी जोखिम उठानेका

१. नेटाल भारतीय कांग्रेसके नेताओंपर आरोप लगाया गया था कि मार-पीटके एक मुकदमेमें एक भारतीयको गवाही न देनेके लिए धमकानेमें उनका हाथ था। प्रत्यक्ष अभियोग पद्याची नामक व्यक्तिपर था जो कांग्रेसका सदस्य था। परन्तु कहा यह गया कि उसने कांग्रेसके नेताओंकी प्रेरणासे वैसा किया। यह भी कहा गया था कि कांग्रेस गांधीजीके नेतृत्वमें सरकारसे लड़नेका षड्यंत्र रच रही है, उसने भारतीय मजदूरोंको अपने कष्टोंके विरुद्ध आन्दोलन करनेके लिए उभाड़ा है, गांधीजी उनसे और भारतीय व्यापारियोंसे राहत दिलानेके वादे करके रुपया ऐंठते हैं और उसका उपयोग अपने मतलबके लिए करते हैं। उपनिवेश-सचिवके नाम गांधीजीका २१ अक्तूबर, १८९५ का पत्र भी देखिए, जो पृष्ठ २५५-२५८ पर दिया जा रहा है।

डर है। इसलिए जबतक मामलेका फैसला नहीं होता, तबतक मैं अपने विचार प्रकट न करनेके लिए विवश हूँ।

इसी बीच, आपके आक्षेपोंसे लोगोंके मनमें जो भी गलत छाप पड़ सकती हो, उसे मिटानेके लिए, आपकी अनुमतिसे, मैं कांग्रेसके ध्येय स्पष्ट कर दूं। उसके ध्येय ये हैं :

"(१) उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझनेका माद्दा पैदा करना और मैत्रीभाव बढ़ाना।

"(२) समाचारपत्रोंमें लिखकर, पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके और व्याख्यानों आदिके द्वारा भारत और भारतीयोंके बारेमें जानकारी फैलाना।

"(३) भारतीयोंको, खासकर उपनिवेशमें जन्मे भारतीयोंको, भारतीय इतिहासकी शिक्षा और भारतीय विषयोंका अध्ययन करनेकी प्रेरणा देना।

"(४) भारतीयोंके विभिन्न दुखड़ोंकी जाँच-पड़ताल करना और उन्हें दूर करनेके लिए तमाम वैध उपायोंसे आन्दोलन करना।

"(५) गिरमिटिया भारतीयोंकी हालतकी जाँच करना और उनको विशेष कठिनाइयोंसे निकलनेमें मदद करना।

"(६) गरीबों और जरूरतमन्दोंको सब उचित तरीकोंसे मदद करना।

"(७) और आम तौरपर वे सब प्रयत्न करना, जिनसे भारतीयोंकी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनीतिक स्थितिमें सुधार हो।"

कांग्रेसका विधान स्वतः तबतक कांग्रेसको व्यक्तिगत शिकायतोंमें हस्तक्षेप करनेसे रोकता है, जबतक कि उनका महत्त्व सार्वजनिक न हो।

"भारतीय कांग्रेसके अस्तित्वका पता चला, सो केवल एक आकस्मिक संयोग ही था" — यह कहना ज्ञात तथ्योंके अनुकूल नहीं है। जबकि कांग्रेस संगठित हो रही थी, *नेटाल विटनेसने* उस हकीकतकी घोषणा कर दी थी और, अगर मैं गलती नहीं करता तो, कांग्रेस-स्थापना सम्बन्धी अंशकी नकल आपने भी छापी थी। सच है कि दफ्तरी तौरपर इसकी घोषणा पहले नहीं की गई थी। इसका कारण यह था कि संगठनकर्ताओंको उसके स्थायित्वका विश्वास नहीं था, और न अभी है। उन्होंने इसमें बुद्धिमत्ता समझी कि समयको ही उसे जनताकी निगाहमें लाने दिया जाये। उसे गुप्त रखनेके कोई प्रयत्न नहीं किये गये। उलटे, उसके संगठनकर्ताओंने उन यूरोपीयोंको भी, जिन्हें कांग्रेसके प्रति सहानुभूति रखनेवाले समझा जाता था, उसमें शामिल होने या उसकी पाक्षिक बैठकोंमें हिस्सा लेनेके लिए

आमन्त्रित किया। अब जो सार्वजनिक रूपसे कैफियत देना आवश्यक समझा गया है उसका कारण यह है कि व्यक्तिगत बातचीतमें कांग्रेसका मंशा गलत बताया जाने लगा था, और अब आपने (बेशक अनजाने) सार्वजनिक रूपसे उसके बारेमें गलतफहमी फैला दी है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

अवैतनिक मन्त्री, नेटाल भारतीय कांग्रेस

पुनश्च : आपकी जानकारीके लिए मैं इसके साथ नियमावलीकी नकलें, पहले वर्षके सदस्योंकी सूची और पहली वार्षिक रिपोर्ट भेज रहा हूँ।

मो० क० गां०

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, २५-९-१८९५

६१. भारतीय कांग्रेस

एच नामसे किसी पत्र-लेखकने *नेटाल मर्क्युरी*में सितम्बर २१, १८९५ को एक पत्र लिखा था। उसमें कहा गया था कि खबर है, कांग्रेस और उसके कामके पीछे एक सरकारी कर्मचारी — एक मजिस्ट्रेटकी अदालतके भारतीय दुभाषियेका हाथ है; उसे इस तरहकी शरारत करनेसे रोका जाये। गांधीजीने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया था :

डर्बन

सितम्बर २५, १८९५

सेवामें

सम्पादक

नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

आपके पत्र-लेखक एचको, मालूम होता है, नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापना और अन्य विषयोंकी भी गलत जानकारी मिली है। कांग्रेसकी स्थापना मुख्यतः श्री अब्दुल्ला हाजी आदमके प्रयत्नोंसे हुई है। मैं कांग्रेसकी सब बैठकोंमें

हाजिर रहा हूँ और मैं जानता हूँ कि किसी सरकारी कर्मचारीने उसकी किसी बैठकमें हिस्सा नहीं लिया। नियमावली और अनेकानेक प्रार्थनापत्रोंका मसविदा बनानेकी जिम्मेदारी पूरी-पूरी मुझपर है। प्रार्थनापत्रोंको, जबतक वे छपकर कांग्रेस-सदस्यों और अन्य लोगोंमें वितरित करनेके लिए तैयार नहीं हो गये, किसी सरकारी कर्मचारीने देखा भी नहीं।

मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, ने० भा० कां०

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्यूरी, २७–९–१८९५

६२. भारतीय कांग्रेस

एचने *नेटाल मर्क्यूरी*में सितम्बर २८, १८९५ को फिरसे एक पत्र छपवाया था। उसमें कहा गया था कि कांग्रेसका संगठन गुप्त रूपसे एक सरकारी कर्मचारीने किया है और गांधीजीको उसके मन्त्रीका काम करनेके लिए ३०० पौंड वार्षिक पुरस्कार दिया जाता है। गांधीजीने उसका निम्नलिखित उत्तर दिया :

डर्बन
सितम्बर ३०, १८९५

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्यूरी

महोदय,

आपके शनिवारके अंकमें प्रकाशित एचका पत्र अगर केवल मुझसे सम्बन्ध रखता होता तो मैंने उसकी कोई परवाह न की होती। परन्तु उसका पत्र सरकारी कर्मचारियोंपर आक्षेप करनेवाला है, इसलिए मैं फिरसे आपके सौजन्यका अतिक्रमण करनेको विवश हुआ हूँ। मैं कांग्रेसका वेतन-भोगी मन्त्री नहीं हूँ। उलटे, दूसरे सदस्योंके साथ-साथ मैं भी अपना विनम्र भाग उसकी झोलीमें अर्पित करता हूँ। कांग्रेसकी ओरसे मुझे कोई कुछ नहीं देता। कुछ

भारतीय मेरी सेवाओंको बाँधे रखनेके लिए मुझे वार्षिक शुल्क अवश्य देते हैं। यह शुल्क मुझे प्रत्यक्ष रूपसे दिया जाता है। कांग्रेसके पास छिपानेके लिए कुछ नहीं है। सिर्फ वह अपना गुणगान करती नहीं फिरती। उसके बारेमें जो भी पूछताछ की जाये, चाहे वह खानगी हो या सार्वजनिक, उसका उत्तर यथासम्भव तत्परताके साथ दिया जायेगा। मैं इसके साथ कांग्रेस-सम्बन्धी कुछ कागजात भेज रहा हूँ। उनसे उसके कार्यपर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, ने० भा० कां०

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्करी, ४-१०-१८९५

६३. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें भाषण

रविवार, अक्टूबर १, १८९५ को नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्त्वावधानमें रुस्तमजी-भवन, डर्बनमें भारतीयोंकी एक बड़ी सभा हुई थी। उसमें गांधीजीने भाषण किया था। उपस्थिति आठ सौ और हजारके बीच थी।

श्री गांधी उपस्थित जनताके सामने देरतक भाषण देते रहे। उन्होंने कहा कि अब तो भारतीय कांग्रेसकी स्थापनाका सबको पता हो गया है। अतः सदस्योंको अपना-अपना चन्दा समयपर दे देना चाहिए। श्री गांधीने कहा कि इस समय कांग्रेसके कोषमें ७०० पौंड हैं। पिछली बार मैं हाजिर हुआ था तबसे यह रकम १०० पौंड अधिक है। किन्तु कांग्रेसकी वर्तमान जरूरतें पूरी करनेके लिए ४,००० पौंडकी जरूरत है। उन्होंने कहा कि प्रत्येक भारतीयको एक निश्चित समयके अन्दर अपना चन्दा देनेका वचन लिखकर दे देना चाहिए। और प्रत्येक व्यापारीको १०० पौंडकी बिक्रीपर कांग्रेसको दो शिलिंग देनेका यत्न करना चाहिए।

श्री गांधीने कहा कि इंग्लैंडमें तो कांग्रेसको अभीतक अच्छी सफलता मिली है। किन्तु अब हम भारतसे सफलताके समाचारोंकी प्रतीक्षामें हैं। बहुत सम्भव है कि मैं खुद आगामी जनवरीमें भारत जाऊँ। उन्होंने यह भी
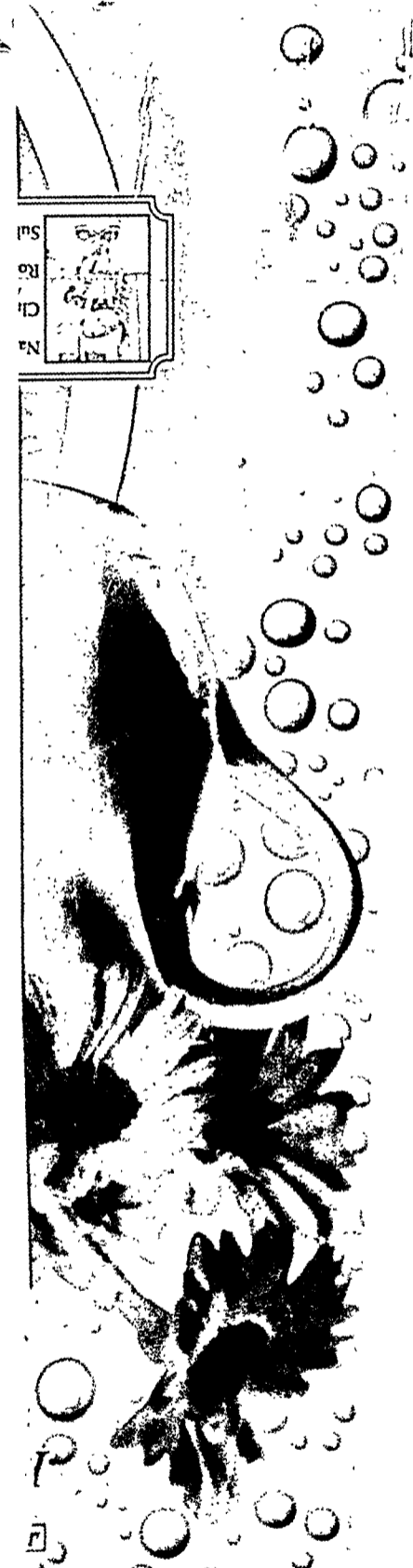
कहा कि वहाँ पहुँचनेपर मैं कई अच्छे बैरिस्टरोंको नेटाल आनेके लिए राजी करनेका प्रयत्न करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, २–१०–१८९५

६४. भारतीयोंका सवाल

डर्बन
अक्टूबर ९, १८९५

सेवामें
सम्पादक
नेटाल एडवर्टाइज़र

महोदय,

अपने कलके अंकमें आपने जो अग्रलेख प्रकाशित किया है उसकी सामान्य विचार-धारापर कोई भारतीय आपत्ति नहीं कर सकता।

अगर कांग्रेसने अप्रत्यक्ष तरीकेसे भी किसी गवाहको भड़कानेका काम किया हो तो निःसन्देह वह दमनकी पात्र होगी। मैं तो हालमें अपना यह दावा दुहराकर ही सन्तोष करूँगा कि उसने ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया। जिस मामलेमें कांग्रेसकी निन्दा की गई है उसका फैसला अभी पुनर्विचाराधीन है, इसलिए मैं गवाहियोंकी विस्तृत विवेचना करनेकी स्वतन्त्रता महसूस नहीं करता। कांग्रेसके बारेमें सिर्फ एक गवाहसे सवाल पूछे गये थे, और उसने इस आरोपका खण्डन किया है कि कांग्रेसका इस मामलेमें कुछ भी हाथ था। अगर लोगोंके अपनी निजी हैसियतसे किये गये कामोंकी जिम्मेदारी उनकी संस्थाओंपर थोपी जाने लगे तब तो मैं समझता हूँ, किसी भी संस्थाके विरुद्ध लगभग कोई भी आरोप सिद्ध किया जा सकता है।

भारतीयोंका दावा प्रत्येक भारतीयके लिए मताधिकार प्राप्त करनेका नहीं है। न वे शुद्ध "कुलियों"के लिए ही मताधिकारकी माँग करते हैं। और फिर, शुद्ध "कुली" तो, जबतक वह कुली बना हुआ है, वर्तमान कानूनके अनुसार भी मताधिकार नहीं पा सकता। विरोध तो केवल रंग-भेद या

जाति-भेदका है। अगर सारे प्रश्नपर ठंडे दिमागसे विचार किया जाये तो किसीको दुर्भावनाएँ या गर्मी जाहिर करनेका कोई मौका ही नहीं रहेगा।

भारतीयोंने दुनियाके किसी भागमें राज्यसत्ता प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं किया। मारीशसमें उनकी बहुत बड़ी संख्या है, परन्तु वहाँ भी उन्होंने कोई राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा नहीं दिखाई। और नेटालमें भी चाहे उनकी संख्या ४०,००० के बदले चार लाख क्यों न हो जाये, उनके वह महत्त्वाकांक्षा दिखानेकी सम्भावना नहीं है।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, १०-१०-१८९५

६५. नेटाल भारतीय कांग्रेस

डर्बन

अक्टूबर २१, १८९५

सेवामें

माननीय उपनिवेश-सचिव

पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

समाचारपत्रोंमें कुछ आक्षेपों और सम्राज्ञी बनाम रंगस्वामी पदयाचीके हालके मुकदमेमें डर्बनके आवासी न्यायाधीश (रेज़िडेंट मजिस्ट्रेट) के निर्णयके कारण कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे इन विषयोंपर आपको लिखना मेरे लिए जरूरी हो गया है।

फैसलेमें कहा गया है कि अगस्तमें किसी एक दिन कांग्रेसने असगरा नामके एक भारतीयको अपने सामने बुलाया और उसे धमकी देकर एक मुकदमेमें गवाही देनेसे रोकनेका प्रयत्न किया। उसमें यह भी कहा गया है कि कांग्रेस षड्यन्त्रकारी संघ है, आदि।

मेरा निवेदन है कि कांग्रेसने उपर्युक्त व्यक्ति या किसी भी दूसरे व्यक्तिको गवाही देनेसे रोकनेके लिए कभी अपने सामने नहीं बुलाया। इतना ही नहीं, मेरा निवेदन यह भी है कि मजिस्ट्रेटके पास ऐसे आक्षेप करनेका कोई आधार नहीं था।

जिस फैसलेमें ये आक्षेप किये गये हैं वह ऊँची अदालतके पुनर्विचाराधीन है। इस स्थितिके कारण मुझे अखबारोंमें इसकी विस्तृत चर्चा करनेसे रुक जाना पड़ा है। दुर्भाग्यवश मजिस्ट्रेटने ये आक्षेप गैररस्मी तौरपर किये हैं। इसलिए हो सकता है कि इनपर न्यायाधीश पूरी तरह विचार न करें। गवाह असगराके बयान, उससे जिरह और दुबारा जिरहके दौरानमें कांग्रेसका कहीं जिक्र भी नहीं आया था। दुबारा जिरह हो जानेपर मजिस्ट्रेटने उससे कांग्रेसके बारेमें सवाल पूछे। सवाल-जवाबसे साफ हो गया था कि जिस सप्ताहमें धमकी दी गई ऐसा माना जाता है, उसमें कांग्रेसकी कोई बैठक नहीं हुई थी। मुकदमे में दो छपे हुए परिपत्र पेश किये गये थे। एकपर १४ अगस्त और दूसरे-पर १२ सितम्बरकी तारीख थी। इन दोनों परिपत्रों द्वारा कांग्रेस-सदस्योंको इन तारीखोंके बादके मंगलवारोंको, अर्थात् २० अगस्त और १७ सितम्बरकी बैठकों में हाजिर होनेके लिए आमन्त्रित किया गया था।

कहा गया है, धमकी १२ अगस्तको दी गई थी। कथनके अनुसार, उस दिन गवाहको कमरुद्दीनने मूसाके दफ्तरमें बुलवाया था, जहाँ एम० सी० कमरुद्दीन, दादा अब्दुल्ला, दाऊद मुहम्मद और दो-तीन अजनबी हाजिर थे। वहाँ उससे मुकदमेके बारेमें कुछ सवाल पूछे गये थे। और गवाहके इस आशयकी गवाही देनेपर भी कि कांग्रेसकी बैठकें मूसाके दफ्तरमें नहीं होतीं, उसे मूसाके दफ्तरमें बैठकमें आनेका परिपत्र नहीं मिला, वह परिपत्रके अनुसार हुई बैठकोंमें शामिल नहीं हुआ, कांग्रेसकी बैठकें कांग्रेस-भवनमें होती हैं, मुकदमेके साथ परिपत्रका कोई सम्बन्ध नहीं था और वह कांग्रेसकी ऐन सभामें हाजिर नहीं था, मजिस्ट्रेटने इस बातको कांग्रेसके साथ जोड़ दिया है।

मजिस्ट्रेटके निष्कर्षका पोषण सिर्फ एक ही मुद्देसे हो सकता था। और वह मुद्दा यह है कि जिन छः या सात व्यक्तियोंको मूसाके दफ्तरमें हाजिर बताया गया था उनमें से तीन कांग्रेसके सदस्य हैं।

गवाहीके इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले अंशोंके उद्धरण मैं इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

मैं निवेदन करता हूँ कि मजिस्ट्रेटके मनमें किसी-न-किसी प्रकारका विपरीत प्रभाव मौजूद था। पुन्नूस्वामी पाथेर तथा तीन अन्योंके मुकदमेमें अणुमात्र

साक्षी न होनेपर भी उसने अपने निर्णयके कारणोंमें कहा है कि प्रतिवादी कांग्रेसके सदस्य हैं और कांग्रेस उन्हें बल देती है। सच बात यह है कि वे सब कांग्रेसके सदस्य नहीं हैं और न कांग्रेसका इस मामलेसे कोई सरोकार ही है। रंगस्वामीके मामलेमें मैंने श्री मिलरको हिदायतें दीं, इसका बड़ा तूल बाँधा गया है। मैं बता दूँ कि पुन्नूस्वामी तथा अन्योंके मामलेसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जबतक यह मामला बहुत बढ़ नहीं गया तबतक मुझे पता भी नहीं था कि ऐसा कोई मामला है भी। मेरे हस्तक्षेपकी माँग तब की गई थी जब कि रंगस्वामीपर दूसरी बार वही अभियोग लगाया गया। और तब भी मुझे कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे नहीं, बैरिस्टरकी हैसियतसे याद किया गया था।

मैं सरकारको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कांग्रेसके संगठनकर्ताओंका इरादा कांग्रेसको उपनिवेशके दोनों समाजोंके लिए उपयोगी और भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंमें उनकी भावनाओंके भाष्यका माध्यम और, इस प्रकार, वर्तमान सरकारको मदद करनेवाली संस्था बनाना है; उससे हो सके तो भी सरकारको परेशानीमें डालनेवाली संस्था बनाना नहीं।

ऐसे विचार रखनेके कारण स्वाभाविक ही है कि वे कांग्रेसपर किये गये ऐसे आक्षेपोंसे चिढ़ते हैं जिनसे कि उसकी उपयोगिता कम होती है। इसलिए, अगर सरकार मजिस्ट्रेटके आक्षेपोंको जरा भी महत्त्व देनेकी वृत्ति रखती हो तो कांग्रेस-सदस्य सबसे अधिक स्वागत इस बातका करेंगे कि संस्थाके संविधान और कार्यकी पूरी जाँच कराई जाये।

मैं यह भी कह दूँ कि कांग्रेसने अबतक भारतीयोंके किसी आपसी अदालती मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया और वह खानगी झगड़ोंको तबतक हाथमें लेनेसे इनकार करती रही है, जबतक कि उनका कोई सार्वजनिक महत्त्व न रहा हो। कांग्रेसका कोई सदस्य व्यक्तिगत रूपसे कांग्रेसकी ओरसे या उसके नामपर तबतक कोई कार्रवाई नहीं कर सकता, जबतक कि कांग्रेसके नियमोंके अनुसार एकत्रित सदस्योंकी बहुमतिसे स्वीकृति प्राप्त न की गई हो। और कांग्रेसकी बैठक तो अवैतनिक मन्त्रीकी लिखित सूचनासे ही हो सकती है।

अगर सरकारको सन्तोष हो कि विवादग्रस्त प्रश्नसे कांग्रेसका कोई सम्बन्ध नहीं है, तो मैं कांग्रेसकी ओरसे नम्रतापूर्वक माँग करता हूँ कि इस हकीकतकी
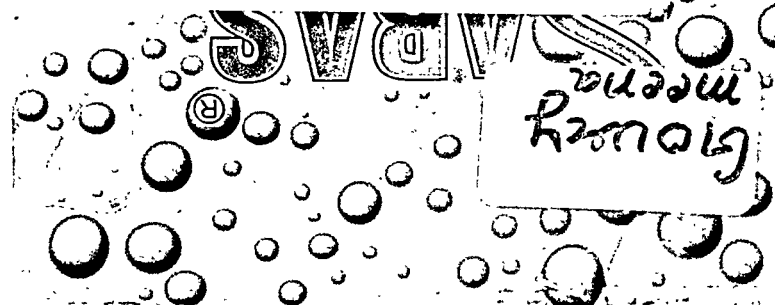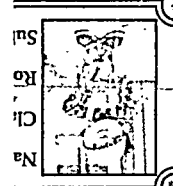
कुछ सार्वजनिक सूचना प्रकाशित कर दी जाये। दूसरी ओर, यदि उसके बारेमें जरा भी शंका हो तो मैं जाँचकी माँग करता हूँ।

मैं कांग्रेसके नियमों, २२ अगस्त, १८९५ को समाप्त होनेवाले पहले वर्षके सदस्योंकी सूची और पहली वार्षिक कार्रवाईकी एक-एक नकल इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

अगर और किसी जानकारीकी आवश्यकता हो तो वह देनेमें मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
(ह०) मो० क० गांधी
अ० मन्त्री, ने० भा० कां०

[अंग्रेजीसे]

सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम नेटालके गवर्नरके ३० नवम्बर, १८९५ के खरीता नं० १२८ का सहपत्र नं० १।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० १७९, जिल्द १९१।

६६. प्रार्थनापत्र : श्री चेम्बरलेनको

जोहानिसबर्ग
द० आ० ग०
नवम्बर २६, १८९५

सेवामें

परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार
लंदन

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी
भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे इस प्रार्थनापत्रके द्वारा आदरके साथ सम्राज्ञी-सरकारके सामने फरियादके लिए उपस्थित हो रहे हैं। प्रार्थियोंका निवेदन दक्षिण आफ्रिकी

गणराज्यकी संसद द्वारा ७ अक्तूबर, १८९५ को स्वीकृत प्रस्तावके बारेमें है। प्रस्ताव सम्राज्ञी-सरकार और गणराज्य-सरकारके बीच हुई सन्धिकी पुष्टि करके गणराज्यवासी तमाम ब्रिटिश प्रजाजनोंको वैयक्तिक सैनिक सेवासे मुक्त करता है। अपवाद यह रखा गया है कि "ब्रिटिश प्रजाजन"का अर्थ "गोरे लोग" माना जायेगा।

प्रस्ताव पढ़नेपर प्रार्थियोंने २२ अक्तूबर, १८९५ को आपको एक तार भेजा था। उसमें उन्होंने गोरे और काले ब्रिटिश प्रजाजनोंके बीच बरते गये भेद-भावपर विरोध प्रकट किया था।

स्पष्ट है कि इस अपवादका लक्ष्य दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें रहनेवाले भारतीयोंको ही बनाया गया है।

प्रार्थी आपका ध्यान इस वस्तुस्थितिकी ओर आकर्षित करते हैं कि स्वयं सन्धिमें "ब्रिटिश प्रजाजन" शब्दोंका कोई विशेष अर्थ नहीं किया गया है। और हमारा निवेदन है कि उक्त प्रस्ताव द्वारा सन्धिको पूर्ण रूपमें स्वीकार करनेके बजाय उसमें संशोधन कर दिया गया है। यह एक कारण ही ऐसा है, जिससे प्रार्थी निश्चय महसूस करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकार इस संशोधित पुष्टीकरणको मंजूर नहीं करेगी।

प्रस्तावके द्वारा भारतीयोंको अनावश्यक रूपमें जिस अपमानका पात्र बनाया गया है, उसकी चर्चा प्रार्थी नहीं करेंगे।

ब्रिटिश प्रजाजनोंको सैनिक सेवासे मुक्त करनेका जो कारण बताया गया था वह मुख्य रूपसे यह था कि ब्रिटिश प्रजाजनोंको पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं और गणराज्यमें वे बाधाओं और निषेधोंके पात्र हैं; इसलिए उन्हें नागरिकों (बर्गरों)के साथ सैनिक सेवा करनेके लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। जिस समय हलचल हो रही थी उस समय खुल्लमखुल्ला कहा गया था कि अगर विदेशियों (एटलैंडर्स)को सिर्फ नागरिक मान लिया जाये और मताधिकार दे दिया जाये तो वे हर्षके साथ मालोबोच-युद्धमें मदद करेंगे।

इसलिए, अगर यूरोपीय या, जैसा कि प्रस्तावमें कहा गया है, "गोरे" ब्रिटिश प्रजाजनोंको उनकी राजनीतिक बाधाओं और निषेधोंके कारण मुक्त किया जाता है, तो सादर निवेदन है, भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंको तो और भी ज्यादा मुक्त किया जाना चाहिए। कारण, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें भारतीय न सिर्फ राजनीतिक अधिकारोंसे वंचित हैं, बल्कि उन्हें माल-असबाबसे ज्यादा कुछ समझा नहीं जाता। प्रस्ताव इस वस्तुस्थितिका एक और संकेत है।

अन्तमें, निवेदन है कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको निरन्तर उत्पीड़ित किया जा रहा है। उपनिवेश, स्वतन्त्र राज्य तथा, यहाँतक कि, वलावायो व अन्यत्रके नये प्रदेश भी इससे मुक्त नहीं हैं। भारतीयोंपर पहले ही आम तौर-पर भारी प्रतिबंध लदे हुए हैं और प्रार्थी तथा उनके देशभाई सम्राज्ञी-सरकारके हस्तक्षेप द्वारा उन्हें दूर करानेके प्रयत्न कर ही रहे हैं। इन सब दृष्टियोंसे हम हार्दिक प्रार्थना और दृढ़ आशा करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकी सरकारके भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर और भी अधिक प्रतिबन्ध लगानेके इस नये प्रयत्नको बरदाश्त नहीं किया जायेगा।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि।

एम० सी० कमरुद्दीन
अब्दुल गनी
मुहम्मद इस्माइल
आदि–आदि

[अंग्रेजीसे]

सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम दक्षिण आफ्रिका-स्थित उच्चायुक्तके १० दिसम्बर, १८९५ के खरीता नं० ६९२ का सहपत्र।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० ४१७, जिल्द १५१।

६७. भारतीयोंका मताधिकार

दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक अंग्रेजके नाम अपील

बीचग्रोव, डर्बन
दिसम्बर १६, १८९५

भारतीयोंके मताधिकारके प्रश्नने, जहाँतक समाचारपत्रोंका सम्बन्ध है, इस उपनिवेशको — नहीं, सारे दक्षिण आफ्रिकाको विक्षुब्ध कर दिया है। इसलिए इस अपीलके सम्बन्धमें कोई कैफियत देनेकी जरूरत नहीं है। इसके द्वारा दक्षिण आफ्रिकावासी प्रत्येक अंग्रेजके सामने, यथासम्भव संक्षेपमें, भारतीय मताधिकारकी बाबत भारतीयोंका एक दृष्टिकोण पेश करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

भारतीयोंका मताधिकार छीननेके पक्षमें कुछ दलीलें ये हैं:

(१) भारतीय भारतमें मताधिकारका उपभोग नहीं करते।
(२) दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीय सबसे निचले दर्जेके भारतीयोंके प्रतिनिधि हैं। वास्तवमें वे भारतका तलछट हैं।
(३) भारतीय समझते ही नहीं कि मताधिकार है क्या।
(४) भारतीयोंको मताधिकार नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि देशी लोगोंको भारतीयोंके बराबर ही ब्रिटिश प्रजा होनेपर भी कोई मताधिकार प्राप्त नहीं है।
(५) भारतीयोंका मताधिकार देशी लोगोंके हितार्थ छीन लेना चाहिए।
(६) यह उपनिवेश गोरोंका देश होगा और रहेगा, काले लोगोंका नहीं। और भारतीयोंका मताधिकार तो यूरोपीय मतोंको सर्वथा निगल जायेगा, और भारतीयोंको राजनीतिक प्रभुता प्रदान कर देगा।

मैं इन आपत्तियोंकी क्रमसे विवेचना करूँगा।

१

बारंबार कहा गया है कि भारतीय जिन विशेषाधिकारोंका उपभोग भारतमें करते हैं उनसे ऊँचे विशेषाधिकारोंका दावा न तो वे कर सकते हैं और न उन्हें करना चाहिए। और यह कि, भारतमें उन्हें किसी भी प्रकारका मताधिकार प्राप्त नहीं है।

अब, पहली बात तो यह है कि भारतीय जिन विशेषाधिकारोंका उपभोग भारतमें करते हैं उनसे ऊँचे विशेषाधिकारोंका दावा वे नहीं कर रहे हैं। यह याद रखना चाहिए, भारतमें वैसे ही ढंगका शासन नहीं है, जैसा कि यहाँ है। इसलिए साफ है कि इन दोनों शासनोंके बीच कोई तुलना नहीं हो सकती। इसके जवाबमें कहा जा सकता है कि भारतीयोंको भारतमें उसी तरहका शासन प्राप्त करनेतक ठहरना चाहिए। परन्तु इस जवाबसे काम नहीं चलेगा। इस सिद्धान्तके अनुसार तो यह तर्क भी किया जा सकता है कि नेटाल आनेवाले किसी व्यक्तिको तबतक मताधिकार नहीं मिल सकता जबतक कि वह अपने देशमें उसी तरह और उन्हीं परिस्थितियोंमें मताधिकारका उपभोग न करता रहा हो — अर्थात्, जबतक उस देशका मताधिकार कानून वही न हो, जो कि नेटालमें है। यदि ऐसा सिद्धान्त सब लोगोंपर लागू किया जाये तो सरलतासे देखा जा सकता है कि इंग्लैंडसे आनेवाले किसी व्यक्तिको भी
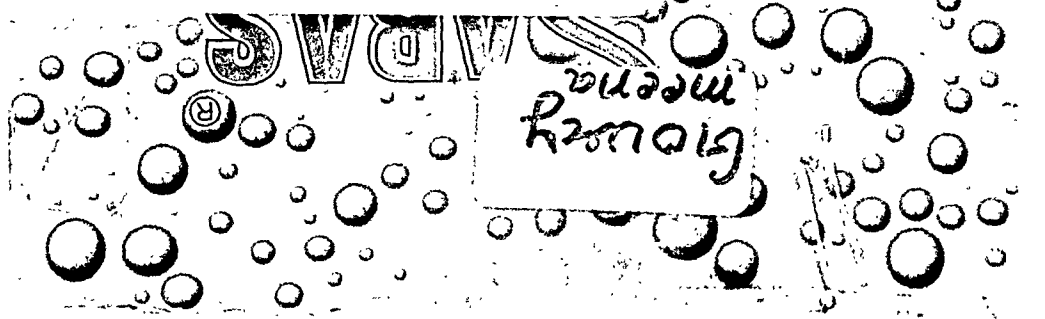
नेटालमें मताधिकार नहीं मिल सकता। कारण, वहाँका मताधिकार कानून वही नहीं है, जो नेटालमें है। जर्मनी और रूससे आनेवाले लोगोंको तो वह और भी नहीं मिल सकता। वहाँ तो कमोबेश निरंकुश शासनका बोलवाला है। इसलिए सच्ची और एकमात्र कसौटी यह नहीं कि भारतीयोंको भारतमें मताधिकार प्राप्त है या नहीं, बल्कि यह है कि वे प्रातिनिधिक शासनका तत्त्व समझते हैं या नहीं।

परन्तु भारतमें उन्हें मताधिकार *प्राप्त* है। सच है कि वह अत्यन्त सीमित है, फिर भी है तो सही। भारतीयोंकी प्रातिनिधिक शासनको समझने और सराहनेकी योग्यताको विधानपरिषदें मान्य करती हैं। वे प्रातिनिधिक संस्थाओंके बारेमें भारतीयोंकी योग्यताकी स्थायी साक्षी हैं। भारतीय विधानपरिषदोंके कुछ सदस्य नामजद और कुछ निर्वाचित होते हैं। भारतमें विधानपरिषदोंकी स्थिति नेटालकी पिछली विधानपरिषदकी स्थितिसे बहुत भिन्न नहीं है। और भारतीयोंपर इन परिषदोंमें प्रवेश करनेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वे यूरोपीयोंके साथ बराबरीकी शर्तोंपर चुनाव लड़ते हैं।

बम्बईकी विधानपरिषदके सदस्योंके पिछले चुनावमें एक चुनाव-क्षेत्रसे एक उम्मीदवार यूरोपीय था और एक भारतीय था।

भारतकी सब विधानपरिषदोंमें भारतीय सदस्य मौजूद हैं। चुनावोंमें भारतीय उसी तरह मतदान करते हैं, जैसे कि यूरोपीय। बेशक मताधिकार सीमित है। वह घुमावदार भी है। उदाहरणके लिए, बम्बई निगम (कारपोरेशन) विधानपरिषदके लिए एक सदस्यका चुनाव करता है और निगमके सदस्योंका चुनाव करदाता करते हैं, जो अधिकतर भारतीय हैं।

बम्बई म्यूनिसिपल चुनावोंमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या हजारों है। उपनिवेशवासी भारतीय व्यापारी उनके ही वर्गसे या उनके जैसे किसी दूसरे वर्गसे आये हैं।

फिर, बड़ेसे बड़े महत्त्वकी नौकरियाँ भारतीयोंके लिए खुली हैं। क्या इससे यह मालूम होता है कि उन्हें प्रातिनिधिक शासनको समझनेके अयोग्य माना गया है? एक भारतीय मुख्य न्यायाधीश हुआ है। यह एक ऐसी जगह है जिसका वेतन ६०,००० रुपये या ६,००० पौंड सालाना होता है। अभी हालमें ही यहाँके अधिकतर व्यापारियोंके ही वर्गके एक भारतीयको बम्बई उच्च न्यायालयका उप-न्यायाधीश नियुक्त किया गया है।

एक तमिल सज्जन मद्रास उच्च न्यायालयके उप-न्यायाधीश हैं। यहाँके कुछ गिरमिटिया भारतीय उनकी ही जातिके हैं। बंगालमें एक भारतीय सज्जनको सिविल कमिश्नरका अत्यन्त उत्तरदायी कार्य सौंपा गया है।

भारतीयोंने कलकत्ता और बम्बई विश्वविद्यालयोंमें उपकुलपतिके आसनोंको भी शोभित किया है।

सिविल सर्विस [ऊँचे हाकिमोंकी नौकरियों]की प्रतियोगिताओंमें भारतीय यूरोपीयोंके साथ बराबरीकी शर्तोंपर शामिल होते हैं।

बम्बई निगम (कारपोरेशन) के वर्तमान अध्यक्ष एक भारतीय हैं। उनका चुनाव निगमके सदस्योंके द्वारा हुआ है।

सभ्य जातियोंके बराबर होनेकी भारतीयोंकी योग्यताका ताजेसे ताजा प्रमाण लंदन *टाइम्स*के २३ अगस्त, १८९५ के अंकसे प्राप्त होता है:

सभी जानते हैं, *टाइम्स*के "भारतीय मामलात"के लेखक और कोई नहीं, सर विलियम विल्सन हंटर ही हैं। शायद वे भारतीय इतिहासके सबसे बड़े लेखक हैं। उनका कथन है:

> यह सम्मान साहसके जिन कार्यों और, उनसे भी अधिक उज्ज्वल सहनशीलताके जिन उदाहरणोंसे कमाया गया, उनका वर्णन आश्चर्यमय आनन्दसे पुलकित हुए बिना पढ़ा नहीं जा सकता। 'आर्डर आफ मेरिट' [वीरताका पदक] पानेवाले एक सिपाहीके शरीरपर कमसे कम इकतीस घाव थे। *इंडियन डेली न्यूज़* का कथन है कि "शायद घावोंकी यह संख्या अपूर्व थी।" दूसरे एक सिपाहीको उस दर्रेमें गोली लगी थी, जिसमें राँसकी टुकड़ी तहस-नहस हुई थी। उसने चुपकेसे शरीरको टटोल-टटोलकर गोलीको ढूँढ़ा और फिर दर्दकी बिना परवाह किये दोनों हाथोंसे दबा-दबाकर उसे ऊपर तक सरकाया। आखिर जब वह अँगुलियोंकी पकड़में आई तो उसे बाहर निकाल लिया। खूनकी धारा बह चली। परन्तु उसने फिरसे कंधेपर राइफल रखी और इक्कीस मीलका कूच पूरा किया।

परन्तु जिन भारतीय सैनिकोंने मान्यता कमाई है, उनकी वीरता अगर हमारे अन्दर अभिमान जगाती है कि हमारे बन्धु-प्रजाजन ऐसे हैं, तो उतने ही साहस और दृढ़ताके दूसरे मामलोंमें भिक्षाके बतौर दिये जानेवाले

नेटालमें मताधिकार नहीं मिल सकता। कारण, वहाँका मताधिकार कानून वही नहीं है, जो नेटालमें है। जर्मनी और रूससे आनेवाले लोगोंको तो वह और भी नहीं मिल सकता। वहाँ तो कमोबेश निरंकुश शासनका बोलबाला है। इसलिए सच्ची और एकमात्र कसौटी यह नहीं कि भारतीयोंको भारतमें मताधिकार प्राप्त है या नहीं, बल्कि यह है कि वे प्रातिनिधिक शासनका तत्त्व समझते हैं या नहीं।

परन्तु भारतमें उन्हें मताधिकार *प्राप्त* है। सच है कि वह अत्यन्त सीमित है, फिर भी है तो सही। भारतीयोंकी प्रातिनिधिक शासनको समझने और सराहनेकी योग्यताको विधानपरिषदें मान्य करती हैं। वे प्रातिनिधिक संस्थाओंके बारेमें भारतीयोंकी योग्यताकी स्थायी साक्षी हैं। भारतीय विधानपरिषदोंके कुछ सदस्य नामजद और कुछ निर्वाचित होते हैं। भारतमें विधानपरिषदोंकी स्थिति नेटालकी पिछली विधानपरिषदकी स्थितिसे बहुत भिन्न नहीं है। और भारतीयोंपर इन परिषदोंमें प्रवेश करनेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वे यूरोपीयोंके साथ बराबरीकी शर्तोंपर चुनाव लड़ते हैं।

बम्बईकी विधानपरिषदके सदस्योंके पिछले चुनावमें एक चुनाव-क्षेत्रसे एक उम्मीदवार यूरोपीय था और एक भारतीय था।

भारतकी सब विधानपरिषदोंमें भारतीय सदस्य मौजूद हैं। चुनावोंमें भारतीय उसी तरह मतदान करते हैं, जैसे कि यूरोपीय। बेशक मताधिकार सीमित है। वह घुमावदार भी है। उदाहरणके लिए, बम्बई निगम (कारपोरेशन) विधानपरिषदके लिए एक सदस्यका चुनाव करता है और निगमके सदस्योंका चुनाव करदाता करते हैं, जो अधिकतर भारतीय हैं।

बम्बई म्यूनिसिपल चुनावोंमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या हजारों है। उपनिवेशवासी भारतीय व्यापारी उनके ही वर्गसे या उनके जैसे किसी दूसरे वर्गसे आये हैं।

फिर, बड़ेसे बड़े महत्त्वकी नौकरियाँ भारतीयोंके लिए खुली हैं। क्या इससे यह मालूम होता है कि उन्हें प्रातिनिधिक शासनको समझनेके अयोग्य माना गया है? एक भारतीय मुख्य न्यायाधीश हुआ है। यह एक ऐसी जगह है जिसका वेतन ६०,००० रुपये या ६,००० पौंड सालाना होता है। अभी हालमें ही यहाँके अधिकतर व्यापारियोंके ही वर्गके एक भारतीयको बम्बई उच्च न्यायालयका उप-न्यायाधीश नियुक्त किया गया है।

एक तमिल सज्जन मद्रास उच्च न्यायालयके उपन्यायाधीश हैं। यहांके कुछ गिरमिटिया भारतीय उनकी ही जातिके हैं। बंगालमें एक भारतीय सज्जनको सिविल कमिश्नरका अत्यन्त उत्तरदायी कार्य सौंपा गया है।

भारतीयोंने कलकत्ता और बम्बई विश्वविद्यालयोंमें उपकुलपतिके आसनोंको भी शोभित किया है।

सिविल सर्विस [ऊँचे हाकिमोंकी नौकरियों]की प्रतियोगिताओंमें भारतीय यूरोपीयोंके साथ बराबरीकी शर्तोंपर शामिल होते हैं।

बम्बई निगम (कारपोरेशन) के वर्तमान अध्यक्ष एक भारतीय हैं। उनका चुनाव निगमके सदस्योंके द्वारा हुआ है।

सभ्य जातियोंके बराबर होनेकी भारतीयोंकी योग्यताका ताजेसे ताजा प्रमाण लंदन *टाइम्स*के २३ अगस्त, १८९५ के अंकसे प्राप्त होता है:

सभी जानते हैं, *टाइम्स*के "भारतीय मामलात"के लेखक और कोई नहीं, सर विलियम विल्सन हंटर ही हैं। शायद वे भारतीय इतिहासके सबसे बड़े लेखक हैं। उनका कथन है:

> यह सम्मान साहसके जिन कार्यों और, उनसे भी अधिक उज्ज्वल सहनशीलताके जिन उदाहरणोंसे कमाया गया, उनका वर्णन आश्चर्यमय आनन्दसे पुलकित हुए बिना पढ़ा नहीं जा सकता। 'आर्डर आफ मेरिट' [वीरताका पदक] पानेवाले एक सिपाहीके शरीरपर कमसे कम इकतीस घाव थे। *इंडियन डेली न्यूज़* का कथन है कि "शायद घावोंकी यह संख्या अपूर्व थी।" दूसरे एक सिपाहीको उस दर्रेमें गोली लगी थी, जिसमें रॉसकी टुकड़ी तहस-नहस हुई थी। उसने चुपकेसे शरीरको टटोल-टटोलकर गोलीको ढूंढ़ा और फिर दर्दकी बिना परवाह किये दोनों हाथोंसे दबा-दबाकर उसे ऊपर तक सरकाया। आखिर जब वह अँगुलियोंकी पकड़में आई तो उसे बाहर निकाल लिया। खूनकी धारा बह चली। परन्तु उसने फिरसे कंधेपर राइफल रखी और इक्कीस मीलका कूच पूरा किया।
>
> परन्तु जिन भारतीय सैनिकोंने मान्यता कमाई है, उनकी वीरता अगर हमारे अन्दर अभिमान जगाती है कि हमारे बन्धु-प्रजाजन ऐसे हैं, तो उतने ही साहस और दृढ़ताके दूसरे मामलोंमें भिक्षाके बतौर दिये जानेवाले

तुच्छ पारितोषिक बहुत अलग तरहकी भावनाओंको जाग्रत करते हैं। "कुरामकी लड़ाईमें वीरता और धीरता दिखानेका श्रेय" चौथी बंगाल इन्फेंट्री [पैदल सेना]के दो भिश्तियोंको मिला था। युद्ध-खरीतोंमें विशेष सम्मानके साथ केवल उनके ही नामोंका उल्लेख किया गया था। सचमुच उस भयानक घाटीमें उन्होंने अपने साथियोंके प्रति जिस भव्य आत्मत्यागका परिचय दिया था, उससे बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। स्वर्गीय कप्तान बेयर्डको चितरालके किलेमें ले जानेवाली टुकड़ीके साथ रहते समय "विशिष्ट वीरता और निष्ठा दिखानेके कारण" उसी टुकड़ीके एक अन्य आदमीका भी उल्लेख किया गया था। . . . सच बात तो यह है कि भारतीय योग्य सह-प्रजाजन माने जानेका अधिकार अनेक तरीकोंसे कमा रहे हैं। समर-भूमि हमेशासे विभिन्न जातियोंके बीच सम्मानपूर्ण समानता स्थापित करनेका सरल साधन रही है। परन्तु भारतीय तो नागरिक-जीवनके मंदतर और कठिनतर तरीकोंसे भी हमारा सम्मान प्राप्त करनेका अधिकार सिद्ध कर रहे हैं। *तीन वर्ष पूर्व भारतीय विधानपरिषदोंको आंशिक चुनावके आधारपर बढ़ानेका जो प्रयोग किया गया था, उससे बड़ा प्रयोग अधीन राज्योंके वैधानिक शासनमें पहले कभी नहीं हुआ था।* (अक्षर-भेद मैंने किया है)। बंगालमें वह प्रयोग जितना शंकाजनक मालूम होता था उतना भारतके किसी दूसरे भागमें नहीं था। बंगालके लेफ्टिनेंट गवर्नरके क्षेत्रकी आबादी मद्रास और बम्बई प्रदेशोंकी सम्मिलित आबादीके बराबर थी। शासनकी दृष्टिसे उसकी व्यवस्था करना भी बहुत कठिन था।

सर चार्ल्स इलियटने लार्ड सैलिसबरीके कानून द्वारा बढ़ाये गये विधान-मण्डलसे इस उलझनपूर्ण कानून (बंगाल सैनीटरी ड्रेनेज एक्ट)को स्वीकार करानेमें न केवल दलबन्द विरोधके अभावकी, बल्कि मूल्यवान सक्रिय सहायता प्राप्त होनेकी खुले दिलसे साक्षी दी है। बहुत-सी बहसें मददगार रहीं। और जहाँतक बंगालका — उस प्रान्तका सम्बन्ध है, जहाँ निर्वाचन-पद्धति बड़ीसे बड़ी कठिनाइयोंसे व्याप्त मालूम होती थी, वहाँ भी *एक कड़ी कसौटीके बाद प्रयोग सफल सिद्ध हो गया है।* (अक्षर-भेद मैंने किया है)।

२

दूसरी आपत्ति यह है कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय सबसे निचले दर्जेके भारतीयोंमें से हैं। यह कथन सही हो नहीं सकता। व्यापारी समाजके बारेमें तो सही है ही नहीं, यदि सारेके सारे गिरमिटिया भारतीयोंके बारेमें कहा जाये तो भी वैसा ही है। गिरमिटिया भारतीयोंमें से कुछ तो भारतकी सबसे ऊँची जातियोंके लोग हैं। बेशक वे सभी बहुत गरीब हैं। उनमें से कुछ भारतमें आवारा थे। बहुत-से लोग सबसे निचले दर्जेके भी हैं। परन्तु मैं, किसीको चोट पहुँचानेकी इच्छा बिना, कहनेकी इजाजत लूँगा कि अगर नेटालके भारतीय उच्चतम श्रेणीके नहीं हैं तो यूरोपीय भी तो वैसे नहीं हैं। मेरा निवेदन है कि इस बातको अनुचित महत्त्व दे दिया गया है। अगर भारतीय लोग आदर्श भारतीय नहीं हैं तो सरकारका कर्तव्य है कि वह उन्हें वैसे बनाये। और अगर पाठक जानना चाहते हों कि आदर्श भारतीय कैसे होते हैं तो मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे मेरी "खुली चिट्ठी" पढ़ें। उसमें यह बतानेके लिए अनेक अधिकारी व्यक्तियोंके कथन संकलित कर दिये गये हैं कि भारतीय "आदर्श" यूरोपीयोंके बराबर ही सभ्य हैं। और जैसे यूरोपमें निचलेसे निचले दर्जेके यूरोपीयके लिए ऊँचेसे ऊँचे दर्जेतक उठ सकना सम्भव है, ठीक वैसे ही भारतमें निचलेसे निचले दर्जेके भारतीयके लिए भी सम्भव है। दुराग्रहपूर्ण उपेक्षा या प्रतिगामी कानूनोंसे उपनिवेशके भारतीय और भी अधिक नीचे गिरते जायेंगे और इस तरह, हो सकता है, वे सच-मुच खतरनाक बन जायें, जो वे पहलेसे नहीं हैं। दुरियाये जानेसे, तिरस्कृत किये जानेसे, कोसे जानेसे वे निस्सन्देह वैसा ही करेंगे और वैसे ही बन जायेंगे, जैसा कि वैसी ही परिस्थितियोंमें दूसरोंने किया है। प्रेम और सद्-व्यवहारसे किसी भी राष्ट्रके किसी भी अन्य व्यक्तिके समान ही ऊँचे उठनेका सामर्थ्य उनमें है। जबतक उन्हें वे अधिकार भी नहीं दिये जाते जो भारतमें उन्हें प्राप्त हैं, या ऐसी ही परिस्थितियोंमें प्राप्त होंगे, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है।

३

यह कहना कि भारतीय मताधिकारको समझते ही नहीं, भारतके पूरे इतिहासकी उपेक्षा करना है। भारतीय प्राचीनतम कालसे सच्चे अर्थके प्रति-निधित्वको समझते और उसकी कद्र करते आये हैं। उसी सिद्धान्त — पंचायतके
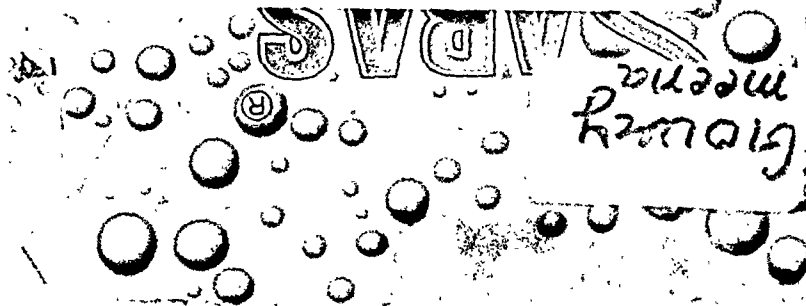
सिद्धान्त — के अनुसार भारतीयोंके सब कामकाज चलते हैं। वे अपने-आपको पंचायतके सदस्य मानते हैं। और यह पंचायत सचमुचमें वह सारा समाज होता है, जिसमें वे उस समय रहते हैं। ऐसा करनेकी उस शक्तिने — लोक-सत्ताके तत्त्वको पूरी तरह समझनेकी उस शक्तिने — उन्हें दुनियामें सबसे द्रोह-रहित और सबसे सीधे लोग बना दिया है। शताब्दियोंका विदेशी शासन और अत्याचार उन्हें समाजके खतरनाक सदस्य बनानेमें असफल रहा है। वे जहाँ भी जाते हैं और जैसी भी हालतोंमें होते हैं, अपने अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित बहुमतके निर्णयके सामने सिर झुका लेते हैं। कारण यह है कि वे जानते हैं, उनके ऊपर तबतक कोई अपनी सत्ता नहीं चला सकता, जबतक कि समाजके बहुसंख्य लोग उसे उस स्थानपर बरदाश्त न करते हों। यह तत्त्व भारतीयोंके हृदयमें इतना गहरा अंकित है कि भारतीय देशी राज्योंके अत्यन्त स्वेच्छाचारी राजा भी महसूस करते हैं कि उन्हें प्रजाके लिए शासन करना है। हाँ, यह सही है कि सभी राजा इस सिद्धान्तके अनुसार नहीं चलते। इसके कारणोंकी चर्चा यहाँ करनेकी जरूरत नहीं है। और सबसे अधिक आश्चर्यचकित करनेवाली बात तो यह है कि जब प्रत्यक्षतः राजतन्त्र होता है तब भी पंचायत सबसे ऊँची संस्था मानी जाती है। उसके सदस्योंके कार्योंका बहुमतकी इच्छाके अनुसार नियमन किया जाता है। इस दावेके प्रमाणोंके लिए मैं पाठकोंसे निवेदन करूँगा कि वे विधानसभाको दिया गया मताधिकार-प्रार्थनापत्र पढ़ लें।

४

"भारतीयोंको मताधिकार नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि देशी लोगोंको भारतीयोंके बराबर ही ब्रिटिश प्रजा होनेपर भी कोई मताधिकार प्राप्त नहीं है।"

यह आपत्ति जिस रूपमें मैंने अखबारोंमें देखी है, उसी रूपमें यहाँ पेश कर दी है। नेटालमें तो भारतीय पहलेसे ही मताधिकारका उपभोग कर रहे हैं। इसलिए यह आपत्ति सत्यके विपरीत है। वास्तवमें अब जो प्रयत्न किया जा रहा है वह तो उनसे मताधिकार छीननेका है।

मैं तुलना नहीं करूँगा। केवल ठोस वास्तविकताओंका निवेदन कर दूँगा। देशी लोगोंके मताधिकारका नियन्त्रण एक विशेष कानूनके आधारपर होता है, जो कुछ वर्षोंसे अमलमें लाया जा रहा है। वह कानून भारतीयोंपर

लागू नहीं है। हमारा यह झगड़ा भी नहीं है कि वह भारतीयोंपर लागू किया जाये। भारतमें भारतीयोंका मताधिकार (वह जो कुछ भी हो) किसी विशेष कानून द्वारा नियन्त्रित नहीं है। वह कानून सबपर एक-जैसा लागू है। भारतीयोंको उनकी स्वतन्त्रताका अधिकारपत्र प्राप्त है, जो १८५८ का घोषणापत्र है।

५

मताधिकार छीननेके पक्षमें ताजीसे ताजी दलील यह दी गई है कि भारतीयोंके मताधिकारसे उपनिवेशके देशी लोगोंको हानि पहुँचेगी। ऐसा कैसे होगा, सो बिलकुल बताया नहीं गया। परन्तु मैं मानता हूँ कि भारतीय-मताधिकारके विरोधी लोग भारतीयोंके खिलाफ इस पिटी-पिटाई आपत्तिका आश्रय इस कथित आधारपर लेते हैं कि भारतीय देशी लोगोंको शराब मुहैया कराते हैं और इससे देशी लोग बिगड़ते हैं। अब, मेरा निवेदन है कि भारतीय-मताधिकारसे इसमें कोई फर्क नहीं पड़ सकता। अगर भारतीय शराब मुहैया कराते हैं तो वे मताधिकारके कारण ज्यादा शराब मुहैया न कराने लगेंगे। भारतीयोंके मत इतने प्रबल तो कभी हो ही नहीं सकते कि वे उपनिवेशकी देशी लोगों-सम्बन्धी नीतिको प्रभावित कर दें। इस नीतिपर तो १० डाउनिंग स्ट्रीट-स्थित ब्रिटिश सरकार डाहके साथ चौकसी रखती है, और बहुत हदतक इसका नियन्त्रण भी उसके ही द्वारा होता है। सच तो यह है कि इस मामलेमें डाउनिंग स्ट्रीटकी सरकारके आगे यूरोपीय उपनिवेशियोंकी भी कुछ नहीं चलती। परन्तु हम जरा तथ्योंको देखें। वर्तमान भारतीय मतदाताओंकी स्थिति बतानेवाली जो विश्लेषणात्मक तालिका नीचे दी गई है, उससे मालूम होता है कि उनमें सबसे बड़ी और बहुत बड़ी संख्या व्यापारियोंकी है। सभी जानते हैं कि ये व्यापारी खुद शराब बिलकुल नहीं पीते। इतना ही नहीं, ये तो चाहेंगे कि उपनिवेशसे पूरी तरह शराब निकल ही जाये। और अगर मतदाता-सूची ऐसी ही रहे तो यदि देशी लोगों-सम्बन्धी नीतिपर उनके मतका कोई असर हो सकता है, तो वह अच्छा ही होगा। परन्तु भारतीय प्रवास आयोग (इंडियन इमिग्रेशन कमिशन), १८८५-१८८७ की रिपोर्टके निम्नलिखित उद्धरणोंसे मालूम होता है कि इस विषयमें भारतीय यूरोपीयोंकी अपेक्षा बुरे नहीं हैं। ये उद्धरण देनेमें मेरा तुलना करनेका कोई इरादा नहीं है।

उसको मैंने, जहाँतक हो सकता है, टालनेका प्रयत्न किया है। इनके द्वारा मैं अपने देशवासियोंकी सफाई देना भी नहीं चाहता। अगर कोई भारतीय शराब पिये या देशी लोगोंको शराब देता पाया जाये तो मुझसे ज्यादा दुःख किसीको न होगा। मैं पाठकोंको नम्रतापूर्वक आश्वासन देता हूँ कि मेरी एकमात्र इच्छा यह दिखानेकी है कि इस विशेष आधारपर भारतीयोंके मताधिकारके सम्बन्धमें आपत्ति करना केवल एक छिछली बात है, और यह जाँचपर खरी नहीं उतरती।

आयुक्तोंको दूसरी बातोंके साथ भारतीयोंके मद्यपान और उससे होनेवाले अपराधोंपर खास तौरसे रिपोर्ट देनेका काम सौंपा गया था। उन्होंने अपनी रिपोर्टके पृष्ठ ४२ और ४३ पर कहा है :

> इस विषयपर हमने बहुत-से लोगोंकी गवाही ली है। उनकी गवाही और हमारे सामने आनेवाले अपराधोंके आँकड़ोंसे हमें यह विश्वास नहीं हुआ कि मद्यपान और उससे होनेवाले अपराधोंका अनुपात समाजके दूसरे लोगोंकी अपेक्षा, जिनके खिलाफ ऐसा कोई प्रतिबन्धक कानून बनानेका प्रस्ताव नहीं किया गया, प्रवासी भारतीयोंमें अधिक है।
>
> हमें कोई शंका नहीं, इस आरोपमें बहुत-कुछ सत्य है कि देशीयोंको भारतीयोंके द्वारा आसानीसे ठर्रा शराब मिल जाती है। . . . परन्तु वे शराब बेचनेवाले गोरे लोगोंसे इस विषयमें ज्यादा अपराधी हैं — इसमें हमें शंका अवश्य है।
>
> सावधानीसे देखनेपर पता चला है कि जो लोग भारतीय प्रवासियोंके खिलाफ देशी लोगोंको शराब बेचनेकी शिकायतें सबसे ज्यादा जोरोंसे करते हैं, वे वही लोग हैं, जो खुद देशीयोंको शराब बेचते हैं; शराब बेचनेवाले भारतीयोंकी प्रतिद्वंद्विताके कारण उनके व्यापारमें बाधा पड़ती है और उनका मुनाफा कम होता है।

उपर्युक्त कथनके बाद जो कुछ लिखा गया है उसको पढ़ना ज्ञानवर्धक है। वह बताता है कि, आयुक्तोंके मतसे, भारतमें भारतीय मद्यपानकी लतसे मुक्त हैं; यहाँ आकर ही वे उसे सीखते हैं। वे कैसे और क्यों नेटालमें शराब पीने लगते हैं, इस प्रश्नका उत्तर मैं पाठकों पर छोड़ता हूँ।

आयुक्तोंने पृष्ठ ८३ पर कहा है :

हमें विश्वास हो गया है कि नेटालके भारतीय, और खास तौरसे स्वतन्त्र भारतीय, अपने देशकी अपेक्षा यहां शरावके शिकार ज्यादा होते हैं। फिर भी हमारे सामने ऐसा कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं है कि उपनिवेशवासी दूसरी जातियोंकी अपेक्षा भारतीयोंमें फट्टर शराबियों और उपद्रवियोंका शतमान अधिक है। यह अंकित कर देनेको हम वाध्य हैं।

सुपरिंटेंडेंट अलेक्ज़ैंडरने आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा है (पृ० १४६) :

भारतीयोंको इस समय एक अपरिहार्य वुराई मानना होगा। मजदूरोंके रूपमें उनके विना हमारा काम नहीं चल सकता। हां, वे दूकानदार न हों तो काम चल सकता है। गुण-अवगुणमें वे देशी लोगोंके वरावर ही हैं; परन्तु उन्होंने अपना वहुत सुधार किया है, जव कि देशी लोग वहुत ज्यादा नीचे गिर गये हैं। अव करीव-करीव सभी चोरियां देशी लोग करते हैं। जहांतक मेरा अनुभव है, देशी लोग भारतीयोंसे, और दूसरे जो भी लोग उन्हें दें उन सवसे, शराव लेते हैं। इस वारेमें मैंने कुछ गोरे लोगोंको भारतीयोंके वरावर ही वुरा पाया है। ये वेकार, आवारा लोग सिर्फ ६ पेन्स पानेके लिए देशी लोगोंको शरावकी वोतल थमा देते हैं।

मैं नहीं समझता कि नेटालकी वर्तमान हालतमें भारतीय आवादीको निकालकर उसके स्थानकी पूर्ति यूरोपीयोंसे कर लेना सम्भव है। मैं नहीं मानता कि हम यह कर सकते हैं। मेरे पास जो कर्मचारी हैं उनसे मैं ३,००० भारतीयोंको सँभाल सकता हूँ। परन्तु अगर उनकी जगह ३,००० गोरे मजदूर होते तो मेरे लिए उन्हें सँभालना अशक्य होता. . . ।

पृष्ठ १४९ पर वे कहते हैं :

मैं देखता हूँ कि आम तौरपर लोग हरएक वुराई करने, मुर्गियां चुराने आदिका शक कुलियोंपर ही करते हैं। मगर सच वात यह नहीं है। मुर्गियां चुरानेके पिछले नौ मामलोंमें से सवका आरोप मेरे कार-पोरेशनके कुली भंगियोंपर मढ़ा गया था। मैंने देखा कि उन मुर्गियोंको चुरानेके अपराधमें दो देशी लोगों और तीन यूरोपीयोंको सजा दी गई।

मैं पाठकोंका ध्यान हालमें प्रकाशित देशी लोगों-सम्बन्धी सरकारी रिपोर्टकी ओर भी आकर्षित करूँगा। उसमें पाठक देखेंगे कि लगभग सभी मजिस्ट्रेट इस मतके हैं कि यूरोपीयोंके प्रभावसे देशी लोगोंके नैतिक चरित्रमें बुरा फर्क पड़ा है।

इन अकाट्य तथ्योंके होते हुए देशी लोगोंके ह्रासका सारा दोष भारतीयोंपर मढ़ देना क्या अन्याय नहीं है? १८९३ में शराब मुहैया करनेके अपराधमें बरोमें २८ यूरोपीयोंको सजा हुई थी। सजा पानेवाले भारतीयोंकी संख्या केवल तीन थी।

६

"यह देश गोरोंका देश होगा और रहेगा, काले लोगोंका नहीं। और भारतीयोंका मताधिकार तो यूरोपीयोंके मतोंको सर्वथा निगल जायेगा और भारतीयोंको नेटालमें राजनीतिक प्रभुता प्रदान कर देगा।"

इस कथनके पहले अंशकी चर्चा मैं नहीं करना चाहता। मैं मंजूर करता हूँ कि मैं उसे पूरी तरह समझता भी नहीं। तथापि, बादके अंशकी तहमें जो गलतफहमी है उसे मैं दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। मैं कहनेका साहस करता हूँ कि भारतीयोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको कभी भी निगल नहीं सकते। और यह कल्पना कि भारतीय राजनीतिक प्रभुताका हक माँगनेकी कोशिश कर रहे हैं, पिछले सारे अनुभवके विरुद्ध है। मुझे अनेक यूरोपीयोंके साथ इस प्रश्नपर बातचीत करनेका सौभाग्य मिला है। और लगभग सभीने इस मान्यतापर बहस की है कि उपनिवेशमें प्रत्येक व्यक्तिको एक मत देनेका अधिकार प्राप्त है। मताधिकारके लिए सम्पत्तिकी योग्यता आवश्यक है, यह उनके लिए नई जानकारी थी। इसलिए मताधिकार कानूनका योग्यता-सम्बन्धी अंश यहाँ उद्धृत करनेके लिए मुझे क्षमा मिलनी ही चाहिए :

> **जिन पुरुषोंको आगे बाद किया गया है उनको छोड़कर २१ वर्षकी आयुसे ऊपरका प्रत्येक पुरुष, जिसके पास ५० पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति हो, या जो किसी भी निर्वाचन-क्षेत्रमें १० पौंड सालानाकी सम्पत्ति किराये पर लिये हो, और जो आगे बताये हुए तरीके पर बाकायदा पंजीकृत (रजिस्टर्ड) हो, ऐसे जिलेके सदस्यके चुनावमें मत देनेका अधिकारी होगा। जब ऐसी किसी सम्पत्तिपर, जैसी कि ऊपर बताई गई है, एकसे अधिक लोग मालिक या किरायेदारके तौरपर काबिज हों और प्रत्येक कब्जेदारका नाम बाकायदा पंजीकृत हो, तो ऐसी सम्पत्तिकी बिनापर प्रत्येक**

कब्जेदारको मत देनेका अधिकार होगा। इसमें शर्त यह होगी कि सम्पत्तिका मूल्य, या किराया हो तो वह इतना हो कि अगर उसे सब संयुक्त कब्जेदारोंमें बराबर-बराबर बांट दिया जाये तो वह प्रत्येक कब्जेदारके लिए मत देनेका अधिकार प्राप्त करनेको काफी हो।

इससे स्पष्ट है कि मताधिकार प्रत्येक भारतीयको नहीं मिल सकता। और यूरोपीयोंकी तुलनामें ऐसे भारतीय उपनिवेशमें कितने हैं, जिनके पास ५० पौंडकी अचल सम्पत्ति हो, या जो १० पौंड सालानाकी सम्पत्ति किराये पर लिये हों? यह कानून लम्बे समयसे अमलमें है। और नीचेकी तालिकासे यूरोपीयों और भारतीयोंके मताधिकारके तुलनात्मक बलकी कल्पना हो जायेगी। मैंने यह तालिका *गज़टमें* प्रकाशित ताजीसे ताजी सूचियोंके आधारपर तैयार की है:

मतदाता

क्रम संख्या	*निर्वाचन-विभाग*		*यूरोपीय*	*भारतीय*
१.	पीटरमैरित्सबर्ग	...	१,५२१	८२
२.	अमगेनी ...	...	३०६	नहीं
३.	लायन्स रिवर	...	५११	नहीं
४.	इक्सोपो ...	...	५७३	३
५.	डर्बन ...	...	२,१००	१४३
६.	काउंटी आफ डर्बन	...	७७९	२०
७.	विक्टोरिया ...	...	५६६	१
८.	अमवोटी ...	...	४३८	१
९.	वीनेन ...	...	५२८	नहीं
१०.	क्लिप रिवर ...	...	५९१	१
११.	न्यूकैसिल ...	...	९१७	नहीं
१२.	अलेक्ज़ैंड्रा ...	...	२०१	नहीं
१३.	आल्फ्रेड ...	...	२७८	नहीं
		योग	९,३०९	२५१
		कुल योग		९,५६०

इस तरह, ९,५६० दर्जशुदा मतदाताओंमें सिर्फ २५१ भारतीय हैं। और सिर्फ दो विभागोंमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या बताने लायक है। भारतीय और यूरोपीय मतदाताओंका अनुपात १ : ३८ है। अर्थात् इस समय यूरोपीयोंके

मत भारतीयोंके मतोंसे ३८ गुने हैं। *भारतीय प्रवासियोंके संरक्षककी १८९५ की रिपोर्टके* अनुसार, भारतीयोंकी कुल ४६,३४३ जनसंख्यामें से स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्या सिर्फ ३०,३०३ है। इसमें अगर व्यापारी भारतीयोंकी संख्या —लगभग ५,०००—और जोड़ दी जाये तो स्वतन्त्र और गिरमिट-मुक्त भारतीयोंकी कुल संख्या मोटे तौरपर ३५,००० है। इसलिए, भारतीयोंकी जो आवादी मत देनेमें यूरोपीय आवादीसे होड़ कर सकती है वह यूरोपीयोंके वरावर वड़ी नहीं है। परन्तु इन ३५,००० लोगोंमें आधेसे ज्यादा लोगोंकी आर्थिक स्थिति गिरमिटिया भारतीयोंकी आर्थिक स्थितिसे केवल एक अंश ऊँची है और यह कहनेमें, मेरा विश्वास है, मैं सचाईसे दूर नहीं जा रहा हूँ। मैं आस-पासके जिलोंमें और डर्बनसे ५० मीलके घेरेमें यात्राएँ करता आ रहा हूँ। और मैं जोखिमके विना कह सकता हूँ कि स्वतन्त्र भारतीयोंमें से अधिकतर रोज कुआँ खोदते और रोज पानी निकालते हैं, और निश्चय ही उनके पास ५० पौंड मूल्यकी जायदाद नहीं है। वयस्क स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्या उपनिवेशमें केवल १२,३६० है। इस तरह, मेरा निवेदन है कि निकट भविष्यमें भारतीयोंके मतों द्वारा यूरोपीय मतोंके निगल लिये जानेका भय बिलकुल वेबुनियाद है।

भारतीय मतदाताओंकी सूचीके नीचे दिये हुए विश्लेषणसे यह भी मालूम होता है कि अधिकतर भारतीय मतदाता वे लोग हैं जो वहुत लम्बे समयसे उप-निवेशमें वसे हुए हैं। मैं २५० भारतीय मतदाताओंकी शनाख्त करा सका हूँ। उनमें से सभी १५ वर्षसे अधिकसे उपनिवेशमें रह रहे हैं और केवल ३५ व्यक्ति किसी समय गिरमिटिया रहे थे।

भारतीय मतदाताओंके निवासकी अवधि और किसी समय गिरमिटिया रहे भारतीयोंकी संख्या बतानेवाली तालिका :

४ वर्षका वास	१३
५ से ९ "	५०
१० से १३ "	३५
१४ से १५ "	५९
स्वतन्त्र भारतीय, जो किसी समय गिरमिटिया थे, परन्तु जो १५ वर्षसे और कई २० वर्षसे अधिकसे उपनिवेशमें बसे हुए हैं :	३५
उपनिवेशमें जन्मे	९
दुभाषिये	४
अ-वर्गीकृत	४६
	२५१

बेशक, इस तालिकाको पूरा-पूरा सही बिलकुल नहीं कहा जा सकता। फिर भी मेरा खयाल है कि हमारे हालके कामके लिए यह काफी सही है। इस तरह, जहाँतक इन अंकोंका दायरा है, गिरमिटिया बनकर आनेवाले भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें शामिल होनेके लिए धनकी पर्याप्त योग्यता कमानेमें १५ वर्ष या इससे ज्यादाका समय लगता है। और अगर गिरमिट-मुक्त भारतीयोंकी संख्या छोड़ दी जाये तो यह तो कोई नहीं कह सकता कि केवल व्यापारियोंकी आबादी कभी भी मतदाता-सूचीपर छा सकती है। इसके अलावा, इन ३५ गिरमिट-मुक्त भारतीयोंमें से अधिकतर व्यापारियोंके दर्जेपर चढ़ गये हैं। जो लोग शुरू-शुरूमें अपने खर्चसे आये थे उनकी भारी बहुसंख्याको मतदाता-सूचीमें शामिल होनेमें लम्बा समय लगा है। जिन ४६ की शनाख्त मैं नहीं करा सका उनमें बहुत-से अपने नामोंसे व्यापारी वर्गके मालूम होते हैं। उपनिवेशमें यहींके जन्मे बहुत-से भारतीय हैं। वे शिक्षित भी हैं, फिर भी मतदाता-सूचीमें सिर्फ ९ के नाम दर्ज हैं। इससे मालूम होगा कि वे इतने गरीब हैं कि उन्हें सम्पत्तिकी बिनापर मिलनेवाला मताधिकार नहीं मिला। इसलिए, समग्र रूपमें ऐसा मालूम होगा कि मौजूदा सूचीके आधारपर यह डर काल्पनिक है कि भारतीयोंके मत खतरनाक अनुपात तक पहुँच जायेंगे। २०५ में से ४० या तो मर चुके हैं, या उपनिवेश छोड़कर चले गये हैं।

निम्नलिखित तालिकामें भारतीय मतदाताओंकी सूचीका धंधेके अनुसार विश्लेषण किया गया है :

व्यापारी वर्ग	दूकानदार (वस्तु भंडार मालिक) ...	९२
	व्यापारी	३२
	सुनार	४
	जौहरी	३
	हलवाई	१
	फल बेचनेवाले	४
	छोटे व्यापारी	११
	टीनसाज	१
	तम्बाकूके व्यापारी	२
	भोजनालय-चालक	१
		१५१

वर्ग	पेशा	संख्या
मुहर्रिर और सहायक	मुहर्रिर	२१
	मुनीम	६
	हिसाब-लेखक	१
	विक्रेता	६
	शिक्षक	१
	फोटोग्राफर	१
	दुभाषिये	४
	दूकान-नौकर	५
	नाई	२
	शराबकी दूकानके नौकर	१
	प्रबन्धक	२
		५०
बागबान और अन्य	शाक व्यापारी	१
	किसान	४
	घरेलू नौकर	५
	मछुए	१
	बागबान	२६
	दिये जलानेवाले	३
	गाड़ीवान	२
	सिपाही	२
	मजदूर	२
	हजूरिए (वेटर)	१
	बावर्ची	३
		५०
		२५१

मेरा खयाल है कि मतदाता-सूचीके अयोग्य या निम्नतम दर्जेके भारतीयोंसे छा जानेके भयको दूर करनेमें निष्पक्ष लोगोंको इस विश्लेषणसे भी मदद मिलनी चाहिए। कारण, इसमें सबसे बड़ी — बहुत बड़ी संख्या व्यापारी वर्गकी या तथाकथित "अरब" वर्गकी है। इन्हें तो मत देनेके बिलकुल अयोग्य नहीं माना जाता।

दूसरे शीर्षकके नीचे जिनका वर्गीकरण किया गया है, वे या तो व्यापारी वर्गके हैं या उस वर्गके हैं, जिसने काम चलानेके लिए अच्छी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है।

तीसरे विभागके लोगोंको ऊँचे दर्जेके मजदूर कहा जा सकता है। वे औसत दर्जेके गिरमिटिया भारतीयोंसे बहुत ऊँचे हैं। ये लोग २० वर्षसे अधिकसे सह-कुटुम्ब उपनिवेशमें बसे हुए हैं। और या तो जमीन-जायदादके मालिक हैं या अच्छा किराया चुकाते हैं। मैं यह भी कह दूँ कि अगर मेरी जानकारी सही है तो इन मतदाताओंमें से ज्यादातर अपनी मातृभाषा लिख-पढ़ सकते हैं। इस प्रकार, अगर भारतीयोंकी वर्तमान मतदाता-सूची भविष्यके लिए मार्गदर्शिकाका काम दे और मान लिया जाये कि मताधिकार-योग्यता जैसी-की-तैसी रहती है, तो यूरोपीय दृष्टिकोणसे यह सूची बहुत सन्तोषप्रद है। पहले तो इसलिए कि संख्याकी दृष्टिसे भारतीयोंका मत-बल बहुत कम है और दूसरे, अधिकतर ($\frac{3}{4}$ से ज्यादा) भारतीय मतदाता व्यापारी वर्गके हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि उपनिवेशमें व्यापार करनेवाले भारतीयोंकी संख्या लम्बे समयतक करीब-करीब यही रहेगी। क्योंकि, जबकि अनेक लोग हर महीने यहाँ आते हैं, उतने ही भारतको लौट भी जाते हैं। साधारणतः आनेवाले लोग जानेवालोंकी जगहोंपर रहते हैं।

अबतक मैंने दोनों समाजोंकी स्वाभाविक रुचिको दलीलमें बिलकुल दाखिल नहीं किया, सिर्फ अंकोंकी चर्चा की है। फिर भी स्वाभाविक रुचिका दोनोंकी राजनीतिक प्रवृत्तियोंसे कम सम्बन्ध नहीं होगा। इस विषयमें कोई मत-भेद नहीं हो सकता कि भारतीय साधारणतः राजनीतिमें सक्रिय हस्तक्षेप नहीं करते। उन्होंने कभी किसी स्थानपर राजनीतिक सत्ता हड़पनेका प्रयत्न नहीं किया। उनका धर्म (चाहे वे मुस्लिम हों चाहे हिन्दू, युग-युगकी शिक्षा सिर्फ नाम बदल जानेसे मिट नहीं जाती) उनको भौतिक प्रवृत्तियोंके प्रति उदासीन रहना सिखाता है। स्वाभाविक है कि जबतक वे इज्जतके साथ आजीविका कमा सकते हैं तबतक उन्हें सन्तोष रहता है। मैं यह कहनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ कि अगर उनके व्यापार-धंधेको कुचलनेका प्रयत्न न किया गया होता, अगर उन्हें समाजमें अछूतोंके दर्जेपर गिरानेके प्रयत्न न किये गये होते और उन प्रयत्नोंको बार-बार दुहराया न गया होता, अगर सचमुच उन्हें सदाके लिए "लकड़हारे और पनिहारे" बनाकर अर्थात् सदाके लिए गिरमिटियाकी या उससे बहुत ज्यादा मिलती-जुलती हालतमें रखनेका प्रयत्न न किया गया होता,

तो मताधिकार-सम्बन्धी आन्दोलन होता ही नहीं। मैं तो इससे भी आगे जाऊँगा। मुझे यह कहनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं कि इस समय भी शब्दके सच्चे मानीमें किसी राजनीतिक आन्दोलनका अस्तित्व नहीं है। परन्तु अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है कि अखबार भारतीयोंको इस प्रकारके आन्दोलनके जनक बतानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें अपने वैध धंधे करनेको स्वतन्त्र छोड़ दीजिए, उनको नीचे गिरानेके प्रयत्न मत कीजिए, उनके साथ साधारण दयालुताका बरताव कीजिए, तो मताधिकारका कोई प्रश्न नहीं रहेगा। कारण सीधा-सादा यह है कि वे अपने नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज करानेका कष्ट ही नहीं उठायेंगे।

परन्तु कहा यह गया है, और सो भी जिम्मेदार लोगों द्वारा, कि कुछ गिने-चुने भारतीय राजनीतिक सत्ता चाहते हैं; ये लोग मुसलमान आन्दोलनकारी हैं, जिनकी संख्या थोड़ी-सी है; और हिन्दुओंको पिछले अनुभवोंसे सीखना चाहिए कि मुसलमानोंका राज्य उनका नाश कर देनेवाला होगा। पहला कथन बेबुनियाद है और आखिरी कथन अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखदायी है। अगर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करनेका अर्थ विधानसभामें पैठना हो, तो उसे प्राप्त करना पूर्णतः असम्भव है। ऐसे कथनमें यह मानकर चला गया है कि उपनिवेशमें बहुत धनी भारतीय मौजूद हैं, जिन्हें अंग्रेजी भाषाका अच्छा ज्ञान है। अब, खुशहाल और धनीका फर्क देखते हुए उपनिवेशमें तो बहुत ही कम धनी लोग हैं और, शायद, उनमें कोई भी कानून बनानेवालेका काम करने योग्य नहीं है। इसलिए नहीं कि राजनीतिको समझनेकी योग्यता रखनेवाला कोई नहीं है, बल्कि इसलिए कि कानून बनानेवालोंमें अंग्रेजी भाषाके जैसे ज्ञानकी अपेक्षा की जाती है, उसका वैसा ज्ञान रखनेवाला कोई नहीं है। दूसरे कथनके द्वारा उपनिवेशके हिन्दुओंको मुसलमानोंसे भिड़ा देनेका प्रयत्न किया गया है। उपनिवेशका कोई जिम्मेदार व्यक्ति इस तरहके संकटकी कामना कर ही कैसे सकता है — यह बहुत आश्चर्यजनक है। ऐसे प्रयत्नोंका परिणाम भारतमें अत्यन्त दुःखद हुआ है और उनसे ब्रिटिश शासनके स्थायित्व तकको खतरा पहुँचा है। इस उपनिवेशमें, जहाँ दोनों सम्प्रदाय ज्यादासे ज्यादा मैत्रीभावसे रहते हैं, वैसा प्रयत्न करना, मैं कहूँगा, बड़ीसे बड़ी शरारतसे भरा है।

अब जो यह स्वीकार कर लिया गया है कि सब भारतीयोंपर मताधिकार पानेके सम्बन्धमें प्रतिबन्ध लगा देना एक दुःखद अन्याय है, सो एक

सेहतमंद लक्षण है। कुछ लोगोंका खयाल है कि तथाकथित अरबोंको मताधिकार देना चाहिए। कुछका खयाल है कि उनमें से चुने हुए लोगोंको देना चाहिए। और कुछ सोचते हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंको कभी भी मताधिकार नहीं मिलना चाहिए। ताजेसे ताजा सुझाव स्टैंगरका है और वह अधिकसे अधिक विनोदपूर्ण है। अगर उस सुझावका अनुसरण किया जाये तो सिर्फ वे लोग नेटालमें मताधिकार प्राप्त कर सकेंगे, जो यह साबित कर सकें कि वे भारतमें मतदाता थे। ऐसा नियम बेचारे भारतीयोंके ही लिए क्यों? अगर यह सबपर लागू हो तो मैं नहीं समझता कि भारतीयोंको इसपर कोई आपत्ति होगी। और अगर ऐसी परिस्थितियोंमें यूरोपीयोंको भी अपने नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज कराना कठिन गुजरे तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा। क्योंकि, उपनिवेशमें ऐसे यूरोपीय कितने हैं, जो अपने राज्योंमें मतदाता थे? तथापि, यदि यह बयान यूरोपीयोंके सम्बन्धमें दिया गया होता तो उसपर उग्रतम रोष प्रकट किया गया होता। भारतीयोंके बारेमें इसका गम्भीरताके साथ स्वागत किया गया है।

यह भी कहा गया है कि भारतीय "एक भारतीयको एक मत"के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। मेरा निवेदन है कि यह कथन बिलकुल निराधार है। इसका मंशा भारतीय समाजके प्रति अनावश्यक कुभावना पैदा करना है। मैं मानता हूँ कि वर्तमान साम्पत्तिक योग्यता अगर हमेशा नहीं तो हालमें तो जरूर ही यूरोपीय मतोंकी संख्या अधिक बनाये रखनेके लिए काफी है। फिर भी अगर यूरोपीय उपनिवेशियोंका खयाल भिन्न हो तो, मेरे खयालसे, उचित और सच्ची शिक्षा-योग्यता और वर्तमानसे अधिक साम्पत्तिक योग्यता निर्धारित कर देनेपर कोई भारतीय आपत्ति नहीं करेगा। भारतीय जिस बातका विरोध करते हैं और करेंगे, वह है रंग-भेद—जातीय भेदके आधारपर अयोग्य ठहराया जाना। सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाको अत्यन्त गम्भीरताके साथ बारंबार आश्वासन दिया गया है कि उनकी राष्ट्रीयता और धर्मके कारण उनपर कोई अयोग्यताएँ अथवा प्रतिबन्ध नहीं मढ़े जायेंगे। और यह आश्वासन किन्हीं भावनात्मक आधारोंपर नहीं, बल्कि योग्यताके प्रमाणपर दिया और दुहराया गया है। पहला आश्वासन तब दिया गया था, जब कि सन्देहके परे यह स्थिर कर लिया गया कि भारतीयोंके साथ बिना किसी खतरेके बराबरीका बरताव किया जा सकता है, वे अत्यन्त वफादार और कानूनका पालन करनेवाले हैं और भारतपर
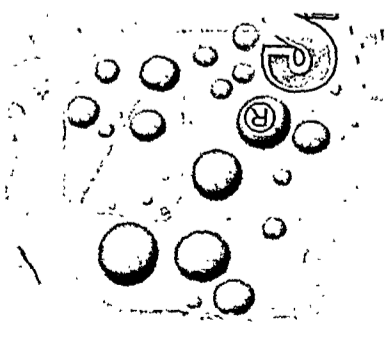
ब्रिटिशोंका कब्जा इन्हीं शर्तोंपर कायम रखा जा सकता है, दूसरी शर्तोंपर नहीं। उपर्युक्त आश्वासनमें गम्भीर व्यतिक्रम हुए हैं यह, मेरा निवेदन है, उसके अस्तित्वकी ठोस सचाईका कोई जवाब नहीं है। मेरा खयाल है कि वे व्यतिक्रम नियमको सिद्ध करनेवाले अपवाद हैं, उसका अतिक्रमण करनेवाले नहीं। क्योंकि, अगर मेरे पास समय और स्थान होता, और अगर मुझे पाठकोंको उबा देनेका डर न होता, तो मैं ऐसे असंख्य उदाहरण दे सकता, जिनमें १८५८ की घोषणाका अचूक रूपसे पालन किया गया है, और आज भी भारतमें तथा अन्यत्र किया जा रहा है। और यह अवसर तो निश्चय ही उसकी अवहेलना करनेका नहीं है। इसलिए, मैं निवेदन करता हूँ कि भारतीयोंका जातीय आधारपर अयोग्य ठहराये जानेका विरोध करना और उस विरोधके माने जानेकी अपेक्षा करना पूर्णतः उचित है। इतना कहनेके बाद मैं अपने भाइयोंकी ओरसे आश्वासन देता हूँ कि मतदाता-सूचीको आपत्तिजनक लोगोंसे मुक्त रखनेके लिए, या भविष्यमें भारतीयोंके मत-बलको सबसे प्रबल न होने देनेके लिए, अगर कोई कानून बनाये जायेंगे तो मेरे देशवासी उनका विरोध करनेका विचार नहीं करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि, जिनसे मतका मूल्य समझनेकी सम्भवतः आशा ही न की जा सकती हो, ऐसे अज्ञान भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें स्थान दिलानेकी भारतीयोंकी कोई इच्छा नहीं है। उनका कहना है कि सब भारतीय ऐसे नहीं हैं और ऐसे लोग कम-ज्यादा सभी समाजोंमें पाये जाते हैं। प्रत्येक सही विचारवाले भारतीयका लक्ष्य, जहाँतक हो सके, यूरोपीय उपनिवेशियोंकी इच्छाओंके अनुकूल रहना है। वे यूरोपीय और ब्रिटिश उपनिवेशियोंसे लड़कर पूरी रोटी लेनेके बजाय शान्तिसे रहकर आधी ही ले लेना पसन्द करेंगे। इस अपीलका उद्देश्य कानून बनानेवालों और यूरोपीय उपनिवेशियोंसे प्रार्थना करना है कि अगर कोई कानून बनाना जरूरी ही हो तो वे सिर्फ ऐसा कानून बनायें या सिर्फ ऐसे कानूनका समर्थन करें, जो उससे प्रभावित होनेवाले लोगोंको मंजूर हो। स्थितिको अधिक साफ करनेके लिए मैं एक सरकारी रिपोर्टके कुछ अंशोंसे यह बतानेकी स्वतन्त्रता लूँगा कि इस प्रश्नपर सबसे प्रमुख उपनिवेशियोंके विचार क्या हैं।

पिछली विधानसभाके सदस्य श्री सांडर्स केवल इस हदतक गये :

> **यह व्याख्या ही कि ये हस्ताक्षर पूरे हों, निर्वाचकके अपने ही अक्षरोंमें हों और यूरोपीय लिपिमें हों, इस आत्यन्तिक जोखिमको**

रोकनेमें बहुत दूर तक सहायक होगी कि एशियाइयोंके मत अंग्रेजोंके मतोंको दबा देंगे। (अफेयर्स आफ नेटाल, सी. ३७९६-१८८३)।

उसी पुस्तकके पृष्ठ ७ पर भूतपूर्व प्रवासी-संरक्षक कप्तान ग्रेव्जका यह कथन दिया गया है :

> मेरा मत है कि सिर्फ वे भारतीय न्यायपूर्वक मताधिकार पानेके हकदार हैं, जिन्होंने अपने और अपने परिवारोंके भारत लौटनेके मुफ्त टिकटका पूरा दावा छोड़ दिया है।

ध्यान रखना चाहिए कि ये शब्द कप्तान ग्रेव्जने अपने विभाग द्वारा मान्य किये गये भारतीयों — यानी गिरमिटिया भारतीयोंके बारेमें कहे थे।

तत्कालीन महान्यायवादी और वर्तमान मुख्य न्यायाधीशका कथन है :

> यह देखा जायेगा कि मैंने जिस कानूनका मसविदा बनाया है उसमें प्रवर समिति (सिलेक्ट कमेटी) की सिफारिशोंसे ली हुई वे उपधाराएँ शामिल हैं, जिनमें श्री सांडर्सके पत्रमें बताई गई वैकल्पिक योजनाको कार्यान्वित करनेकी व्यवस्था की गई है। परन्तु विदेशियोंको विशेष रूपसे मताधिकारके अयोग्य ठहरानेके सुझाव मानने योग्य नहीं समझे गये।

उसी पुस्तकके पृष्ठ १४ पर फिर उनका यह कथन है :

> जहाँतक उपनिवेशके सामान्य कानूनके अन्दर पूरी तरहसे न आनेवाले प्रत्येक राष्ट्र या जातिके सब लोगोंको मताधिकार-प्रयोगसे वंचित रखनेका सम्बन्ध है, वहाँतक स्पष्ट है कि इस कानूनका लक्ष्य उपनिवेशवासी भारतीयों और क्रियोलोंका मताधिकार है, जिसका उपभोग वे हालमें कर रहे हैं। जैसा कि मैं पहले ही अपनी रिपोर्ट, क्रम संख्या १२, में कह चुका हूँ, मैं ऐसे कानूनका न्याय या आवश्यकता स्वीकार नहीं कर सकता।

इस सरकारी रिपोर्टमें मताधिकारके प्रश्नपर बहुत-सी रोचक सामग्री है। उससे साफ मालूम होता है कि विशेष निर्योग्यताका विषय उस समय उपनिवेशियोंको अप्रिय था।

मताधिकारके सम्बन्धमें हुई विविध सभाओंकी कार्रवाइयोंसे मालूम होता है कि वक्ताओंने सदा यह कहा है कि भारतीयोंको इस देशपर कब्जा नहीं
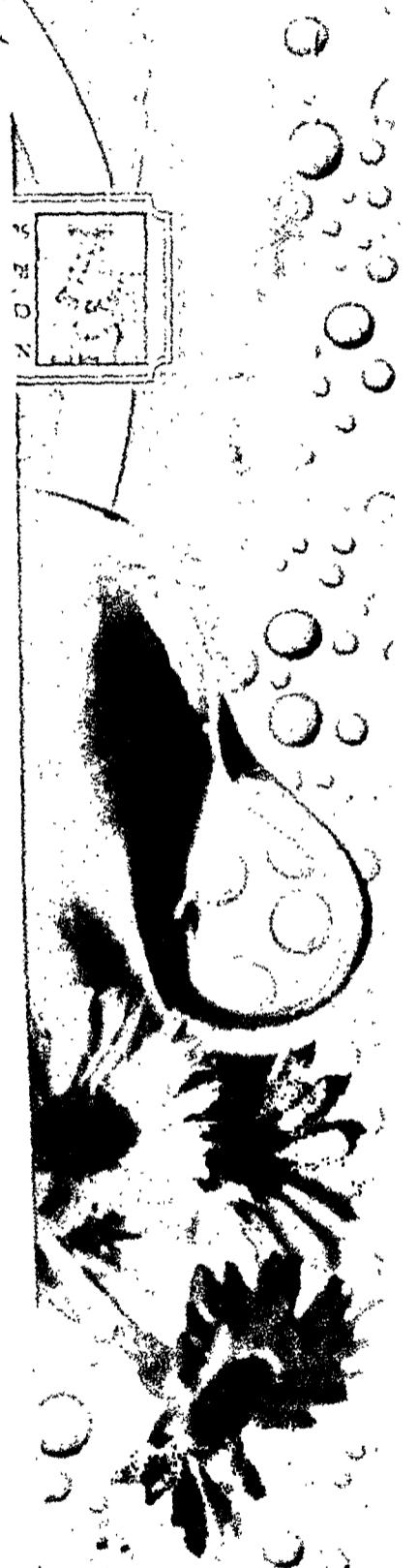
करने दिया जायेगा। इसे यूरोपीयोंके खूनसे जीता गया है और, यह जो कुछ भी है, यूरोपीयोंके हाथोंसे बना है। उन कार्रवाइयोंसे यह भी मालूम होता है कि भारतीयोंको इस उपनिवेशमें बिना हक धँस पड़नेवाले माना जाता है। पहले कथनके बारेमें मुझे इतना ही कहना है कि अगर भारतीयोंको इसलिए कोई अधिकार नहीं दिये जायेंगे कि उन्होंने इस देशके लिए अपना खून नहीं बहाया, तो यूरोपके दूसरे राज्योंके यूरोपीयोंको भी वे अधिकार नहीं मिलने चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि इंग्लैंडसे बादमें आये हुए प्रवासियोंको भी प्रथम गोरे निवासियोंके विशेष सुरक्षित अधिकारोंमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। और, निश्चय ही, अगर खून बहाना ही हकदार होनेका कोई मापदण्ड है और अगर ब्रिटिश उपनिवेशी ब्रिटिशोंके अन्य देशोंको ब्रिटिश साम्राज्यके अंग मानते हैं, तो भारतीयोंने अनेक अवसरोंपर ब्रिटेनके लिए अपना खून बहाया है। चितरालकी लड़ाई सबसे ताजा उदाहरण है।

जहाँतक यह बात है कि उपनिवेशका निर्माण यूरोपीय हाथोंसे हुआ है और भारतीय बिना हक यहाँ धँस आये हैं, मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि सारी हकीकतें बिलकुल उलटी बात सिद्ध करती हैं।

अब मैं, अपनी टीका-टिप्पणीके बिना, ऊपर बताये हुए *भारतीय प्रवासी आयोगकी रिपोर्ट*के अंश उद्धृत करूँगा। यह रिपोर्ट मुझे प्रवासी-संरक्षकसे उधार मिली है, जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ।

एक आयुक्त, श्री सांडर्स पृष्ठ ९८ पर कहते हैं :

भारतीय प्रवासियोंके आनेसे समृद्धि आई। भाव बढ़ गये। लोगोंको अब न-कुछ भावों पर फसलें बोने या बेचनेसे सन्तोष नहीं रहने लगा। वे अब ज्यादा कमा सकते थे। युद्ध और ऊन, चीनी आदिके ऊँचे भावोंसे समृद्धि कायम रही। भारतीय जिन स्थानिक पैदावारोंका व्यापार करते हैं उनके भाव भी ऊँचे बने रहे।

पृष्ठ ९९ पर वे कहते हैं :

मैं व्यापक लोकहितकी दृष्टिसे फिर उस प्रश्नपर विचार करूँगा। एक बात निश्चित है — गोरे लोग सिर्फ 'लकड़हारे और पनिहारे' बननेके लिए नेटालमें या दक्षिण आफ्रिकाके किसी दूसरे भागमें नहीं बसेंगे। इसके बजाय वे हमें छोड़कर या तो विस्तीर्ण भीतरी हिस्सोंमें चले जाना या

समुद्रका रास्ता पकड़ना पसन्द करेंगे। जब कि यह सच है तब हमारे और दूसरे उपनिवेशोंके कागज-पत्र साबित करते हैं कि भारतीय मजदूरोंके आनेसे भूमिकी और उसके खाली क्षेत्रोंकी छिपी हुई शक्ति प्रकट और विकसित होती है और गोरे प्रवासियोंके लिए लाभप्रद रोजगार-धंधेके अनेक नये क्षेत्र खुलते हैं।

हमारे निजी अनुभव इसे सबसे ज्यादा स्पष्ट रूपमें साबित करनेवाले हैं। अगर हम १८५९ के सालपर गौर करें तो हम देखेंगे कि भारतीय मजदूरोंका हमें जो आश्वासन मिला था उससे राजस्वमें तुरन्त वृद्धि हुई, और कुछ ही वर्षोंमें राजस्व चौगुना बढ़ गया। जिन मिस्त्रियोंको काम नहीं मिलता था और जो रोजाना ५ शिलिंग या इससे कम कमाते थे, उनकी मजदूरी दूनीसे ज्यादा बढ़ गई। उन्नतिसे शहरसे समुद्रतक सब लोगोंको प्रोत्साहन मिला। परन्तु कुछ वर्ष बाद एक आतंक फैला (जिसका आधार दृढ़ था) कि भारतीय मजदूरोंका आना सब जगह एकसाथ स्थगित कर दिया जायेगा (अगर मेरा कथन गलत हो तो कागज-पत्र मौजूद हैं, उसे ठीक किया जा सकता है)। बस, राजस्व और मजदूरीमें गिरावट हो गई, प्रवासियोंका आना रोक दिया गया, भरोसा गायब हो गया और मुख्य बात जो सोची गई वह थी — छँटनी तथा वेतनोंमें कटौती की। और कुछ वर्ष बाद १८७३ में (१८६८ में हीरेकी खानका पता चलनेके बहुत बाद) फिरसे भारतीयोंके आनेका वचन मिला और उसने अपना काम किया — राजस्व, मजदूरी और वेतनोंमें फिर तरक्की हो गई और जल्दी ही छँटनीको भूतकालकी चीज बताया जाने लगा (काश! अब भी ऐसा ही होता!)।

इस तरहके प्रलेख स्वयं स्पष्ट हैं; उन्हें समझानेके लिए भाष्यकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। और उनसे छुकरपनकी जाति-भावनाओं और कमीनी ईर्ष्याओंको शान्त हो जाना चाहिए।

गैर-गोरे मजदूरोंके आनेसे गोरे प्रवासियोंका जो हित हुआ उसका और भी अधिक प्रमाण देनेके लिए मैं मंचेस्टरके ड्यूकके एक भाषणका हवाला दे दूँ। ड्यूकने अपने आपको औपनिवेशिक हितोंके साथ बहुत मिला-जुला

लिया है। वे अभी-अभी क्वीन्सलैंडसे लौटे हैं और उन्होंने अपने श्रोताओंको बताया है कि वहाँ गैर-गोरे मजदूरोंके आगमनके विरुद्ध आन्दोलनका परिणाम स्वयं उन गोरे प्रवासियोंके लिए ही अत्यन्त विनाशकारी हुआ है, जिन्होंने आशा की थी कि बाहरसे गैर-गोरे मजदूरोंका आना रोककर वे प्रतिद्वन्द्विताको नष्ट कर देंगे। उनकी गलत कल्पना हो गई है कि गैर-गोरोंकी प्रतिद्वन्द्वितासे उनका काम-धंधा छिनता है।

पृष्ठ १०० पर वही सज्जन आगे कहते हैं :

जहाँतक स्वतन्त्र भारतीय व्यापारियों, उनकी प्रतिद्वन्द्विता और उसके फलस्वरूप उपभोग्य वस्तुओंके भावोंमें कमीका सम्बन्ध है, जिससे जनताको लाभ होता है (और फिर भी विचित्र बात यह है कि उसकी वह शिकायत करती है), वहाँतक साफ-साफ बता दिया गया है कि इन भारतीय दूकानोंको गोरे व्यापारियोंकी बड़ी-बड़ी पेढ़ियोंने ही पूरी तरह पोसा है, और वे ही अब भी पोस रही हैं। इस तरह ये पेढ़ियाँ अपना माल बेचनेके लिए इन लोगोंको लगभग अपने नौकर बनाकर रखती हैं।

आप चाहें तो भारतीयोंका आगमन रोक दें। अगर अभी खाली मकान काफी न हों तो अरबों या भारतीयोंको, जो आधेसे कम आबाद देशकी उपज व खपतकी शक्ति बढ़ाते हैं, निकालकर और खाली करा लें। परन्तु इस एक विषयको उदाहरणके तौरपर उठाकर जाँचिए, और इसके परिणामोंका पता लगाइए। पता लगाइए कि, किस तरह मकानोंके खाली पड़े रहनेसे जायदाद और सेक्युरिटीज़की कीमत घटती है और कैसे, इसके बाद, इमारतोंके व्यापारमें और उसपर निर्भर करनेवाले दूसरे व्यापारों तथा दूकानोंमें गतिरोध आना अनिवार्य हो जाता है। देखिए कि, इससे गोरे मिस्त्रियोंकी माँग कैसे कम होती है, और इतने लोगोंकी खर्च करनेकी शक्ति कम हो जानेसे कैसे राजस्वमें कमीकी अपेक्षा करनी होगी। फिर, छँटनी की या कर बढ़ानेकी या दोनोंकी जरूरत! इस परिणामका और दूसरे परिणामोंका, जो इतने अधिक हैं कि उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, मुकाबला कीजिए, और फिर अगर अंधी जाति-भावना या ईर्ष्या ही प्रबल होती है, तो वही हो!

आयोगके सामने श्री बिन्सने इस आशयकी गवाही दी थी (पृष्ठ १५६) :

मेरे खयालसे स्वतन्त्र भारतीय आबादी समाजका सबसे उपयोगी अंग है। उसका एक बड़ा हिस्सा — जितना सामान्यतः माना जाता है उससे बहुत बड़ा — उपनिवेशमें नौकरियाँ करता है। ये लोग खास तौरसे गाँवों और शहरोंमें घरेलू नौकरोंके काम पर लगे हैं। वे बहुत बड़े उत्पादक भी हैं। मैंने जो जानकारी प्रयत्नपूर्वक इकट्ठी की है उसके अनुसार स्वतन्त्र भारतीय पिछले दो-तीन वर्षोंसे लगभग एक लाख मन मकई सालाना पैदा करते हैं। भारी मात्रामें तम्बाकू और दूसरी चीजोंकी पैदावार इससे अलग है। स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी होनेके पहले पीटरमैरित्स-बर्ग और डर्बनमें फल, सब्जियाँ और मछलियाँ नहीं मिलती थीं। इस समय ये सब चीजें पूरी-पूरी उपलब्ध हैं।

यूरोपसे कभी कोई ऐसे प्रवासी नहीं आये, जिनका बागवानी या मछलीका रोजगार करनेका इरादा रहा हो। और मेरा खयाल है कि अगर भारतीय न हों तो मैरित्सबर्ग और डर्बनके बाजारोंमें आज भी इन चीजोंकी वैसी ही कमी रहेगी, जैसी दस वर्ष पूर्व रहती थी।

. . . अगर कुलियोंका आगमन पक्के रूपसे बन्द कर दिया जाये तो शायद यूरोपीय मिस्त्रियोंकी मजदूरीकी दरोंमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। परन्तु थोड़े ही दिन बाद उनके लिए उतना काम नहीं रहेगा, जितना अभी है। गरम देशकी खेती भारतीय मजदूरोंके बिना न कभी हुई, न होगी।

तत्कालीन महान्यायवादी और वर्तमान मुख्य न्यायाधीशने आयोगके सामने यह गवाही दी थी (पृष्ठ ३२७) :

. . . मेरे खयालसे, भारतीय प्रवासियोंके बड़ी संख्यामें लाये जानेसे ही बहुत हदतक तटवर्ती प्रदेशमें गोरे प्रवासियोंको मात मिली है। उन्होंने वह जमीन जोती, जो उनके न जोतने पर बंजर बनी रहती, और उसमें ऐसी फसलें बोईं जो उपनिवेशवासियोंके सच्चे लाभकी हैं। भारत लौटनेके मुफ्त टिकटका फायदा न उठानेवाले बहुत-से लोग विश्वस्त और उपयोगी घरेलू नौकर साबित हुए हैं।

गिरमिट-मुक्त और स्वतन्त्र दोनों वर्गोंके भारतीय सामान्यतः उपनिवेशके लिए बहुत फायदेमन्द सिद्ध हुए हैं — यह और भी जोरदार प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा सकता है। आयुक्त अपनी रिपोर्टके पृष्ठ ८२ पर कहते हैं :

> १९. वे मछलियाँ पकड़ने और उनकी हिफाजत करनेमें प्रशंसनीय परिश्रम करते हैं। डर्बन-बेके सैलिसबरी द्वीपमें भारतीय मछुओंकी बस्ती न सिर्फ भारतीयोंके लिए, बल्कि उपनिवेशके गोरे निवासियोंके लिए भी बहुत लाभदायक हुई है।
>
> २०. . . . अन्तःवर्ती और तटवर्ती दोनों प्रकारके जिलोंके बहुत-से क्षेत्रोंमें उन्होंने ऊजड़ और बंजर जमीनको बागोंमें बदल दिया है, जिनकी हिफाजत अच्छी तरह की जाती है। उनमें साग-सब्जियों, तम्बाकू, मकई और फलोंकी उपज की जाती है। जो लोग डर्बन और पीटरमैरित्सबर्गके आसपास रहते हैं उन्होंने स्थानीय बाजारोंको साग-सब्जी देनेका पूराका पूरा व्यापार अपने अधीन कर लिया है। स्वतन्त्र भारतीयोंकी इस प्रतिद्वन्द्विताका यह परिणाम तो हुआ ही होगा कि जिन यूरोपीयोंके हाथमें अबतक इस रोजगारका एकाधिकार था उनको नुकसान पहुँचा हो।
>
> . . . स्वतन्त्र भारतीयोंके प्रति न्यायकी दृष्टिसे हमें कहना ही होगा कि प्रतिद्वन्द्विताका स्वरूप न्यायपूर्ण है और, अवश्य ही, साधारण समाजने उसका स्वागत किया है। भारतीय फेरीवाले — पुरुष और स्त्री, बड़े और छोटे, रोज तड़के उठकर, अपने सिरोंपर भारी-भारी टोकरियाँ रखकर, घर-घर जाते हैं, और इस तरह अब नागरिकोंको गुणकारी साग-सब्जी और फल अपने दरवाजेपर ही सस्ते दामों मिल जाते हैं। अभी ज्यादा बरस नहीं हुए हैं जबकि इन्हीं चीजोंको शहरके बाजारोंमें भी, और बहुत महँगे भाव चुकानेपर भी, पा सकनेका भरोसा नहीं रहता था।

जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध है, आयुक्तोंकी रिपोर्टमें पृष्ठ ७४ पर कहा गया है :

> हमें पक्का विश्वास हो गया है कि उपनिवेशकी तमाम भारतीय आबादीके खिलाफ यूरोपीय उपनिवेशियोंके मनमें जो चिढ़ है, उसका बहुत-सा अंश इन अरब व्यापारियोंकी यूरोपीय व्यापारियोंके साथ, और

खासकर उनके साथ प्रतिद्वन्द्विता करनेकी असन्दिग्ध योग्यतासे पैदा हुआ है, जो अबतक वे वस्तुएँ — विशेषतः चावल — बेचनेकी ओर ही मुख्य ध्यान रखते थे, जिनकी भारतीय आबादीमें बहुत खपत होती है। . . .

हमारा खयाल है कि ये अरब व्यापारी प्रवासी कानूनके अनुसार लाये गये भारतीयोंके आकर्षणसे नेटालमें आये हैं। इस समय जो ३०,००० भारतीय प्रवासी उपनिवेशमें हैं, उनका मुख्य भोजन चावल है। और इन कुशल व्यापारियोंने चावल मुहैया करनेके व्यापारमें अपनी चतुराई और मिहनतका प्रयोग इतनी सफलताके साथ किया कि पहलेके बरसोंमें जो चावल २१ शि० फी बोरा बिकता था, उसका भाव १८८४ में १४ शिलिंग फी बोरे तक गिर गया।

कहा जाता है कि काफिर लोगोंको ६-७ बरस पहलेकी अपेक्षा अब २५-३० फी सदी कम भावों पर अरबोंसे माल मिल जाता है।

कुछ लोग एशियाई या 'अरब' व्यापारियोंपर जो प्रतिबंध लगानेके इच्छुक हैं, उनपर विस्तारके साथ विचार करना कमिशनके कार्यक्षेत्रके बाहर है। अतः हम व्यापक निरीक्षणके आधारपर अपना यह दृढ़ अभिप्राय अंकित करके ही सन्तोष मानते हैं कि *इन व्यापारियोंका यहाँ रहना सारे उपनिवेशके लिए हितकारी हुआ है। और उनके खिलाफ कानून बनाना अगर अन्यायपूर्ण न हुआ, तो भी अबुद्धिमत्तापूर्ण तो होगा ही!* (अक्षरोंमें फर्क मैंने किया है)।

* * *

८. . . . उनमें लगभग सभी मुसलमान हैं। शराब या तो वे पीते ही नहीं, या सँभलकर पीते हैं। वे स्वभावसे कमखर्च और कानूनको माननेवाले हैं।

आयोगके सामने गवाही देनेवाले ७२ यूरोपीय गवाहोंमें से उपनिवेशमें भारतीयोंकी उपस्थितिके परिणामोंकी चर्चा करनेवाले प्रत्येकने कहा है कि उपनिवेशकी भलाईके लिए वे अनिवार्य हैं।

मैंने जरा विस्तृत उद्धरण दिये हैं। इससे मेरा यह तर्क करनेका इरादा नहीं है कि भारतीयोंको मताधिकार दिया जाये (वह तो उन्हें है ही)।

इसका मंशा इस आरोपका कि वे जबरन उपनिवेशमें घुँस आये हैं, और इस वक्तव्यका कि उपनिवेशकी समृद्धिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, खण्डन करना है। हाथ कंगनको आरसी क्या? सबसे अच्छा प्रमाण तो यह है कि भारतीयोंके बारेमें कुछ भी क्यों न कहा जा रहा हो, उनकी माँग फिर भी की जाती है। संरक्षकका विभाग भारतीय मजदूरोंकी माँग पूरी करनेमें समर्थ नहीं हो रहा है।

१८९५ की वार्षिक रिपोर्टके पृष्ठ ५ पर संरक्षकने कहा है :

> **गत वर्ष जितने आदमियोंकी माँग की गई थी, उनमें से, सालके आखिरमें, १,३३० आदमी देनेको बच गये थे। १८९५ में इस संख्याके अलावा २,७६० आदमियोंकी माँग और की गई। इस प्रकार कुल संख्या ४,०९० हो गई। इनमें से रिपोर्टके वर्षमें २,०३२ आदमी आये (१,०४९ मद्राससे और ९८३ कलकत्तेसे)। इस तरह पिछले वर्षकी माँग पूरी करनेके लिए २,०५८ (ऋण १२, जिनकी माँग रद हो गई) आदमी आने बाकी रहे।**

अगर भारतीय सचमुच ही उपनिवेशको हानि पहुँचानेवाले हैं, तो सबसे अच्छा और सबसे न्यायपूर्ण तरीका यह होगा कि भविष्यमें भारतीय मजदूरोंको लाना बन्द कर दिया जाये। इससे, उचित समय आनेपर, वर्तमान भारतीय आबादी भी उपनिवेशको ज्यादा कष्ट पहुँचाना बन्द कर देगी। जिन हालतोंका मतलब गुलामी होता हो उनमें उन्हें लाना न्यायसंगत नहीं है। तो फिर, अगर इस अपीलसे भारतीय मताधिकारके खिलाफ उठाई गई विभिन्न आपत्तियोंका जरा भी सन्तोषजनक उत्तर मिला हो; अगर पाठकोंको यह दावा स्वीकार हो कि भारतीयोंका मताधिकार-सम्बन्धी आन्दोलन उस अधःपतनका विरोध-मात्र है, जिसमें प्रति-आन्दोलन उन्हें डुबाना चाहता है, और उसका उद्देश्य राजनीतिक सत्ता अथवा प्रभाव प्राप्त करना नहीं है; तो मेरा नम्र खयाल है कि मैं पाठकोंको भारतीयोंके मताधिकारका घोर विरोध करनेका निश्चय करनेके पहले रुकने और सोचनेको कहूँ तो उचित ही होगा। यद्यपि अखबारोंने "ब्रिटिश प्रजा" की दुहाईको दीवानापन और खब्त कहकर रद कर दिया है, मुझे उसी कल्पनाका सहारा लेना होगा। उसके बिना मताधिकारका कोई आन्दोलन होता ही नहीं। उसके बिना शायद सरकारसे सहायता-प्राप्त कोई प्रवास भी नहीं होता। यदि भारतीय ब्रिटिश

प्रजा न होते तो, बहुत सम्भव है, वे नेटालमें होते ही नहीं। इसलिए मैं दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक अंग्रेजसे अनुरोध करता हूँ कि "ब्रिटिश प्रजा" के विचारको तुच्छ चीज समझकर कोई यों ही रद न कर दे। १८५८ की घोषणा सम्राज्ञीका एक कानून है, जिसे सम्भवतः सम्राज्ञीकी प्रजाने स्वीकार किया है। क्योंकि, वह घोषणा मनमाने तौरसे नहीं कर दी गई थी, बल्कि उनके तत्कालीन सलाहकारोंकी सलाहके अनुसार की गई थी। और उन सलाहकारोंमें मतदाताओंने अपने मतोंके द्वारा अपना पूरा विश्वास स्थापित किया था। भारत इंग्लैंडके अधीन है, और इंग्लैंड उसे खोना नहीं चाहता। भारतीयोंके साथ अंग्रेजोंका एक-एक व्यवहार भारतीयों तथा अंग्रेजोंके बीच आखिरी रिश्ता गढ़नेमें कुछ-न-कुछ असर किये बिना नहीं रह सकता। कुछ हो, यह तो सत्य है ही कि भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें इसलिए हैं कि वे ब्रिटिश प्रजा हैं। कोई चाहे या न चाहे, भारतीयोंकी उपस्थिति तो बरदाश्त करनी ही है। फिर क्या ज्यादा अच्छा यह न होगा कि दोनों समाजोंके बीच कड़वाहट पैदा करनेवाला कोई काम न किया जाये? जल्दबाजीमें निष्कर्ष निकालनेसे, या निराधार मान्यताओंकी बिनापर निष्कर्षपर पहुँचनेसे यह बिलकुल अशक्य नहीं कि भारतीयोंके प्रति बिना इरादेके अन्याय हो जाये।

मेरा निवेदन है कि सभी विचारशील लोगोंके मनमें प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि भारतीयोंको उपनिवेशसे कैसे खदेड़ दिया जाये, बल्कि यह होना चाहिए कि दोनों समाजोंके बीच सन्तोषजनक सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाये। भारतीयोंके विरुद्ध अमैत्री और द्वेषका रुख रखनेका परिणाम, मेरा निवेदन है, अत्यन्त स्वार्थी दृष्टिकोणसे भी भला नहीं हो सकता। हाँ, अगर अपने पड़ोसीके प्रति अपने मनमें अमैत्रीका भाव पैदा करनेमें ही कोई सुख हो तो बात दूसरी है। ऐसी नीति ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिशोंकी न्याय तथा औचित्य-बुद्धिके प्रतिकूल है। सबके ऊपर, भारतीय मताधिकारके विरोधी जिस ईसाइयतकी भावनाका दावा करते हैं, उसकी वह द्रोही है।

अखबारों, सारे दक्षिण आफ्रिकाके लोकपरायण व्यक्तियों और धर्मगुरुओंसे मैं विशेष रूपसे अपील करता हूँ। लोकमत आपके हाथोंमें है। आप ही उसको ढालते और उसका मार्गदर्शन करते हैं। यह आपके सोचनेकी बात है कि क्या जिस नीतिका अबतक पालन किया गया है उसे आगे जारी रखना सही और योग्य है? अंग्रेजोंकी हैसियतसे आपका कर्तव्य दोनों समाजोंमें फूट डालना नहीं, उन्हें मिलाकर एक करना ही हो सकता है।

भारतीयोंमें अनेक दोष हैं। दोनों समाजोंके बीच वर्तमान असन्तोषजनक भावनाओंकी जिम्मेदारी कुछ हदतक निःसन्देह स्वयं उनपर ही है। मेरा उद्देश्य आपको यह विश्वास कराना है कि साराका सारा दोष एक ओर नहीं है।

मैंने अक्सर अखबारोंमें पढ़ा है और सुना है कि भारतीयोंके लिए शिकायतकी कोई बात ही नहीं है। मेरा निवेदन है कि न तो आप और न यहाँके भारतीय ही निष्पक्ष निर्णय करनेमें समर्थ हैं। इसलिए मैं आपका ध्यान बिलकुल बाहरी लोकमत — इंग्लैंड और भारतके पत्रोंकी ओर आकृष्ट करता हूँ। वे लगभग एकमतसे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि भारतीयोंके पास शिकायत करनेके उचित कारण हैं। और इस सम्बन्धमें, मैं अक्सर दुहराये जानेवाले इस कथनको माननेसे इनकार करता हूँ कि बाहरी देशोंके मतका आधार दक्षिण आफ्रिकासे भारतीयों द्वारा भेजी जानेवाली अतिरंजित रिपोर्टें हैं। इंग्लैंड और भारतको भेजी जानेवाली रिपोर्टोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान रखनेका दावा मुझे है। और मुझे कहनेमें कोई संकोच नहीं कि उन रिपोर्टोंमें करीब-करीब हमेशा ही कम बतानेकी भूल की गई है। ऐसा एक भी वक्तव्य नहीं दिया गया, जिसे अकाट्य प्रमाणोंसे साबित न किया जा सकता हो। परन्तु सबसे अधिक उल्लेखनीय बात तो यह है कि जिन तथ्योंको स्वीकार कर लिया गया है, उनके बारेमें कोई झगड़ा है ही नहीं। उन्हीं तथ्योंके आधारपर बना बाहरी मत यह है कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता। मैं एक उग्र विचारोंके पत्र *स्टार*से केवल एक उद्धरण दूंगा। दुनियाके सबसे गम्भीर पत्र *टाइम्स*का मत तो दक्षिण आफ्रिकाके हर व्यक्तिको मालूम है।

अक्तूबर २१, १८९५ के *स्टार*ने श्री चेम्बरलेनसे मिलनेवाले शिष्ट-मण्डलके सम्बन्धमें विचार प्रकट करते हुए कहा है:

> **ब्रिटिश भारतीय प्रजाजन जिस घृणित उत्पीड़नके शिकार बनाये जा रहे हैं उसपर प्रकाश डालनेके लिए ये विवरण काफी हैं। नया भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयक, जिसका मंशा भारतीयोंको करीब-करीब गुलामीकी हालतमें गिरा देना है, इसका एक और उदाहरण है। यह चीज एक भयानक अन्याय, ब्रिटिश प्रजाका अपमान, अपने रचयिताओंके लिए शर्मका विषय और हमपर एक कलंक है। प्रत्येक अंग्रेजका काम है कि वह दक्षिण आफ्रिकी व्यापारियोंके लोभको ऐसे**

लोगों पर तीखा अन्याय बरपा करने न दे, जिनको घोषणा और संविधि (स्टॅच्यूट) दोनोंके द्वारा समान रूपसे कानूनके सामने हमारी बराबरीका दर्जा दिया गया है।

अगर मैं आपको सिर्फ यह विश्वास दिला सकूं कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रति 'बड़ीसे बड़ी दयालुता' नहीं दिखाई गई और वर्तमान हालतोंका दोष यूरोपीयोंपर भी है, तो पूरे भारतीय प्रश्नपर ठंडे दिलसे विचार करनेका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। और शायद यह प्रश्न ब्रिटिश सरकारके हस्तक्षेपके बिना ही ऐसे ढंगसे तय हो जायेगा जो दोनों पक्षोंके लिए सन्तोषजनक हो। धर्मगुरुओंको इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर चुप क्यों रहना चाहिए? यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि सारे दक्षिण आफ्रिकाके भविष्यपर इसका असर होनेवाला है। वे शुद्ध राजनीतिमें तो भाग लेते ही हैं। भारतीयोंका मताधिकार छीननेकी माँग करनेके लिए जो सभाएँ होती हैं उनमें भी वे जाते ही हैं। फिर यह प्रश्न तो केवल-मात्र राजनीतिक नहीं है। क्या वे एक सारीकी सारी जातिको तर्कहीन द्वेषभावके कारण नीचे गिराये जाते तथा अपमानित किये जाते चुपचाप देखते बैठे रहेंगे? क्या ईसाका ईसाई धर्म उन्हें इस तरहकी उपेक्षाकी अनुमति देता है?

मैं फिर दुहराता हूँ कि भारतीय राजनीतिक सत्ताकी इच्छा नहीं करते। वे नीचे ढकेले जानेसे और उन अनेक अन्य नतीजों और कानूनोंसे डरते और उनका विरोध करते हैं, जो मताधिकारके छीने जानेसे निकलेंगे, और उसपर आधारित किये जायेंगे।

अन्तमें, मैं उन लोगोंका हृदयसे ऋणी मानूंगा, जो इसे पढ़ेंगे और इसकी विषय-सामग्रीपर अपने विचार व्यक्त करेंगे। अनेक यूरोपीयोंने खानगी तौर-पर भारतीयोंके प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। भारतीय-मताधिकारके सम्बन्धमें उपनिवेशमें की गई विभिन्न सभाओंमें जो सर्वग्रासी प्रस्ताव पास किये गये हैं और जो भाषण दिये गये हैं उनकी कटु ध्वनिको भी उन्होंने जोरोंसे नापसन्द किया है। अगर ये सज्जन सामने आकर अपने विश्वास व्यक्त करनेका साहस दिखायें तो उन्हें चौहरा पुरस्कार मिलेगा। वे उपनिवेशके ४०,००० भारतीयोंकी — सचमुच तो सारे भारतकी — कृतज्ञता अर्जित कर लेंगे; यूरोपीयोंके दिलसे यह खयाल निकालकर कि, भारतीय लोग उपनिवेशके लिए अभिशाप-स्वरूप हैं, उपनिवेशकी सच्ची सेवा करेंगे; वे अनावश्यक उत्पीड़नसे, जो वे जानते हैं कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें फैला हुआ

है, एक प्राचीन जातिके एक भागकी रक्षा करके, या रक्षामें मदद करके, मानव-जातिकी सेवा करेंगे; और अन्तमें, किन्तु महत्त्वमें कम नहीं, उदात्ततम अंग्रेजोंके साथ मिलकर ऐसी कड़ियाँ गढ़नेवाले बनेंगे, जो इंग्लैंड तथा भारतको प्रेम तथा शान्तिके बन्धनमें बाँधेंगी। मेरा नम्र निवेदन है कि इसके लिए अग्रणियोंका जो थोड़ा-बहुत उपहास किया जायेगा, वह इसके महत्त्वकी दृष्टिसे सहने योग्य है। दो समाजोंको परस्पर फोड़ देना सरल है, परन्तु उन्हें प्रेमके "रेशमी धागे" से बाँधकर एक करना उतना ही कठिन है। परन्तु प्रत्येक वस्तु जो प्राप्त करने योग्य होती है, वह भारी मात्रामें कष्ट और परेशानी सहने योग्य भी होती है।

इस विषयमें नेटाल भारतीय कांग्रेसका नाम लिया जाता है और उसकी बहुत गलत तसवीर खींची गई है। एक पृथक् पुस्तिका[1] में उसके ध्येय और कार्य-पद्धतिका पूरी तरह विवेचन किया जायेगा।

जब यह पत्र लिखा जा रहा था, श्री मेडनने वेलेयरमें एक भाषण दिया। और उस सभामें एक विलक्षण प्रस्ताव पास किया गया। उक्त माननीय सज्जनके प्रति अधिकसे अधिक सम्मान रखते हुए, मैं उनके इस कथनपर आपत्ति करता हूँ कि भारतीय सदा गुलामीकी हालतमें रहे हैं, और इसलिए स्वशासनके लिए अयोग्य हैं। यद्यपि उन्होंने अपने कथनके समर्थनमें इतिहासकी सहायता ली है, मेरा दावा है कि इतिहास उसे साबित करनेमें असमर्थ है। पहली बात तो यह है कि भारतीय इतिहास सिकन्दर महानके आक्रमणकी तारीखोंसे शुरू नहीं होता। फिर भी, मैं यह कहनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ कि, उस समयका भारत आजके यूरोपकी तुलनामें बहुत अच्छा उतरेगा। मैं उन्हें हंटर-कृत *इंडियन एम्पायर*, पृष्ठ १६९-७० पर यूनानियों द्वारा किया हुआ भारतका वर्णन पढ़नेकी सलाह देता हूँ। उसका कुछ अंश मेरी 'खुली चिट्ठी' में उद्धृत किया गया है। और फिर, उस तारीखके पहलेके भारतका क्या? इतिहास बताता है कि आर्योंका घर भारत नहीं था, वे मध्य एशियासे आये थे और उनकी एक शाखा भारतमें आकर बस गई, दूसरी शाखाएँ यूरोपको चली गईं। और उस समयका शासन शब्दके सच्चेसे सच्चे अर्थमें सभ्य शासन था। सम्पूर्ण आर्य साहित्य उसी समय निर्मित हुआ था। सिकन्दरके समयका भारत तो पतनाभिमुख था। जब दूसरे राष्ट्रोंका निर्माण भी शायद

१. यह पुस्तिका उपलब्ध नहीं हुई।

ही हुआ था, उस समय भारत उन्नतिके शिखरपर था। और वर्तमान युगके भारतीय उसी जातिके वंशज हैं। इसलिए यह कहना कि भारतीय तो सदा गुलामीमें रहे हैं, सही नहीं है। बेशक, भारत अजेय नहीं रहा और भारतीयोंके मताधिकारको छीननेका यही कारण हो तो मुझे इसके अलावा कुछ नहीं कहना कि दुर्भाग्यवश प्रत्येक राष्ट्र इस विषयमें ओछा पाया जायेगा। यह सच है कि इंग्लैंड भारतपर अपना "राजदण्ड चलाता" है। भारतीय उसके लिए लज्जित नहीं हैं। वे ब्रिटिश ताजके अधीन रहनेमें गौरव अनुभव करते हैं, क्योंकि उनका खयाल है कि इंग्लैंड भारतका बन्धन-मोचक सिद्ध होगा। सब आश्चर्योंका आश्चर्य तो यह दिखाई देता है कि भारतीय जनता, बाइबिलके कृपापात्र राष्ट्रके समान, शताब्दियोंके अत्याचारों और पराधीनताके बावजूद, अब भी अदमनीय बनी है। और अनेक ब्रिटिश लेखकोंका खयाल है कि भारत अपनी रजामन्दीसे इंग्लैंडकी अधीनतामें है।

प्रोफेसर सीली कहते हैं:

> भारतके राष्ट्रोंको एक ऐसी सेनासे जीता गया है, जिसका औसतन पाँचवाँ भाग ही अंग्रेजोंका था। कम्पनीके शुरू-शुरूके युद्धोंमें, जिनसे उसकी सत्ता निर्णायक रूपमें स्थापित हुई — अरकाटके घेरेमें, प्लासीमें, बक्सरमें — कम्पनीकी ओरसे लड़नेवाले यूरोपीयोंकी अपेक्षा 'सिपाही' ही ज्यादा थे। और इसके आगे भी हम देख लें कि भारतीयोंके अच्छा युद्ध न करने या यूरोपीयोंके सारा युद्ध-भार अपने ऊपर ले लेनेकी बातें भी हमें सुनाई नहीं पड़तीं। . . . परन्तु, अगर एक बार यह मान लिया जाये कि 'सिपाहियों'की संख्या अंग्रेजोंकी संख्यासे हमेशा ज्यादा रही और सैनिक दक्षतामें भी वे अंग्रेजोंके बराबर रहे, तो फिर यह साराका सारा सिद्धांत ढह जाता है कि हमारी सफलताका कारण हमारी स्वाभाविक वीरता है, जो तुलनामें बहुत अधिक है। — *डिग्बी : इंडिया फार द इंडियन्स एंड फार इंग्लैंड।*

रिपोर्टके अनुसार, उस माननीय सज्जनने यह भी कहा है:

> हम (उपनिवेशवासियों)को नेटालमें कुछ निश्चित परिस्थितियोंमें उत्तरदायी शासनका अधिकार दिया गया था। आपने हमारे विधेयकोंको अनुमति देनेसे इनकार कर दिया। इससे वे परिस्थितियाँ बिलकुल बदल गईं

हैं। आपने एक ऐसी खतरनाक स्थिति पैदा कर दी है कि जो अधिकार हमें सौंपा गया था वह आपको वापस कर देना हमारा स्पष्ट कर्तव्य हो गया है।

सत्यके यह सब कितना प्रतिकूल है! इसके पीछे यह मान्यता है कि ब्रिटिश सरकार अब उपनिवेशके भारतीयोंको जबरन मताधिकार दिला देनेका प्रयत्न कर रही है। परन्तु सत्य तो यह है कि उत्तरदायी सरकार स्वयं उन परिस्थितियोंमें भारी परिवर्तन करनेका प्रयत्न कर रही है, जो सत्ता हस्तान्तरित होनेके समय थीं। फिर अगर डाउनिंग स्ट्रीट-स्थित सरकार यह कहे तो क्या न्याय न होगा कि "हमने आपको कुछ निश्चित परिस्थितियोंमें उत्तरदायी शासन सौंपा था। वे परिस्थितियाँ अब बिलकुल बदल गई हैं। यह आपके गत वर्षके विधेयकसे हुआ है। आपने सारे ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश न्याय-भावनाके लिए इतनी खतरनाक हालत पैदा कर दी है कि हमारा साफ कर्तव्य हो गया है कि, हम आपको उन मूल तत्त्वोंके साथ खिलवाड़ न करने दें, जिनपर ब्रिटिश संविधानकी नींव रखी गई है"?

जब उत्तरदायी शासन मंजूर किया गया उस समय, मेरा निवेदन है, श्री मेडनकी आपत्ति सही हो सकती थी। यह प्रश्न दूसरा है कि अगर यूरोपीय उपनिवेशियोंने भारतीयोंका मताधिकार छीननेकी जिद की होती तो उत्तरदायी शासन कभी दिया भी जाता या नहीं।

मो० क० गांधी

एक अंग्रेजी पुस्तिकासे, जो टी० एल० कलिंगवर्थ, मुद्रक, ४०, फील्ड स्ट्रीट, डर्बनने १८९५ में छापी थी।

६८. नेटालमें अन्नाहार

नेटालमें, या यों कहिए कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें, इस कार्यके लिए बड़े कठिन प्रयत्नकी जरूरत है। फिर भी, ऐसे स्थान बहुत नहीं हैं, जहाँ अन्नाहारका अवलम्बन नेटालकी अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यकारी, मितव्ययी या व्यावहारिक हो। वेशक, हालमें वह यहाँ मितव्ययी नहीं है। और, निश्चय ही अन्नाहारी बने रहनेके लिए भारी आत्मनिग्रहकी आवश्यकता होती है। फिर, नया अन्नाहारी बनना तो लगभग असम्भव ही मालूम होता है। मैंने इस प्रश्नपर बीसियों लोगोंसे चर्चा की है और सबने मुझसे यही प्रश्न किया है कि "लंदनमें तो सब ठीक है; वहाँ बीसियों अन्नाहारी जलपान-गृह मौजूद हैं। परन्तु दक्षिण आफ्रिकामें बहुत कम पौष्टिक अन्नाहार प्राप्त होता है। यहाँ आप कैसे अन्नाहारी बन सकते या रह सकते हैं?" दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवा समशीतोष्ण है और यहाँ फल-शाकादिके साधन अक्षय हैं। इसलिए खयाल यह हो सकता है कि यहाँ ऐसा उत्तर पाना असम्भव है। फिर भी यह उत्तर पूर्णतः उचित है। यहाँ अच्छेसे अच्छे होटलमें भी दुपहरके भोजनके समय मामूली तौरपर सिर्फ आलूका शाक मिलता है, सो भी बुरी तरहसे पका हुआ। ब्यालूके समय शायद दो शाक मिल जाते हैं और उनमें मुश्किलसे कभी अदला-बदली होती है। दक्षिण आफ्रिकाके इस उद्यान-उपनिवेशमें तो मौसममें फल कौड़ी-मोल मिल सकते हैं। इसलिए होटलोंमें बहुत कम फल मिलना कलंककी बातसे जरा भी कम नहीं है। दालें तो अपने अभावके कारण ही जानी जाती हैं। एक सज्जनने मुझे लिखकर पूछा था कि क्या डर्बनमें दालें मिल सकती हैं? चार्ल्सटाउन और आसपासके कस्बोंमें उन्हें नहीं मिल सकीं। कवची मेवे तो सिर्फ क्रिसमसके दिनोंमें मिल सकते हैं।

यह है वर्तमान परिस्थिति। इसलिए, अगर मैं लगभग ९ महीनोंके विज्ञापन और गुपचुप समझाने-बुझानेके बावजूद बहुत कम प्रत्यक्ष प्रगतिका विवरण दूं तो अन्नाहारी मित्रोंको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। अन्नाहारके प्रचारमें सिर्फ ऊपर बताई हुई कठिनाइयाँ ही नहीं हैं। यहाँके लोग स्वर्णके अलावा दूसरी बातोंके बारेमें बहुत कम सोचते हैं। यह स्वर्ण-ज्वर इस प्रदेशमें इतना संक्रामक है कि इसने आध्यात्मिक गुरुओं-सहित छोटे और बड़े सभी
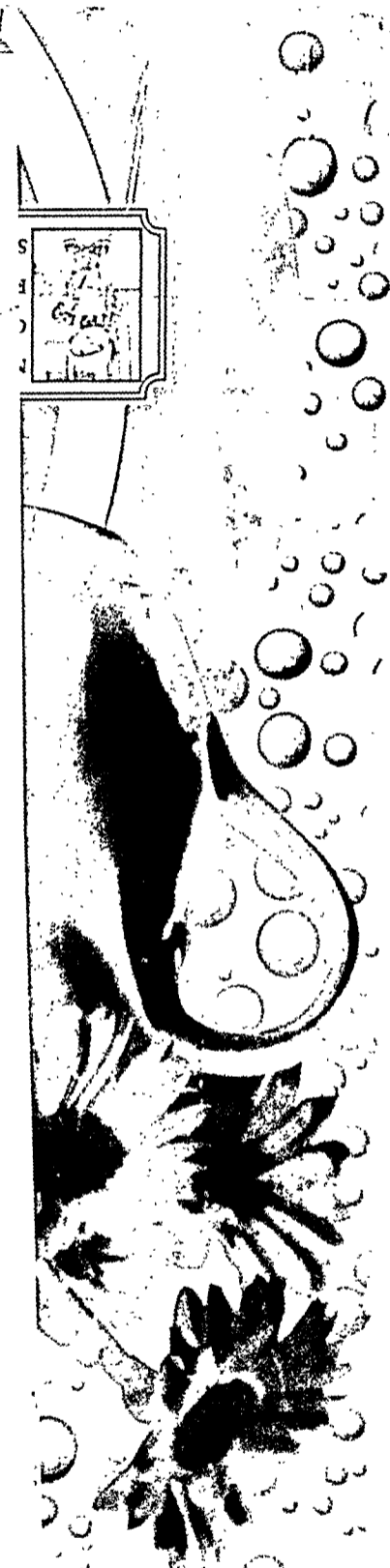
लोगोंको ग्रस लिया है। जीवनके उच्चतर कार्योंके लिए उनके पास समय नहीं है। जीवनके परेकी सोचनेके लिए उन्हें अवकाश नहीं मिलता।

*वेजिटेरियन*की प्रतियाँ हर सप्ताह नियमपूर्वक अधिकतर पुस्तकालयोंको भेज दी जाती हैं। कभी-कभी समाचारपत्रोंमें विज्ञापन भी दिये जाते हैं। अन्नाहारके तत्त्वोंका परिचय देनेके प्रत्येक अवसरका उपयोग किया जाता है। अबतक इससे कुछ सहानुभूतिपूर्ण पत्र-व्यवहार और प्रश्नोंको ही प्रेरणा मिली है। कुछ पुस्तकें भी बिकी हैं। उनके अलावा बहुत-सी मुफ्त बाँटी गई हैं। पत्र-व्यवहार और बातचीतमें विनोदकी कमी नहीं रही है। एक महिलाने 'एसॉटरिक क्रिश्चियानिटी' [ईसाइयोंके उपनयन-पंथ]के विषयमें मेरे साथ पत्र-व्यवहार किया था। जब उसे मालूम हुआ कि इस पंथका अन्नाहारके तत्त्वोंसे कुछ सम्बन्ध है तो वह नाराज हो गई। उसकी चिढ़ इस हदतक पहुँची कि उसे जो पुस्तकें पढ़नेको दी गई थीं उन्हें उसने बिना पढ़े ही वापस कर दिया। एक सज्जन मानते हैं कि आदमीका किसी प्राणीको मारना या कत्ल करना लज्जाकी बात है। वे "अपनी जान बचानेके लिए भी वैसा करनेको तैयार नहीं" हैं। परन्तु अपने लिए पकाया गया मांस खानेमें उन्हें कोई रहम नहीं आता।

दक्षिण आफ्रिकामें और खासकर नेटालमें अन्नाहारकी दृष्टिसे इतनी सम्भावनाएँ हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। कमी सिर्फ अन्नाहार-प्रचारकोंकी है। यहाँकी मिट्टी इतनी उपजाऊ है कि उसमें लगभग सभी-कुछ पैदा हो सकता है। बड़े-बड़े भूखण्ड पड़े हुए सिर्फ कुशल हाथोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, कि वे उन्हें सोनेकी सच्ची खानोंमें बदल दें। अगर थोड़े-से लोगोंको जोहानिसबर्गके सोनेकी ओरसे ध्यान हटाकर कृषिके अधिक शान्तिपूर्ण तरीकेसे धन कमानेकी ओर ध्यान देनेके लिए और अपने रंग-द्वेषसे ऊपर उठनेके लिए राजी किया जा सके, तो नेटालमें निस्सन्देह हर प्रकारके शाक और फल उपजाये जा सकते हैं। दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवा ऐसी है कि यूरोपीय अकेले कभी भी उतनी अच्छी तरह जमीन नहीं कमा सकेंगे, जितनी अच्छी तरहसे उसे कमाना सम्भव है। भारतीय उनकी मददके लिए मौजूद हैं, परन्तु रंग-द्वेषके कारण यूरोपीय उनसे लाभ उठाना नहीं चाहते। और यह रंग-भेद दक्षिण आफ्रिकामें बहुत प्रबल है। नेटालकी समृद्धि भारतीय मजदूरोंपर निर्भर करती है, यह बात मानी हुई है। परन्तु यहाँ भी रंग-द्वेष बहुत प्रबल है। मेरे पास एक बाग-मालिकका पत्र आया है। वह बहुत

चाहता है कि भारतीय मजदूरोंको लगा ले; परन्तु इस भेदभावके कारण लाचार है। इसलिए अन्नाहारियोंको तो देशसेवाके कामका अवसर है। दक्षिण आफ्रिकामें दिन-प्रतिदिन गोरे ब्रिटिश प्रजाजनों और भारतीयोंका सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। उच्चतम अंग्रेज और भारतीय राजनीतिज्ञोंका मत है कि ब्रिटेन और भारतको प्रेमकी जंजीरसे ऐसा बाँधा जा सकता है कि फिर वे कभी अलग न हो सकें। अध्यात्मवादियोंको ऐसी एकतासे अच्छे परिणामोंकी आशा है। परन्तु दक्षिण आफ्रिकी गोरे ब्रिटिश प्रजाजन ऐसी एकतामें बाधा डालने और सम्भव हो तो उसे रोकनेका शक्तिभर प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी हालतमें, अगर कुछ अन्नाहारी आगे बढ़ें तो वे ऐसे संकटको गिरफ्तमें ले सकते हैं।

मैं एक सुझाव देकर नेटालके कामका यह शीघ्रतासे लिखा सिंहावलोकन समाप्त कर दूँगा। अगर कुछ साधन-सम्पन्न और अन्नाहारी साहित्यसे सुपरिचित लोग संसारके भिन्न-भिन्न भागोंकी यात्रा करें, विभिन्न देशोंके साधनोंकी जाँच-पड़ताल करें, अन्नाहारके दृष्टिकोणसे उनकी सम्भावनाओंका लेखा-जोखा लें और जिन देशोंको अन्नाहार प्रचारके लिए तथा आर्थिक दृष्टिसे बसनेके लिए उपयुक्त समझें, उनमें निवास करनेके लिए अन्नाहारियोंको आमन्त्रित करें, तो अन्नाहारके प्रचारका बहुत ज्यादा कार्य किया जा सकता है। गरीब अन्नाहारियोंके लिए उन्नतिके नये स्थान पाये जा सकते हैं और संसारके विभिन्न भागोंमें अन्नाहारियोंके सच्चे केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं।

परन्तु, यह सब करनेके लिए अन्नाहारके तत्त्वको धर्म मानना होगा, केवल आरोग्यकी सुविधा नहीं। उसके मंचको बहुत ऊँचा उठाना होगा।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २१-१२-१८९५
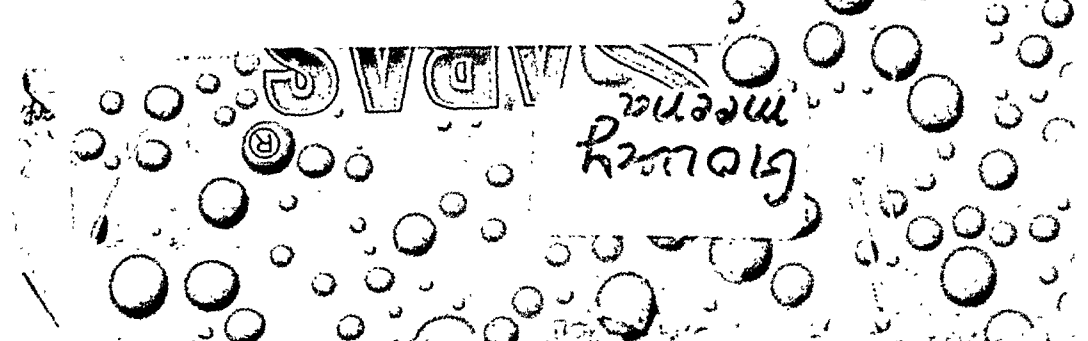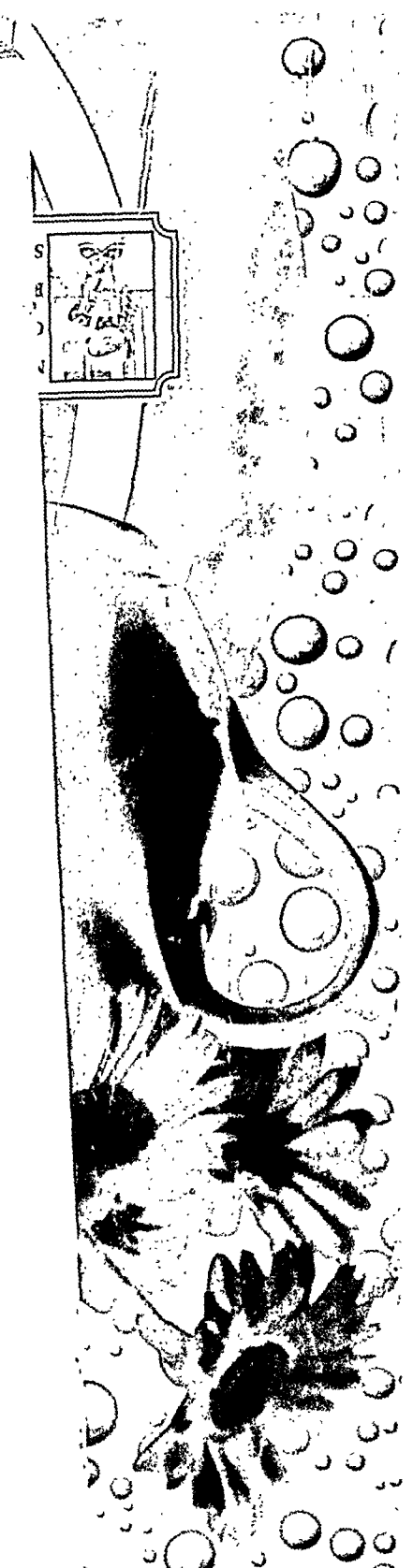
६९. अन्नाहारका सिद्धान्त

डर्बन
फरवरी ३, १८९६

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

मैं आहार-सुधारमें दिलचस्पी रखता हूँ। इस हैसियतसे मैं आपको आपके शनिवारके "चिकित्साका नया विज्ञान" शीर्षक अग्रलेखपर बधाई देना चाहता हूँ। उसमें आपने प्राकृतिक आहार, अर्थात् अन्नाहारपर खूब ही जोर दिया है। इस "विलासप्रिय" युगमें कोई भी आदमी खड़ा होकर किसी भी सिद्धान्तका बौद्धिक तरीकेसे समर्थन करने लगता है, परन्तु उसके अनुसार काम करनेका तो उसका कोई इरादा नहीं होता। अगर इस युगकी यह दुर्भाग्य-पूर्ण खासियत न होती तो हर आदमी अन्नाहारी बन जाता। क्योंकि, जब सर हेनरी टामसन कहते हैं कि मांसाहारको जीवन-पोषणके लिए आवश्यक समझना एक गँवारू भूल है, और जब चोटीके शरीरशास्त्रवेत्ता घोषित करते हैं कि मनुष्यका प्राकृतिक आहार फल है, और जब हमारे सामने बुद्ध, पाइथागोरस, प्लेटो, रे, डैनियल, वेज्ले, होवार्ड, शेली, सर आइज़क पिटमैन, एडीसन, सर डब्ल्यू० बी० रिचार्डसन, आदि अनेकानेक महान व्यक्तियोंके अन्नाहारी होनेके उदाहरण मौजूद हैं, तब स्थिति उलटी क्यों होनी चाहिए? ईसाई अन्नाहारियोंका दावा है कि ईसा भी अन्नाहारी थे और इस विचारका खण्डन करनेवाली कोई बात दिखलाई नहीं पड़ती। सिर्फ इतना उल्लेख मिलता है कि पुनरुत्थानके बाद उन्होंने भुनी हुई मछली खाई थी। दक्षिण आफ्रिकाके सबसे सफल मिशनरी (ट्रैपिस्ट्स) अन्नाहारी हैं। प्रत्येक दृष्टिसे देखनेपर अन्नाहारको मांसाहारकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ साबित किया जा चुका है। अध्यात्मवादियोंका मत है, और शायद आम प्रोटेस्टेंट धर्म-शिक्षकोंको छोड़कर शेष सारे धर्मोंके आचार्योंके व्यवहारसे मालूम होता है कि, मनुष्यकी आध्यात्मिक शक्तिको जितनी हानि अविवेकमय मांसाहारसे पहुँचती है उतनी किसी दूसरी चीजसे नहीं पहुँचती। अत्यन्त निष्ठावान

अन्नाहारियोंका कहना है कि आधुनिक युगकी ईश्वर-विषयक संशयशीलता, भौतिकवाद, और धार्मिक उदासीनताका कारण बहुत ज्यादा मांसाहार तथा मद्यपान है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्यकी आध्यात्मिक शक्ति अंशतः या पूर्णतः नष्ट हो गई है। मनुष्यकी बौद्धिक शक्तिके प्रशंसक अन्नाहारी लोग संसारके तमाम बड़ेसे बड़े बुद्धिशालियोंके उदाहरण देकर बताते हैं कि बौद्धिक जीवनके लिए यदि अन्नाहार मांसाहारकी अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं तो पर्याप्त अवश्य है। उनका कहना है कि दुनियाके सभी बड़ेसे बड़े प्रतिभाशाली लोग खास तौरसे अपनी श्रेष्ठ पुस्तकें लिखते समय तो मांस-मदिराका संयम करते ही रहे हैं। अन्नाहारियोंकी पत्र-पत्रिकाओंसे मालूम होता है कि जहाँ तमाम दवाइयाँ तथा गोमांस और उसके काढ़े बिलकुल व्यर्थ हो गये, वहाँ अन्नाहार शानके साथ सफल हुआ है। हृष्ट-पुष्ट अन्नाहारी यह बताकर अपने आहारकी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं कि दुनियाके किसान करीब-करीब अन्नाहारी हैं, और सबसे मजबूत और उपयोगी जानवर — घोड़ा शाकाहारी है, जब कि सबसे हिंस्र और बिलकुल निरुपयोगी जानवर — सिंह मांसाहारी है। अन्नाहारी नीतिवादी इस बातपर अफसोस करते हैं कि स्वार्थी मनुष्य अपनी अति प्रबल और विकारी भूख मिटानेके लिए मनुष्य जातिके एक समुदाय पर कसाईका पेशा लादते हैं, जब कि वे स्वयं ऐसा पेशा करनेसे सिहर उठेंगे। इसके अलावा, अन्नाहारी नीतिवादी हमसे यह याद रखनेकी प्रेमके साथ विनय करते हैं कि मांसाहार और शराबके बिना ही मनोविकारोंको रोकना और शैतानके पंजेसे बचे रहना हमारे लिए काफी कठिन है, इसलिए हम मांस और मदिराका आश्रय लेकर अपनी इस कठिनाईको बढ़ा न लें। साधारणतः मांस और मदिरा तो साथ-साथ ही चलते हैं, क्योंकि उनका दावा है कि अन्नाहार, जिसमें रसीले फलोंका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, शराबखोरीका सबसे सफल इलाज है, मांसाहारसे तो शराबकी आदत पड़ती या बढ़ती है। उनका तर्क यह भी है कि मांसाहार न केवल अनावश्यक है, बल्कि शरीरके लिए हानिकर भी है। इसलिए उसकी लत अनैतिक और पापमय भी है। उसके कारण निर्दोष पशुओंपर अनावश्यक क्रूरता बरतना और उन्हें पीड़ा पहुँचाना आवश्यक होता है। अन्तमें अन्नाहारी अर्थशास्त्री प्रतिवादकी आशंकाके बिना दावा करते हैं कि अन्नाहार सबसे सस्ता आहार है और उसे आम तौरपर अख्तियार कर लिया जाये तो आज भौतिकवादकी द्रुत प्रगति और थोड़े-से लोगोंके पास भारी सम्पत्तिके संग्रहके साथ-

साथ सामान्य लोगोंमें दरिद्रताकी जो द्रुत गतिसे वृद्धि हो रही है, उसका अन्त करनेमें नहीं तो उसे घटा देनेमें निश्चय ही बहुत मदद मिलेगी। जहाँतक मुझे याद है, डाक्टर लुई कूनेने अन्नाहारकी आवश्यकतापर केवल शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे जोर दिया है। उन्होंने उन नौसिखियोंको कोई ताकीदें नहीं कीं, जिन्हें तरह-तरहके अन्नाहारमें से अपने उपयुक्त वस्तुएँ चुन लेना और उन्हें ठीक ढंगसे पकाना हमेशा बहुत कठिन मालूम होता है। मेरे पास अन्नाहार पाक-विज्ञान-सम्बन्धी चुनी हुई पुस्तकें हैं, जिनकी कीमत एक पेंससे लेकर एक शिलिंग तक है। कुछ पुस्तकें इस विषयके विभिन्न पहलुओंकी विवेचना करनेवाली भी हैं।
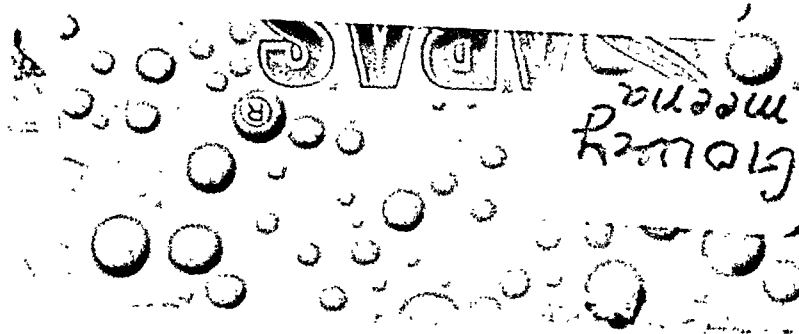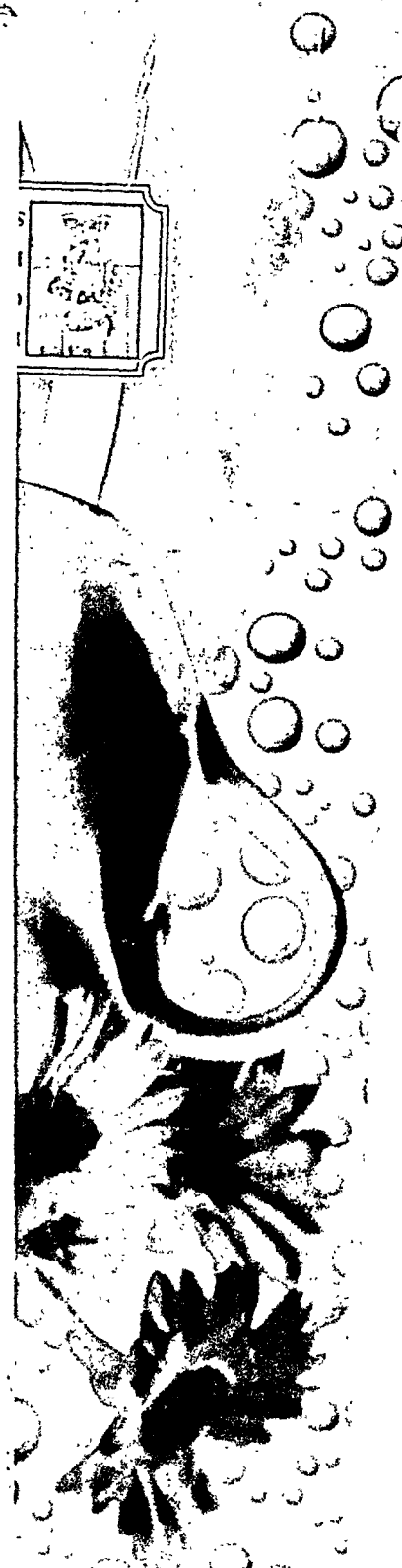
सबसे सस्ती पुस्तकें मुफ्त बाँटी जाती हैं। परन्तु अगर आपके कोई पाठक चिकित्साकी इस नई प्रणालीका दूरसे कौतुक करना नहीं, बल्कि उसका अमल करना चाहते हों तो, जहाँतक उसका सम्बन्ध अन्नाहारसे है, जो पुस्तकें मेरे पास हैं वे मैं खुशीसे उन्हें दे सकूँगा। जो लोग बाइबिलमें विश्वास रखते हैं उनके विचारके लिए मैं निम्नलिखित उद्धरण पेश करता हूँ। "पतन"के पहले हम अन्नाहारी थे :

> **परमात्माने कहा — सुनो, जितने बीजवाले छोटे-छोटे पेड़ सारी पृथ्वीके अन्दर हैं, और जितने वृक्षोंमें बीजवाले फल होते हैं, वे सब मैंने तुमको दे दिये हैं। वे तुम्हारे भोजनके लिए हैं। और जितने पृथ्वीके पशु और आकाशके पक्षी और पृथ्वी पर रेंगनेवाले जन्तु हैं, उन सबके खानेके लिए मैंने सब हरे-हरे छोटे पेड़ दिये हैं। और वैसा ही हो गया।**

जिसको बाकायदा ईसाई धर्मकी दीक्षा नहीं दी गई उसके मांस खानेका कोई बहाना हो सकता है; मगर जो कहते हैं, हम "द्विज" हैं उनके लिए, अन्नाहारी ईसाइयोंके कथनानुसार, कोई बहाना नहीं है; क्योंकि उनकी हालत "पतन"के पहलेके लोगोंकी हालतसे बेहतर नहीं तो उसके बराबर अवश्य होनी चाहिए। और फिर, पुनरुद्धार (रेस्टिट्यूशन)के समय :

> **भेड़िया भी भेड़के साथ रहेगा, और चीता बकरीके साथ लेटेगा, और बछड़ा और सिंहका बच्चा और कत्लके लिए मोटा किया जाने वाला पशु — सब एक साथ घूमेंगे, और छोटा-सा बच्चा उनको ले जायेगा। . . . और सिंह बैलके समान घास खायेगा। . . . मेरे सारे पाक पहाड़ोंपर कोई**

किसीको चोट नहीं पहुँचायेगा, क्योंकि जैसे समुद्र पानीसे भरा रहता है, वैसे ही धरती परमात्माके ज्ञानसे परिपूर्ण होगी।

यह समय अभी सारी दुनियाके लिए बहुत दूर हो सकता है। परन्तु ईसाई लोग — जो जानते हैं और कर सकते हैं — इसे चरितार्थ क्यों न करें? इसके आनेकी अपेक्षा पहलेसे ही इसके अनुसार काम करनेमें कोई हानि नहीं होगी। और हो सकता है, ऐसा करनेसे वह समय बहुत जल्द आ जाये।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ४-२-१८९६

७०. प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको

डर्बन
फरवरी २६, १८९६

सेवामें

परमश्रेष्ठ माननीय सर वाल्टर फ्रांसिस हेली हचिन्सन, नाइट कमांडर, गवर्नर तथा प्रधान सेनापति, तथा उप-नौसेनापति, नेटाल; देशी आबादीके परमोच्च अधिकारी; गवर्नर, जूलूलैंड; आदि-आदि; पीटरमैरित्सबर्ग, नेटाल

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

फरवरी २५, १८९६ को *नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*में नोंदवेनी, जूलूलैंडके जमीन-बिक्री-सम्बन्धी नियमोंके जो अंश प्रकाशित हुए हैं, उनके सम्बन्धमें नेटालवासी भारतीयोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे प्रार्थी महानुभावके सामने उपस्थित हो रहे हैं। उक्त अंश ये हैं:

धारा ४ का अंश — यूरोपीय जन्म या वंशके जो व्यक्ति ऐसे किसी नीलाममें बोली बोलनेके इच्छुक हों वे नीलामकी तारीखसे कमसे कम

बीस दिन पहले मैरित्सबर्गमें ज़ूलूलैंड-सम्बन्धी कामकाजके सेक्रेटरीको, या सरकारके सेक्रेटरी, एशोवे, ज़ूलूलैंडको, लिखित सूचना दे दें। वे जो जमीनें खरीदना चाहते हों, उनका, जहाँतक हो सके, नम्बरोंके जरिये या दूसरे तरीकोंसे विवरण भी दें।

धारा १८ का अंश — सिर्फ यूरोपीय जन्म या वंशके व्यक्तियोंको ही मकानोंकी जमीनके कब्जेदार मंजूर किया जायेगा। यह शर्त पूरी न की जानेपर ऐसी कोई भी जमीन फिरसे सरकारके कब्जेमें लौट जायेगी, जैसा कि इसके पहलेकी धारामें बताया गया है।

नियम २० — नोंदवेनी बस्तीमें इस नीलामके जरिये खरीदी हुई जमीनके मालिकोंको ये जमीनें या इनके हिस्से गैर-यूरोपीय जन्म या वंशके लोगोंको बेचने या किरायेपर देनेका हक भी न होगा। गैर-यूरोपीय लोगोंको इन-पर या इनके हिस्सोंपर बिना किराया काबिज होनेकी इजाजत भी वे न दे सकेंगे। अगर कोई खरीदार इन शर्तोंको तोड़ेगा तो ऐसी कोई भी जमीन इन नियमोंकी धारा १७ के अनुसार सरकारके अधिकारमें वापस चली जायेगी। ये जमीनें इन्हीं स्पष्ट शर्तोंके साथ बेची जायेंगी। इन नियमोंकी धारा १०, ११ और १२ के अनुसार जो अधिकार-पत्र माँगा व दिया जायेगा उसमें ये शर्तें साफ तौरसे दर्ज कर दी जायेंगी।

प्रार्थी इन नियमोंका अर्थ यह समझते हैं कि सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाको नोंदवेनी बस्तीमें जमीन खरीदने या प्राप्त करनेसे वंचित किया जा रहा है।

यूरोपीय और भारतीय ब्रिटिश प्रजाके बीच इस प्रकार जो द्वेषजनक भेद-भाव किया जा रहा है उसका आपके प्रार्थी आदरके साथ किन्तु जोरदार शब्दोंमें विरोध करते हैं।

इस प्रकार वंचित किये जानेका कोई कारण भी हम देख नहीं सकते। यह बात अलग है कि दक्षिण आफ्रिकामें रंग-द्वेषके कारण जिन अनेक मुद्दोंको मान लिया गया है, उनमें ही यह भी एक हो।

प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी एक भाग-पर दूसरे भागको इस तरहकी तरजीह देना न सिर्फ ब्रिटिश नीति और न्यायके प्रतिकूल है, बल्कि भारतीय समाजके मामलेमें तो १८५८ की घोषणाका उल्लंघन भी है। वह घोषणा भारतीयोंको यूरोपीयोंकी बराबरीके व्यवहारका अधिकार देती है।

प्रार्थी यह भी निवेदन करते हैं कि ट्रान्सवाल-निवासी भारतीयोंकी ओरसे सम्राज्ञी-सरकारके प्रयत्नोंको देखते हुए जमीनकी मिलकियत-सम्बन्धी अधिकारोंके बारेमें विचाराधीन नियमोंमें किया गया भेद कुछ विचित्र और असंगत है।

प्रार्थी यह उल्लेख करनेकी भी इजाजत चाहते हैं कि ज़ूलूलैंडके दूसरे भागोंमें बहुत-से भारतीयोंके पास जमीन है।

इसलिए प्रार्थी सविनय प्रार्थना करते हैं कि नियमोंकी धारा २३ के अन्तर्गत सुरक्षित अधिकारोंके बलपर महानुभाव इन नियमोंमें ऐसे परिवर्तनों या संशोधनोंका आदेश दें, जिनसे उपर्युक्त भेदभाव दूर हो जाये।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी
और अन्य ३९ व्यक्ति

एक हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

७१. भारतीय और परवाने

डर्बन
मार्च २, १८९६

सेवामें
संपादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

आपके २९ फरवरीके अंकमें रावर्ट्स और रिचर्ड्स नामक दो व्यक्तियों पर "आवारा कानून"के अनुसार चलाये गये मुकदमेकी अधूरी रिपोर्ट और उसके सम्बन्धमें पुलिस सुपरिंटेंडेंटका मन्तव्य प्रकाशित हुआ है। सुपरिंटेंडेंटने इन दोनों व्यक्तियोंको "उचक्के" तथा अन्य अपशब्दोंसे याद करना पसन्द किया है। इन दोनों व्यक्तियों और भारतीय समाजके प्रति भी न्यायकी दृष्टिसे मैं आपके पत्रका कुछ स्थान लेना चाहता हूँ। रिपोर्ट और मन्तव्यसे ऐसा
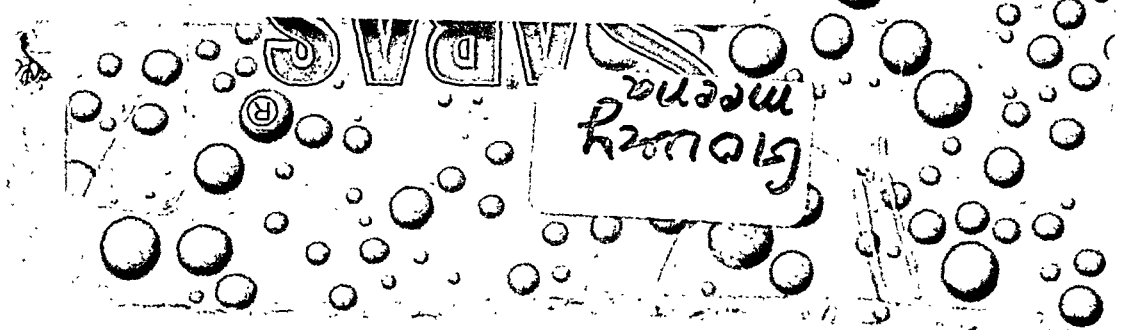
मालूम होता है मानो श्री वालरका निर्णय[1] अन्यायपूर्ण हो। इस विचारको यह रंग देनेके लिए सुपरिंटेंडेंटने गवाहीका वह अंश सामने रखा है, जिसका मैं न केवल दोनों व्यक्तियोंके प्रति, बल्कि ऐसी स्थितिमें पड़े हुए अन्य लोगोंके प्रति जनताकी सहानुभूति जगानेके लिए उपयोग करना चाहता था, और अब भी करना चाहता हूँ।

मेरे नम्र विचारसे इन दोनों व्यक्तियोंका मामला बहुत कठिन था और पुलिसने उन्हें गिरफ्तार करके और बादमें उन्हें सताकर गलती की। मैंने अदालतमें कहा था, और मैं फिर भी कहता हूँ कि अगर पुलिस भारतीयोंके प्रति थोड़ी-सी उदारता बरते और उन्हें गिरफ्तार करनेमें विवेकसे काम ले तो "आवारा कानून" अत्याचारपूर्ण नहीं रहेगा। उपर्युक्त दोनों व्यक्ति गिरमिटिया मजदूरोंके पुत्र हैं, यह हकीकत उनके खिलाफ नहीं पड़नी चाहिए। खास तौरसे अंग्रेज समाजमें तो, जहाँ जन्मके आधारपर नहीं, बल्कि गुणोंके आधारपर लोगोंके बारेमें विचार किया जाता है, ऐसा बिलकुल ही नहीं होना चाहिए। उस समाजमें अगर ऐसा न होता तो एक कसाईके लड़केको बड़ेसे बड़े कविका मान न दिया जाता। इसके अलावा, सुपरिंटेंडेंटने इस बातको बहुत महत्त्व दिया है कि दूसरे अभियुक्तने लगभग दो वर्ष पूर्व अपना नाम बदल लिया था। गिरफ्तार करनेवाले पुलिस सिपाहीने जानबूझकर उसका जो अपमान[2] किया था उसको इसीके बहाने क्षमा कर देनेका सुपरिंटेंडेंटने प्रयत्न किया है। याद रखना चाहिए कि उक्त सिपाहीको कोई जानकारी नहीं थी कि नाम कब बदला गया था और सुपरिंटेंडेंटका जो यह खयाल है कि उसने आवारा कानूनकी पकड़से भाग निकलनेके लिए अपनी राष्ट्रीयताको छिपानेका प्रयत्न किया, सो अगर ऐसा होता तो क्या

१. पुलिस मजिस्ट्रेट श्री वालेसने यह कारण बताकर मामलेको खारिज कर दिया था कि अगर कोई गैर-गोरा व्यक्ति ९ बजे रातके बाद बिना परवानेके घरके बाहर पाया जाये और वह कहे कि मैं अपने घर जा रहा हूँ, तो उसका यह उत्तर उसके बरी हो जानेके लिए काफी होना चाहिए, क्योंकि कानून यह है कि अगर कोई गैर-गोरा व्यक्ति ९ बजे रात और ५ बजे सुबहके बीच घूमता-फिरता पाया जाये और उसके पास न तो उसके मालिकका परवाना हो, न वह अपने घूमने-फिरनेके बारेमें सन्तोषजनक उत्तर ही दे सके, तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाये।

२. जब अभियुक्तने अपना नाम सैम्युएल रिचर्ड्स बताया तब पुलिसका सिपाही उसपर हँसा था।

उसका रूप ही उसकी असली राष्ट्रीयता प्रकट कर देनेके लिए काफी नहीं था? उसे अपने नाम और जन्मके बारेमें भी कोई शर्म नहीं थी, क्योंकि उससे नाम और जन्मके बारेमें जो प्रश्न पूछे गये उनका उसने फौरन उत्तर दिया था। उसके उत्तरोंसे खुशमिजाज सुपरिंटेंडेंट ऐसा खुश दिखलाई दिया कि उसके मुंहसे बरबस उद्‌गार निकल पड़ा — "ठीक है, मेरे बेटे, अगर सब लोग तुम्हारे जैसे होते तो पुलिसको कोई कठिनाई न होती।"

अगर अपना धर्म बदलना गलती नहीं है, तो अपना नाम बदलनेमें भी कोई साफ गलती नहीं हो सकती। छोटी-छोटी बातोंकी बड़ी बातोंके साथ तुलना की जाये तो श्री क्विलियम अब हाजी अब्दुल्ला बन गये हैं, क्योंकि उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है। मनिकाके भूतपूर्व महावाणिज्य-दूत (कॉन्सल जनरल) श्री वेबने भी इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर, मुस्लिम नाम ग्रहण कर लिया है। सिपाहियोंके विचारसे तो भारतीयोंका ईसाई नाम ही नहीं, ईसाई पोशाक भी धारण करना अपराध है। और अब, सुपरिंटेंडेंट के मतानुसार, धर्म-परिवर्तन भारतीयोंको संदेहका पात्र बना देगा। परन्तु मान लें कि धर्म-परिवर्तन सच्चे विश्वासके कारण किया गया है, कानूनको गर्दनिया देनेकी चालके तौरपर नहीं, तो फिर ऐसा क्यों होना चाहिए? प्रस्तुत मामलेमें मैं मानता हूँ कि ये दोनों व्यक्ति ईमानदार ईसाई हैं, क्योंकि मुझे मालूम हुआ है कि डाक्टर बूथ[1] दोनोंका आदर करते हैं। बेशक, सुपरिंटेंडेंट कहेंगे — "मगर यह कैसे जाना जाये कि कोई आदमी सच्चा ईसाई है, या ईसाईके वेशमें शैतान है?" इस सवालका जवाब देना कठिन है। मैंने अदालतसे निवेदन किया था कि हर मामलेका निर्णय उसके अपने ही गुण-दोषके आधारपर किया जाये और न्याय करनेमें जिन बातोंको पहलेसे मानकर चला जाता है, उनका लाभ जिस तरह दूसरे वर्गोंको दिया जाता है उसी तरह भारतीयोंको भी दिया जाये।

मैंने निवेदन किया कि अगर दो आदमी भद्र पोशाक पहने हुए साढ़े नौ बजे रातको शान्तिके साथ मुख्य मार्गसे जा रहे हैं, टोके जानेपर रुक जाते हैं और दावा करते हैं कि वे बागसे लौटकर घर जा रहे हैं; और उनका घर रोके जानेके स्थानसे केवल सात मिनटके रास्तेपर है; उनमें से एक मुहर्रिर और दूसरा शिक्षक है (जैसा कि इन दोनों अभागे लोगोंके बारेमें था),

१. डर्बनके सेंट आइदान गिरजाके पादरी।
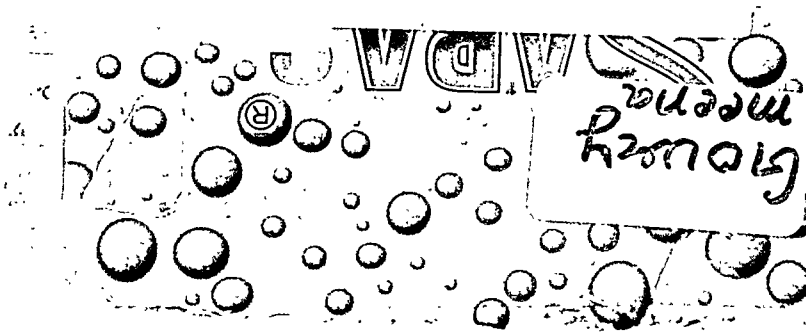
तो उन्हें साधारण न्याय-बुद्धिका लाभ मिलना चाहिए। मैंने यह भी निवेदन किया कि इस प्रकारके मामलोंमें अगर पुलिसको शक ही हो तो वह पकड़े गये लोगोंको हिफाजतके साथ उनके घर पहुँचा सकती है। परन्तु यदि यह भी न हो सके तो उन्हें भद्र व्यक्तियोंके तौरपर हिरासतमें रखा जाये और पहलेसे ही चोर या डाकू न मान लिया जाये। उनकी पोशाक, धर्म और नामके सम्बन्धमें आक्षेप करना तबतक सुभीतेके साथ स्थगित रखा जा सकता है, जबतक कि वे छली साबित न हो जायें।

लगभग एक वर्ष पूर्व मैं स्टैंडर्टनसे डर्बन जा रहा था। मेरे दो साथी-यात्रियों पर चोर होनेका सन्देह किया गया। फ़ोक्सरस्टमें उनके सामानकी और उसके साथ मेरे सामानकी भी — क्योंकि मैं भी उसी डिब्बेमें था — तलाशी ली गई और एक खुफियाको डिब्बेमें बैठा दिया गया। जो मजिस्ट्रेट तलाशी लेने आया था उसे वे व्हिस्कीका प्याला दे सकते थे और खुफियाके साथ भद्र लोगोंके तौरपर बराबरीके दावेसे बातचीत कर सकते थे। यह शायद इसलिए सम्भव था कि वे इज्जतदारोंकी पोशाक पहने थे और पहले दर्जेमें यात्रा कर रहे थे। खुफियाने पहलेसे ही उनके बारेमें फैसला नहीं कर लिया। परन्तु मुझे यह बता देना चाहिए कि वे यूरोपीय थे। सारे रास्ते खुफिया खिन्न रहा कि उसे इस अप्रिय कर्तव्यका पालन करना पड़ रहा था। क्या मैं अनुरोध करूँ कि इन अभागे युवकोंके जैसे मामलोंमें भी इसी प्रकारका व्यवहार किया जाये? उनको कालकोठरीके बदले किसी दूसरी जगहमें रखा जा सकता था। अगर कालकोठरीमें रखना अनिवार्य ही था तो उन्हें सोनेके लिए साफ कम्बल दिये जा सकते थे। सिपाही उनके साथ शिष्टतासे बातचीत कर सकता था। अगर ऐसा किया गया होता तो मामला मजिस्ट्रेटके पास जाता ही नहीं।

मैं सुपरिटेंडेंटके इस बयानपर आपत्ति करता हूँ कि "इन नौजवान उचक्कोंने जमानतपर छूटनेके बजाय रातभर हवालातमें बंद रहना पसन्द किया।" सच बात इसकी उलटी है। वे जमानत दे रहे थे, मगर रातको उसे लेनेसे इनकार कर दिया गया। मजिस्ट्रेटने इस व्यवहारको पसन्द नहीं किया। सुबह उन्होंने फिरसे जमानतपर छोड़े जानेका अनुरोध किया। दूसरे अभियुक्तका अनुरोध मान लिया गया, परन्तु पहलेको जमानतपर छोड़नेसे पुलिसने इनकार कर दिया। उसके नामके आगे लिख रखा गया — "रिहा न किया जाये"। ऐसा लिखा हुआ रजिस्टर अदालतमें पेश किया गया था।

बादमें इन्स्पेक्टर वेनीके कहनेसे उसे रिहा किया गया। इन्स्पेक्टर वेनीने, जैसे ही गलतीका पता चला, उसका उपाय कर दिया।

सुपरिटेंडेंटके प्रति आदरके साथ मेरा निवेदन है कि पहले अभियुक्तने कानूनका भंग नहीं किया। मजिस्ट्रेटने कोई आदेश तो नहीं दिया, परन्तु अपने पितृवत् और दयालु तरीकेसे सुझाव दिया कि मैं उसे मेयरसे परवाना[1] ले लेनेकी सलाह दूँ। मैंने निवेदन किया कि वैसा करना जरूरी तो नहीं है, किन्तु उनकी सलाहका सम्मान करनेके लिए मैं वैसा करूँगा। अब प्रतिवादीको टाउन-क्लार्कके पाससे जवाब मिला है कि उसे पास नहीं दिया जायेगा, क्योंकि किसी क्लार्क और रविवासरी स्कूलके अध्यापकपर कभी किसी अधम अपराधका आरोप नहीं किया गया। अगर वह ९ बजे रातके बाद बाहर निकलनेके लायक नहीं है तो वह रविवासरी स्कूलका शिक्षक होने लायक भी नहीं है। लोग तो ऐसा मानेंगे कि उसके रविवासरी स्कूलका शिक्षक होनेसे, जहाँ कि वह सुकुमार बच्चोंके चारित्र्यका गठन करनेवाला है, उसका ९ बजे रातके बाद बाहर रहना कम खतरनाक है। सुपरिटेंडेंटका कथन है कि उनके दलने "अरब व्यापारियों या दूसरे इज्जतदार गैर-गोरोंको रातमें कभी नहीं छेड़ा।" क्या ये दोनों युवक "दूसरे इज्जतदार गैर-गोरों" में शामिल किये जाने लायक नहीं थे? मैं उनसे अनुरोध और प्रार्थना करता हूँ कि वे भली-भाँति विचार करें, क्या उन्होंने स्वयं इन दोनों युवकोंको गिरफ्तार किया होता? मैं उनके ही शब्दोंमें कहता हूँ कि "अगर उनका पूरा दल उनके समान ही विवेकी और खुशमिजाज होता, तो कोई कठिनाई होती ही नहीं।"

मेरा खयाल है, मेरी "खुली चिट्ठी" प्रकाशित करते हुए आपने कृपा-पूर्वक कहा था कि सच्ची शिकायतोंके मामले आपकी सहानुभूति तुरन्त प्राप्त करेंगे। क्या आप इस मामलेको सच्ची शिकायत मानते हैं? अगर आप मानते हैं तो मैं आपकी सहानुभूतिकी माँग करता हूँ, ताकि इस तरहके मामले फिरसे न हों। जो इज्जतदार भारतीय युवक मेरी सलाह लेना पसन्द करते हैं उन्हें यह सलाह देना मुझे कठिन मालूम हुआ है कि वे अपने मालिकोंसे परवाने ले लें। मैंने उन्हें मेयरके पाससे परवाने लेनेकी सलाह दी है। परन्तु पहली ही अर्जीके नामंजूर हो जानेसे दूसरोंका उत्साह ठंडा

१. रातको बाहर निकलनेकी स्वतन्त्रताका।
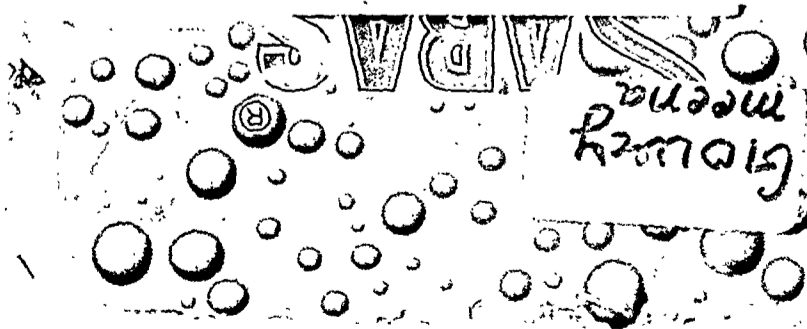
पड़ गया है। और जनता ऐसी गिरफ्तारियोंको पसन्द करेगी तो मजिस्ट्रेटके विपरीत मन्तव्यके बावजूद पुलिसको उन्हें दुहरानेकी प्रेरणा हो सकती है। इसलिए, समाचारपत्र अपने विचारोंसे या तो स्पष्टतः इज्जतदार भारतीयोंके लिए मेयरका परवाना पाना सरल कर सकते हैं, या फिर पुलिसके लिए भविष्यमें ऐसी गिरफ्तारियाँ करना लगभग असम्भव बना सकते हैं। इसके अलावा, कारपोरेशन पर मुकदमा चलानेका भी एक तरीका है सही, परन्तु वह आखिरी तरीका है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, ६–३–१८९६

७२. जूलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके स्थानापन्न सचिवको

डर्बन
मार्च ४, १८९६

श्री सी० वाल्श
जूलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके स्थानापन्न सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

नोंदवेनी वस्तीके नियमोंके सम्बन्धमें मैंने जूलूलैंडके परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको जो स्मरणपत्र भेजा था उसके उत्तरमें आपका पिछली २७ तारीखका पत्र प्राप्त हुआ। इस पत्र द्वारा आपने सूचित किया है कि उपर्युक्त नियम एशोवे वस्तीके उन नियमोंकी नकल मात्र हैं, जो गवर्नर महोदयके पूर्वाधिकारीके समय प्रकाशित किये गये थे।

ऐसी स्थितिमें, मैं स्मरणपत्र-दाताओंकी ओरसे गवर्नर महोदयसे अनुरोध करूँगा कि वे दोनों ही वस्तियोंके नियमोंमें ऐसा फेरफार या संशोधन करनेका आदेश दें, जिससे उनमें दाखिल रंग-भेद दूर हो जाये। किसी भी हालतमें, मैं

निवेदन करनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें भारतीयोंके साम्पत्तिक अधिकारोंके बारेमें अनेक घटनाएँ इस समय घटित हो रही हैं, उनका विशेष रूपसे खयाल करते हुए नोंदवेनीमें इन नियमोंको जारी करना इस आधारपर उचित नहीं ठहराया जा सकता कि ऐसे ही नियम एशोवेमें भी जारी हैं।

मैं मानता हूँ कि मेलमॉथ बस्तीके बारेमें ऐसे कोई नियम नहीं हैं।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० ४२७, जिल्द २४।

७३. जूलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके सचिवको

मैं्रूल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
मार्च ६, १८९६

जूलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

यह देखते हुए कि मेलमॉथ बस्तीके नियमोंमें कोई भेद-भाव नहीं है, क्या मैं जान सकता हूँ कि एशोवे बस्तीके नियमोंमें रंग-भेद दाखिल करनेका कारण क्या हुआ है? मैं मेलमॉथ बस्तीके नियमोंके प्रकाशनकी तारीख भी जानना चाहता हूँ।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, नं० ४२७, जिल्द २४।
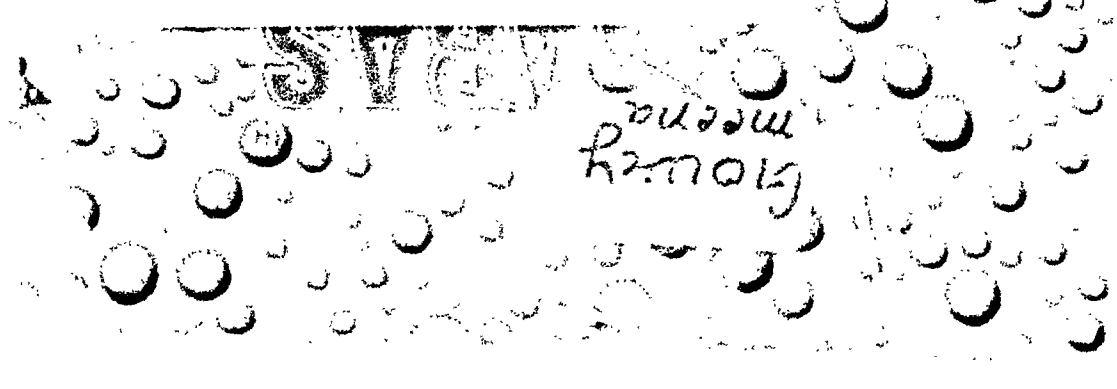
७४. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

मो० क० गांधी
एडवोकेट
एजेंट : एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन
और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

पोस्ट बाक्स ६६
सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
मार्च ७, १८९६

माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
नेशनल लिबरल क्लब
लंदन

श्रीमन्,

मैं इसके साथ एक कतरन भेज रहा हूँ। इसमें मताधिकार-विधेयक दिया गया है। मन्त्रिमण्डल इस विधेयकको आगामी अधिवेशनमें पेश करना चाहता है। ब्रिटिश समितिके अध्यक्षके नाम मेरे पत्र[1]की एक प्रेस-नकल भी साथ है।

जूलूलैंडके गवर्नरने नोंदवेनीके सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र भेजनेवालोंकी विनती मान्य करनेसे इनकार कर दिया है। अब मैं इस विषयपर ब्रिटिश सरकारके नाम एक प्रार्थनापत्र[2] तैयार कर रहा हूँ।

सैनिकों-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रके बारेमें आपके पत्रके लिए मैं नम्रतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,
मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

१. देखिए, पृष्ठ ३०९।
२. देखिए, पृष्ठ ३१०।

मो०
एजेंट: एसॉटरिक
और लंदन वे
सर विलियम वे
अध्यक्ष, ब्रिटिश
लंदन
श्रीमन्,
मैं इसके
विधेयक दिया
अप्रैल-जू
सरकारको
करता है। कहा
ऐसा हो तो
यह खयाल
विधेयकका
भारतीयोंपर
उसका विरोध
एक प्रश्न कर
चेम्बरलेनके
महत्त्वपूर्ण
मूल हस्तलिपि
१. देखिए, पृ

७५. पत्र : वेडरबर्नको

मो० क० गांधी
एडवोकेट
एजेंट : एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन
और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

पोस्ट बाक्स ६६
सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल

मार्च ७, १८९६

सर विलियम वेडरबर्न, बैरोनेट, संसद-सदस्य, आदि
अध्यक्ष, ब्रिटिश समिति, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
लंदन

श्रीमन्,

मैं इसके साथ एक कतरन भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। इसमें मताधिकार-विधेयक दिया गया है। इस विधेयकको सरकार नेटाल-विधानसभाके आगामी अप्रैल-अधिवेशनमें पेश करना चाहती है। १८९४ के जिस कानूनके खिलाफ सरकारको प्रार्थनापत्र[1] भेजा गया था, यह विधेयक उसका ही स्थान ग्रहण करता है। कहा जाता है कि इसे श्री चेम्बरलेनने मंजूर कर लिया है। अगर ऐसा हो तो इससे भारतीय समाज बड़ी अड़चनमें पड़ जायेगा। समाचारपत्रोंका यह खयाल दिखलाई पड़ता है कि भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं, इसलिए विधेयकका असर भारतीयोंपर नहीं पड़ेगा। साथ ही, विधेयकका उद्देश्य भारतीयोंपर वार करना है, इसमें भी कोई शंका नहीं। हमारा इरादा उसका विरोध करनेका है। परन्तु इसी बीच, मेरा नम्र खयाल है, लोकसभामें एक प्रश्न कर देना बहुत अच्छा हो सकता है। सम्भव है उससे श्री चेम्बरलेनके विचारोंकी झलक मिल जाये। भारतीय समाजको शीघ्र ही अन्य महत्त्वपूर्ण विषयोंके सम्बन्धमें भी आपका समय और ध्यान बँटाना होगा।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

मूल हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

१. देखिए, पृष्ठ ९३।

७६. प्रार्थनापत्र : श्री चेम्बरलेनको

डर्बन, नेटाल
मार्च ११, १८९६

सेवामें

परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
लंदन

नेटालवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधि, नीचे
हस्ताक्षर करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

ता० २५ फरवरी, १८९६ के *नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*में जूलूलैंडकी नोंदवेनी वस्तीके सम्वन्धमें कुछ नियम प्रकाशित हुए हैं। वे वहाँ सम्राज्ञी-सरकारके भारतीय प्रजाजनोंके जमीन प्राप्त करनेके अधिकारोंमें वाधक हैं। जहाँतक ऐसी वात है, हम उन नियमोंके वारेमें सम्राज्ञी-सरकारके सामने अर्ज करनेकी इजाजत लेते हैं। हमारी अर्ज जूलूलैंडकी एशोवे वस्तीके उसी तरहके नियमोंके सम्वन्धमें भी है।

नियमोंका जो अंश ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंमें वाधक होता है, वह निम्नलिखित है :

> **धारा ४ का अंश : यूरोपीय जन्म या वंशके जो व्यक्ति ऐसे किसी (अर्थात् मकानोंकी जमीनके) नीलाममें वोली वोलनेके इच्छुक हों वे नीलामकी तारीखसे कमसे कम बीस दिन पहले जूलूलैंड-सम्वन्धी कार्योंके सचिवको लिखित सूचना दे दें, आदि।**
>
> **धारा १८ का अंश : सिर्फ यूरोपीय जन्म या वंशके व्यक्तियोंको ही मकानोंकी जमीनके कब्जेदार मंजूर किया जायेगा। यह शर्त पूरी न की जानेपर ऐसी कोई भी जमीन फिरसे सरकारके कब्जेमें लौट जायेगी, जैसा कि इसके पहलेकी धारामें वताया गया है।**
>
> **धारा २० का अंश : नोंदवेनी वस्तीमें इस नीलामके जरिये खरीदी हुई जमीनके मालिकोंको ये जमीनें या इनके हिस्से गैर-यूरोपीय जन्म या वंशके**

लोगोंको बेचने या किरायेपर देनेका हक कभी न होगा। गैर-यूरोपीय लोगोंको इनपर या इनके हिस्सोंपर बिना किराया काबिज होनेकी इजाजत भी वे न दे सकेंगे। अगर कोई खरीददार इन शर्तोंको तोड़ेगा तो ऐसी कोई भी जमीन इन नियमोंकी धारा १७ के अनुसार सरकारके कब्जेमें वापस चली जायेगी। ये जमीनें इन्हीं स्पष्ट शर्तोंके साथ बेची जायेंगी। इन नियमोंकी धारा १०, ११ और १२ के अनुसार जो अधिकार-पत्र मांगा या दिया जायेगा उसमें ये शर्तें साफ तौरसे दर्ज कर दी जायेंगी।

जिस गज़टमें नोंदवेनी-सम्बन्धी नियम थे, उसके प्रकाशित होनेके दूसरे ही दिन, प्रार्थियोंने जूलूलैंडके गवर्नर महोदयको एक प्रार्थनापत्र भेजा था। उसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि नियमोंमें ऐसा परिवर्तन या संशोधन कर दिया जाये, जिससे उनमें निहित रंग-भेद दूर हो जाये।

उपर्युक्त प्रार्थनापत्र[1] के उत्तरमें, जिसकी नकल इसके साथ नत्थी है, प्रार्थियोंको सूचित किया गया कि वे नियम "वही हैं, जो कि पूर्वगामी गवर्नर महोदयने २८ सितम्बर, १८९१ को घोषित एशोवे बस्तीमें लागू किये थे।" इसपर ४ मार्च, १८९६ को इस आशयका निवेदन किया गया कि ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें दोनों स्थानोंके नियमोंमें परिवर्तन या संशोधन किया जाये।

मार्च ५, १८९६ को इसका उत्तर मिला। आशय यह था कि गवर्नर महोदय इस सुझावके अनुसार कार्रवाई करना उचित नहीं समझते। प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि भारतीय समाजपर बरपा किया गया अन्याय इतना स्पष्ट है कि उसके निवारणके लिए उसे सम्राज्ञी-सरकारकी दृष्टिमें ला देना ही काफी होगा। ऐसा द्वेषजनक और, हम आदरपूर्वक कहते हैं, अनावश्यक भेद-भाव तो स्वशासित उपनिवेशोंमें भी होने नहीं दिया जाता। फिर, सम्राज्ञीके शासनाधीन एक उपनिवेशमें तो इसकी और भी इजाजत नहीं होनी चाहिए।

जूलूलैंडमें आपके अनेक प्रार्थियोंकी जमीन-जायदाद है। १८८९ में, जब मेलमॉथ नामकी बस्तीकी जमीन बेची गई थी तब भारतीय समाजने वहाँ लगभग २,००० पौंडकी जमीन खरीदी थी।

१. देखिए, पृष्ठ २९९।
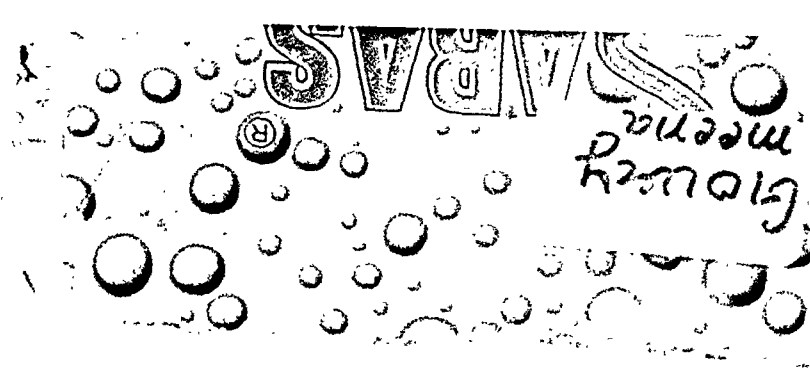
हम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि जूलूलैंडमें भारतीयोंको स्वतन्त्रतापूर्वक जमीन खरीदने देना बिलकुल जरूरी है। भले इसका मंशा सिर्फ इतना ही क्यों न हो कि उनकी जो २,००० पौंडकी रकम वहाँ लगी है, उसका वे फायदा उठा सकें।

नेटालका सरकारी मुखपत्र साधारणतः भारतीयोंकी महत्त्वाकांक्षाओंका विरोधी रहता है। परन्तु इस अन्यायको उसने भी इतना गम्भीर समझा है कि वह जूलूलैंडके गवर्नरको भेजे गये प्रार्थनापत्रपर बहुत अनुकूल विचार व्यक्त किये बिना नहीं रह सका। वे विचार इतने उपयुक्त हैं कि प्रार्थी उन्हें नीचे उद्धृत करनेकी अनुमति लेते हैं :

> जूलूलैंडमें शीघ्र ही एक स्वतन्त्र भारतीय प्रश्न खड़ा हो जानेकी सम्भावना है। हालमें ही नोंदवेनी बस्ती बसानेकी घोषणा की गई है। उसमें मकानोंकी जमीन बेचनेके नियम गत मंगलवारके सरकारी गजटमें प्रकाशित हुए हैं। उनकी अनेक धाराएँ गैर-यूरोपीय जन्म अथवा वंशके लोगोंको उस बस्तीमें जमीन खरीदने और, यहाँतक कि, किसी जमीन-जायदादपर काबिज होनेसे भी रोकनेवाली हैं। भारतीयोंने, जो ऐसी बातोंमें हमेशा आगे रहते हैं, ऐसे नियमोंके जारी किये जानेपर तत्परताके साथ गवर्नरको विरोधका पत्र भेजा है। जूलूलैंड अबतक सम्राज्ञीके शासनाधीन है। इसलिए, उसपर सम्राज्ञीके अधिकारियोंकी सीधी नजर ज्यादा है। इन बातोंको देखते हुए हम ठीक तरहसे समझ नहीं सकते कि वहाँ ऐसे नियमोंका अमल कैसे कराया जा सकता है। हम देखते ही हैं कि नेटालमें जो मताधिकार कानून संशोधन विधेयक पास किया गया है, उसे रोकनेके लिए सम्राज्ञी-सरकारका रुख कितना दृढ़ है। भारतीयोंने जो विरोधपत्र भेजा है उससे मालूम होता है कि उनमें से कुछकी जमीन-जायदाद वहाँ पहलेसे ही मौजूद है। और अगर ऐसा है तो, हम समझते हैं, दूसरे तमाम कारणोंको छोड़ देने पर भी, प्रार्थियोंका मामला विचारके योग्य है। जो जूलू-देश भारतीयोंको अपने यहाँ जमीन-जायदादकी मिलकियत रखनेसे रोकता है, उसमें जमीनपर काबिज होनेके कुछ खास कानून हो सकते हैं। परन्तु फिर भी यह हकीकत तो बनी ही है कि वह प्रदेश सम्राज्ञीके शासनाधीन है। ऐसी स्थितिमें यह बात अजीब मालूम होती है कि

जो नियम उत्तरदायी शासनवाले उपनिवेश नेटालमें नहीं बनाये जा सकते, वे वहाँ बनाये जा सकते हैं।

दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न भागोंमें प्रकाशित होनेवाले नियमों और कानूनोंमें रंग-भेद नित्यप्रति ही दाखिल होता रहता है। यह इतनी आये दिनकी बात हो गई है कि भारतीयोंके लिए अपने अधिकारोंपर प्रहार करनेवाले तमाम कानूनोंसे परिचित रहना और उन्हें सम्राज्ञी-सरकारकी दृष्टिमें लाना असम्भव है। फिर, भारतीय तो मुख्यतः व्यापारी और कारीगर हैं। वे सिर्फ अपने व्यापारके योग्य ही ज्ञान रखते हैं। और बहुतोंको तो उतना भी नहीं है।

और स्थिति यहाँतक पहुँच गई है कि प्रार्थी स्थानिक अधिकारियोंसे ऐसा अन्याय भी दूर करा सकनेकी आशा नहीं रखते, जो प्रस्तुत मामलेके समान, ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंकी भूलसे हो गया हो।

प्रार्थियोंको भय है कि यदि एक सम्राज्ञी-शासनाधीन उपनिवेश सम्राज्ञीकी प्रजाके एक अंशको जमीन-जायदादके अधिकार देनेसे इनकार कर सकता है तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य और आरेंज फ्री स्टेटकी सरकारोंका भी वैसा ही करना या उससे आगे बढ़ जाना बहुत हदतक उचित ठहरेगा।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि एशोवेके नियमोंमें रंग-भेदका अस्तित्व है, इस आधारपर नोंदवेनीमें भी उसी तरहके नियम बनाना उचित नहीं होना चाहिए। अगर एशोवेके नियम बुरे हैं तो अच्छा यह होगा कि दोनोंमें ही ऐसा परिवर्तन या संशोधन कर दिया जाये, जिससे कि ब्रिटिश भारतीय प्रजाके न्यायपूर्ण अधिकारोंपर प्रहार न हो।

प्रार्थी आपका ध्यान एक और वस्तुस्थितिकी ओर भी आकर्षित करनेकी इजाजत लेते हैं। सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके अधिकारोंपर प्रहार करनेवाले कानूनोंसे न केवल दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय भारी परेशानीमें पड़ते हैं, बल्कि ऐसे कानूनोंको बदलानेके लिए उन्हें बार-बार जो प्रार्थनापत्र देने पड़ते हैं, उनमें बहुत खर्च भी होता है। भारतीय समाज अति-समृद्ध तो है ही नहीं, इसलिए उसे यह खर्च बरदाश्त करना बहुत कठिन गुजरता है। फिर, लगातार अशान्ति और क्षोभकी हालतसे सारे भारतीय समाजके व्यापारमें जो बाधा पड़ती है, सो अलग है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी स्थिति और हैसियतकी जाँच कराना आवश्यक है। साथ ही, दक्षिण आफ्रिकी अधिकारियोंको

यह आदेश देना भी आवश्यक है कि वे सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके प्रति अन्य सब ब्रिटिश प्रजाओंकी बराबरीका व्यवहार सुनिश्चित करें। हमारे नम्र मतसे, इससे कम कोई भी कार्रवाई वफादार और कानूनका पालन करनेवाली भारतीय प्रजाको सामाजिक तथा नागरिक विनाशसे बचा नहीं सकेगी।

इसलिए प्रार्थी नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकार एशोवे और नोंदवेनी बस्तियोंके नियमोंमें परिवर्तन या संशोधन करनेका आदेश दे, जिससे सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके मार्गमें उन नियमोंके वर्तमान स्वरूपसे आनेवाली बाधाएँ मिट जायें। हमारा यह नम्र सुझाव भी है कि भविष्यमें भारतीयोंके अधिकारोंपर प्रहार करनेवाले वर्ग-संबद्ध कानून न बनानेका आदेश दिया जाये।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम
और अन्य

एक हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

७७. भारतीयोंका मताधिकार

डर्बन
अप्रैल ४, १८९६

सेवामें
संपादक
नेटाल विटनेस

महोदय,

जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू० ने गत ११ मार्चको आपको पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने भारतीयोंके मताधिकारके सम्बन्धमें मेरी पुस्तिका[1]की आलोचना करके मुझे सम्मानित किया है। उसके उत्तरमें आप मेरा निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित कर दें तो मैं आभारी हूँगा।

१. देखिए, पृष्ठ २६०।

जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू० ने पुस्तिकाकी आलोचना करते हुए मेरे प्रति व्यक्तिगत रूपमें जो न्याय दिखाया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। काश! उन्होंने उस "अपील"की विषय-सामग्रीके बारेमें भी वैसा ही न्याय किया होता! मेरा खयाल है कि अगर उन्होंने उसे निष्पक्ष भावसे पढ़ा होता तो उन्हें उसमें प्रकट किये गये विचारोंसे मत-भेदका कोई कारण न मिलता। मैंने उस विषयकी विवेचना एक ऐसे दृष्टिकोणसे की है जिससे यूरोपीय उपनिवेशियोंको भारतीयोंके सामने निःसंकोच मैत्रीका हाथ बढ़ानेकी प्रेरणा मिलेगी और ऐसा करनेमें उन्हें अपनी वर्तमान स्थितिसे बगली खाकर हटना भी नहीं पड़ेगा। मैं अब भी कहता हूँ कि भयका जरा भी कारण नहीं है। और अगर यूरोपीय उपनिवेशी सिर्फ इतना ही करें कि आन्दोलन खत्म हो जाये और पहलेकी स्थितिको फिरसे कायम करना मंजूर कर लिया जाये, तो वे देखेंगे कि भारतीयोंके मत उनके मतोंको निगलते नहीं। मेरा यह भी निवेदन है कि अगर कभी ऐसा संयोग आ ही जाये तो उसकी व्यवस्था प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें रंग-भेदको दाखिल किये बिना ही पहलेसे की जा सकती है। मताधिकारके लिए शिक्षाकी एक सच्ची और उचित कसौटीसे भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा (अगर वह जरा भी हो तो) शायद हमेशाके लिए निर्मूल हो जायेगा। अगर कोई यूरोपीय मतदाता नितान्त अवांछनीय हों तो उनसे भी इस उपाय द्वारा मतदाता-सूचीको साफ रखा जा सकता है।

जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू० प्रत्यक्ष मतोंकी तुलनात्मक संख्याके आधारपर पेश की गई दलीलोंपर आपत्ति करते हैं और इस ओर ध्यान खींचते हैं कि "अगले वर्षकी मतदाता-सूचीमें क्या हो सकता है।" मैं नम्रतापूर्वक उनका ध्यान इस वस्तुस्थितिकी ओर आकर्षित करता हूँ कि यद्यपि पिछले वर्ष और उसके भी पिछले वर्ष भारतीयोंको मतदाता-सूचीपर छा जानेका मौका हर तरहसे हासिल था, और अब जो मताधिकार-कानून रद किया जानेवाला है उसके नतीजेकी आशंकासे उन्हें हर तरहका प्रलोभन भी था, फिर भी भारतीय मतदाताओंकी संख्यामें बढ़ती नहीं हुई। इसका कारण या तो उनकी असाधारण उदासीनता हो सकती है, या यह कि उनमें मतदाता बननेकी योग्यताओंका अभाव था। परन्तु ऐसी कोई उदासीनता सम्भव नहीं थी, क्योंकि "आन्दोलन" तो गत दो वर्षोंसे चल रहा है।
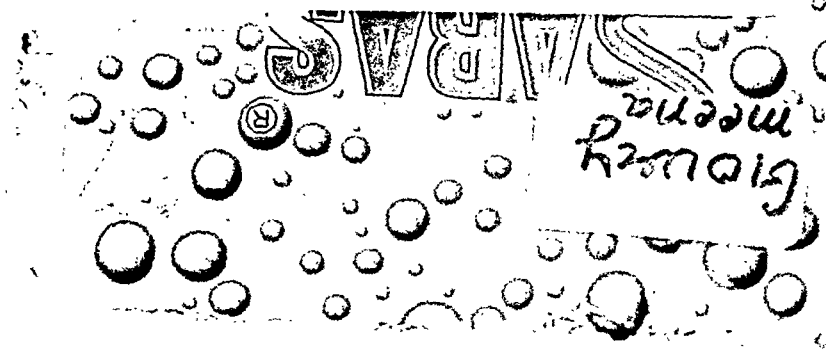
तथापि, समय और स्थानकी कमीके कारण मैं *जी डब्ल्यू० डब्ल्यू०* के पत्रकी विस्तारके साथ मीमांसा करना नहीं चाहता। मैं उतनी जानकारी भर दे दूँगा, जो उन्होंने माँगी है और फिर आगामी अधिवेशनमें पेश किये जानेवाले विधेयकपर उसकी दृष्टिसे विचार करूँगा।

श्री कर्ज़नने, जो उस समय उप-भारतमन्त्री थे, "भारतीय विधानपरिषद कानून (१८६१) संशोधन विधेयक" (इंडिया कौन्सिल्स एक्ट–१८६१–अमेंडमेंट बिल)का दूसरा वाचन पेश करते हुए दूसरी बातोंके साथ-साथ कहा था :

> मेरा कर्तव्य है कि मैं विधेयकके उद्देश्यको सदनके सामने स्पष्ट कर दूँ। उद्देश्य यह है कि भारतीय शासनके आधार और भारत-सरकारके कार्य-क्षेत्रको अधिक विस्तृत बना दिया जाये, भारतके गैर-सरकारी व्यक्तियों और भारतीय जनताको शासनके कार्यमें भाग लेनेका अधिक अवसर दिया जाये और, इस प्रकार, जब १८५८ में ब्रिटिश महारानीने भारतका शासन अपने हाथोंमें लिया तबसे भारतीय समाजके ऊँचे वर्गोंमें राज-नीतिक उद्योग तथा राजनीतिक क्षमता दोनोंका जो उल्लेखनीय विकास दीख पड़ा है, उसे सरकारी मान्यता दी जाये। यह विधेयक १८६१ के भारतीय विधानपरिषद कानूनमें संशोधन करनेके लिए पेश किया गया है। भारतमें बहुत लम्बे समयसे कानून बनानेके किसी-न-किसी प्रकारके अधिकारोंका अस्तित्व रहा है। परन्तु उनका स्वरूप कुछ उलझा हुआ था और वे कभी वैध और कभी अवैध माने जाते थे। वे भूतपूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनके साथ ट्यूडर और स्टुअर्ट राजाओंके अधिकार-पत्रोंकी तारीखोंसे शुरू हुए थे। परन्तु भारतकी वर्तमान विधानमण्डल-प्रणालीका आरम्भ उस समय हुआ था, जब लार्ड कैनिंग वाइसराय थे, और सर सी० वुड, जिन्हें बादमें लार्डकी पदवी दे दी गई थी, भारतमन्त्री थे। सर सी० वुडने १८६१ का भारतीय विधानपरिषद कानून पास कराया था। . . . १८६१ के कानूनसे भारतमें वाइसरायकी सर्वोच्च परिषद और बम्बई तथा मद्रासकी प्रान्तीय परिषदें — इस तरह तीन विधानपरिषदोंका निर्माण हुआ था। वाइसरायकी सर्वोच्च परिषदमें केवल गवर्नर-जनरल और उनकी कार्य-परिषद तथा कमसे कम छः और अधिकसे अधिक बारह अतिरिक्त

सदस्य होते हैं। इन अतिरिक्त सदस्योंकी नामजदगी वाइसराय करता है और इनमें से कमसे कम आधे सदस्योंका गैर-सरकारी व्यक्ति होना आवश्यक है। ये गैर-सरकारी व्यक्ति यूरोपीय या भारतीय कोई भी हो सकते हैं। मद्रास और बम्बईकी विधानपरिषदोंमें भी कमसे कम चार और ज्यादासे ज्यादा आठ अतिरिक्त सदस्य होते हैं। उनकी नामजदगी प्रादेशिक गवर्नर करते हैं और उनमें भी आधे सदस्योंका गैर-सरकारी व्यक्ति होना जरूरी है। उस कानूनके पास होनेके बादसे बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें भी विधानपरिषदें बन चुकी हैं। बंगालकी परिषदमें लेफ्टिनेंट-गवर्नर तथा बारह नामजद सदस्य और पश्चिमोत्तर प्रदेशकी परिषदमें लेफ्टिनेंट-गवर्नर तथा ९ नामजद सदस्य होते हैं। प्रत्येकके नामजद सदस्योंमें एकतिहाईका गैर-सरकारी होना जरूरी है। . . . लोकसेवाकी भावनावाले अनेक प्रतिभाशाली और समर्थ भारतीय सज्जनोंको सरकारको अपनी सेवाएँ प्रदान करनेके लिए आगे बढ़नेको राजी कर लिया गया है। और इन विधानपरिषदोंका योग्यता-मान निस्सन्देह ऊँचा रहा है।

संशोधन-कानून विधानपरिषदोंको बजटपर *बहस करने* और प्रश्न पूछनेका अधिकार प्रदान करता है (यह अधिकार परिषदोंको अबतक नहीं था)। परिषदोंके सदस्योंकी संख्या बढ़ाने और एक सरसरी चुनाव-पद्धति जारी करनेकी व्यवस्था भी उसमें की गई है। बेशक, यह कानून सिर्फ अनुज्ञात्मक है।

उपर्युक्त कानूनके मातहत जो नियम जारी किये गये हैं, उनके अनुसार बम्बई परिषदमें अतिरिक्त सदस्योंके अठारह स्थानोंमें से ८ चुनावके द्वारा भरे जाते हैं। और बम्बई निगम (कारपोरेशन)को (जो स्वयं एक प्रातिनिधिक संस्था है), ऐसे ही अन्य म्यूनिसिपल कारपोरेशनों या उनके एक या एकसे अधिक समूहोंको जिन्हें स-परिषद गवर्नर समय-समयपर बनाये, जिला और लोकल बोर्डो या उनके एक या एकसे अधिक समूहोंको, दक्षिणके सरदारोंको या ऊपर बताये हुए जैसे बड़े-बड़े क्षेत्र-मालिकोंके वर्गो, व्यापारियोंके संघों और बम्बई विश्वविद्यालयकी सेनेटको बहुमतसे इन सदस्योंका चुनाव करनेका अधिकार है। जिन विभिन्न प्रदेशोंमें विधानपरिषदें मौजूद हैं, उनकी विभिन्न प्रातिनिधिक संस्थाओंके द्वारा या उनकी सिफारिशपर सदस्योंका चुनाव करनेके लिए भी ऐसे ही नियम प्रकाशित कर दिये गये हैं।

मताधिकारके या चुने जानेवाले सदस्योंके सम्बन्धमें रंग-भेद अथवा वर्ग-भेदसे काम नहीं लिया गया। सर्वोच्च विधानपरिषदके एक भारतीय सदस्यने, जिन्हें बम्बई विधानपरिषदने चुनकर भेजा था, इस्तीफा दे दिया है। उस स्थानके लिए अब जो उम्मीदवार खड़े हैं, उनमें एक यूरोपीय और शेष भारतीय हैं। अगले सप्ताहकी डाक आनेपर चुनावका नतीजा मालूम हो जायेगा।

जो बड़े लोग इस विषयपर अधिकारपूर्वक बोलनेके योग्य हैं वे इसे और म्यूनिसिपल प्रतिनिधित्वको किस दृष्टिसे देखते हैं, यह बतानेके लिए मैं केवल एक उद्धरण यहाँ दे रहा हूँ। सोसाइटी आफ आर्ट्स [कला-मण्डल] के सामने भाषण करते हुए सर विल्सन हंटरने १५ फरवरी, १८९३ को कहा था :

> **हमारे अध्यक्ष लार्ड रिपनने जिन भारतीय म्यूनिसिपैलिटियोंको इतनी स्मरणीय प्रेरणा प्रदान की है, उनके प्रशासन क्षेत्रमें सन् १८९१ में डेढ़ करोड़की आबादी थी। उनके १०,५८५ सदस्योंमें से आधेसे ज्यादाका चुनाव कर-दाताओंने किया था। अब, लार्ड क्रासके १८९२ के कानूनके अनुसार, प्रतिनिधित्वके इस सिद्धान्तका दायरा, सँभाल-सँभालकर, सर्वोच्च तथा प्रान्तीय विधानपरिषदों तक बढ़ाया जा रहा है।**

१८५८ की घोषणाका एक अंश इस प्रकार है :

> **हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। . . . और हमारी यह इच्छा भी है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें, जहाँतक हो सके, जाति-धर्मके भेद-भावके बिना, मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये।**

इन तथ्योंकी दृष्टिसे नये मताधिकार-विधेयकको देखा जाये तो उसे समझना बहुत कठिन होगा। उपनिवेशियोंके सामने सवाल बहुत आसान है। क्या भारतीय समाजका मताधिकार छीन लेना आवश्यक है? अगर है तो मेरा निवेदन है कि इसका प्रमाण देनेसे कि भारतमें उन्हें प्रातिनिधिक संस्थाओंकी सुविधा उपलब्ध है, वह आवश्यकता कम नहीं होगी। अगर जरूरत

नहीं है तो भारतीयोंपर द्विविधाजनक कानून क्यों लादा जाये? अगर मताधिकारके प्रश्नका फैसला इस सवालके जवाबसे किया जाना हो कि भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं या नहीं, तो मेरा निवेदन है कि इस विषयकी सामग्री इतनी कम नहीं है कि उपनिवेशी तत्काल और सदाके लिए इसका फैसला न कर सकें। फिर एक ऐसे कानूनकी तो कोई जरूरत ही नहीं है जो इस विषयको अनिर्णीत छोड़ दे और वह बादमें अदालत द्वारा तय होता रहे, जिसमें बेकार धनकी बरबादी होती है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल विटनेस, १७-४-१८९६

७८. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको

डर्बन

अप्रैल २७, १८९६

सेवामें

माननीय अध्यक्ष और नेटाल-संसदके विधानसभा-सदस्यगण
पीटरमैरित्सबर्ग

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

इस समय जो मताधिकार कानून संशोधन विधेयक आपके विचाराधीन है उसके सम्बन्धमें नेटालवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे, और उनकी ओरसे, प्रार्थी इस सम्माननीय सदनके सामने निवेदनके लिए उपस्थित हो रहे हैं।

प्रार्थी यह मानकर चलते हैं कि विधेयकका मंशा अगर एकमात्र नहीं तो मुख्यतः भारतीय समाजपर प्रहार करनेका है। कारण यह है कि १८९४ के जिस २५वें कानूनका उद्देश्य भारतीयोंका मताधिकार छीनना था, उसे यह विधेयक रद करता है, और उसकी एवज भरता है।

जब १८९४ का २५वाँ कानून विचाराधीन था उस समय इसी विषय पर भारतीय समाजकी ओरसे सदनके सामने एक प्रार्थनापत्र[1] पेश किया गया था। उसमें दावा किया गया था कि भारतमें भारतीयोंकी चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ अवश्य हैं।

प्रस्तुत विधेयक उन सब लोगोंको मताधिकारसे वंचित करता है जो मूलतः यूरोपीय वंशके नहीं हैं और ऐसे देशोंसे आये हैं, जहाँ चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं।

इसलिए, विधेयकका विरोध करनेमें प्रार्थियोंकी स्थिति कष्टमय अड़चनकी हो गई है।

फिर भी यह देखकर कि विधेयकका छिपा हुआ मंशा भारतीय मताधिकारके प्रश्नको निपटानेका ही है, प्रार्थी उसके बारेमें अपने विचार व्यक्त करना कर्तव्य समझते हैं। प्रार्थी जो यह मानते हैं कि भारतमें चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं, उसका आधार क्या है — यह भी बता देना उनका कर्तव्य है।

मार्च २८, १८९२ को ब्रिटिश लोकसभामें भारतीय विधानपरिषद कानून (१८९१)का दूसरा वाचन प्रारम्भ करते हुए तत्कालीन उप-भारतमंत्रीने कहा था :

> मेरा कर्तव्य है कि मैं विधेयकके उद्देश्यको सदनके सामने स्पष्ट कर दूँ। उद्देश्य यह है कि भारतीय शासनके आधार और भारत-सरकारके कार्य-क्षेत्रको अधिक विस्तृत बना दिया जाये, भारतके गैर-सरकारी व्यक्तियों और भारतीय जनताको शासनके कार्यमें भाग लेनेका अधिक अवसर दिया जाये और, इस प्रकार, जब १८५८ में ब्रिटिश महारानीने भारतका शासन अपने हाथोंमें लिया तबसे भारतीय समाजके ऊँचे वर्गोंमें राजनीतिक उद्योग तथा राजनीतिक क्षमता दोनोंका जो उल्लेखनीय विकास दीख पड़ा है, उसे सरकारी मान्यता दी जाये। यह विधेयक १८६१ के भारतीय विधान-परिषद कानूनमें संशोधन करनेके लिए पेश किया गया है। भारतमें बहुत लम्बे समयसे कानून बनानेके किसी-न-किसी प्रकारके अधिकारोंका अस्तित्व रहा है। परन्तु उनका स्वरूप कुछ उलझा हुआ था और वे कभी वैध

१. प्रार्थनापत्र, जून २८, १८९४; पृष्ठ ९३।

और कभी अवैध माने जाते थे। वे भूतपूर्व ईस्ट इंडिया कंपनीके शासनके साथ ट्यूडर और स्टुअर्ट राजाओंके अधिकार-पत्रोंकी तारीखोंसे शुरू हुए थे। परन्तु भारतकी वर्तमान विधानमण्डल-प्रणालीका आरम्भ उस समय हुआ था, जब लार्ड कैनिंग वाइसराय थे, और सर सी० वुड, 'जिन्हें बादमें लार्डकी पदवी दे दी गई थी, भारत-मन्त्री थे। सर सी० वुडने १८६१ का भारतीय विधानपरिषद कानून पास कराया था। . . . १८६१ के कानूनसे भारतमें वाइसरायकी सर्वोच्च परिषद और बम्बई तथा मद्रासकी प्रान्तीय परिषदें — इस तरह तीन विधानपरिषदोंका निर्माण हुआ था। वाइसरायकी सर्वोच्च परिषदमें केवल *गवर्नर-जनरल और उनकी कार्य-परिषद तथा कमसे कम छः और अधिकसे अधिक बारह अतिरिक्त सदस्य* होते हैं। इन अतिरिक्त सदस्योंकी नामजदगी वाइसराय करता है और इनमें से कमसे कम आधे सदस्योंका गैर-सरकारी *व्यक्ति होना आवश्यक* है। ये गैर-सरकारी व्यक्ति यूरोपीय या भारतीय कोई भी हो सकते हैं। मद्रास और बम्बईकी विधानपरिषदोंमें भी कमसे कम चार और ज्यादासे ज्यादा आठ अतिरिक्त सदस्य होते हैं। उनकी नामजदगी प्रादेशिक गवर्नर करते हैं और उनमें भी आधे सदस्योंका *गैर-सरकारी व्यक्ति होना जरूरी* है। उस कानूनके पास होनेके बादसे बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें भी विधानपरिषदें बन चुकी हैं। बंगालकी परिषदमें लेफ्टिनेंट गवर्नर तथा बारह नामजद सदस्य और पश्चिमोत्तर प्रदेशकी परिषदमें लेफ्टिनेंट गवर्नर तथा ९ नामजद सदस्य होते हैं। प्रत्येकके नामजद सदस्योंमें एक-तिहाईका गैर-सरकारी होना जरूरी है। . . . *लोकसेवाकी भावनावाले* अनेक प्रतिभाशाली और समर्थ भारतीय सज्जनोंको सरकारको अपनी सेवाएँ प्रदान करनेके लिए आगे बढ़नेको राजी कर लिया गया है। और इन विधानपरिषदोंका योग्यता-मान निस्सन्देह ऊँचा रहा है।

संशोधन कानून प्रत्येक विधानपरिषदमें नामजद सदस्योंकी *संख्या तो* बढ़ाता ही है, साथ ही हर वर्ष वित्तीय विवरणपर बहस करने और "प्रश्न करने"का भी अधिकार देता है। *वह चुनावके सिद्धान्तोंपर बना है।* विधान-परिषदोंका स्वरूप शुरूसे ही प्रातिनिधिक रहा है। दूसरा वाचन पेश करनेवाले माननीय उपमन्त्रीने नामजद सदस्योंकी संख्या बढ़ानेके बारेमें कहा था :
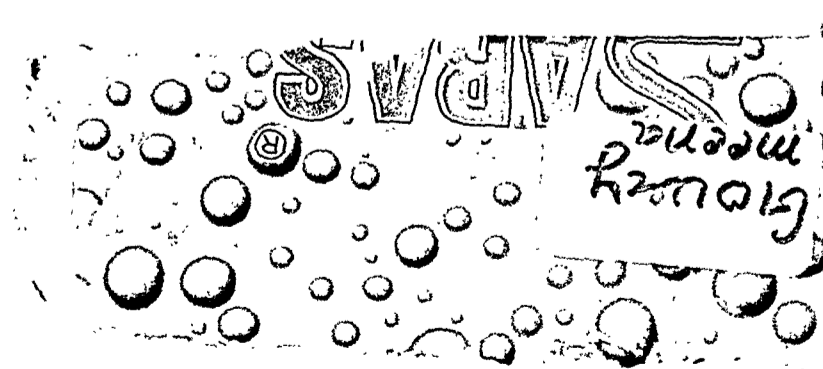
इस परिवर्धनका उद्देश्य बताना बहुत सरल है। आशा है सदन भी उसे बहुत सरलतासे समझ लेगा। इसके द्वारा सिर्फ सदस्योंके प्रवरण (सिलेक्शन) का क्षेत्र विस्तृत किया जा रहा है। ऐसा करके आप परिषदोंके प्रातिनिधिक स्वरूपका बल बढ़ा रहे हैं।

परन्तु, प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि, अब इन विधानपरिषदोंको "मताधिकारपर आधारित" प्रातिनिधिक स्वरूप प्राप्त है।

संसद-सदस्य श्री श्वानने विधेयकमें इस आशयका एक संशोधन पेश किया था कि "विधानपरिषदोंका कोई ऐसा सुधार सन्तोषजनक न होगा, जिसमें चुनावके सिद्धान्त निहित न हों।" उसका उत्तर देते हुए श्री कर्ज़नने कहा था :

मैं बताना चाहूँगा कि हमारे विधेयकमें प्रवरण (सिलेक्शन), निर्वाचन (इलेक्शन) और प्रत्यायोजन (डेलिगेशन) की पद्धति जैसा कुछ तत्त्व तो है ही। सदनकी अनुमतिसे मैं उपधारा १ के उपखण्डके शब्द पढ़कर सुनाता हूँ। उक्त उपखण्ड इस प्रकार है: "सपरिषद गवर्नर-जनरल भारत-मन्त्रीकी स्वीकृतिसे समय-समयपर नियम बनायेगा कि गवर्नर-जनरल, गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नरको किन शर्तोंके अनुसार ऐसी नामजदगियाँ — या कोई एक नामजदगी करनी होगी। यह निर्देश भी वह करेगा कि किस ढंगसे ऐसे नियमोंका पालन किया जाये। . . ."

लार्ड किम्बर्लेने उस उपधाराके बारेमें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था :

इस चुनाव-सिद्धान्तपर मैं अपना पूरा सन्तोष व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता।

लार्ड किम्बर्लेके व्यक्त किये हुऐ विचारोंसे इस कानूनके अन्तर्गत भारत-मन्त्री सहमत हैं :

वाइसरायको अधिकार होगा कि वह भिन्न-भिन्न विचारोंके प्रतिनिधियोंको इन विधानपरिषदोंमें चुनाव-कानूनोंके अनुसार नामजद होनेके लिए आमन्त्रित करे।

माननीय श्री ग्लैड्स्टनने इसी विषयपर बोलते हुए विधेयक और उसके संशोधनका दूसरा वाचन पेश करनेवाले माननीय उपमन्त्रीके भाषणोंको स्पष्ट करनेके बाद कहा :

मेरा खयाल है, मैं बखूबी कह सकता हूँ कि उपमन्त्रीके भाषणमें चुनावका तत्त्व उतने ही अर्थमें निहित दिखाई पड़ता है, जितने अर्थमें हमें अपेक्षा करनी चाहिए। . . . स्पष्ट है कि सदनके सामने महान प्रश्न भारतीय शासनमें चुनावका तत्त्व दाखिल करनेका है। और यह एक भारी और गहरी दिलचस्पीका विषय है। मैं चाहता हूँ कि उनके पहले कदम खरे हों और चुनावके तत्त्वको कार्यान्वित होनेका जो कुछ भी अवसर वे दें, वह वास्तविक हो। इसमें कोई तात्त्विक मतभेद नहीं है। मैं समझता हूँ कि यद्यपि माननीय सज्जन (श्री कर्जन)ने चुनाव-तत्त्वको सँभल-सँभल-कर स्वीकार किया है, फिर भी वह स्पष्ट स्वीकार ही है, भिन्न कुछ नहीं।

उपर्युक्त कानूनके अनुसार बनाये और प्रकाशित किये गये नियम, प्रार्थियोंका निवेदन है, ऊपर उद्धृत विचारोंको पूर्णतः चरितार्थ करनेवाले हैं। उदाहरण के लिए, बम्बई विधानपरिषदमें १८ नामजद सदस्योंमें से ८ का चुनाव विधान-परिषदोंके लिए मताधिकार-प्राप्त विभिन्न प्रातिनिधिक संस्थाओं द्वारा हुआ है। या, नियमोंके शब्दोंमें, वे उन संस्थाओंकी "सिफारिशोंपर नामजद" किये गये हैं। बम्बई कारपोरेशन (जो स्वयं चुनावके आधारपर बनी हुई संस्था है), सपरिषद गवर्नर द्वारा निर्दिष्ट बम्बई प्रदेशके अन्य म्यूनिसिपल कारपोरेशन और जिला तथा लोकल बोर्ड, दक्षिणके सरदार या ऊपर कहे अनुसार अधिकृत अन्य बड़े-बड़े जमींदार, तथा व्यापारियोंके संघ आदि और बम्बई विश्वविद्यालयकी सेनेट — ये सब इन आठ सदस्योंका चुनाव या सिफारिश करते हैं। निर्णय बहुमतसे किया जाता है। जो संस्थाएँ कानूनी तरीकेसे स्थापित नहीं होतीं वे जिन नियमोंके अनुसार अपने सामने आये हुए प्रश्नोंका निर्णय करती या प्रस्तावोंको स्वीकार करती हैं उनके ही अनुसार ये चुनाव या सिफारिशें भी करती हैं।

यह सम्माननीय सदन देखेगा कि दक्षिण भारतके सरदारोंमें तो परिषदके चुनावोंमें सीधे मत देनेवाले लोग भी मौजूद हैं।

दूसरी विधानपरिषदोंके नियम भी बहुत-कुछ ऐसे ही हैं।

इस प्रकारका स्वरूप है भारतमें विधानपरिषदों और राजनीतिक मता-धिकारका। इसलिए, प्रार्थी बताना चाहते हैं कि अन्तर रूपमें नहीं, केवल अंशोंमें है। कारण यह नहीं है कि भारतीय प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तोंको समझते

नहीं। इस सम्बन्धमें श्री ग्लैड्स्टनके विचारोंको ही उद्धृत कर देना सबसे अच्छा होगा। उनके कुछ विचार तो ऊपर उद्धृत किये ही गये हैं। चुनावके तत्त्वके मर्यादित स्वरूपका स्पष्टीकरण उन्होंने इन शब्दोंमें किया है:

> सम्राज्ञी-सरकारको समझ लेना चाहिए कि हमें तमाम आश्वासन दे दिये गये हैं कि शासनके इस शक्तिशाली यन्त्र (अर्थात्, चुनाव-तत्त्व)को अमलमें लानेका प्रयत्न किया जायेगा। परन्तु यदि इन आश्वासनोंके बावजूद ऐसा कुछ भी परिणाम न हुआ, जैसेकी हम आशा करते हैं, तो यह नितान्त गम्भीर निराशाका विषय माना जायेगा। मैं परिणामकी मात्राकी बात नहीं कहता, उसकी कोटिकी बात अधिक कर रहा हूँ। मैं समझ सकता हूँ कि हम भारत जैसे एशियाई देशमें जो कुछ करना चाहते हैं उसे करनेमें भारी कठिनाइयाँ हैं, क्योंकि उसके पास अपनी पुरानी सभ्यता है, अपनी खास संस्थाएँ हैं, विविध जातियाँ, धर्म और धंधे हैं और इतना विशाल देश तथा इतनी अधिक जनसंख्या है जितनी कि शायद चीनको छोड़कर कभी किसी एक राज्यमें नहीं रही। परन्तु कठिनाइयाँ कितनी भी बड़ी क्यों न हों, काम महान है। उसे सफलतापूर्वक पूर्ण करनेके लिए हद दर्जेकी बुद्धिमत्ता और सावधानीकी जरूरत होगी। इन सब बातोंसे हमें आशा होती है कि भारतका भविष्य महान है और हम उत्साहपूर्वक उसकी प्रतीक्षा करते हैं। हमें यह अपेक्षा करनेका उत्साह भी होता है कि उस विशाल और लगभग अपरिमेय देशमें चुनाव-तत्त्वको — भले वह सीमित मात्रामें ही क्यों न हो — सचाईके साथ अमलमें लानेसे सच्ची सफलता प्राप्त होगी।

भारतीय विषयोंपर बोलनेके अधिकारी सभी व्यक्ति भारतीय विधान-परिषदके प्रातिनिधिक स्वरूपके सम्बन्धमें एकमत दीखते हैं।

भारतीय विषयोंके जो विद्वान जीवित हैं उनमें सबसे अधिकारपूर्वक बोल सकनेवाले सर विलियम विल्सन हंटर हैं। उनका कथन है:

> लार्ड क्रासके १८९२ के कानूनके अनुसार, अब विधानपरिषदोंमें चुनाव-तत्त्वका सावधानीके साथ विस्तार किया जा रहा है। यह विस्तार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों सरकारोंकी परिषदोंमें हो रहा है।

*टाइम्स*ने नेटालमें भारतीयोंके मताधिकारकी चर्चा करते हुए कहा है :

> नेटालवासी भारतीय भारतमें जिन विशेषाधिकारोंका उपभोग करते हैं, उनसे अधिककी माँग नहीं कर सकते, और उन्हें भारतमें किसी प्रकारका मताधिकार हासिल है ही नहीं — यह तर्क वस्तुस्थितिके विपरीत है। भारतमें भारतीयोंको ठीक वही मताधिकार प्राप्त है, जो अंग्रेजोंको है।

म्यूनिसिपल मताधिकारकी चर्चा करनेके बाद लेखमें कहा गया है :

> हमारी भारतीय शासन-प्रणालीमें जिसे उच्च मतदाता-मण्डल कहा जा सकता है, उसपर भी इसी तरहका सिद्धान्त आवश्यक संशोधनोंके साथ लागू है। सर्वोच्च और प्रान्तीय विधानपरिषदोंके निर्वाचित सदस्योंका चुनाव मुख्यतः भारतीयोंकी संस्थाओं द्वारा होता है। और ये परिषदें २२,१०,००,००० ब्रिटिश प्रजाकी व्यवस्था करती हैं। सर्वोच्च और प्रान्तीय विधानमण्डलोंमें सरकारी प्रतिनिधियोंके अलावा लगभग आधे सदस्य भारतीय हैं। इस तुलनाको बहुत ज्यादा तानना गलत होगा। परन्तु ब्रिटिश उपनिवेशोंमें भारतीयोंको मताधिकार न देनेके तर्कका जवाब इसमें मिल जाता है। उस तर्कका आधार यह है कि भारतीयोंको भारतमें मताधिकार प्राप्त नहीं है। जहाँतक भारतमें मत द्वारा शासनका अस्तित्व है, अंग्रेज और भारतीय एक-बराबर हैं। और म्यूनिसिपल, प्रान्तीय तथा सर्वोच्च परिषदोंमें भारतीयोंका प्रतिनिधित्व समान रूपसे जोरदार है।

भारतमें म्यूनिसिपल मताधिकार बहुत व्यापक है। और म्यूनिसिपल कारपोरेशन तथा जनपद सभाएँ (लोकल बोर्ड) लगभग सारे देशमें बिखरी हुई हैं। नेटालमें जो भारतीय पहलेसे मतदाता-सूचीमें शामिल हैं, उनकी चर्चा करते हुए *टाइम्स*के उपर्युक्त लेखमें कहा गया है :

> ठीक इसी वर्गके लोग भारतके म्यूनिसिपल तथा अन्य मतदाता-मण्डलोंमें महत्त्व रखते हैं। वहाँकी कुल ७५० म्यूनिसिपैलिटियोंमें अंग्रेज और भारतीय मतदाताओंको बराबर अधिकार है। १८९१ में म्यूनिसिपैलिटियोंके ८३९ यूरोपीय सदस्योंके विरुद्ध भारतीय सदस्योंकी संख्या ९,७९० थी। इसलिए भारतीय म्यूनिसिपल बोर्डोंमें यूरोपीय मतोंकी संख्या ८ भारतीय मतोंके पीछे केवल १ थी, जब कि नेटालके मतदाता-मंडलमें १ भारतीय

> **मतके पीछे ३७ यूरोपीय मत हैं। . . . याद रहे, भारतीय म्यूनिसिपैलिटियाँ डेढ़ करोड़की आबादी और ५ करोड़ रुपयोंके खर्चकी व्यवस्था करती हैं।**

प्रातिनिधिक संस्थाओंके स्वरूप और उनकी जिम्मेदारियोंसे भारतीयोंके परिचयके. बारेमें उसी लेखमें कहा गया है:

> **शायद संसारमें कोई दूसरा देश ऐसा नहीं है, जिसमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ जनताके जीवनमें इतने गहरे समा गई हों। भारतमें युग-युगसे प्रत्येक जाति, प्रत्येक धंधे और प्रत्येक गाँवकी अपनी पंचायत रही है, जो अपने छोटे-से समाजके लिए नियम बनाती और उसका शासन करती थी। जबतक गत वर्ष 'पैरिश कौन्सिल्स एक्ट' [पादरीके विशिष्ट क्षेत्रोंकी परिषदोंका कानून] जारी नहीं किया गया तबतक इंग्लैंडमें भी इस तरहकी ग्रामस्वराज्य-प्रणालीका अस्तित्व नहीं था।**

संसद-सदस्य श्री स्वान इसी विषयपर कहते हैं:

> **ऐसा मत मानिये कि चुनावका प्रश्न भारतमें नया है। . . . चुनावका प्रश्न तो वस्तु ही खास भारतीय है — इससे ज्यादा खास भारतीय और कोई प्रश्न नहीं। हमारी ज्यादातर सभ्यता भारतसे आई है। और इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि हम खुद ही पूर्वके चुनाव-सिद्धान्तके एक विकसित रूपका व्यवहार कर रहे हैं।**

इन परिस्थितियोंमें, भारतीय समाजके लिए अपने ऊपर चोट करनेके मंशासे बनाये गये इस विधेयकको समझना बहुत कठिन गुजर रहा है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि विधेयक अस्पष्ट और दुविधाजनक है। वह अनिष्ट है, और न तो यूरोपीयोंके लिए न्यायपूर्ण है, न भारतीयोंके लिए ही। इससे दोनों त्रिशंकुकी स्थितिमें पड़ जाते हैं, जो भारतीयोंके लिए बहुत कष्टजनक है।

हम अत्यन्त आदरके साथ सभाका ध्यान खींचते हैं कि वर्तमान मतदाता-सूचीके अनुसार भारतीय मतदाताओंकी संख्या ३८ यूरोपीय मतदाताओंके पीछे केवल एक है। इसके अलावा, भारतीय मतदाता अपने समाजके सबसे आदरणीय लोग हैं। वे इस उपनिवेशमें लम्बे समयसे निवास कर रहे हैं और यहाँ उनके भारी हित दाँव पर चढ़े हैं।

तथापि, कहा जाता है कि वर्तमान मतदाता-सूचीसे यह नहीं जाना जा सकता कि भविष्यमें भारतीय मत कितना बड़ा रूप अख्तियार कर लेंगे। परन्तु

भारतीय समाजके सामने गत दो वर्षोंसे मताधिकारके छीने जानेका खतरा उपस्थित है। इस बीच पहलेके अलावा किन्हीं भारतीयोंने मतदाता-सूचीमें अपने नाम नहीं लिखाये। इससे, हमारे नम्र मतके अनुसार, इस तर्कका पूरा निबटारा हो जाता है।

सच तो यह है, और हम व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकते हैं कि, यद्यपि कानूनके अनुसार मताधिकार पानेके लिए बहुत कम सम्पत्तिकी आवश्यकता है, उपनिवेशमें उतनी भी योग्यता रखनेवाले भारतीयोंकी संख्या बहुत कम है।

प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि विचाराधीन विधेयक अनेक आपत्तियोंका मूल है। वह अत्यन्त द्वेषजनक रूपमें रंग-भेद दाखिल करनेवाला है। क्योंकि, जिन दूसरे देशोंमें चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं उनके निवासियोंको तो मत देनेका अधिकार न होगा, परन्तु यूरोपीय राज्योंसे आये हुए लोग, अपने देशोंमें ऐसी संस्थाएँ न होनेपर भी, उपनिवेशके सामान्य मताधिकार कानूनके अनुसार मतदाता बन सकेंगे।

उससे, यदि पिता यूरोपीय हो तो, संदिग्ध चरित्रकी गैर-यूरोपीय स्त्रियोंकी सन्तानोंको तो मत देनेका अधिकार मिल जायेगा; परन्तु यदि कोई कुलीन यूरोपीय स्त्री किसी गैर-यूरोपीय जातिके कुलीन पुरुषसे विवाह कर ले तो उसकी सन्तानें सामान्य मताधिकार कानूनके अनुसार मतदाता नहीं बन सकेंगी। विधेयक उनके आड़े आयेगा।

अगर मान लिया जाये कि भारतीय विधेयकके दायरेमें आ जाते हैं, तो फिर जिस तरीकेसे उन्हें मतदाता-सूचीमें अपने नाम लिखाने होंगे, वह सदैव उनके लिए सन्तापका कारण रहेगा। हो सकता है कि उससे पक्षपातका कोई तरीका निकल पड़े और भारतीय समाजके बीच गम्भीर झगड़े पैदा कर दे।

इसके अलावा, विधेयकका मंशा भारतीय समाजको अपने अधिकार स्थापित करनेके लिए अनन्त मुकदमेबाजीमें फँसा देनेका है। हम समझते हैं कि उन अधिकारोंकी व्याख्या तो उपनिवेशकी किसी अदालतका आश्रय लिये बगैर ही की जा सकती है।

इस सबसे अधिक, आज तो यूरोपीय लोग भारतीयोंका मताधिकार छीननेकी कामना करते हैं और आन्दोलन उनकी ओरसे हो रहा है। विधेयकके फलस्वरूप वह आन्दोलन भारतीयोंको करना होगा। और हमें भय है, उसे सदैव चलाते रहना पड़ेगा।

हम अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करते हैं कि इस तरहकी स्थिति उपनिवेश-निवासी सभी समाजोंके हितकी दृष्टिसे अत्यन्त अनिष्ट है।

प्रार्थियोंने एक वर्षसे अधिकतक सावधानीसे जाँच की है। अब वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि भारतीयोंके मतोंके यूरोपीयोंके मतोंपर हावी हो जानेका डर बिलकुल थोथा है।

इसलिए हम उत्कटतासे प्रार्थना और आशा करते हैं कि यह सम्माननीय सभा भारतीयोंके मताधिकारको खास तौरसे रोकनेवाले या प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें रंग-भेद दाखिल करनेवाले किसी विधेयकको स्वीकार करनेके पहले सच्ची स्थितिकी जाँच करा लेगी, जिससे यह पता चल जाये कि इस उपनिवेशमें सम्पत्तिके आधारपर मताधिकार प्राप्त कर सकनेवाले भारतीयोंकी संख्या कितनी है।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

एक छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

७९. तार : दादाभाई नौरोजीको

माननीय दादाभाई नौरोजी तथा सर विलियम हंटरको और श्री चेम्बरलेनको भी, दिये गये तारकी प्रतिलिपि।

डर्बन
मई ७, १८९६

भारतीय समाज आपसे हार्दिक विनती करता है कि नेटाल मताधिकार विधेयक या उसमें मन्त्रियों द्वारा गत रात्रिको पेश किये गये परिवर्तनोंको मंजूर न करें। प्रार्थनापत्र[1] तैयार कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स नं० १७९, जिल्द १९६।

१. देखिए, पृष्ठ ३३१।

८०. नेटाल भारतीय कांग्रेस

डर्बन
मई १४, १८९६

सेवामें
माननीय प्रधान मन्त्री
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

बताया जाता है कि आपने मताधिकार विधेयकके दूसरे वाचनके समय नेटाल भारतीय कांग्रेसके बारेमें यह कहा है :

> **शायद सदस्यगण जानते न होंगे कि इस देशमें एक संघ है। वह अपने ढंगका बहुत शक्तिशाली और बहुत ऐक्यबद्ध संघ है, हालांकि वह करीब-करीब गुप्त है। मेरा मतलब है, भारतीय कांग्रेससे।**

क्या मैं पूछनेकी धृष्टता कर सकता हूँ कि आपके भाषणके उस अंशकी यह रिपोर्ट सही है अथवा नहीं? अगर सही है तो क्या इस विश्वासका कोई आधार है कि कांग्रेस "करीब-करीब एक गुप्त संस्था है"? मैं आपका ध्यान आकर्षित करनेकी इजाजत चाहता हूँ कि जब ऐसी संस्था स्थापित करनेका इरादा किया गया था, तब इसकी सूचना अखबारोंमें दे दी गई थी। जब संस्थाकी प्रत्यक्ष स्थापना हुई, उस समय *विटनेस*ने उसका उल्लेख किया था। संस्थाकी वार्षिक कार्रवाइयां और सदस्योंकी सूचियां बराबर पत्रोंको भेजी जाती रही हैं और पत्रोंने उनपर टीका-टिप्पणी भी की है। ये कागजात मैंने कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे सरकारको भी भेजे हैं।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,
(ह०) मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, नेटाल भारतीय कांग्रेस

साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित एक अंग्रेजी नकल से।

८१. नेटाल भारतीय कांग्रेस

डर्बन
मई १४, १८९६

श्री सी० वर्ड
मुख्य उपसचिव, औपनिवेशिक कार्यालय
पीटरमैरित्सवर्ग

महोदय,

माननीय प्रधानमन्त्रीके नाम नेटाल भारतीय कांग्रेस-सम्बन्धी मेरे पत्रके उत्तरमें आपका १६ ता० का पत्र नं० २८३७/९६ मुझे मिला।

इस विषयमें मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि कांग्रेसकी बैठकें हमेशा खुले-आम होती हैं और उनमें अखबारोंके लोगों तथा जनताको आनेकी इजाजत रहती है। कुछ यूरोपीय सज्जनोंको, जिनके बारेमें कांग्रेस-सदस्योंका खयाल है कि वे बैठकोंमें दिलचस्पी रखते होंगे, खास तौरसे आमन्त्रित किया जाता है। एक सज्जन आमन्त्रण स्वीकार करके बैठकमें आये भी हैं। अनामन्त्रित यूरोपीय प्रेक्षक भी एक-दो बार कांग्रेसकी बैठकोंमें आये हैं।

कांग्रेसके एक नियममें यह व्यवस्था है कि यूरोपीयोंको उपाध्यक्ष बननेके लिए आमन्त्रित किया जा सकता है। इस नियमके अनुसार, दो सज्जनोंसे पूछा भी गया था कि क्या वे इस सम्मानको स्वीकार करेंगे? परन्तु वे राजी नहीं हुए। कांग्रेसकी बैठकोंकी कार्रवाई नियमित रूपसे लिखी जाती है।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,
(ह०) मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, नेटाल भारतीय कांग्रेस

साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित एक अंग्रेजी नकलसे।

८२. प्रार्थनापत्र : श्री चेम्बरलेनको

डर्बन
मई २२, १८९६

सेवामें

परम सम्माननीय जोजेफ़ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार, लंदन

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटाल-निवासी भारतीय
ब्रिटिश प्रजाजनोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावके विचारके लिए नीचे लिखा निवेदन पेश करना चाहते हैं। यह विधेयक नेटाल-सरकारकी ओरसे नेटालकी संसदमें पेश किया गया है। १३ मई, १८९६ को कुछ संशोधनोंके साथ संसदमें इसका तीसरा वाचन हुआ था।

विधेयकका पाठ, जैसा कि वह ३ मार्च, १८९६ के *नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*में प्रकाशित हुआ था, निम्नलिखित है :

मताधिकार-सम्बन्धी कानूनके संशोधनार्थ :

चूंकि मताधिकार-सम्बन्धी कानूनका संशोधन करना जरूरी है,

इसलिए नेटालकी विधानपरिषद और विधानसभाके परामर्श तथा सम्मतिके साथ और द्वारा महामहिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती है :

१. कानून नं० २५, १८९४ रद कर दिया जाये, और वह इसके द्वारा रद किया जाता है।

२. जो लोग इस कानूनके खण्ड ३ के अमलके अन्तर्गत हैं उन्हें छोड़कर किन्हीं दूसरे व्यक्तियोंको, जो (यूरोपीय वंशके न होते हुए) इसी देशके हों, या ऐसे देशोंके निवासियोंकी पुरुष-शाखाके वंशज हों, जिनमें अबतक *चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ* नहीं हैं, तबतक किसी निर्वाचक-सूची या मतदाता-सूचीमें नाम लिखानेका, या १८९३ के संविधान-कानूनके खण्ड २२ के, अथवा विधानसभा-सदस्योंके चुनाव-सम्बन्धी किसी अन्य

कानूनके अर्थके अन्तर्गत निर्वाचककी हैसियतसे मत देनेका हक नहीं होगा, जबतक कि वे सपरिषद गवर्नरसे इस कानूनके अमलसे बरी किये जानेका आदेश प्राप्त न कर लें।

३. इस कानूनके खण्ड २ की व्यवस्थाएँ उस खण्डमें निर्दिष्ट उन लोगों-पर लागू नहीं होंगी, जिनके नाम इस कानूनके अमलमें आनेकी तारीखको किसी मतदाता-सूचीमें वाजिबी तौरसे दर्ज हों और जो अन्यथा निर्वाचक बननेकी योग्यता तथा हक रखते हों।

उपर्युक्त विधेयकके खण्ड १ द्वारा रद किया गया कानून निम्नलिखित है:

चूँकि मताधिकार-सम्बन्धी कानूनका संशोधन करना और संसदीय संस्थाओंके अधीन मताधिकारका प्रयोग करनेका अभ्यास न रखनेवाली एशियाई जातियोंको उससे निकाल देना जरूरी है,

इसलिए नेटालकी विधानपरिषद और विधानसभाके परामर्श तथा सम्मतिके साथ और द्वारा महामहिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती हैं:

१. इस कानूनके खण्ड २ में अपवाद माने गये लोगोंको छोड़कर, एशियाई वंशोंके लोगोंको किसी निर्वाचक-सूची या मतदाता-सूचीमें अपने नाम लिखानेका, या १८९३ के संविधान कानूनके खंड २२ के, अथवा विधान-सभा-सदस्योंके चुनाव-सम्बन्धी किसी भी कानूनके अर्थके अन्तर्गत निर्वाचकोंकी हैसियतसे मत देनेका अधिकार नहीं होगा।

२. इस कानूनके खण्ड १ की व्यवस्थाएँ उस खण्डमें उल्लिखित वर्गके उन लोगों पर लागू नहीं होंगी, जिनके नाम इस कानूनके अमलमें आनेकी तारीखको किसी मतदाता-सूचीमें वाजिबी तौरसे दर्ज हों और जो अन्यथा निर्वाचक बननेकी योग्यता तथा हक रखते हों।

३. यह कानून तबतक अमलमें नहीं लाया जायेगा जबतक गवर्नर सरकारी घोषणा करके *नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*में सूचना न निकाल दें कि सम्राज्ञीने कृपा कर इस कानूनको अस्वीकार नहीं किया। और इसके बाद यह कानून उस तारीखसे अमलमें आयेगा जो गवर्नर इसी घोषणा द्वारा या किसी दूसरी घोषणा द्वारा सूचित करे।

विचाराधीन विधेयकके सम्बन्धमें २८ अप्रैल, १८९६ को विधानसभाको एक प्रार्थनापत्र[1] भेजा गया था। उसमें भारतीयोंके तत्सम्बन्धी विचार स्पष्ट कर दिये गये थे। उसकी एक नकल इसके साथ नत्थी है, जिसपर 'क' चिह्न लगा है।

मई ६, १८९६ को विधेयकका दूसरा वाचन हुआ था। उस समय प्रधानमन्त्री माननीय सर जान राबिन्सनने अपने भाषणके दौरानमें कहा था कि मन्त्रियोंने आपसे यह जाननेकी कोशिश की थी कि क्या आप पूर्वोक्त विधेयकमें "चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ" शब्दोंके पहले "मताधिकारपर आधारित" शब्द जोड़ देनेको सहमत होंगे। और आप इसके लिए राजी थे।

इसपर ७ मई, १८९६ को प्रार्थियोंने महानुभावको निम्नाशयका तार भेजा :

> भारतीय समाज आपसे हार्दिक विनती करता है कि नेटाल मताधिकार विधेयक या उसमें मन्त्रियों द्वारा गत रात्रिको पेश किये गये परिवर्तनोंको मंजूर न करें। प्रार्थनापत्र तैयार कर रहे हैं।

तथापि, ११ मई, १८९६ को तद्विषयक समितिकी बैठकमें सर जान राबिन्सनने घोषणा की कि महानुभावने और भी परिवर्धन कर देने — अर्थात् 'मताधिकार' के पहले 'संसदीय' शब्द जोड़ देनेकी सम्मति दे दी है।

फलतः विधेयकका प्रातिनिधिक संस्थाओं-सम्बन्धी भाग अब इस प्रकार पढ़ा जायेगा — "*संसदीय मताधिकारपर आधारित* चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ।"

प्रार्थियोंका नम्र खयाल है कि जहाँतक भारतीय समाजका — और, सचमुच, सभी समाजोंका — सम्बन्ध है, वर्तमान विधेयक उस कानूनसे भी बदतर है, जिसे वह रद करता है।

इसलिए प्रार्थियोंको दुःख है कि आपकी प्रसन्नता विधेयकको मंजूरी देनेमें रही। परन्तु उनका विश्वास है कि नीचे आपके सामने जो तथ्य और तर्क पेश किये जा रहे हैं उनसे आपको अपने विचारों पर फिरसे गौर करनेकी प्रेरणा मिलेगी।

१. देखिये अप्रैल २७, १८९६का प्रार्थनापत्र; पृष्ठ ३१९।

प्रार्थियोंका हमेशासे यह दावा रहा है कि भारतमें भारतीयोंको निश्चय ही "चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं" का लाभ प्राप्त है। परन्तु मताधिकारके प्रश्नपर प्रकाशित लेखादिसे मालूम होता है कि भारतीयोंके पास ऐसी संस्थाएँ हैं — यह महानुभाव नहीं मानते। महानुभावके मतके लिए अधिकसे अधिक आदर रखते हुए प्रार्थी संलग्न पत्र क में उद्धृत अंशोंकी ओर महानुभावका ध्यान आकर्षित करते हैं। उनमें विपरीत मतका पोषण किया गया है।

भारतमें "चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं"के विषयमें आपके विचारों और वर्तमान विधेयककी स्वीकृतिसे नेटालका भारतीय समाज एक बहुत दुःखमय और विषम परिस्थितिमें पड़ गया है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि:

(१) नेटालमें भारतीयोंके मताधिकारपर प्रतिबन्ध लगानेवाले किसी कानूनकी जरूरत नहीं है।

(२) अगर इस विषयमें कोई सन्देह हो तो पहले जाँच कराई जाये कि इस प्रकारकी आवश्यकता है या नहीं।

(३) अगर मान लिया जाये कि आवश्यकता है ही, तो भी वर्तमान विधेयक सीधे और खुले तरीकेसे कठिनाईका सामना करनेके लिए नहीं बनाया गया।

(४) अगर सम्राज्ञी-सरकारको पूरा सन्तोष हो गया है कि ऐसे कानूनकी जरूरत है, और वर्गगत कानून बनाये बिना किसी विधेयकसे कठिनाई हल न होगी, तो ज्यादा अच्छा यह होगा कि कोई भी मताधिकार-विधेयक हो, उसमें भारतीयोंका उल्लेख विशेष रूपसे किया जाये।

(५) वर्तमान विधेयकसे, उसके सन्दिग्ध अर्थ और अस्पष्टताके कारण, अनन्त मुकदमेबाजीका खड़ा हो जाना सम्भव है।

(६) इससे भारतीय समाज ऐसे खर्चमें पड़ जायेगा, जिसे बरदाश्त करना उसके लिए करीब-करीब असम्भव होगा।

(७) मान लिया जाये कि विधेयक भारतीय समाजके मताधिकारपर प्रतिबन्ध लगाता है। तो फिर, उस समाजके किसी सदस्यके उसके अमलसे छुटकारा पानेका जो उपाय उसमें बताया गया है, प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करते हैं, वह मनमाना तथा अन्यायपूर्ण है। उससे भारतीय समाजके अन्दर झगड़े पैदा होनेकी सम्भावना है।

(८) जो कानून रद किया गया है उसके समान ही यह विधेयक भी यूरोपीयों तथा अन्य वर्गोंके बीच द्वेषजनक भेद-भाव उत्पन्न करनेवाला है।

प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि नेटालकी मतदाता-सूचीकी वर्तमान हालतमें भारतीयोंके मताधिकारपर रोक लगानेके लिए कोई कानून बनाना बिलकुल अनावश्यक है। यह कानून सम्राज्ञीकी प्रजाके एक बहुत बड़े हिस्सेपर असर डालनेवाला है और इसे स्वीकार करनेमें गैर-जरूरी जल्दी की जाती दिखाई दे रही है। यह मंजूर किया जा चुका है कि ९,३०९ यूरोपीय मतदाताओंके विरुद्ध भारतीय मतदाताओंकी संख्या केवल २५१ है। उनमें से २०१ या तो व्यापारी हैं या मुहर्रिर, सहायक, शिक्षक आदि। ५० बागवान तथा अन्य धंधेवाले हैं। इन मतदाताओंमें से ज्यादातर लम्बे समयसे उपनिवेशमें बसे हुए हैं। हमारा निवेदन है कि इन आँकड़ोंसे किसी रोक-थामके कानूनकी जरूरत सिद्ध नहीं होती। विचाराधीन विधेयकका मंशा एक दूरके, शक्य और सम्भाव्य खतरेकी व्यवस्था करनेका है। सच तो यह है कि एक ऐसा खतरा मान लिया गया है, जिसका अस्तित्व है ही नहीं। श्रीमान जान राबिन्सनने विधेयकका दूसरा वाचन पेश करते हुए भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा बताया था। अपने इस भयके उन्होंने निम्नलिखित तीन कारण बताये थे :

(१) वर्तमान विधेयक द्वारा रद किये जानेवाले मताधिकार-कानूनके सम्बन्धमें सम्राज्ञी-सरकारको जो प्रार्थनापत्र भेजा गया था, उसपर लगभग ९,००० भारतीयोंने हस्ताक्षर किये थे।

(२) उपनिवेशमें आम चुनाव नजदीक आ रहे हैं।

(३) नेटाल भारतीय कांग्रेसका अस्तित्व।

जहाँतक पहले कारणका सम्बन्ध है, इस विषयके पत्र-व्यवहार तकमें नेटाल-सरकारने कहा है कि वे ९,००० हस्ताक्षरकर्ता मतदाता-सूचीमें शामिल होना चाहते हैं। प्रार्थनापत्रका पहला अनुच्छेद इस तर्कका पर्याप्त उत्तर है। नम्र निवेदन है कि प्रार्थियोंने ऐसी किसी चीजकी कभी माँग नहीं की। उन्होंने सारेके-सारे भारतीयोंका मताधिकार छीननेका विरोध बेशक किया है। प्रार्थी मानते हैं कि प्रत्येक भारतीयपर — चाहे वह सम्पत्तिजन्य योग्यता रखता हो या न रखता हो — विधेयकका बहुत भारी असर पड़नेवाला है। वे स्वीकार करते हैं कि माननीय प्रस्तावकके बताये इस तथ्यसे यह दिखलाई पड़ता है कि भारतीयोंमें एक अंश तक संगठन करनेकी शक्ति है। परन्तु वे

आदरके साथ दावा करते हैं कि संगठन-शक्ति कितनी भी जबरदस्त क्यों न हो, वह प्राकृतिक बाधाओंको जीत नहीं सकती। उन ९,००० हस्ताक्षरकर्ताओंमें पहलेसे ही मतदाता-सूचीमें शामिल व्यक्तियोंको छोड़कर १०० भी ऐसे नहीं हैं, जो कानूनके अनुसार आवश्यक सम्पत्तिजन्य मताधिकार-योग्यता रखते हों।

दूसरे कारणके सम्बन्धमें माननीय प्रस्तावकने कहा था:

> **मैं सदस्योंको याद दिला देना चाहता हूँ कि आम चुनाव शीघ्र ही होनेवाले हैं। सदस्योंको सोचना होगा कि ये आम चुनाव किस मतदाता-सूचीके आधारपर किये जाने हैं। यह बात मेरे कहनेकी नहीं है कि आगामी मतदाता-सूचीमें कितने भारतीय मतदाता हों, या न हों। परन्तु सरकार समझती है कि समय आ गया है जब कि इस प्रश्नको उठा लेनेमें और देरी नहीं करनी चाहिए और इसे *हमेशाके लिए एकबारगी* तय कर डालना चाहिए।**

माननीय प्रस्तावकके प्रति समस्त उचित आदरके साथ प्रार्थी निवेदन करते हैं कि इस सब भयका सचमुच कोई आधार नहीं है। *प्रवासी-संरक्षककी १८९५ की रिपोर्टके* अनुसार, उपनिवेशके ४६,३४३ भारतीयोंमें से ३०,३०३ स्वतन्त्र भारतीय हैं। इनमें लगभग ५,००० व्यापारी भारतीयोंको जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार ४५,००० से ऊपर यूरोपीयोंके विरुद्ध केवल ३५,००० भारतीय ऐसे हैं जो जरा भी उनके साथ होड़ कर सकते हैं। यह तो जान लेना सरल है कि १६,००० गिरमिटिया भारतीय गिरमिटमें बँधे रहते कभी होड़ नहीं कर सकते। परन्तु ३०,३०३ में से एक बहुत बड़ी बहुसंख्या गिरमिटिया भारतीयोंसे एक ही सीढ़ी ऊपर है। और प्रार्थी व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकते हैं कि इस उपनिवेशमें हजारों भारतीय ऐसे हैं, जो १० पौंड सालाना किराया नहीं देते। सच तो यह है कि हजारों लोगोंको इतनी रकमपर अपनी गुजर-बसरका साराका सारा गाड़ा चलाना पड़ता है। तो फिर, प्रार्थी पूछते हैं, भारतीयोंके अगले वर्ष मतदाता-सूचीपर छा जानेका डर कहाँ है?

मताधिकार छीना जानेका खतरा गत दो वर्षोंसे चला आ रहा है। इस बीच दो बार मतदाता-सूचीका संशोधन किया जा चुका है। भारतीयोंको डर था कि कहीं उनमें से बहुत-से लोगोंको रोक न दिया जाये। इसलिए उन्हें हर

तरहसे अपने मत बढ़ानेका प्रलोभन प्राप्त था। फिर भी मतदाता-सूचीमें एक भी भारतीयका नाम नहीं बढ़ा।

परन्तु माननीय प्रस्तावक आगे कहते ही गये :

> शायद सदस्यगण जानते न होंगे कि इस देशमें एक संघ है। वह अपने ढंगका बहुत शक्तिशाली और बहुत ऐक्यबद्ध संघ है, हालांकि वह करीब-करीब गुप्त है। मेरा मतलब है, भारतीय कांग्रेससे। वह एक ऐसा संघ है जिसके पास बहुत धन है। वह एक संघ है जिसके अध्यक्ष बहुत कर्मठ और बहुत योग्य व्यक्ति हैं। और वह एक संघ है जिसका घोषित ध्येय उपनिवेशके कामकाजमें प्रबल राजनीतिक शक्तिका प्रयोग करना है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि कांग्रेसके बारेमें यह अन्दाजा वस्तुस्थितिकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। जैसा कि नेटालके प्रधानमन्त्री और कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीके पत्र-व्यवहारसे स्पष्ट हो जायेगा, गुप्तताका आरोप एक गलत खयालके कारण किया गया था (परिशिष्ट ख, ग, घ)[1]। इस विषयमें उन्होंने २० तारीखको विधानसभामें एक वक्तव्य भी दिया था।

कांग्रेसने कभी किसी रूपमें "प्रबल राजनीतिक शक्तिका प्रयोग करने" का इरादा या प्रयत्न भी नहीं किया। कांग्रेसके ध्येय नीचे लिखे अनुसार हैं, जो पिछले वर्ष दक्षिण आफ्रिकाके प्रायः प्रत्येक पत्रमें प्रकाशित हो गये थे :

"(१) उपनिवेशवासी यूरोपीयों और भारतीयोंके बीच अधिक मेलजोल पैदा करना और मित्रताका भाव बढ़ाना।

(२) पत्रोंमें लेख लिखकर, पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके और व्याख्यानोंके द्वारा भारत और भारतीयोंके बारेमें जानकारीका प्रसार करना।

(३) भारतीयोंको, और खास तौरसे उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीयोंको, भारतीय इतिहासकी शिक्षा देना और उन्हें भारतीय विषयोंका अध्ययन करनेको प्रेरित करना।

(४) भारतीयोंको जो मुसीबतें भोगनी पड़ रही हैं उनका पता लगाना और उनका निवारण करनेके लिए सब वैध उपायोंसे आन्दोलन करना।

१. देखिए, पृष्ठ ३२९ और ३३०।
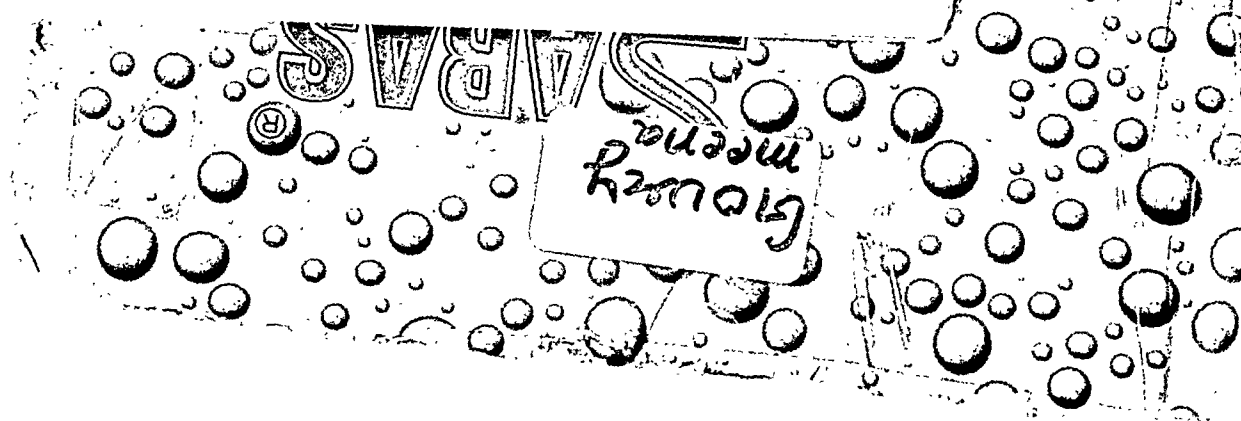
(५) गिरमिटिया भारतीयोंकी हालतोंकी जाँच करना और उन्हें सहायता देकर विशेष कठिनाइयोंसे उबारना।

(६) गरीबों और जरूरतमन्दोंको सब उचित तरीकोंसे सहायता देना।

(७) और, आम तौरपर ऐसे सब काम करना, जिनसे भारतीयोंकी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनीतिक स्थितिमें सुधार हो।"

इस प्रकार देखा जायेगा कि कांग्रेसका ध्येय भारतीयोंके अपकर्षको रोकना है, राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना नहीं। जहाँतक धनकी बात है, लिखनेके समय कांग्रेसके पास लगभग १,०८० पौंडकी जायदाद है, और १४८ पौंड ७ शि० ८ पेंसकी रकम बैंकमें जमा है। यह धन धर्मार्थ कार्यों, प्रार्थना-पत्रोंकी छपाई और चालू खर्चके लिए है। प्रार्थियोंके विनम्र मतसे यह धन कांग्रेसके ध्येय पूरे करनेके लिए भी काफी नहीं है। धन न होनेसे शिक्षा-सम्बन्धी कार्यमें भारी बाधा पड़ रही है। इसलिए प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि वर्तमान विधेयकका मंशा जिस खतरेसे रक्षा करनेका है, उसका कोई अस्तित्व है ही नहीं।

तथापि सम्राज्ञी-सरकारसे प्रार्थियोंकी यह विनती नहीं है कि उनके अपने कथनके आधारपर ही उपर्युक्त तथ्योंको स्वीकार कर लिया जाये। अगर इनमें से किसीके भी बारेमें कोई सन्देह हो तो, प्रार्थियोंका निवेदन है, उचित तरीका यह होगा कि उनके बारेमें जाँच कराई जाये। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि हजारों लोगोंमें मतदाता बननेके लिए आवश्यक सम्पत्तिजन्य योग्यता नहीं है। इसलिए इसकी खास तौरसे जाँच की जानी चाहिए कि उपनिवेशमें ऐसे भारतीय कितने हैं, जिनके पास ५० पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति है, या जो १० पौंड वार्षिक किराया अदा करते हैं। ऐसा हिसाब तैयार करनेमें न तो बहुत समय लगेगा और न बहुत व्यय ही होगा। साथ ही इससे मताधिकारके प्रश्नको सन्तोषजनक रूपसे हल करनेमें बहुत मदद मिलेगी। *कोई-न-कोई* कानून मंजूर कर लेनेकी सरगर्म जल्दबाजी प्रार्थियोंके नम्र मतसे, समग्र उपनिवेशके सर्वोत्तम हितोंके लिए हानिकारक होगी। भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे जहाँतक प्रार्थियोंका सम्बन्ध है, वे सम्राज्ञी-सरकारको आश्वासन देते हैं कि उनका इरादा आगामी वर्षके आम चुनावोंकी मतदाता-सूचीमें एक भी भारतीयका नाम शामिल करानेका नहीं है। यही आश्वासन वे अधिकारी रूपसे उस संस्थाकी ओरसे भी देते हैं, जिसके सदस्य होनेका उन्हें सम्मान प्राप्त है।

सरकारी मुखपत्रने वर्तमान विधेयककी चर्चा करते हुए सम्भवतः एक पर-प्रेरित लेखमें इस विचारका समर्थन किया है कि "खतरा काल्पनिक" है। उसने कहा है :

> और हमें निश्चय है कि यदि कभी एशियाई मतोंसे इस उपनिवेशमें यूरोपीय शासनकी स्थिरतापर खतरा आ ही जाये, तो सम्राज्ञी-सरकार इस प्रकारकी कठिनाई पार करनेके उपाय निकाल लेगी। नया विधेयक उन सब लोगोंके मताधिकार प्राप्त करनेपर कुछ मर्यादाएँ लादता है, जो यूरोपीय वंशके नहीं हैं। अभी, देशी लोगों-सम्बन्धी कानूनके अनुसार, केवल देशीयोंको छोड़कर शेष सब जातियों और वर्गोंकी ब्रिटिश प्रजाको मताधिकार सुलभ है। फिर भी कुल ९,५६० मतदाताओंमें से भारतीय मतदाताओंकी संख्या सिर्फ २५० के लगभग है। या, यों कहा जा सकता है कि, ३८ यूरोपीय मतदाताओंके पीछे सिर्फ एक भारतीयको मत देनेका अधिकार प्राप्त है। इस स्थितिमें हमारा विश्वास है कि नये विधेयकसे अगर हमेशाके लिए नहीं तो भी बहुत वर्षोंके लिए इस विषयकी जरूरत पूरी हो जायेगी। उदाहरणके लिए, दक्षिण कैरोलीनामें २१ वर्षसे ऊपरके नीग्रो लोगोंकी संख्या १,३२,९४९ है। इसके विपरीत २१ वर्षसे ऊपरके गोरे १,०२,५६७ ही हैं। फिर भी, अल्पसंख्यक होनेपर भी, गोरोंने प्रभुत्व शक्ति अपने हाथोंमें कायम रखी है। सच बात यह है कि संख्याके बावजूद शासनकी बागडोर हमेशा वरिष्ठ जातिके हाथोंमें ही रहेगी। *इसलिए हमारा ऐसा विश्वास होता है कि भारतीय मतोंके यूरोपिय मतोंको निगल जानेका खतरा काल्पनिक है।* हम जो कुछ जानते हैं उससे हमारा खयाल है कि भारतको 'चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं'वाला देश करार दिया जायेगा। वास्तवमें, बार-बार पेश की जानेवाली यह दलील कि भारतीय उन संस्थाओंके तत्त्व और जिम्मेदारियोंसे अपरिचित हैं, सचमुच ठीक निशानेपर नहीं बैठती। कारण यह है कि भारतमें लगभग ७५० म्यूनिसिपल कमेटियाँ हैं। उनमें ब्रिटिश और भारतीय मतदाताओंको बराबर अधिकार हैं। १८९१ में ८३९ यूरोपीय म्यूनिसिपल सदस्योंके मुकाबलेमें भारतीय सदस्य ९,७९० थे। . . . फिर, अगर हम मान भी लें कि भारतीयोंको

> ‘चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं’ के देशसे आये हुए करार दिया जायेगा, तो भी *हम नहीं मानते कि हमारे आक्रान्त हो जानेका खतरा जरा भी सम्भव है। क्योंकि, पिछले अनुभवने साबित कर दिया है कि भारतीयोंका जो वर्ग साधारणतः यहाँ आता है वह मताधिकारकी चिन्ता नहीं करता। इसके अलावा, उनमें से अधिकतर मताधिकारके लिए आवश्यक थोड़ी-सी सम्पत्ति-जन्य योग्यता भी नहीं रखते।* फिर हम एक ही साम्राज्यके अंग हैं। उसके प्रति हमारा उत्तरदायित्व हमें भारतीयोंको भारतीयोंके ही नाते मताधिकार-जैसे विशेषाधिकारके प्रयोगसे वंचित करनेकी इजाजत नहीं देता। इसलिए, जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, ऐसा रुख कारगर होनेवाला नहीं है और उसे छोड़ देना ही अच्छा है। अगर नये कानूनकी व्यवस्थाएँ मतदाता-सूचीमें अवांछित लोगोंका आना न रोक सकें तो हम सम्पत्तिजन्य योग्यताको बढ़ा सकते हैं। इससे हमें रोकनेवाली चीज क्या है? अभी साम्पत्तिक योग्यता बहुत थोड़ी है। इसलिए उसे बढ़ाकर दूना भी किया जा सकता है। शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताकी शर्त भी मढ़ी जा सकती है। इससे यूरोपीय मतदाता तो एक भी खारिज न होगा, परन्तु भारतीय मतदाताओंपर व्यापक असर पड़ेगा। भारतीयोंमें लगभग १०० पौंडकी अचल सम्पत्ति रखनेवालों या २० पौंड सालाना किराया देने-वालों और अंग्रेजी लिख-पढ़ सकनेवालोंकी संख्या बहुत ही कम होगी। यदि यह उपाय विफल हो जाये तो हम मिसिसिपी योजना या परि-स्थितियोंके अनुकूल उसका कोई संशोधित रूप स्वीकार कर सकते हैं। इससे हमें रोकनेवाली कोई चीज नहीं होगी। (५ मार्च, १८९६)

इस तरह, सरकारी मुखपत्रके अनुसार ही स्पष्ट है कि वर्तमान सम्पति-जन्य योग्यता मतदाता-सूचीमें भारतीयोंकी किसी भी अनुचित भरमारको रोकनेके लिए काफी है। और यह भी कि, वर्तमान विधेयकका एकमात्र उद्देश्य भारतीय समाजको सताना — उसे खर्चीली मुकदमेबाजीमें झोंक देना है।

१८९५ के *मारिशस आलमेनक* [मारिशसके तिथिवार वार्षिक विवरण] के अनुसार, १८९४ में "सामान्य आबादी" शीर्षकके अन्तर्गत मारिशसकी

आबादी १,०६,९९५ थी। इसके मुकाबलेमें भारतीयोंकी संख्या २,५९,२२४ बताई गई थी। वहाँ मताधिकारकी योग्यता इस प्रकार है:

प्रत्येक पुरुषको किसी भी वर्ष किसी भी निर्वाचन-क्षेत्रकी मतदाता-सूचीमें नाम दर्ज करानेका, और नाम दर्ज हो जानेपर उस क्षेत्रसे परिषदके सदस्यके चुनावमें मत देनेका हक होगा। उसमें ये योग्यताएँ होनी चाहिए:

१. उसने २१ वर्षकी उम्र प्राप्त कर ली हो।

२. उसपर कोई कानूनी प्रतिबन्ध न हो।

३. वह जन्म अथवा निवासके आधारपर ब्रिटिश प्रजा हो।

४. वह नाम दर्ज करानेके पहले कमसे कम तीन वर्ष तक उपनिवेशमें रह चुका हो और नीचे लिखी योग्यताओंमें से कोई एक उसमें हो:

(क) प्रत्येक वर्षकी पहली जनवरीको और उससे पहलेके ६ महीनोंमें उसके पास उस क्षेत्रके अन्दर सारा खर्च और देनदारी बाद करके ३०० रुपये मूल्यकी या २५ रुपये मासिक आयकी अचल सम्पत्ति रही हो।

(ख) नाम दर्ज करानेकी तारीखको वह उस क्षेत्रमें स्थित अचल सम्पत्तिका कमसे कम २५ रुपये मासिक किराया दे रहा हो। इसी तरह वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्वके छः महीनोंमें इतना किराया देता रहा हो।

(ग) वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व तीन महीनेसे उस क्षेत्रमें रह रहा हो। या, उसमें उसके व्यापार अथवा नौकरीका मुख्य स्थान रहा हो। और, वह उपनिवेशके अन्दर कमसे कम ३,००० रुपयोंकी अचल सम्पत्तिका मालिक हो।

(घ) वह उपर्युक्त योग्यताओंमें से कोई भी एक योग्यता रखनेवाली स्त्रीका पति या ऐसी विधवाका सबसे बड़ा लड़का हो।

(ङ) वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व तीन महीनेसे उस क्षेत्रमें रहा हो। या, उसमें उसके व्यापार अथवा नौकरीका मुख्य स्थान रहा हो। और, उसे कमसे कम ६०० रुपये वार्षिक या ५० रुपये मासिक वेतन मिलता हो।

(च) वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व तीन महीनेसे उस क्षेत्रमें रहा हो। या, उसमें उसके व्यापार अथवा नौकरीका मुख्य स्थान रहा हो। और, वह कमसे कम ५० रुपये वार्षिक परवाना-शुल्क देता हो।

शर्तें ये हैं कि—

(१) ऐसे किसी आदमीको मतदाता-सूचीमें नाम लिखाने या परिषदके सदस्यके चुनावमें मत देनेका हक नहीं होगा, जिसे हमारे राज्यकी किसी अदालत द्वारा जालसाजीके अपराधमें सजा दी गई हो; या जिसे ऐसी अदालतने मौत, गुलामी, सख्त कैद या १२ महीनेसे ज्यादा कैदकी सजा दी हो; और जिसने वह सजा या उसके बदलेमें दी गई सजा न भोगी हो, या हमसे क्षमा प्राप्त न की हो।

(२) ऐसे किसी व्यक्तिको किसी वर्षमें मतदाता नहीं बनाया जायेगा जिसने उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व १२ महीनोंके अन्दर सरकार या गिरजाघरसे किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता पाई हो।

(३) ऐसे किसी व्यक्तिको किसी वर्षमें मतदाता नहीं बनाया जायेगा, जो नाम दर्ज करनेवाले अधिकारी या किसी मजिस्ट्रेटकी उपस्थितिमें अपना नाम दर्ज करानेके कागजपर अपने हाथसे हस्ताक्षर न करे, तारीख न डाले और वे योग्यताएँ न लिखे, जिनके आधारपर वह नाम दर्ज करानेका हक पेश करता है।

(४) ऐसे किसी व्यक्तिको, जो (ग), (घ), (ङ) या (च) में बताई गई योग्यताओंके अनुसार अपने निवासके क्षेत्रसे मतदाता-सूचीमें नाम दर्ज करानेका दावेदार हो, उसी योग्यताके आधारपर उसके व्यापार या नौकरीके मुख्य स्थानसे मतदाता नहीं बनाया जायेगा। इसका उलटा भी न किया जायेगा।

मारिशसमें इन योग्यताओंके होते हुए कोई झगड़ा-झंझट दिखलाई नहीं पड़ता, हालाँकि वहाँ भारतीयोंकी संख्या सामान्य आबादीसे दूनी है और वहाँके भारतीय नेटालके भारतीयोंके ही वर्गके हैं। फर्क सिर्फ यह है कि वे अपने नेटालवासी भारतीयोंसे बहुत ज्यादा समृद्धिशाली हैं।

तथापि, यदि मान लिया जाये कि भारतीयोंके मताधिकारके प्रश्नको सुलझानेकी जरूरत है ही, तो भी प्रार्थी आदरपूर्वक कहना चाहते हैं कि प्रस्तुत विधेयकका मंशा सीधे और खुले ढंगसे उसे सुलझानेका नहीं है। बताया गया है कि नेटालके माननीय और विद्वान महान्यायवादीने दूसरे वाचनकी बहसके दौरानमें वर्तमान कानूनमें थोड़ा-सा परिवर्तन करनेके एक सुझावकी चर्चा करते हुए कहा था :

> मैंने कानूनमें परिवर्तन करनेसे इनकार किया, इसका कारण यह था कि वैसा परिवर्तन करनेका अर्थ बगली झोंके — अप्रत्यक्ष प्रभाव — और गुपचुप तरीकेसे काम साधना होता, जब कि सरकारका इरादा उसे खुले-आम करनेका है।

प्रस्तुत विधेयकको स्वीकार करनेकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे "बगली झोंके और गुपचुप तरीके"की कल्पना करना कठिन है। प्रस्तुत विधेयक तो हर व्यक्तिको अँधेरेमें रखनेवाला है। ८ मई, १८९६ के *नेटाल एडवर्टाइज़र*का कथन है :

> . . . प्रस्तुत विधेयक अगर बगली झोंका नहीं तो क्या है? उसका सारा लक्ष्य यह प्रयत्न करनेका है कि पिछले सत्रका कानून जो कुछ करनेमें असफल रहा उसे गुपचुप और बगली झोंकेसे पूरा कर लिया जाये। श्री एस्कम्बने स्वीकार किया है कि वह कानून क्रूरतापूर्ण और सीधी मार करनेवाला था। और उन्होंने ठीक ही कहा कि इसी कारण उसे सम्राज्ञी-सरकारकी सम्मति नहीं मिली। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वर्तमान विधेयकका ठीक वही लक्ष्य है, जो कि उस "क्रूर" विधेयकका था। फर्क सिर्फ इतना है कि यह विधेयक अपने उद्देश्यको ईमानदारी और अकुटिलताके साथ व्यक्त नहीं करता। दूसरे शब्दोंमें, इसका मंशा सरल तरीकेसे अप्राप्य लक्ष्यको गुपचुप और बगली झोंकेसे प्राप्त करना है।

अगर सम्राज्ञी-सरकारको विश्वास हो गया है कि नेटालमें भारतीयोंके मताधिकारको मर्यादित करनेकी सच्ची जरूरत है, अगर उसे सन्तोष हो गया है कि वर्गगत कानूनके सिवा इस प्रश्नको हल किया ही नहीं जा सकता और अगर वह उपनिवेशके इस विचारको स्वीकार करती है कि १८५८ की घोषणाके
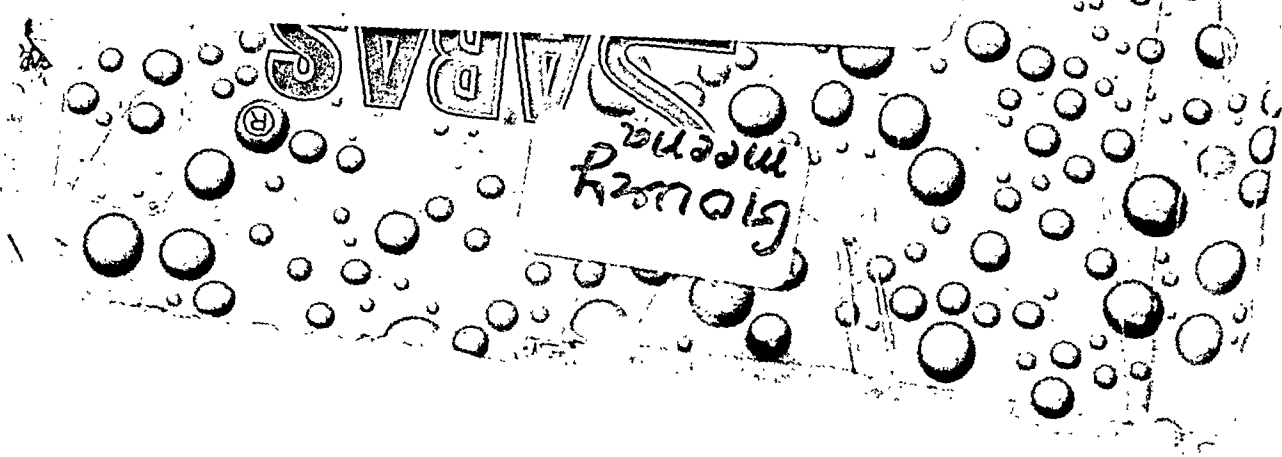
बावजूद भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोंसे भिन्न आधारपर व्यवहार किया जा सकता है, तो प्रार्थी निवेदन करते हैं कि द्विविधाजनक कानून बनाकर मुकदमेबाजी और मुसीबतोंके लिए दरवाजा खोल देनेसे बेहद अच्छा यह होगा कि सम्राज्ञी-सरकारकी रायमें जो अधिकार भारतीयोंको नहीं मिलने चाहिए उनसे उन्हें नाम लेकर बाद कर दिया जाये।

अगर विधेयक मंजूर हो गया तो मानी हुई बात है कि वह अपने द्विविधाजनक अर्थके कारण अनन्त मुकदमेबाजीको जन्म देगा। यह भी पहले दर्जेके महत्त्वकी बात मानी गई है कि भारतीय मताधिकारका प्रश्न नेटालके प्रधानमन्त्रीके शब्दोंमें, "हमेशाके लिए एकबारगी तय" कर दिया जाये। और फिर भी, नेटाली लोकमतके अधिकतर नेताओंके मतानुसार, विधेयकसे वह प्रश्न "हमेशाके लिए एकबारगी" तय नहीं होगा।

नेटाल विधानसभाके विपक्षी नेता श्री बिन्सने यह सिद्ध करनेके लिए कि भारतमें संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ मौजूद हैं, गिन-गिनकर प्रमाण पेश किये। बादमें, रिपोर्टके अनुसार, उन्होंने कहा :

> उन्होंने आशा व्यक्त की कि मैंने सिद्ध कर दिया है, उस आधारपर विधेयक गलत है। भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ और चुनावका सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है। भारतीयोंको संसदीय मताधिकार प्राप्त है। म्यूनिसिपल मताधिकार तो बहुत व्यापक है। वह स्थानीय शासनपर असर डालता है। फिर, अगर यह स्थिति है तो आपके इस विधेयकको स्वीकार करनेका क्या उपयोग? मैंने विधानसभाके सामने जो तथ्य पेश किये हैं वे बड़ेसे बड़े अधिकारी विद्वानोंके जो ग्रंथ मैं पा सका उनसे लिये गये हैं। उनसे अत्यन्त निर्णायक रूपमें सिद्ध हो जाता है कि भारतमें इन संस्थाओंका अस्तित्व है। एक विषयमें तो बिलकुल सन्देह है ही नहीं। अगर यह विधेयक कानून बन गया तो *आप अनन्त मुकदमेबाजी, कठिनाइयों और मुसीबतोंमें फँस जायेंगे। विधेयक काफी स्पष्ट या निश्चयात्मक नहीं है।* हम कुछ अधिक स्पष्ट और निश्चयात्मक वस्तु चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस प्रश्नका फैसला हो जाये और मैं फैसला

करनेमें जो भी मदद कर सकूँगा, सब करूँगा। परन्तु मेरा खयाल है कि *यह विधेयक गलत तरीकेपर बनाया गया है।* इसमें एक बात ऐसी है, *जो सही नहीं है। यह हमें अनन्त मुकद्दमेबाजी, कठिनाई और मुसीबतमें डाल देगा।* इस विधेयकके दूसरे वाचनके पक्षमें मत देना मेरे लिए असम्भव होगा।

श्री बेल विधानसभाके एक प्रमुख सदस्य और नेटालके एक प्रमुख वकील हैं। वे उपनिवेशके सामान्य कानूनके अन्तर्गत भारतीयोंका मताधिकार कायम रखनेके विरोधी हैं। फिर भी वे श्री बिन्सके विचारोंसे सहमत थे। उन्होंने भारतीयों और समस्त उपनिवेशकी ओरसे विधानसभासे भावपूर्ण अनुरोध किया कि वह विधेयकको स्वीकार न करे :

> *यह मुकद्दमेबाजीको जन्म देगा, शत्रुताका भाव पैदा करेगा और स्वयं भारतीयोंके बीच क्षोभ उत्पन्न कर देगा।* इसके अलावा, इससे प्रीवी कौंसिल [सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद] के पास मामले भेजनेकी प्रेरणा मिलेगी और सभाके सदस्योंके चुनावपर बुरा असर पड़ेगा। इस विधेयकके साथ जो बड़े प्रश्न उलझे हुए हैं, उनके खयालसे मैं आशा करता हूँ कि इसका दूसरा वाचन स्वीकार नहीं किया जायेगा।

*नेटाल विटनेस*ने ८ मईको परिस्थितिका सार इस प्रकार दिया है :

> अगर विधेयकको जैसा है वैसा ही स्वीकार करके कानूनका रूप दे दिया गया तो उपनिवेश *गम्भीर* मुकदमेबाजीमें फँस जायेगा — हमारी इस चेतावनीका श्री बिन्स और श्री बेलने समर्थन किया है। और श्री स्मिथकी आधी रोटी, जो न-कुछसे अच्छी है, इन दामों बहुत महँगी पड़ेगी। हमारा खयाल है कि सम्राज्ञीके कानूनी सलाहकारोंने विधेयकपर विचार किया ही नहीं। हमारे इस खयालका कारण विधेयकसे उठनेवाले *अत्यन्त* नाजुक प्रश्न हैं। अगर विधेयकके शब्दोंमें ऐसा परिवर्तन न कर दिया गया, जिससे कानूनका आश्रय लेनेकी सम्भावना निकल जाये, तो निश्चय ही उन प्रश्नोंको अदालतमें ले जाया जायेगा। उन प्रश्नोंमें से कुछ ये हैं : क्या कोई उपनिवेश ऐसा कानून बना सकता है, जो इंग्लैंडके नागरिक अधिकार-दानके कानूनका उल्लंघन करता हो? ब्रिटिश भारतीय ब्रिटिश
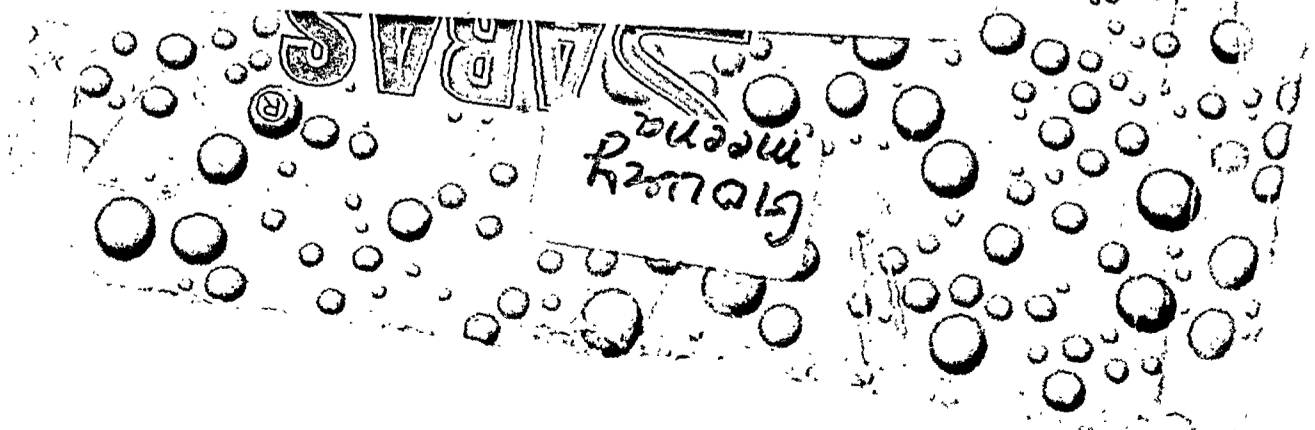
प्रजा हैं या नहीं? दूसरे शब्दोंमें, *विधेयक ब्रिटिश साम्राज्यमें ब्रिटिश भारतकी स्थितिका सारा प्रश्न खड़ा कर देता है।* क्या १८५८ की घोषणाके बाद उसके द्वारा प्रदान किये गये विशेषाधिकारोंके किसी अंशका हरण करने [के लिए] नेटालमें विशेष कानून बनाये जा सकते हैं?

अपने ८ मईके अग्रलेखमें विधेयकके द्विविधाजनक अर्थ और उसकी अस्पष्टतापर खेद प्रकट करनेके बाद *नेटाल एडवर्टाइज़रने* कहा है:

> सच्ची स्थिति यह है [कि] प्रस्तुत विधेयककी एक-एक पंक्ति विवादोंका गुप्त गढ़ है। ये सब विवाद एक दिन खुलकर खेलने लगेंगे। और इनसे भारतीयों और यूरोपीयोंके बीचका मत-सम्बन्धी संघर्ष शायद अधिक कटुताके साथ वर्षोंके लिए स्थायी बन जायेगा।

यह मनहूस सम्भावना — यह सतत आन्दोलन — किसलिए? सिर्फ एक ऐसे खतरेको टालनेके लिए जिसका अस्तित्व ही नहीं है। प्रार्थी सम्राज्ञी-सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि वह अगर सारे उपनिवेशको नहीं, तो केवल भारतीय समाजको ही सही, इससे बचा ले।

ऐसे संघर्षका खर्च भारतीयोंकी शक्तिके परे है। इसे साबित करनेके लिए किसी दलीलकी जरूरत नहीं। साराका सारा संघर्ष बेजोड़ पक्षोंके बीच है।

अब, यह भी मान लिया जाये कि, उच्चतम न्यायालयने अपना मत दे दिया है कि भारतीयोंके पास "संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनाव-मूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ" नहीं हैं। तो फिर, विधेयकमें भारतीयोंको मत-दाता-सूचीमें शामिल करनेकी जो पद्धति बताई गई है वह, प्राथियोंके नम्र मतसे, हर तरह असन्तोषप्रद हो जाती है।

विधेयकका जो भाग गवर्नरको अधिकार प्रदान करता है उसको तो यूरोपीयोंने भी उतने ही जोरोंसे नापसन्द किया है। *नेटाल विटनेसने* उस विषयमें कहा है:

> . . . वह महान संवैधानिक सिद्धान्तपर हमला करता है। इसके अलावा प्रातिनिधिक संस्थाओंके कार्यमें वह एक ऐसे तत्त्वको दाखिल करता है, जिसे अज्ञात राशि कहा जा सकता है। यह है, उन संस्थाओं-पर पड़नेवाला तीसरी उपधाराका असर। यह उपधारा मतदाता-सूचीके

लिए योग्य एशियाइयोंका चुनाव करनेके हेतु छः व्यक्तियोंके निर्वाचक-मण्डलकी व्यवस्था करती है। . . . मालूम होता है कि मन्त्रिमण्डल इस कल्पनासे — अर्थात् अप्रत्यक्ष चुनावसे — चिपटा हुआ है। परन्तु उसने अपने-आपको और गवर्नरको अप्रत्यक्ष निर्वाचक-मण्डलकी हस्ती देकर न सिर्फ एक अनर्थकारी बल्कि अत्यन्त अनुचित कार्य भी किया है।

उसी प्रश्नपर लौटकर वह फिर कहता है:

विधानसभाने एक ऐसे विधेयकको स्वीकार करके जनताका आदर नहीं कमाया, जिसपर अधिकतर प्रमुख सदस्योंको अविश्वास है। वे देख सकते हैं कि यह विधेयक एक समझौता है — एक ऐसा समझौता जो बिलकुल निष्फल हो सकता है। जब वह पहले-पहल प्रकाशित हुआ था तब हमने कहा था कि वह विधानसभाके विशेषाधिकारों और संवैधानिक सिद्धान्तोंपर भी बहुत खतरनाक वार करनेवाला है। और, प्रत्येक सदस्य से अपेक्षा तो यह थी कि वह इन सिद्धान्तोंको अक्षुण्ण रखनेके लिए अपने-आपको गम्भीर उत्तरदायित्वसे बँधा हुआ मानेगा। कुछ सदस्योंको इस अन्तिम आपत्तिकी याद दिलानेकी जरूरत न होगी। श्री बेलने कहा था कि गवर्नर तथा मन्त्रिमण्डल सत्ताधारी हैं, इसलिए चुनाव करनेका अधिकार उनको नहीं देना चाहिए। वह तो सिर्फ जनताके हाथोंमें रहना चाहिए। बेशक, उसका प्रयोग तो उसके प्रतिनिधि ही करेंगे। . . . परन्तु अखबारोंको तो वर्तमान संसदकी नहीं, भविष्यकी संसदोंकी चिन्ता है। एक महान संवैधानिक सिद्धान्तको एक बार तोड़ दिया गया तो, भले ही सेंध कितनी ही छोटी क्यों न हो, कोई भी सत्तालोभी सरकार उसे कभी भी बढ़ा लेगी — यह खतरा हमेशाके लिए खड़ा हो जायेगा।

यह आपत्ति यूरोपीयोंके दृष्टिकोणसे है। प्रार्थी इस विचारसे तो सहमत हैं ही, परन्तु उक्त उपधाराके सिद्धान्तपर उनकी इससे भी भारी आपत्ति है। भारतीय समाज मतदाता-सूचीमें भारतीय नामोंकी संख्या देखनेको उतना व्यग्र नहीं है, जितना कि ब्रिटिश प्रजाके नाते अपने अधिकारों और विशेषाधिकारोंकी रक्षाके लिए है। वे ब्रिटिश प्रजाके साथ बराबरीकी मान-मर्यादा चाहते हैं। सम्राज्ञीने एकाधिक अवसरोंपर ब्रिटिश भारतीयोंको इसका

आश्वासन दिया है। भूतपूर्व मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके एक विशेष खरीते द्वारा नेटालके भारतीय समाजको सम्राज्ञी-सरकारने यह आश्वासन विशेष रूपसे दिया है। यदि अमुक योग्यता रखनेवाले ब्रिटिश प्रजाजन अधिकारपूर्वक मताधिकार माँग सकते हैं तो, प्रार्थी नम्रतापूर्वक पूछते हैं, भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन क्यों नहीं माँग सकते?

तरीका दुःसाध्य है और वह मताधिकारके संघर्षको सदा कायम रखेगा। इसके अलावा वह संघर्षको यूरोपीयोंके हाथोंसे भारतीयोंके हाथोंमें तबदील कर देगा। विधानसभामें दूसरे वाचनपर दिये गये भाषणोंसे मालूम होता है कि गवर्नर यदि अपने अधिकारका जरा भी प्रयोग करेंगे भी, तो बहुत बचा-बचाकर करेंगे।

विधेयकका मंशा भारतीय समाजमें फूट पैदा करना है; क्योंकि जिस उम्मीदवारको त्यागा जायेगा वह अगर अपने-आपको दूसरेके बराबर योग्य मानता हो तो अपने भाईके प्रति की गई कृपासे नाराज़ होगा।

महानुभावने मताधिकार-सम्बन्धी अपने खरीतेमें भारतीयोंको मताधिकारका हक देनेवाली तीन योग्यताएँ बताई हैं। वे हैं — शिक्षा, ज्ञान और धन। प्रार्थियोंका निवेदन है कि अगर शिक्षा, ज्ञान और धनकी अमुक मात्रा उपनिवेशवासी भारतीयोंके मताधिकार पानेके लिए काफी है तो सपरिषद गवर्नरके हाथोंमें अधिकार सौंपनेके बजाय इसी तरहकी कसौटी लागू की जा सकती है। यहाँ हम महानुभावका ध्यान *नेटाल मर्करी*के अग्रलेखके ऊपर उद्धृत अंशकी ओर आकर्षित करते हैं। अगर विधेयककी मर्यादाके अन्दर आनेवाले लोगोंके लिए आवश्यक योग्यताओंका वर्णन कर दिया जाये तो इससे विधेयकके उस भागका विवादात्मक स्वरूप मिट जायेगा। और तब उसकी मर्यादामें आनेवाले लोगोंको ठीक-ठीक ज्ञान रहेगा कि किन योग्यताओंके होनेपर उन्हें मत देनेका अधिकार मिलेगा। ८ मईके *नेटाल एडवर्टाइज़र*में स्थितिको साररूपमें भली-भाँति पेश किया गया है:

> वर्तमान विधेयककी कुटिलताका एक और प्रमाण इस व्यवस्थामें निहित है कि सपरिषद गवर्नरको कुछ भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें शामिल करनेका अधिकार होगा। स्पष्टतः यह उपधारा सम्राज्ञी-सरकारको यह खयाल करानेके विचारसे जोड़ी गई है कि साधारण नियमसे मुक्त करनेके इस अधिकारका उपयोग कभी-कभी किया जायेगा — शायद बचा-बचाकर

किया जायेगा, फिर भी किया अवश्य जायेगा। इसपर भी महान्याय-वादीने घोषित किया : "वर्तमान विधेयक द्वारा ऐसी परिस्थितियोंमें दिया गया मतदाता-सूचीमें शामिल करनेका अधिकार सिर्फ सपरिषद गवर्नरके जरिये प्राप्त किया जा सकेगा। समाजका प्रत्येक अंग अब समझने लगा है कि मन्त्रियोंकी जिम्मेदारियोंका सच्चा अर्थ क्या है। और वह भली-भाँति जानता है कि अगर मन्त्रियोंने भारतीयोंको मतदाता बनाकर चुनाव क्षेत्रोंमें मिलावट करनेकी जिम्मेदारी उठाई तो वे चौदह दिन भी अपने पदपर ठहर न सकेंगे।" आगे उन्होंने कहा : "दक्षिण आफ्रिकामें एक छोरसे दूसरे छोरतक इसके सिवा कोई दूसरी आवाज न होगी कि देशकी मतदाता-सूची पूर्णतः यूरोपीय जातितक सीमित रहे। यह हमारा पहला खयाल था, जिसे लेकर हम आगे बढ़े; यही सदा हमारा लक्ष्य रहा है।" . . . अगर मन्त्रियोंकी इन घोषणाओंका कोई अर्थ है तो यह है कि नियमसे मुक्त करनेके अधिकारको काममें लानेका इस सरकारका कोई इरादा नहीं है। फिर इसे विधेयकमें क्यों रखा गया? विधेयकमें एक व्यवस्था जोड़ी जाती है। उसके निर्माता उसे स्वीकृतिके लिए पेश करते हुए घोषित करते हैं कि वे उसे निरुपयोगी मानेंगे। फिर क्या इसमें पर्देका या, अगर ज्यादा अर्थ व्यक्त होता हो तो, बगली झोंके का — अप्रत्यक्ष प्रभावका — दिखावा भी नहीं है?

विधेयकके अमलसे मुक्त किये जानेकी अर्जी देना और फिर अपनी अर्जीके खारिज हो जानेकी जोखिम भी उठाना किसी धनी भारतीय व्यापारीको प्रिय न होगा। यह समझमें आना कठिन है कि जिन देशोंमें अबतक संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं उनसे आनेवाले यूरोपीयोंको उपनिवेशके सामान्य कानूनके अनुसार मत देनेका अधिकार क्यों मिले, जबकि वह उसी स्थितिके गैर-यूरोपीयोंको नहीं मिल सकता।

सरकारके विचारसे वर्तमान विधेयक प्रयोगात्मक है। दूसरे वाचनमें माननीय महान्यायवादीने कहा है : "अगर हमारे विश्वास और दृढ़ विश्वासके विपरीत विधेयक अपेक्षासे कम उतरा तो उपनिवेशमें कभी शान्ति नहीं होगी", आदि। इसलिए विधेयक निश्चयवाचक नहीं है। ऐसी हालतोंमें जबतक वर्गगत

कानूनका आश्रय लिये बिना सब साधनोंका प्रयोग करके उन्हें असफल नहीं पाया जाता (अर्थात्, यह मानकर कि भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा उपस्थित है), तबतक वर्तमान विधेयक जैसा कोई विधेयक स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। प्रार्थियोंका निवेदन है कि यह सम्राज्ञीके केवल मुट्ठी-भर प्रजाजनोंको हानि पहुँचानेवाला कानून नहीं, बल्कि ३० करोड़ वफादार प्रजाजनोंपर प्रहार करनेवाला है। प्रश्न यह नहीं है कि कितने और किन भारतीयोंको मताधिकार दिया जाये, बल्कि यह है कि भारतके बाहर और ब्रिटिश उपनिवेशोंमें तथा सह-राज्योंमें भारतीयोंका दर्जा क्या होगा? क्या कोई सम्भ्रान्त भारतीय व्यापार या किसी अन्य उद्यमके लिए भारतके बाहर जा सकता है और वहाँ कोई मान-मर्यादा रखनेकी आशा कर सकता है? भारतीय प्रवासी दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिक भविष्यको ढालनेके इच्छुक नहीं हैं। परन्तु वे इतना जरूर चाहते हैं कि उनपर बिना कोई अपमानजनक शर्त लादे उन्हें निर्विघ्न रूपसे अपने शान्तिपूर्ण धंधे करने दिया जाये। इसलिए प्रार्थी निवेदन करते हैं कि अगर भारतीयोंके मत प्रबल हो जानेका जरा-सा भी खतरा हो तो सबके लिए समान रूपसे एक शिक्षा-सम्बन्धी कसौटी निर्धारित कर दी जाये। उसके साथ सम्पत्तिजन्य योग्यतामें भी चाहे तो वृद्धि कर दी जाये, या न की जाये। इससे, सरकारी मुखपत्रके मतानुसार भी, सब भय निर्मूल हो जायेगा। अगर यह असफल रहे तो बादमें ज्यादा सख्त कसौटी जारी की जा सकती है, जो यूरोपीयोंके मतोंमें बाधा डाले बिना भारतीयोंपर असर करनेवाली हो। अगर नेटाल-सरकारको भारतीयोंको मताधिकारसे पूरी तरह वंचित कर देनेसे कम किसी बातसे सन्तोष न हो और अगर सम्राज्ञी-सरकार ऐसी माँगको मंजूर करनेके अनुकूल हो तो, प्रार्थियोंका निवेदन है, भारतीयोंको नाम लेकर वंचित करनेसे ही कठिनाईका सन्तोषजनक हल निकल सकेगा। इससे कम कोई कार्रवाई काफी न होगी।

परन्तु प्रार्थी आपका ध्यान आकर्षित करते हैं कि यूरोपीय उपनिवेशियोंकी समग्र रूपसे ऐसी कोई माँग नहीं है। वे बिलकुल उदासीन दिखलाई पड़ते हैं। *नेटाल एडवर्टाइज़र*ने इस उदासीनतापर खरी-खोटी सुनाई है :

> जिस ढंगसे संसदने इस सर्व-महत्त्वपूर्ण विषयपर विचार किया है उससे शायद एक चौथी बात भी प्रकट होती है। वह है अपनी राजनीतिके

सम्बन्धमें उपनिवेशकी उदासीनता। अगर पता लगाया जा सके तो यह जानना बड़ा रोचक होगा कि कितने उपनिवेशियोंने विधेयकको पढ़नेका भी कष्ट उठाया है। शायद जिन लोगोंने नहीं पढ़ा उनका अनुपात बहुत बड़ा होगा। इस विषयमें उपनिवेशियोंकी आम उपेक्षा इस बातसे प्रकट होती है कि उपनिवेशके कोने-कोनेकी तो बात ही क्या हर केन्द्रमें भी यह माँग करनेके लिए सभाएँ नहीं की गईं कि संसद सिर्फ ऐसा विधेयक स्वीकार करे, जिससे कि इस विषयमें आगे तमाम वाद-विवाद व्यर्थ हो जाये। अगर उपनिवेश परिस्थितिकी सच्ची गम्भीरतासे परिचित होता तो अखबारोंके पन्ने इस प्रश्न-पर गम्भीर और बुद्धिमत्तापूर्ण पत्र-व्यवहारसे भर जाते। परन्तु इनमें से कोई भी बात हुई नहीं। फलतः सरकार एक ऐसा विधेयक स्वीकार करनेमें सफल हो गई है जो स्थितिको निबटानेवाला माना जाता है। परन्तु सच-मुचमें तो वह स्थितिको इतनी बदतर और खतरनाक बना देनेवाला है, जितनी कि पहले कभी नहीं रही।

ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जायेगा कि वर्तमान विधेयक किसी भी पक्षको सन्तोष देनेवाला नहीं है। नेटालके मन्त्रिमण्डल और दोनों विधानमण्डलोंके प्रति अधिकसे अधिक आदरके साथ प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि उन्होंने विधेयकको स्वीकार कर लिया है, इसमें बहुत अर्थ नहीं है। विधेयकके सक्रिय विरोधसे अलग रहनेवाले सदस्य स्वयं ही *नेटाल विटनेस*के कथनानुसार, उसपर अविश्वाससे भरे हुए हैं।

प्रार्थियोंको आशा है कि उन्होंने सन्तोपजनक रूपमें सिद्ध कर दिया है कि ऊपर बताया हुआ खतरा काल्पनिक है। वर्तमान विधेयक उन लोगोंकी दृष्टिसे भी जो भारतीयोंका मताधिकार छिनवाना चाहते हैं, और स्वयं भारतीयोंकी दृष्टिसे भी असन्तोषजनक है। किसी भी हालतमें, आपके प्रार्थियोंका दावा है कि उन्होंने यह बतानेके लिए काफी तथ्य और तर्क पेश कर दिये हैं कि विधेयकका फैसला जल्दबाजीमें नहीं होना चाहिए। ऐसा करनेकी कोई जरूरत भी नहीं है। *नेटाल विटनेस*का खयाल है कि "विधेयकको जल्दबाजीमें पास करनेका कोई स्पष्टीकरण — कमसे कम, कोई सन्तोषजनक स्पष्टीकरण — नहीं किया गया।" *नेटाल एडवर्टाइज़र*का मत है कि "भारतीयोंके मताधिकारका यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे हमेशाके लिए तय करनेमें कोई जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए। सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि इस विषयको स्थगित
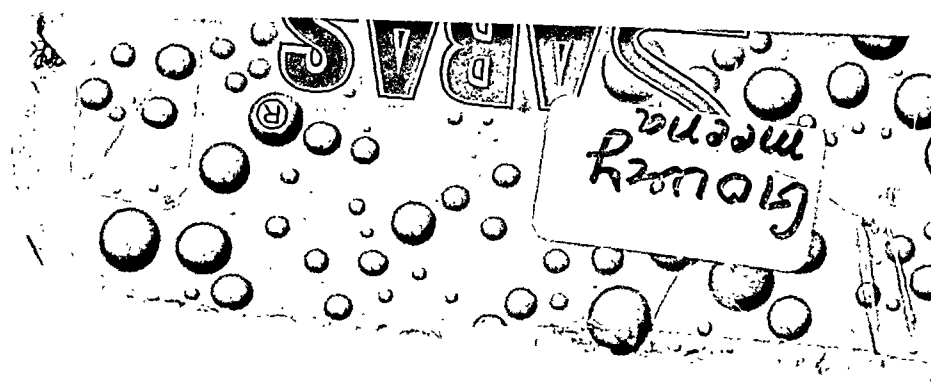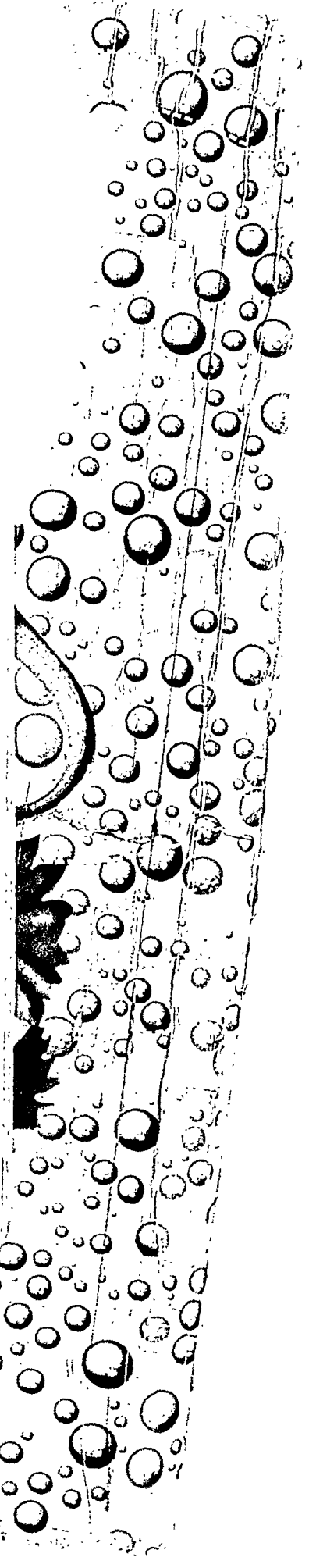
कर दिया जाये और चुनाव-क्षेत्रोंको, जब उनके सामने सही-सही जानकारी मौजूद हो, इसपर विचार करने दिया जाये" (२८–३–९६)।

भारतीय समाजकी भावनाएँ लन्दन *टाइम्स*के शब्दोंमें भली-भाँति व्यक्त की जा सकती हैं। उस पत्रने (अपने २० मार्च, १८९६ के साप्ताहिक संस्करणमें) कहा है :

> भारतीय जिन विदेशों और ब्रिटिश उपनिवेशोंमें काम-धंधेकी खोजके लिए जाते हैं वहाँ अगर उन्हें उनकी ब्रिटिश प्रजाकी *हैसियत*से जाने दिया जाये तो दक्षिण आफ्रिकाके विकासमें भारतीय मजदूरोंके लिए नई सम्भावनाएँ मौजूद हैं। भारत-सरकार और स्वयं भारतीयोंका विश्वास है कि उनकी मान-मर्यादाके प्रश्नका निर्णय दक्षिण आफ्रिकामें ही होना चाहिए। अगर दक्षिण आफ्रिकामें उन्हें ब्रिटिश प्रजाका पद मिल जाता है तो दूसरे स्थानोंमें देनेसे इनकार करना लगभग असम्भव हो जायेगा। अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें उसे पानेमें असफल रहते हैं तो अन्यत्र पाना अत्यन्त कठिन होगा। वे निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि भारतीय मजदूर सहायता-प्राप्त प्रवासके बदलेमें निश्चित वर्षोंतक सेवा करनेका जो इकरार करते हैं उसकी शर्तोंको उन्हें पूरा करना ही चाहिए, भले ही इसमें उनके अधिकार कितने ही कम क्यों न हो जाते हों। परन्तु वे मानते हैं कि किसी भी देश या उपनिवेशमें वे क्यों न बसें, गिरमिटिया मजदूरीकी अवधि समाप्त कर लेनेपर उन्हें ब्रिटिश प्रजाकी *हैसियत* प्राप्त करनेका अधिकार है।... भारत-सरकारका यह मांग करना उचित ही होगा कि भारतीय मजदूरोंको, अपने जीवनका सर्वोत्तम काल दक्षिण आफ्रिकाको अर्पित कर देनेके बाद, उनके उस अपनाये हुए देशमें ब्रिटिश प्रजाकी हैसियत देनेसे इनकार करके, वापस भारतमें खदेड़ा न जाये। निर्णय कुछ भी हो, उससे भारतीय मजदूरोंके प्रवासकी भावी वृद्धिमें गम्भीर बाधा पड़े बिना न रहेगी।

मताधिकारके इस प्रश्नकी, और *नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*से संकलित तथा अब सही माने जानेवाले आंकड़ोंकी खास तौरसे चर्चा करते हुए वही पत्र ३१ जनवरी, १८९६ के अंक (साप्ताहिक संस्करण)में कहता है :

> इस विवरणके अनुसार, उपनिवेशमें ९,३०९ यूरोपीय मतदाताओंके विरुद्ध २५१ भारतीय मतदाता हैं। . . . और अगर श्री गांधीका कथन

सही है तो अमली राजनीतिके दौरमें किसी समय यह भी सम्भव नहीं दिखलाई पड़ता कि भारतीय मत यूरोपीय मतोंको निगल जायेंगे। . . . सब गिरमिटिया भारतीय ही मताधिकारसे वंचित नहीं हैं, बल्कि सारेके सारे ब्रिटिश भारतीय वंचित हैं। उनके सिर्फ एक बहुत ही छोटे-से वर्गको, जो अपनी बुद्धि तथा उद्योगशीलतासे खुशहाल बन गया है, मताधिकार प्राप्त है। . . .

विवरण बताता है कि वर्तमान कानूनके अन्तर्गत भी ब्रिटिश भारतीयोंको मताधिकार पानेमें बहुत समय लगता है। कुल २५१ ब्रिटिश भारतीय मतदाताओंमें से केवल ६३ दस वर्षसे कमसे उपनिवेशमें रह रहे हैं। इनमें से बहुत-सोंने अपनी पूंजीसे कारोबार शुरू किया था। शेष १० वर्षसे ज्यादा और अधिकतर १४ वर्षसे ज्यादासे यहाँ निवास कर रहे हैं। जो लोग इस प्रश्नको हल हुआ देखना चाहते हैं उनके लिए ब्रिटिश भारतीय मतदाताओंकी सूचीके धंधेवार विश्लेषणके नतीजे बहुत प्रोत्साहक होंगे। . . .

भारतमें ठीक इसी वर्गके लोग म्यूनिसिपल तथा अन्य चुनावोंके सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं। नेटालके भारतीय भारतमें प्राप्त सुविधाओंसे ज्यादाका दावा नहीं कर सकते, और भारतमें उन्हें किसी प्रकारका कोई मताधिकार प्राप्त नहीं है — यह दलील वस्तुस्थितिके अनुकूल नहीं है। . . . भारतमें मतदान द्वारा शासनका अस्तित्व जहाँतक है, वहाँतक अंग्रेज और भारतीय बराबर हैं। उसी तरह म्यूनिसिपल, प्रान्तीय और सर्वोच्च परिषदोंमें भी भारतीयोंके हितोंका प्रतिनिधित्व सबल है। यह दलील भी कसौटीपर खरी नहीं उतरती कि भारतीय प्रातिनिधिक शासनके स्वरूप और उत्तरदायित्वसे अपरिचित हैं। शायद दुनियामें दूसरा कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ लोगोंके जीवनमें इतनी गहरी समाई हुई हैं। . . .

इस समय *श्री चेम्बरलेनके सामने जो प्रश्न है, वह सैद्धान्तिक नहीं है। वह प्रश्न दलीलोंका नहीं, जातीय भावनाका है। सम्राज्ञीकी १८५८ की घोषणाने भारतीयोंको ब्रिटिश प्रजाका पूरा-पूरा अधिकार दिया है। वे इंग्लैंडमें मत देते हैं और अंग्रेजोंकी बराबरीसे ब्रिटिश संसद्में आसन ग्रहण करते हैं।* परन्तु अनेक राष्ट्रोंके योगसे बने हुए एक विशाल साम्राज्यमें ये प्रश्न
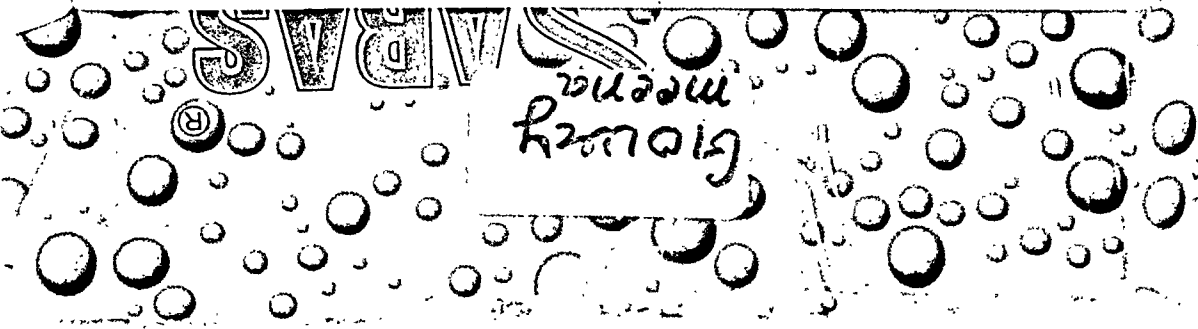
अनिवार्य हैं। और जैसे-जैसे भापके जहाज बृहत्तर ब्रिटेनकी घटक आबादियोंको एक-दूसरेके ज्यादा घनिष्ठ सम्पर्कमें लायेंगे, वैसे-वैसे ये प्रश्न ज्यादा उग्र रूपमें प्रकट होंगे। दो बातें साफ हैं। ऐसे प्रश्न उपेक्षा करनेसे हल नहीं होंगे और ब्रिटेन-स्थित शक्तिशाली सरकार इन प्रश्नोंका न्याय करनेके लिए सबसे अच्छा पुनर्विचार-न्यायालय हो सकती है। *हम अपनी ही प्रजाओंके बीच जाति-युद्ध होने देकर लाभ नहीं उठा सकते।* भारत-सरकारके लिए नेटालको मजदूर भेजना बंद करके उसकी प्रगतिको रोक देना उतना ही गलत होगा, जितना कि नेटालके लिए ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंको नागरिक अधिकार देनेसे इनकार करना। भारतीयोंने तो वर्षोंकी कमखर्ची और अच्छे कामसे अपने-आपको नागरिकोंके वास्तविक दर्जेतक उठा ही लिया है। (सब जगह अक्षरोंका फर्क प्रार्थियोंने किया है)। . . .

अब प्रार्थी अपना मामला आपके हाथोंमें छोड़ते हैं। ऐसा करते हुए वे उत्कटतासे प्रार्थना और दृढ़ आशा करते हैं कि उपर्युक्त विधेयकको सम्राज्ञीकी अनुमति प्राप्त नहीं होगी। और अगर भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका कोई भी भय हो तो जाँचका आदेश दिया जायेगा कि क्या वर्तमान कानूनके अन्तर्गत सचमुच ही कोई ऐसा खतरा मौजूद है? या कोई दूसरी ऐसी राहत दी जायेगी, जिससे न्यायका उद्देश्य पूरा हो।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

८३. भेंट : भारतको विदा होते समय

[जून ४, १८९६]

गांधीजीके भारतको विदा होनेके अवसरपर *नेटाल एडवर्टाइज़रका* एक सम्वाद-दाता नेटालवासी भारतीयोंकी तत्कालीन सामान्य स्थितिके बारेमें उनके विचार जाननेके लिए उनसे मिला था। इस मुलाकातका निम्नलिखित विवरण उक्त पत्रमें प्रकाशित हुआ था :

श्री गांधीसे अनेक प्रश्न पूछे गये। उनके जवाब देते हुए उन्होंने बताया कि कांग्रेसकी सदस्य-संख्या इस समय ३०० है। उसका सालाना अग्रिम चन्दा ३ पौंड है। कांग्रेस ऐसे सज्जनोंको अपने सदस्य बनाना चाहती है जो न केवल अपना चन्दा दे सकें बल्कि जो कांग्रेसके उद्देश्योंके लिए प्रत्यक्ष काम भी कर सकें। हम कांग्रेसके लिए एक बड़ी रकम भी एकत्र करना चाहते हैं, जिससे कोई जायदाद खरीदी जा सके। इससे कांग्रेसके उद्देश्य पूर्ण करनेके लिए स्थायी आमदनीका एक साधन हो जायेगा।

संवाददाताने पूछा — "ये उद्देश्य क्या हैं?"

उत्तर मिला — "वे दो प्रकारके हैं। राजनीतिक और शैक्षणिक। शैक्षणिक उद्देश्य यह है कि उपनिवेशमें पैदा हुए बच्चोंको छात्रवृत्ति देकर हम उन्हें वे सारे विषय सीखनेके लिए प्रेरित करें, जिन्हें एक कौमकी हैसियतसे अपनी भलाईके लिए सीखना जरूरी है। इसमें भारत और उपनिवेशका इतिहास, निर्व्यसनता, वगैरह विषय रहेंगे।"

"क्या कांग्रेसका सदस्य बननेके लिए और भी किसी योग्यताकी आवश्यकता होती है?"

"जी, हाँ। सदस्यमें अंग्रेजी भाषामें लिखने और पढ़नेकी योग्यता होनी चाहिए। परन्तु इधर कुछ समयसे इस शर्तका पालन कड़ाईसे नहीं किया जा रहा है।"

"कांग्रेसकी आर्थिक स्थिति कैसी है?"

"संस्थाके पास इस समय १९४ पौंडकी रकम नकद है। इसके अलावा अमगेनी रोडपर एक जायदाद भी है। मैं चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थितिमें यह रकम १,१०० पौंड हो जाये। और यह मुश्किल नहीं है। इससे संस्थाकी नींव काफी मजबूत हो जायेगी।"

"राजनीतिक दृष्टिसे कांग्रेसका रुख क्या है?"

"राजनीतिमें वह अधिक प्रभाव नहीं डालना चाहती। उसका उद्देश्य अभी तो यही है कि सन् १८५८ की घोषणामें दिये गये वचनोंपर अमल हो। भारतमें भारतीयोंकी जो मान-मर्यादा है वह उपनिवेशमें भी उनको प्राप्त हो जाये तो हम समझ लेंगे कि कांग्रेसका राजनीतिक उद्देश्य सफल हो गया। किसी दूसरे दलको वह दबाना नहीं चाहती।"

"उपनिवेशमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या क्या है?"

"मतदाता-नामावलीमें २५१ भारतीय नाम हैं, जब कि यूरोपीय मतदाताओंकी संख्या ९,३०३ है। भारतीय मतदाताओंमें से १४३ डर्बनमें हैं। और अगर कांग्रेस अपनी पूरी ताकत लगा दे तो भी वह अन्य २०० से अधिक मतदाता नहीं बना सकती। हमारी सारी महत्त्वाकांक्षा यही है कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी भी वही मान-मर्यादा हो जो यूरोपीयोंकी है। हाँ, योग्यताकी कसौटी जो चाहें रख दें। और अगर आप चाहें तो जायदाद-सम्बन्धी शर्त भी ऊँची कर सकते हैं। हम खुश ही होंगे। परन्तु जो भी शर्त रखें सब कौमोंके लिए समान हो।"

"आपका आगेका कार्यक्रम क्या रहेगा?"

"वही, जो अबतक रहा है। कांग्रेस इसी प्रकार सारे उपनिवेशमें, भारतमें और इंग्लैंडमें भी साहित्य द्वारा और समय-समयपर जनताके सामने आनेवाले प्रश्नोंके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें लेखों वगैरहके द्वारा भारतीयोंके दुखड़ोंका प्रकाशन करती रहेगी और इस कामके लिए धन-संग्रह भी करती रहेगी। अबतक अपनी सभाओंमें कांग्रेस समाचार-पत्रोंके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित नहीं करती थी। किन्तु उसने निश्चय किया है कि अब वह कभी-कभी उनको भी अपनी सभाओंमें बुला लिया करेगी और अपनी प्रवृत्तियोंके समाचार उनको दे दिया करेगी। कांग्रेसकी इच्छा यह थी कि वह ऐसा करनेके पहले अपने संगठनको स्थायित्व प्रदान कर दे। मैं एक दुरुस्ती करना चाहता हूँ। मुझे जो मानपत्र दिया गया है उसमें लिखा है कि कांग्रेसके विभिन्न उद्देश्य सफल हो गये। लेकिन दरअसल बात ऐसी नहीं है। वास्तवमें कांग्रेस अभी उनपर विचार कर रही है। और हर वाजिब तरीकेसे उनको पूर्ण करनेका वह यत्न करेगी। उपनिवेशके कानूनोंमें भारतीयोंको लक्ष्य करके रंग-भेदको स्थापित करनेका अगर यत्न किया गया तो कांग्रेस इसका विरोध करेगी। क्योंकि यदि यह यत्न यहाँ सफल हो गया तो यह दूसरे उपनिवेशोंमें और संसारके दूसरे हिस्सोंमें भी फैलेगा।"
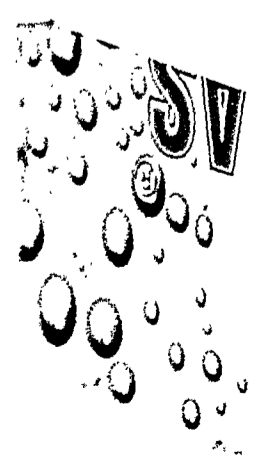
८४. भारतीयोंकी एक सभा

जून ४, १८९६ को भारतीय कांग्रेसके सभा-भवनमें डर्बनके तमिल और गुजराती भारतीयोंकी एक सभा हुई थी, जिसमें दूसरे समाजोंके लोग भी शामिल थे। गांधीजीने नेटाल भारतीय कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे भारतीयोंकी जो सेवाएँ की थीं उनका उनकी ओरसे सम्मान करना सभाका उद्देश्य था। उपस्थिति बहुत बड़ी थी और उत्साह भी बहुत था। सभापतिका आसन दादा अब्दुल्लाने ग्रहण किया था। तमिल श्रोताओंके लिए दुभाषियेका काम श्री लारेन्सने किया था। सभाकी निम्नलिखित रिपोर्ट *नेटाल एडवर्टाइज़र*से उद्धृत की गई है:

मानपत्र भेंट कर दिया जानेपर उसका जवाब देते हुए श्री गांधीने इस कृपाके लिए सबके प्रति आभार प्रकट किया और कहा कि इस प्रसंगसे यह बात साफ हो गई है कि नेटालमें आये हुए भारतीय चाहे किसी जातिके हों, वे सब यहाँ एकताके नये बन्धनमें अपनेको बाँधना चाहते हैं। श्री गांधीने कहा कि वे मानते हैं कि कांग्रेसके उद्देश्यके बारेमें भारतीयोंमें कोई मतभेद नहीं है। क्योंकि अगर ऐसी कोई बात होती तो वे उसके मन्त्रीको अभिनन्दन-पत्र भेंट करनेके लिए एकत्र नहीं होते। श्री गांधीने आगे कहा कि अगर उनका अनुमान सही है तो उस दिन कांग्रेसकी सभामें उन्होंने जो यह बात मद्रासी भाइयोंकी उपस्थितिके बारेमें कही थी वही यहाँ भी कहना चाहेंगे कि, अबतक भी उनकी उपस्थिति सन्तोषजनक नहीं है। परन्तु उन्होंने आशा प्रकट की कि भविष्यमें वे अधिक संख्यामें आने लगेंगे। श्री गांधीने इस बातपर दुःख प्रकट किया कि वे तमिल भाषामें नहीं बोल सकते थे; परन्तु कहा कि उन्होंने जो मद्रासी भाइयोंकी कम उपस्थितिके बारेमें कहा उसका उनकी अथवा भारतकी अन्य कौमोंकी बुराईके रूपमें कोई गलत अर्थ न लगा लिया जाये। उन्होंने कहा कि सब जानते हैं कि कांग्रेसके उद्देश्य क्या हैं। किन्तु वे केवल बातोंसे पूरे नहीं हो सकते। इसलिए उन्होंने सबसे विनती की कि कांग्रेसके प्रति अपना प्रेम केवल शब्दोंमें नहीं बल्कि प्रत्यक्ष कार्योंमें प्रकट करके बतायें। श्री गांधीने सबसे खास तौरपर विनती की कि वे अपनेमें से कुछ प्रतिनिधियोंको मैरित्सबर्ग, लेडी स्मिथ तथा ऐसे ही अन्य स्थानोंको भेजें जहाँ प्रत्येक वर्गके भारतीय बसे हुए हैं और जो कांग्रेसके सदस्य नहीं बने हैं। वे उन्हें कांग्रेसके सदस्य बनानेका प्रयत्न करें।

श्री गांधी आज शामको समुद्र-मार्गसे भारतके लिए रवाना हो गये।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, ५-६-१८९६

सामग्रीके साधन-सूत्र

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स: औपनिवेशिक कार्यालय, लंदनमें सुरक्षित इन कागज-पत्रोंमें यह सामग्री शामिल है: ब्रिटिश उपनिवेश-मन्त्रीके नाम दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेश सचिव, नेटालके गवर्नर और केपटाउन-स्थित ब्रिटिश उच्चायुक्तके खरीते; नेटालकी विधानसभाओंके 'मतदान तथा कार्रवाइयाँ', उनको दिये गये प्रार्थनापत्र और उनके आदेशोंसे प्रकाशित पत्र-व्यवहार; और दक्षिण आफ्रिका तथा लंदनमें प्रकाशित दक्षिण आफ्रिकी मामलोंके कागज-पत्र तथा सरकारी रिपोर्टें (ब्ल्यू बुक्स)।

काठियावाड़ टाइम्स: राजकोटसे प्रकाशित अंग्रेजी तथा गुजरातीका साप्ताहिक पत्र।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी स्मारक निधि द्वारा संचालित गांधी-साहित्य तथा फोटो-नकलों, माइक्रोफिल्म-नकलों और मूल पत्रों तथा अन्य कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय।

टाइम्स आफ नेटाल (१८५१–१९२७): पीटरमैरित्सवर्गका दैनिक समाचार-पत्र।

दादाभाई नौरोजी: ग्रैंड ओल्डमैन आफ इंडिया: लेखक, श्री आर० पी० मसानी; ऐलन एंड अनविन, लंदन; १९३९।

नेटाल एडवर्टाइज़र: डर्बनसे प्रकाशित दैनिक समाचारपत्र।

नेटाल मर्क्री: (१८५२—): डर्बनका दैनिक समाचारपत्र।

नेटाल विटनेस (१८४६—): पीटरमैरित्सवर्गसे प्रकाशित स्वतन्त्र विचारोंका दैनिक समाचारपत्र।

वेजिटेरियन (१८८८—): पहले-पहल इसका प्रकाशन एक स्वतन्त्र पत्रके रूपमें हुआ था; परन्तु बादमें यह लंदनके अन्नाहारी मण्डल (वेजिटेरियन सोसाइटी)का साप्ताहिक मुखपत्र बन गया।

वेजिटेरियन मेसेंजर: मैंचेस्टरके अन्नाहारी मण्डलका मुखपत्र।

महात्मा : लाइफ आफ मोहनदास करमचन्द गांधी : लेखक, डी० जी० तेंदुलकर; आठ खण्ड; प्रकाशक, झवेरी और तेंदुलकर, बम्बई; १९५१–४।

सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा : गुजराती; लेखक, महात्मा गांधी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; अगस्त १९५२; महात्मा गांधीकी आत्मकथा, जो पहले-पहल उनके गुजराती पत्र *नवजीवन*में धारावाहिक रूपमें प्रकाशित हुई थी।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : साबरमती आश्रम संरक्षण और स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित इस संग्रहालयमें यह सामग्री है : गांधीजी द्वारा और उनके सम्बन्धमें लिखी हुई पुस्तकें; एक दर्जनसे अधिक दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंकी १८९३ से १९०१ तककी कतरनोंकी फाइलें; सरकारी रिपोर्टें (ब्ल्यू बुक्स); और गांधीजीके १८९३ से १९३३ तकके कागज-पत्र, जिनमें से कुछ नेटाल भारतीय कांग्रेससे सम्बन्ध रखनेवाले भी हैं।

श्रीमद् राजचन्द्र : सम्पादक और प्रकाशक, मनसुखलाल रावजी मेहता; १९१४। राजचन्द्रके लेखोंका सम्पूर्ण संग्रह, गुजराती।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१८६९ – १८९६)

इस वृत्तान्तमें गांधीजीके जीवनकी पृष्ठभूमि और उनकी इस कालकी अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियोंका उल्लेख किया गया है।

१८६९

अक्टूबर २ : पोरबन्दरमें मोहनदास करमचन्द गांधीका जन्म।

१८७६

१२ वर्षकी उम्रतक प्राथमिक शिक्षा — राजकोटमें। कस्तूरबाईके साथ सगाई।

१८८१

आल्फ्रेड हाई स्कूलमें प्रविष्ट।
कस्तूरबाईके साथ विवाह।

१८८४ – ८५

मांसाहारका प्रयोग, परन्तु बड़े-बूढ़ोंको धोखा न देनेके खयालसे त्याग।
पिताकी मृत्यु — त्रेसठ वर्षकी उम्रमें।

१८८७

नवम्बर : मैट्रिक परीक्षामें उत्तीर्ण और भावनगरके सामलदास कालेजमें प्रविष्ट।

१८८८

अप्रैल-मई : पढ़ाईमें आत्मविश्वासकी कमी। इंग्लैंड जाकर कानूनकी शिक्षा प्राप्त करनेकी सलाह दी गई। मांस, मदिरा और स्त्रियोंसे बचकर रहनेका वचन देकर मातासे अनुमति प्राप्त।

अगस्त १० : राजकोटसे बम्बईके लिए रवाना, जहाँ जातिभाइयोंने विलायत जानेसे रोकनेका प्रयत्न किया।

सितम्बर ४ : जातिके मुखियोंका जोरदार विरोध होनेपर भी इंग्लैंडको रवाना।

अक्टूबर २८ : लंदन पहुँचे।

नवम्बर ६ : इनर टेम्पलमें भरती।

१८८९

अन्नाहारके कारण उत्पन्न सामाजिक कमीकी पूर्तिके लिए "सभ्य" वेशमें रहनेका निश्चय और भाषण-कला, फ्रेंच भाषा, नृत्य तथा पश्चिमी संगीतका अभ्यास आरम्भ। परन्तु शीघ्र ही अपनी गलती महसूस।

सितम्बर : महीनेके अन्त-अन्तमें कार्डिनल मैनिंगके पास जाकर उनसे भेंट की और लंदन जहाजघाटकी हड़तालको समाप्त करनेमें उनके योगपर उन्हें बधाई दी।

पेरिसकी प्रदर्शनी देखने गये (मई और अक्टूबरके बीच किसी समय)।

नवम्बर : ब्लैवेस्की और एनी बेसेंटके साथ परिचय कराया गया; परन्तु थियोसाफिकल सोसाइटी (ब्रह्मविद्या समाज)का नियमित सदस्य होनेसे इनकार कर दिया।

दिसम्बर : लंदनकी मैट्रिक परीक्षामें बैठे, परन्तु असफल रहे।

इस वर्षमें थियोसाफिकल प्रभावके कारण बहुत-सा थियोसाफिकल और अन्य धार्मिक साहित्य पढ़ा, जिसमें एड्विन आर्नोल्डकी *द सांग सेलेस्टियल*, *द लाइट आफ एशिया*, मूल *भगवद्गीता* और *बाइबिल* भी शामिल थीं। गिरजाघरकी प्रार्थनाओंमें गये और डा० जोजेफ़ पार्कर-जैसे प्रसिद्ध धर्मोपदेशकोंके प्रवचन सुने।

१८९०

इस वर्षके आरंभमें मैंचेस्टरके *वेजिटेरियन मैसेंजर* और लंदनके *वेजिटेरियन* तथा दोनों स्थानोंके अन्नाहारी मण्डलोंका परिचय हुआ। जोशाया ओल्डफील्डके साथ आन्तरराष्ट्रीय अन्नाहारी मण्डलकी बैठकमें गये। सादगीसे रहना शुरू किया। आहारके प्रयोग जारी रखे। कुछ समय तक वेजिटेरियन क्लबका संचालन किया, जिसके अध्यक्ष जोशाया ओल्डफील्ड, उपाध्यक्ष एड्विन आर्नोल्ड और मन्त्री स्वयं थे।

जून : मैट्रिक परीक्षामें उत्तीर्ण।

सितम्बर ११ : अन्नाहारी मण्डलमें शामिल हुए और उसकी कार्यकारिणीके सदस्य बने।

१८९१

जनवरी ३० : चार्ल्स ब्रैडलाके दफन संस्कारमें शामिल हुए। उनके नास्तिकवादका प्रभाव मनपर नहीं पड़ा। उलटे, श्रीमती बेसेंटकी पुस्तक *हाउ आई बिकेम ए थियोसाफिस्ट* (मैं ब्रह्मविद्यावादी कैसे बनी) पढ़नेपर उसके प्रति अरुचि पक्की हो गई।

फरवरी २० : अन्नाहारी मंडलकी बैठकमें सर्वप्रथम भाषण — डा० एलिन्सनके इस दावेके समर्थनमें कि शुद्धिवादियोंके मतके विरुद्ध विचार रखनेके बावजूद उन्हें मण्डलका सदस्य बननेका हक है, हालांकि गांधीजी स्वयं उनके विचारोंसे सहमत नहीं थे।

फरवरी २१ : *वेजिटेरियन*में एक लेख लिखकर शराबको "मानवजातिका वह शत्रु, सभ्यताका वह अभिशाप" कहा।

मार्च २६ : लंदन थियोसाफिकल सोसाइटीके सह-सदस्य बनाये गये।

मई १ : अन्नाहारी मण्डलोंके संयुक्त संघ (फेडरल यूनियन आफ वेजिटेरियन सोसाइटीज़) की बैठकके लिए मण्डलके प्रतिनिधि नियुक्त किये गये।

जून १० : बैरिस्टर बने।

कानूनका अध्ययन करते समय दादाभाई नौरोजीके व्याख्यान सुनने जाते रहे। फ्रेडरिक पिनकॉटके उपदेशसे, जिसमें ईमानदारी और मेहनतपर जोर दिया गया था, आगे चलकर बैरिस्टरके रूपमें सफलता प्राप्त करनेकी आशा प्रबल हुई।

जून ११ : उच्च न्यायालयमें बैरिस्टरके तौरपर नाम दर्ज।

जून १२ : भारतको रवाना।

जुलाई ५-९ : बम्बई पहुँचे। माताके देहान्तका समाचार सुनकर शोक-विह्वल। जौहरी, कवि और सन्त श्री राजचन्द्र (रायचन्दभाई)से भेंट, जिन्हें आगे चलकर उन्होंने धार्मिक प्रज्ञामें टाल्सटायसे बड़ा माना और जो उनके जीवनपर प्रभाव डालनेवाले तीन महापुरुषोंमें से एक हुए। विलायत-यात्राके बारेमें जातीय निषेधका भंग करनेके कारण नासिक जाकर प्रायश्चित्त किया।

राजकोट पहुँचे और अपने भाई लक्ष्मीदासके साथ रहे।

जुलाई १० : फिर जातिमें शामिल किये गये, यद्यपि अब भी जातिके एक हिस्सेने बहिष्कार कायम रखा।

नवम्बर १६ : बम्बईके उच्च न्यायालयमें बैरिस्टरीकी इजाजतके लिए आवेदन।

१८९२

मार्च-अप्रैल : परिवारके बच्चोंको आधुनिक ढंगकी शिक्षा देना आरम्भ किया। पोशाक और भोजनमें पश्चिमी ढंग अपनाया।

मई १४ : काठियावाड़ एजेन्सीकी अदालतोंमें बैरिस्टरी करनेकी इजाजत गज़टमें सूचना निकालकर दी गई।
राजकोटमें बैरिस्टरी करना कठिन महसूस करके अनुभव प्राप्त करनेके लिए बम्बई गये। एक मित्रके साथ आहार-सम्बन्धी प्रयोग। घबड़ाहटके कारण पहला मुकदमा छोड़ दिया और अर्जियाँ लिखनेका काम पसन्द किया। शिक्षकका काम करनेकी विवशता महसूस की, परन्तु ग्रैजुएट न होनेके कारण नियुक्ति नहीं हुई।
छः मासके बाद बम्बईका सारा कामकाज समेटकर भाईके साथ काम करनेके लिए राजकोट वापस। उनके साथ काम करते हुए अर्जियाँ, आवेदन-पत्र आदि लिखकर तीन सौ रुपये मासिकतक कमाने लगे।

१८९३

अप्रैल : दादा अब्दुल्ला एंड कंपनीने दक्षिण आफ्रिकामें कानूनी कामके लिए आमन्त्रित किया। इस अवसरका लाभ उठाकर तत्परतासे डर्बनके लिए रवाना। एक वर्षमें वापस आनेके इरादेसे पत्नी और बच्चेको राजकोटमें ही छोड़ दिया था।

मई : महीनेके अन्त-अन्तमें नेटाल बन्दरगाह पहुँचे। वहाँ भारतीयोंके प्रति अनादरकी भावना महसूस करके चकित और उद्विग्न हुए।

मई-जून : आनेके दूसरे या तीसरे दिन डर्बनकी अदालतमें गये। जब पगड़ी उतारनेके लिए कहा गया, अदालत छोड़कर चले जाना पसन्द किया। इस घटनाके बारेमें पत्रोंको लिखा। उन्हें "बेन्योता मेहमान" कहकर पुकारा गया, परन्तु उनके नामका प्रचार बहुत हुआ। सात या आठ दिन बाद
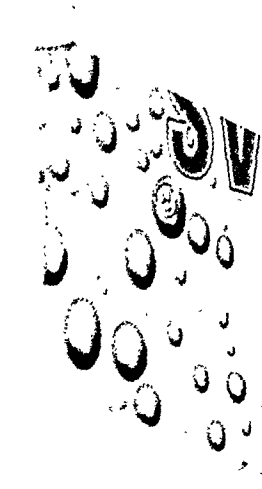
मुअक्किलके कामसे प्रिटोरिया गये। रेल और घोड़ागाड़ीकी यात्रामें रंग-भेदका बहुत कटु अनुभव।

रंग-भेदके "रोगको समूल नष्ट कर देने" और "इस कार्यमें जो भी कठिनाइयाँ आयें उन्हें सहने"का संकल्प किया। अटर्नी और धर्मोपदेशक बेकरने उन्हें रंग-भेदकी चेतावनी दी और उनके लिए एक गरीब स्त्रीके धावेमें रहनेका प्रबन्ध कर दिया।

बेकरकी प्रार्थना-सभाओंमें गये और श्री कोट्स — क्वेकर — तथा कुमारी हैरिस व कुमारी गैब-जैसे ईसाइयोंसे परिचय कराया गया, जो मित्र बन गये। प्रिटोरियावासके पहले हफ्तेमें सेठ तैयब हाजी खाँसे भेंट और ट्रान्सवालके भारतीयोंकी हालतपर मेमन व्यापारियोंकी सभामें भाषण। भारतीय निवासियोंके कष्टोंको दूर करानेके लिए संघ बनानेका सुझाव और इस काममें मदद करनेका आश्वासन दिया। प्रिटोरियावाससे उन्हें ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटके भारतीयोंकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हालतोंका गहरा ज्ञान हुआ। अध्यक्ष क्रूगरके निवास-स्थानके पास पैदल पटरीसे धक्के और लात मारकर ढकेल दिये गये; परन्तु गोरे हमलावर-पर मुकदमा चलानेसे इस आधारपर इनकार कर दिया कि मैं निजी शिकायतोंको दूर करानेके लिए कभी अदालतमें नहीं जाऊँगा। इस घटनासे भारतीयोंके पैदल पटरियोंपर चलनेके विरुद्ध लगी पाबन्दियोंका अनुभव।

अगस्त ११–सितम्बर १ : प्राणयुक्त आहारके प्रयोग। इस बीच श्री कोट्स तथा अन्य ईसाई मित्रोंके निरन्तर सम्पर्कसे ईसाई धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने और उन मित्रोंके साथ विचार-विमर्श करनेकी प्रेरणा हुई। परन्तु बाइबिल और ईसाई धर्मकी व्याख्याएँ स्वीकार करना कठिन मालूम हुआ।

१८९४

अप्रैल : अपने मुअक्किल दादा अब्दुल्लाका मुकदमा तैयार करते हुए महसूस किया कि कानूनी काममें सत्यका महत्त्व सर्वोपरि है। विश्वास हो गया कि मुकदमेबाजी एक गलत चीज है, और मुकदमेको मध्यस्थ द्वारा निपटा दिया। पेशेका काम पूरा हो जानेपर डर्बन वापस।
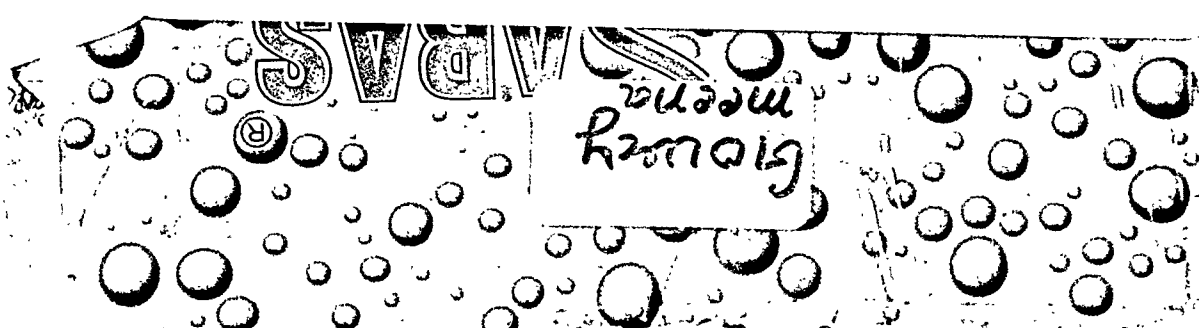
विदाईकी दावतके समय *नेटाल मर्करी*में यह घोषणा पढ़ी कि भारतीयोंका मताधिकार छीननेके लिए कानून बनाया जानेवाला है। उपस्थित भारतीय व्यापारियोंको उसका प्रतिरोध करनेकी सलाह। उनका अनुरोध कि एक महीनेतक ठहरकर आन्दोलनका नेतृत्व करें।

एक भाग्य-निर्णायक निश्चय।

इस समय गंभीर धार्मिक अध्ययन आरम्भ किया। टाल्सटायकृत *द किंगडम आफ गाड इज़ विदिन यू* (ईश्वरका राज्य तुम्हारे अन्दर ही है)का उनके मनपर बहुत प्रभाव पड़ा। इंग्लैंडके ईसाई मित्रोंसे पत्र-व्यवहार। भारतमें भी रायचन्दभाई-जैसे धर्म-चिन्तकोंके साथ, जिनके पाससे हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमें अपने प्रश्नोंके उत्तर पाकर उनकी शंकाओंका निवारण हुआ, लिखा-पढ़ी।

मई २२ (?) : प्रमुख भारतीय व्यापारियोंकी सभामें, रंगभेदके कानूनका विरोध करनेके लिए, कमेटीकी स्थापना।

जून २७ : नेटाल विधानसभाके अध्यक्ष, प्रधानमन्त्री राबिन्सन और महा-न्यायवादी एस्कम्बके नाम तार कि, जबतक भारतीयोंका प्रार्थनापत्र पेश न हो जाये, मताधिकार कानून संशोधन विधेयक (फ्रेंचाइज़ ला अमेंड-मेंट बिल)पर विचार स्थगित रखा जाये। विधेयकपर विचार दो दिनोंके लिए स्थगित।

जून २८ : ५०० भारतीयोंके हस्ताक्षरोंसे विधानसभाको प्रार्थनापत्र दिया, जिसमें विधेयकका विरोध और एक जाँच-आयोगकी नियुक्तिकी माँग की गई थी।

जून २९ : प्रधानमन्त्रीके पास शिष्टमंडल ले गये और उनसे अनुरोध किया कि भारतीयोंके पक्षको अधिक विस्तारके साथ पेश करनेके लिए एक सप्ताहका समय दिया जाये।

जुलाई १ : फील्ड स्ट्रीटमें भारतीयोंकी सभामें शामिल हुए और भाषण दिया।

जुलाई ३ : नेटालके गवर्नरके पास अपने नेतृत्वमें एक शिष्टमंडल ले गये और उनसे अनुरोध किया कि मताधिकार विधेयकको, जिसका विधानसभामें तीसरा वाचन हो चुका था, स्वीकृति न दी जाये।

जुलाई ५ : दादाभाई नौरोजीके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। उनसे अनुरोध किया कि दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी ओरसे इंग्लैंडमें मदद करें।

जुलाई ६ : भारतीयोंने विधानपरिषदको दूसरा प्रार्थनापत्र दिया और अनुरोध किया कि विधेयकको अस्वीकार कर दिया जाये।

जुलाई ७ : मताधिकार विधेयकका विधानपरिषदमें तीसरा वाचन।

जुलाई १० : गवर्नरको प्रार्थनापत्र दिया कि विधेयकको सम्राज्ञीकी अनुमतिके लिए तबतक ब्रिटिश सरकारके पास न भेजा जाये जबतक कि सम्राज्ञीके नाम भारतीयोंका प्रार्थनापत्र प्राप्त न हो जाये।

जुलाई १७ : उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपनके नाम १०,००० भारतीयोंके हस्ताक्षरोंसे एक प्रार्थनापत्र नेटाल-गवर्नरके सुपुर्द किया।

सार्वजनिक काम करनेके लिए नेटालमें रह गये।

अगस्त २२ : रंगभेदके कानूनोंके खिलाफ लगातार आन्दोलन करनेके लिए नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापना की। उसके प्रथम मन्त्री नियुक्त। उपनिवेशमें जन्मे भारतीयोंका संघ भी बनाया।

सितम्बर ३ : नेटाल वकील संघ (नेटाल ला सोसाइटी)के विरोधके बावजूद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नेटालकी अदालतोंमें वकालत करनेकी इजाजत मिली। अदालतमें पगड़ी उतारनेको कहा गया। "ज्यादा बड़ी लड़ाइयाँ लड़नेके लिए" शक्ति बचानेके इरादेसे अदालतकी प्रथा मानना स्वीकार कर लिया।

सितम्बर १९ : गोपी महाराजके मुकदमेकी पैरवी की और उसमें जीत हुई। शायद यह दक्षिण आफ्रिकामें उनका पहला मुकदमा था।... परन्तु कानून-पेशेमें तरक्कीको सार्वजनिक कार्यके सामने गौण रखा।

नवम्बर २६ : एसोटेरिक ईसाई विचारधाराकी पुस्तकोंके एजेंट बने, जिससे व्यक्त हुआ कि उस विचारधारामें उनकी दिलचस्पी बढ़ रही है।

दिसम्बर (१९ ता० के पूर्व) : नेटालके विधानमंडल-सदस्योंके नाम *खुली चिट्ठी* भेजी, जो उद्धरणों और प्रमाणोंसे पूर्ण थी।

दिसम्बर १९ : नेटालके यूरोपीयोंके नाम अपील निकाली कि वे भारतीय प्रवासियोंके प्रश्नोंपर सहानुभूतिके साथ विचार करें।

१८९५

अप्रैल : डर्बनके पास ट्रैपिस्ट मठ देखने गये। वहाँ आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे अन्नाहारका प्रयोग होते देखकर बहुत प्रभावित हुए।

अप्रैल ६ : भारतीय पंच-फैसलेके मामलेमें असन्तोषजनक निर्णयके विरुद्ध ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी कमेटीके द्वारा उच्चायुक्तको प्रार्थनापत्र भेजा।

मई (५ ता० के पूर्व) : भारतीय प्रवासी विधेयकमें गिरमिटको नया करनेकी धाराओंके विरुद्ध नेटाल विधानसभासे अपील।

मई (*१४* ता० के बाद) : पंच-फैसलेमें भारतीयोंके व्यापारिक अधिकारोंको अदालतोंकी दयापर छोड़ दिया गया था, उस अन्यायके विरुद्ध लार्ड रिपनसे फिर अपील।

भारतके वाइसराय लार्ड एलगिनसे भारतीयोंके खिलाफ भेदभावके कानूनों और उनपर लादे गये बाधा-निषेधोंके विषयमें हस्तक्षेप करनेकी माँग।

जून १७ : गिरमिटिया भारतीय मजदूर बालसुन्दरम्के मामलेकी पैरवी की और उसे मुक्त कराया। इस मामलेसे गिरमिटिया मजदूरोंके साथ सम्पर्क स्थापित हुआ।

जून २६ : प्रवासी विधेयक (इमिग्रेशन बिल)की उन धाराओंके विरुद्ध विधान-परिषदको प्रार्थनापत्र, जिनका असर गिरमिटिया मजदूरोंपर पड़ता था।

अगस्त ११ : चेम्बरलेनको लम्बा प्रार्थनापत्र, जिसमें गिरमिट-मुक्त भारतीयोंसे ३ पौंड शुल्क वसूल करनेकी व्यवस्थापर आपत्ति की गई थी। लार्ड एलगिनसे हस्तक्षेप करने या और अधिक मजदूरोंको भेजना बन्द करनेका अनुरोध।

अगस्त २९ : लंदनमें, दादाभाई नौरोजी दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके दुखड़ोंके सम्बन्धमें चेम्बरलेनके पास एक शिष्टमंडल ले गये।

सितम्बर १२ : चेम्बरलेनने नेटाल-सरकारको सूचित किया कि सम्राज्ञी-सरकार मताधिकार विधेयकको ज्योंका त्यों स्वीकार नहीं करती।

सितम्बर २५, ३० : गांधीजीने अखबारोंको लिखकर इस आरोपको नामंजूर किया कि कांग्रेस एक गुप्त संस्था है, या वे स्वयं उसके वेतनभोगी कर्मचारी हैं। परन्तु यह जिम्मेदारी स्वीकार की कि उसका विधान मैंने ही तैयार किया है।

अक्टूबर ११ : नागरिकोंको अनिवार्य सैनिक सेवासे मुक्त रखनेवाली सैनिक भरती संधिमें "ब्रिटिश नागरिकों"का जो यह अर्थ लगाया गया था कि ये शब्द केवल गोरे लोगोंतक ही सीमित हैं, उसके विरोधमें ब्रिटिश भारतीय रक्षा समिति और जोहानिसबर्गके भारतीयों द्वारा चेम्बरलेनको तार।

नवम्बर १८ : नेटाल सरकारने उपनिवेश-मन्त्रीको मताधिकार विधेयकका नया मसविदा भेजा। यूरोपीयोंने लेडीस्मिथ, सैलिसबरी और वेलेयर आदि स्थानोंमें एशियाई कानूनोंके समर्थनमें सभाएँ कीं।

नवम्बर २६ : गांधीजीने सैनिक भरती संधिमें भारतीयोंके प्रति भेदभावके विरुद्ध चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र भेजा।

दिसम्बर १६ : *द इंडियन फ्रैंचाइज़ : ऐन ऑपील टु एवरी ब्रिटन इन साउथ आफ्रिका* (भारतीयोंका मताधिकार : दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक अंग्रेजसे अपील) नामक पुस्तिका प्रकाशित की।

इस वर्षमें, टाल्सटायकी *द गास्पेल्स इन ब्रीफ़ : व्हाट टु डू* (धर्मग्रंथोंका सार : क्या करें?) तथा अन्य पुस्तकोंका उनपर गहरा असर पड़ा और उनसे "प्रेमकी अपार क्षमता"की कल्पना जागी।

१८९६

जनवरी २३ : गांधीजीने नेटालकी अदालतमें गुजराती दुभापियेके कामके लिए आवेदन किया।

जनवरी २७ : लंदनके टाइम्सने गांधीजीका उल्लेख इन शब्दोंमें किया : "एक ऐसा व्यक्ति, जो अपने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय बन्धु-प्रजाजनोंके हितके प्रयत्नोंके कारण आदरका अधिकारी है।"

फरवरी २६ : बस्ती बसानेके नियमोंके विरुद्ध ज़ूलूलैंडके गवर्नरको प्रार्थनापत्र भेजा।

मार्च ३ : नेटालके सरकारी *गज़ट* में मताधिकार विधेयकका नया मसविदा, जो विधानसभामें पेश किया गया था, प्रकाशित।

मार्च ५ : बस्ती बसानेके नियमोंके विरुद्ध प्रार्थनापत्र सरकार द्वारा नामंजूर कर दिया गया।

मार्च ११ : गांधीजीने बस्ती बसानेके नियमोंके विरुद्ध चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र भेजा।
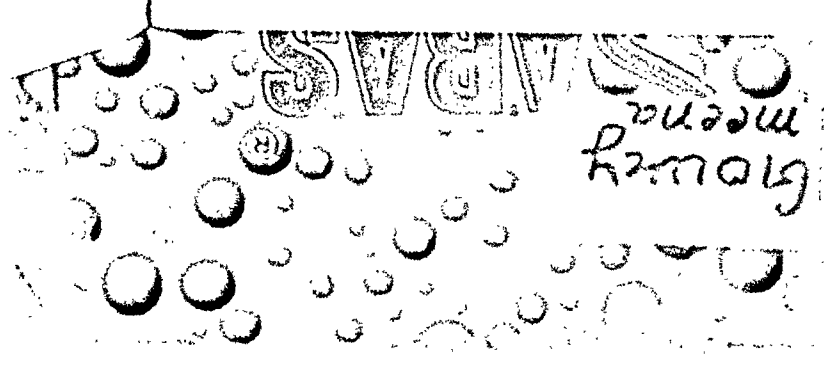
अप्रैल १७ : अपने-अपने देशमें मताधिकारका उपभोग न करनेवाले परदेशियोंको मताधिकारसे वंचित करनेवाला विधेयक संशोधित रूपमें नेटालकी संसदमें पेश। नेटालके भारतीयों द्वारा उक्त विधेयकके विरुद्ध विधानसभा, पीटर-मैरित्सबर्गको प्रार्थनापत्र।

मई ६ : मताधिकार विधेयकका दूसरा वाचन।

मई ७ : गांधीजीने चेम्बरलेन और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिको तार दिया कि जबतक भारतीयोंका प्रार्थनापत्र पेश न कर दिया जाये तबतक मताधिकार विधेयक या उसमें किये गये संशोधन स्वीकार न हों।

मई १३ : विधानसभामें मताधिकारका तीसरा वाचन समाप्त और स्वीकार।

मई १८ : १८८५ के कानून ३ की व्याख्याके बारेमें भारतीय समाजने परीक्षणात्मक मुकदमा लड़नेका विचार किया था। गांधीजी इस विषयमें सम्राज्ञीके प्रिटोरिया-स्थित एजेंटके पास शिष्टमंडल ले गये और उन्होंने सरकारसे अनुरोध किया कि मुकदमेका खर्च वह बरदाश्त करे।

मई २६ : डर्बनके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंने गांधीजीको, जो भारत जानेवाले थे, अधिकार दिया कि वे "भारतके सत्ताधीशों, लोक-नेताओं और लोक-संस्थाओंको दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके दुखड़ोंका परिचय दें।"

जून ४ : डर्बनके भारतीयों द्वारा कांग्रेस सभाभवनमें आयोजित विदाई-सभामें गांधीजीको मानपत्र अर्पित।

जून ५ : गांधीजी भारतके लिए रवाना।

दक्षिण आफ्रिकाका वैधानिक तन्त्र

(१८९०–१९१४)

केप उपनिवेश

सन् १८५३ के संविधान अध्यादेश (कांस्टिटयूशन आर्डिनेंस) के अनुसार केप उपनिवेशके शासनतन्त्रमें एक गवर्नरकी व्यवस्था थी। गवर्नरको कार्यपालक अधिकार तो थे, किन्तु वह विधानमंडलके प्रति उत्तरदायी नहीं था। विधानमंडलके दो सदन थे — विधानसभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) और विधानपरिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल)। १८७२ में उपनिवेशको सात विभागोंमें बाँटकर और प्रत्येक विभागके प्रतिनिधियोंको शामिल करके विधान-मंडलका पुनर्गठन कर दिया गया। उसका स्वरूप थोड़ा-बहुत कैनेडा तथा आस्ट्रेलियाके औपनिवेशिक विधानमंडलोंका जैसा था। परन्तु उसे स्थानिक आवश्यकताओंके अनुकूल ढाल लिया गया था।

विधानपरिपद-सम्बन्धी मताधिकार बहुत कम लोगोंको था। उसके लिए बहुत ज्यादा साम्पत्तिक योग्यता निश्चित की गई थी। १८९२ के मताधिकार और मत-पत्र अधिनियम (फ्रेंचाइज़ एंड बैलट एक्ट)में व्यवस्था थी कि मतदाता बननेके लिए या तो ५० पौंड वार्षिककी आय होनी चाहिए या ७५ पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति। लेखन-योग्यताकी एक कसौटी भी निर्धारित कर दी गई थी। यद्यपि ये नियम सब लोगोंपर समान रूपसे लागू थे, फिर भी व्यवहारमें इनसे गैर-गोरे मतदाताओंकी संख्या बहुत सीमित हो गई थी। गोरे मतदाताओंका अनुपात उनसे बहुत अधिक था।

संविधान उदार, औपनिवेशक स्वरूपका था, जिसमें अपनी दृष्टिके अनुसार स्वदेश-नीति निर्धारित करनेका अधिकार शामिल था। परन्तु उसे प्रत्यक्ष कार्यान्वित करनेमें मूल देश — ब्रिटेन — का अधिकार सर्वोपरि रखा गया था। यह संविधान वास्तविक रूपमें १९१० तक, जब कि केप उपनिवेश दक्षिण आफ्रिकी संघका प्रदेश बना, जारी रहा।

सन् १८९४ के ग्लेन-ग्रे अधिनियमसे ग्राम और जिला परिषदोंके द्वारा देशी लोगोंको आंशिक स्वायत्त शासन प्राप्त हुआ। ये परिषदें बृहत् परिषद

(जनरल कौंसिल) के दायरेके अन्दर थीं। प्रत्येक परिषदके ६ सदस्य होते थे — ४ निर्वाचित और २ नामजद। अध्यक्ष कोई यूरोपीय मजिस्ट्रेट होता था। वृहत् परिषदमें प्रत्येक जिला परिषदके तीन आफ्रिकी प्रतिनिधि होते थे — दो निर्वाचित और एक नामजद। वृहत् परिषदकी आयका साधन बेगारसे मुक्ति पानेका कर और झोंपड़ी-कर था। उसे स्वायत्त शासनका बहुत अधिकार होता था। जिला परिषदोंको कर लगानेका कोई मौलिक अधिकार नहीं था। १८९९ से १९०३ तकके कालमें ग्लेन-ग्रे अधिनियमका विस्तार उपनिवेशके केंटनी तथा अन्य जिलोंमें हो गया था।

सन् १९०९ के जिस दक्षिण आफ्रिका अधिनियमके अनुसार दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यका निर्माण हुआ, उसके द्वारा केप उपनिवेशके "रंग-निरपेक्ष" मताधिकारको यह नियम बनाकर सुरक्षित कर दिया गया था कि केवल रंग या जातिके आधारपर केप प्रदेशके लोगोंके मताधिकारको घटानेकी वृत्तिवाला कोई भी कानून तभी बनाया जा सकेगा जब कि संयुक्त राज्यकी संसदके दोनों सदनोंकी संयुक्त बैठकमें वह दो-तिहाई बहुमतसे स्वीकार किया जाये।

केपटाउन, जो १९०१ तक ब्रिटिश उच्चायुक्त (ब्रिटिश हाई कमिश्नर) का सदर मुकाम था, अब संयुक्त राज्यकी संसदका केन्द्र-स्थान बन गया। दक्षिण आफ्रिकाकी सारी राजनीति तबतक ब्रिटिश उच्चायुक्तके आस-पास ही केन्द्रित थी जबतक कि, १९१० में, प्रभावकारी सत्ता मन्त्रिमंडलके हाथोंमें नहीं आई।

नेटाल

नेटालने १८९३ में उत्तरदायी शासनका अधिकार प्राप्त किया। विधान-परिषद द्वारा स्वीकृत और सम्राज्ञी-सरकार द्वारा अनुमोदित विधानमें एक द्विसदनीय विधानमंडलकी व्यवस्था थी। ये दो सदन थे: १० वर्षके लिए नामजद ११ सदस्योंकी एक विधानपरिषद, और ४ वर्षके लिए निर्वाचित ३७ सदस्योंकी एक विधानसभा। कार्यपालिकाका संगठन गवर्नर तथा एक मन्त्रि-परिषदको मिलाकर किया गया था। जहाँतक मताधिकारका सम्बन्ध था, १८९६ में मताधिकार अपहरण अधिनियम (डिसफ्रैंचाइज़मेंट ऐक्ट) तथा प्रवासी अधिनियम (इमिग्रेशन ऐक्ट) स्वीकार करानेकी जिम्मेदारी नेटालके प्रथम
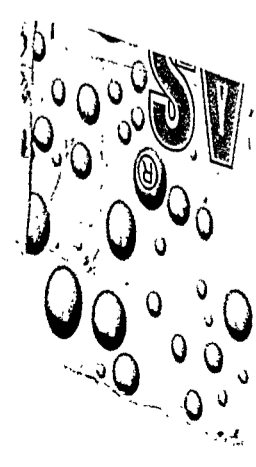
प्रधानमन्त्री सर जान राबिन्सनकी थी। पहले कानूनसे एशियाइयोंका मताधिकार छिन गया और दूसरेके द्वारा उपनिवेशमें स्वतन्त्र भारतीयोंका प्रवेश लगभग वर्जित कर दिया गया। १९०६ में नेटाल-सरकारने अनेक देशी लोगोंको प्राण-दण्ड देनेका एक आदेश निकाला, जिसे सम्राट्-सरकारने रोक दिया। इससे एक वैधानिक संकट उत्पन्न हो गया और नेटालके मन्त्रिमंडलने विरोधमें त्यागपत्र दे दिया। परन्तु, बादमें, उपनिवेश-मन्त्रीके यह आश्वासन देने पर कि सम्राट्-सरकारका उत्तरदायी औपनिवेशिक शासनमें हस्तक्षेप करनेका कोई इरादा नहीं है, मन्त्रिमंडलने फिरसे कार्य सँभाल लिया।

आरेंज रिवर उपनिवेश

आरेंज रिवर उपनिवेश सन् १८९० तक अपना शासन *रस्टेनबर्ग ग्रॅंडवेट* या १८५८-६० के विधानके आधारपर चलाता रहा। इस विधानमें एक निर्वाचित अध्यक्ष और एक कार्यपालिका परिषद (एक्ज़ेक्यूटिव कौंसिल) की व्यवस्था थी। परिषदके कुछ सदस्योंकी नियुक्ति अध्यक्ष और कुछकी फोक्सराट (लोकसभा) द्वारा की जाती थी। स्वयं लोकसभा वयस्क मताधिकारके आधारपर निर्वाचित की जाती थी। प्रधान सेनापति परिषदका एक विशिष्ट सदस्य होता था। जिस विधानके द्वारा लोक-प्रभुत्वकी स्थापना हुई उसमें घोषणा की गई थी कि उपनिवेश गोरे और गैर-गोरे लोगोंके बीच समानताका इच्छुक नहीं है। यह समानता न तो गिरजेमें इष्ट है, न राज्यमें। ब्लूमफांटीनकी सन्धिने सन् १८९७ और उसके बादके दो वर्षोंमें आरेंज रिवर उपनिवेश तथा ट्रान्सवालके बीच अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया। ब्लूमफांटीन और प्रिटोरियामें दोनों देशोंके प्रतिनिधियोंकी संयुक्त परिषदकी बैठकें हुईं। उनमें संघ-निर्माणके आदर्शको दृष्टिमें रखते हुए शिक्षा, न्याय, देशी लोगोंके शासन-प्रबन्ध आदि जैसे विषयोंमें अधिक एकरूपता लानेकी व्यवस्था की गई।

बोअर-युद्ध समाप्त होनेपर जब उपनिवेश ब्रिटिश सत्ताके अधीन हो गया, तब सैनिक-सरकारने शासन अपने हाथमें लिया। परन्तु वेरीनिजिंग (फ्रेनेखन)की सन्धिसे, जिसके द्वारा १९०२ में लेफ्टिनेंट गवर्नर और दूसरे मुख्य अधिकारियोंकी एक कार्यपालिकाकी स्थापना हुई, इस सैनिक-शासनका अन्त हो गया। १९०३ में एक विधानपरिषदकी स्थापना हुई। उसमें स्थानिक हितोंके प्रतिनिधियोंके रूपमें एक अल्प संख्यामें गैर-सरकारी सदस्योंको नामजद करनेकी
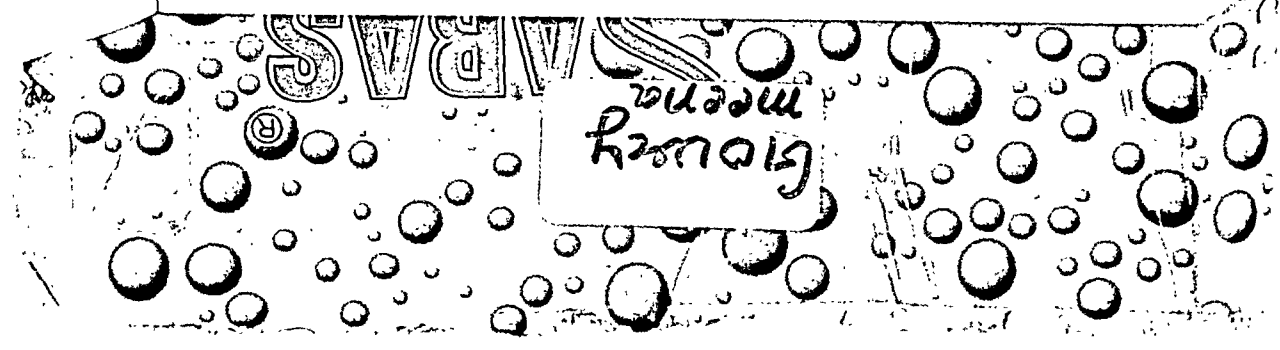
व्यवस्था थी। बादमें एक आन्तर-औपनिवेशिक परिषद (इंटर-कलोनियल कौंसिल) का संगठन किया गया। उसके १४ सरकारी और ४ गैर-सरकारी नामजद सदस्य थे। उसका काम दोनों उपनिवेशोंके सामान्य हित-सम्बन्धी मामलोंका प्रबन्ध करना था। स्वशासनका दर्जा उपनिवेशको १९०७ में मिला। उसके विधानमें गोरे पुरुषोंको मताधिकार और, जैसा कि पुराने गणराज्यमें था, सख्त रंग-भेदकी व्यवस्था की गई। यह नियम भी बनाया गया कि विधानमंडलका दूसरा सदन — विधानपरिषद — नामजद स्वरूपका हो और उसके सदस्योंकी नियुक्ति पहले तो गवर्नर और बादमें सपरिषद गवर्नर करे।

ट्रान्सवाल

ट्रान्सवालको शाही उपनिवेशके रूपमें १८७९ में जो शासन-विधान प्राप्त हुआ था — अर्थात् एक नामजद कार्यपालिका परिषद और एक विधानसभाका — उसका प्रिटोरिया-समझौते द्वारा, जिसमें ब्रिटिश प्रभुत्वके अधीन पूर्ण स्वशासनका आश्वासन दिया गया था, संशोधन कर दिया गया। परन्तु लंदन-समझौतेमें समझौतेकी प्रस्तावना निकाल दी गई, और इस तरह यह संशोधन व्यर्थ हो गया। १८९७ में ट्रान्सवालने ऑरेंज रिवर उपनिवेशके साथ गठबन्धन करके सामान्य हितके विषयोंमें सलाह देनेके लिए एक स्थायी परिषदकी स्थापना की।

सन् १९०० में ब्रिटिशोंके ट्रान्सवालपर अधिकार करनेपर मिलनरको वहाँका प्रशासक (एडमिनिस्ट्रेटर) नियुक्त किया गया। पुरानी कानून-पुस्तकमें व्यापक परिवर्तन कर दिये गये और सालोमन आयोगकी सिफारिशों पर राजकीय घोषणा द्वारा केप उपनिवेशके जैसे बहुत-से कानून बना दिये गये। १९०१ में जोहानिसबर्गको और अगले वर्ष प्रिटोरियाको म्यूनिसिपल शासनका अधिकार प्रदान किया गया। वेरीनिजिंगकी सन्धिमें शाही उपनिवेशका दर्जा देनेकी व्यवस्था थी, और यह भी निश्चय किया गया था कि धीरे-धीरे यह दर्जा उत्तरदायी शासनतक बढ़ाया जायेगा। १९०२ में ट्रान्सवालको कार्यपालिका परिषद और विधानसभाका अधिकार प्राप्त हुआ। दोनों नामजद की जाती थीं और लेफ्टिनेंट गवर्नरके साथ-साथ उनके सदस्य विभिन्न विभागोंके कार्यपालक मुख्याधिकारी होते थे। १९०३ में विधान-परिषदकी स्थापना हुई और उसके कुछ बाद, उसी वर्षमें, आन्तर-औपनि-

वेशिक परिषद भी वन गई। १९०५ में लिटल्टन संविधान लागू किया गया। उसके द्वारा एक निर्वाचित विधानसभाकी व्यवस्था हुई, परन्तु अधिकार गवर्नरके प्रति उत्तरदायी सरकारी अफसरोंके हाथमें रहे। सभा ४४ सदस्योंकी थी। ताज द्वारा नियुक्त अधिकारियोंको छोड़कर शेष सव सदस्योंके निर्वाचनकी व्यवस्था थी।
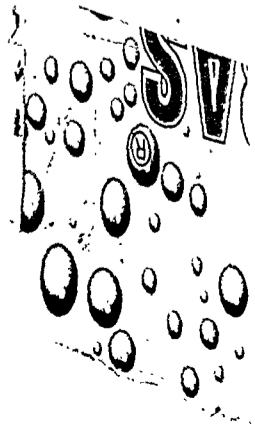
१९०६ में शाही फरमानके द्वारा लिटल्टन संविधान रद कर दिया गया और उपनिवेशको स्वशासनका अधिकार प्राप्त हुआ। इसपर ट्रान्सवालने गोरे लोगोंके लिए पुराने गणराज्यके नमूनेका वयस्क पुरुष-मताधिकार प्रचलित किया। परन्तु गैर-गोरे लोगोंको कानूनी अधिकार प्रदान किये गये। देशी लोगोंको मताधिकार देनेका प्रश्न तबतकके लिए स्थगित रखा गया, जबतक कि प्रातिनिधिक संस्थाओंकी स्थापना और गोरे लोगोंके बहुमतका शासन सुनिश्चित न हो जाये। द्वितीय सदन या विधानपरिषदको आरेंज रिवर उपनिवेशके नमूनेकी नामजद संस्था वना दिया गया। १९०८ के आम चुनावोंके वाद सरकारने वहुत-से प्रतिवन्धात्मक कानून बनाये।

संयुक्त राज्य

दक्षिण आफ्रिकाके चारों राज्योंका १९१० में एक संयुक्त राज्य वना दिया गया। संयुक्त राज्यके शासनतन्त्रमें सपरिषद गवर्नर-जनरल, और उसकी मददके लिए अनिश्चित संख्यामें कार्यपालिकाके सदस्य तथा राज्य विभागोंके मन्त्री थे। मन्त्रियोंकी संख्या १० से अधिक नहीं हो सकती थी।

संयुक्त राज्यकी प्रभुसत्ता उसकी संसदके हाथोंमें थी, जिसका संगठन सम्राट् और संसदके दोनों सदनों—सीनेट और लोकसभाको मिलाकर हुआ था। दोनों सदनोंको वित्तीय विषयोंको छोड़कर शेष सव विषयोंमें कानून वनानेके वरावर अधिकार थे। सव विधेयकोंका दोनों सदनोंमें स्वीकृत होना आवश्यक था। अगर कोई गतिरोध उत्पन्न हो जाये, तो वह दोनों सदनोंकी संयुक्त वैठक द्वारा हल किया जाता था। संसदको अपना ही विधान (दक्षिण आफ्रिका अधिनियम) वदल देनेका अधिकार था। केवल तीन उपधाराएँ ऐसी थीं जिनको वदलनेके लिए दोनों सदनोंकी संयुक्त वैठकमें दो-तिहाई वहुमतकी आवश्यकता थी। ये उपधाराएँ (१) अंग्रेजी और डचको राज्य-भाषाएँ मान्य करने, (२) मताधिकारमें कोई ऐसे परिवर्तन करने, जिनसे कि रंग या जातिके आधारपर केप-निवासियोंके

मत देनेके अधिकार घटते हों, और (३) संसदको उपर्युक्त दो तथा स्वयं इस उपधाराको छोड़कर शेष विधानमें साधारण द्विसदनीय प्रक्रिया द्वारा संशोधन करनेका अधिकार देनेसे सम्बन्ध रखती थीं।

लोकसभा (हाउस आफ असेम्बली) का चुनाव प्रत्यक्ष सार्वजनिक मत द्वारा ५ वर्षके लिए होता था। उसमें १५९ स्थान थे और वे सब यूरोपीयोंके लिए निश्चित थे। इनमें से १५० का चुनाव चारों प्रान्तोंके मतदाता, ६ का दक्षिण-पश्चिमी आफ्रिकाके यूरोपीय मतदाता और ३ का केपके आफ्रिकी मतदाता करते थे। मतदाता (१) २१ वर्षकी आयुके ऊपरके यूरोपीय होते थे। प्रवासी ६ वर्षतक और ब्रिटिश प्रजाजन ५ वर्षतक संघमें रहनेके बाद नागरिकता प्राप्त करनेके लिए अर्जी दे सकते थे। यह विषय गृहमन्त्रीके विवेकाधिकारमें था। (२) केप उपनिवेश और नेटालके साक्षर रंगीन पुरुषोंको, जिनकी या तो ७५ पौंड वार्षिक आय हो या जिनके पास ५० पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति हो, मत देनेका अधिकार था। और केवल केपमें साक्षर आफ्रिकी पुरुषोंको, जो या तो ७५ पौंड कमाते हों या जिनके पास ५० पौंडकी अचल सम्पत्ति हो, पृथक् मतदाता-सूचीमें नाम लिखानेका अधिकार था। वे तीन सदस्योंका चुनाव कर सकते थे। निर्वाचन-क्षेत्रोंमें मतदाताओंकी संख्या बराबर थी। किन्तु घट-बढ़ बराबर करनेके लिए निश्चित संख्यामें १५ प्रतिशत कम-ज्यादाकी गुंजाइश रखी गई थी।

सीनेटकी अवधि १० वर्ष और सदस्य-संख्या ४८ थी। सब सदस्य यूरोपीय जमीन-जायदादके मालिक थे। इनमें से आठ-आठ का चुनाव प्रत्येक प्रान्तके संसद-सदस्य और प्रान्तीय परिषद तथा दोका दक्षिण-पश्चिमी आफ्रिकाके संसद-सदस्य और विधानसभा करती थी; १० की नियुक्ति सरकार करती और ४ का चुनाव ५ वर्षके लिए मुखियों, देशी परिषदों और देशी सलाहकार-मण्डलोंके द्वारा अप्रत्यक्ष पद्धतिसे संघके आफ्रिकी लोग करते थे।

प्रान्तीय सरकारें

प्रान्तीय सरकारोंमें (१) एक प्रशासक (एडमिनिस्ट्रेटर) होता था, जिसकी नियुक्ति ५ वर्षके लिए संयुक्त राज्य-सरकार करती थी। वह केवल सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा संसदकी जानकारीसे पदच्युत किया जा सकता था। (२) ४ सदस्योंकी एक कार्यपालिका परिषद होती थी। इन सदस्योंका
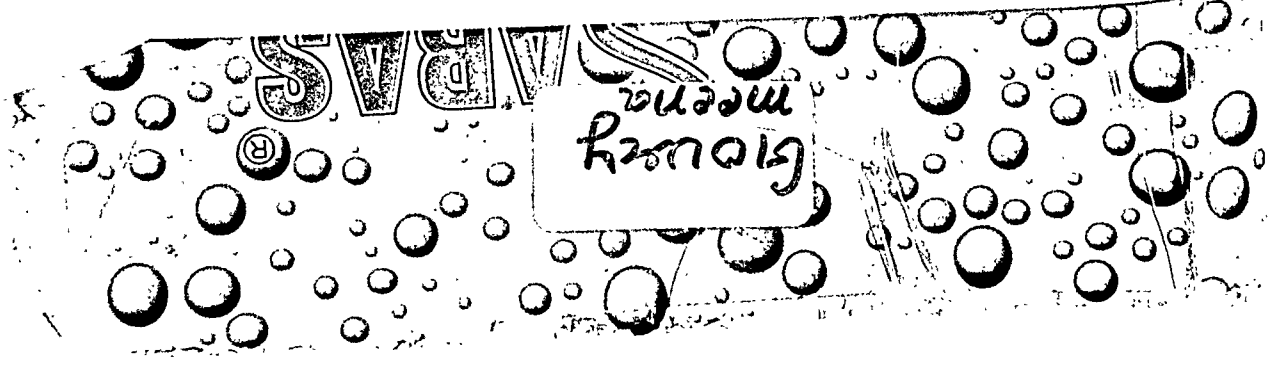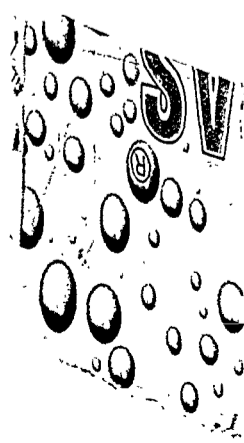
चुनाव सानुपातिक मतदान द्वारा प्रान्तीय परिषदोंके सदस्य तीन वर्षके लिए करते थे। और (३) प्रान्तीय परिषदें होती थीं, जो तीन वर्षके अन्तमें भंग हो जाती थीं। उनका चुनाव उसी मताधिकार द्वारा होता था, जो संघीय लोकसभाके लिए निश्चित था।

प्रशासकका क्षेत्र दो प्रकारका था। कार्यपालिका समितियोंके अध्यक्षकी हैसियतसे वह उनकी कारंवाइयोंमें शामिल होता था। वह वित्तीय विनियोगकी सिफारिशें तो करता था, किन्तु उनपर मत नहीं देता था। संयुक्त राज्य सरकारके प्रतिनिधिकी हैसियतसे वह प्रान्तीय परिषदोंके अधिकार-क्षेत्रसे बाहरकी बातोंका प्रबन्ध करता था।

कार्यपालिका समितियोंको अवशिष्ट अधिकार प्राप्त थे। प्रान्तीय परिषदमें विधानमंडलोंके सब गुण मौजूद थे। उन्हें निश्चित विषयोंपर अध्यादेश (आर्डिनेंस) निकालनेका भी अधिकार था। शर्त केवल यह थी कि वे संसदके अधिनियमोंके विरुद्ध न हों और सपरिषद गवर्नर-जनरल उन्हें मंजूरी दे दे। उनके अधिकाराधीन विषय थे—शिक्षा (उच्च शिक्षाको छोड़कर), अस्पताल, म्यूनिसिपल संस्थाएँ और रेलवेको छोड़कर शेष सब स्थानिक निर्माण-कार्य। संसदीय और म्यूनिसिपल संस्थाओंका यह अनोखा मेल संघीय भावनाके प्रति एक रियायत-जैसा था। इससे केन्द्रीय सरकारके अधिकार क्षीण नहीं होते थे। संयुक्त राज्यकी संसदको उनके कार्योंको रद करने या बदलनेका अधिकार प्राप्त था।

दक्षिण आफ्रिकाके सर्वोच्च न्यायालयका पुनर्विचार-विभाग (अपीलेट डिवीज़न) ब्लूमफांटीनमें था और प्रान्तोंमें उसकी शाखाएँ थीं। उसे प्रान्तीय अध्यादेशोंकी वैधताका फैसला करनेका अधिकार था।

प्रान्तकी आयका ४० प्रतिशततक प्रान्तीय करोंसे वसूल किया जा सकता था। शेषकी पूर्ति केन्द्रीय आयसे सहायताके रूपमें होती थी। प्रान्तोंके बीच वित्तीय सम्बन्धोंका नियमन १९१३ के वित्तीय सम्बन्ध अधिनियम (फाइनैंशियल रिलेशन्स ऐक्ट) द्वारा होता था।

दक्षिण आफ्रिकाका संक्षिप्त इतिवृत्त

इस इतिवृत्तका उद्देश्य घटनाओंका पूरा विवरण देना नहीं है। इसमें केवल उन घटनाओंका उल्लेख किया गया है, जिनसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और, थोड़ी-बहुत मात्रामें, उन शक्तियोंको समझनेमें मदद मिल सकती है जो, गांधीजीकी प्रवृत्तियोंके समय, दक्षिण आफ्रिकामें काम कर रही थीं।

१७९५ ब्रिटिश फौजोंने डचोंके साथ सन्धि करके केपपर कब्जा किया। भारतके मार्गपर केप एक सामरिक महत्त्वका स्थान था। ब्रिटिशोंकी कार्रवाईका यही मुख्य कारण था। इस समय वहाँ गोरे वासियोंकी संख्या १६,००० थी।

१८०२ ऐमियन्सकी सन्धिके अनुसार केप उपनिवेश डच गणराज्य सरकारको वापस दे दिया गया।

१८०६ ब्रिटेनने केपको फिरसे जीता।

१८१५ वियनाकी कांग्रेसने ब्रिटेनको केप उपनिवेश समर्पित कर देनेकी पुष्टि की।

१८२० ब्रिटिश प्रवासियोंका पहला जत्था केप उपनिवेशके तटपर उतरा।

१८२३ केपके मामलोंकी जाँच करनेके लिए आयोगकी नियुक्ति।

१८३४ केप उपनिवेशमें विधानपरिषदकी स्थापना और जनमत द्वारा निर्वाचित म्यूनिसिपल कमेटियोंका आरम्भ। गुलामी प्रथाका अन्त।

१८३६ महानिष्क्रमणका आरम्भ।

१८३८ नेटालमें गणराज्यकी स्थापना।

१८४१ केप उपनिवेशके नागरिकोंने विधानसभाकी स्थापनाके लिए प्रार्थना की।

१८४३ ब्रिटेन द्वारा नेटाल हस्तगत और केप कालोनीमें सम्मिलित।

१८४५ नेटालमें, जो अबतक केप उपनिवेशके गवर्नर तथा विधानपरिषदके अधीन था, न्यायतन्त्रका सूत्रपात।

१८४६ केप उपनिवेशके गवर्नरको उच्चायुक्त नियुक्त किया गया।
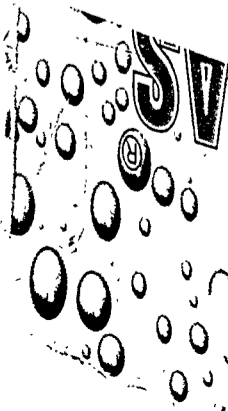
१८४७ नेटालके शहरी क्षेत्रोंमें चुने हुए म्यूनिसिपल बोर्डोंकी स्थापना।

१८४८ नेटालको नामजद विधानपरिषदका अधिकार दिया गया। फ्री स्टेटने आरेंज रिवर उपनिवेशकी प्रभुसत्ता घोषित कर दी।

१८५२ सैंड रिवर सम्मेलनने ट्रान्सवालमें बोअरोंकी स्वतन्त्रता मान्य कर ली।

१८५३ केप उपनिवेश संविधान अध्यादेश (कांस्टिट्यूशन आर्डिनेंस) जारी किया गया।

१८५४ ब्लूमफांटीन सम्मेलनके फलस्वरूप आरेंज फ्री स्टेट और ट्रान्सवाल स्वतन्त्र हो गये। डर्बन और पीटरमैरित्सवर्गमें म्यूनिसिपैलिटियोंकी स्थापना।

१८५५ सम्राज्ञीसे कैदी-मजदूरोंको लाने देनेके लिए नेटालकी असफल प्रार्थना।

१८५६ नेटालको शाही उपनिवेशका दर्जा और प्रातिनिधिक शासन तथा संसदीय मताधिकार प्रदान किया गया। निर्वाचित सदस्योंके बहुमतकी विधानपरिषद भी स्थापित की गई। किन्तु मताधिकारके लिए साम्पत्तिक योग्यता इतनी अधिक रखी गई थी कि देशी लोग मत देनेसे वंचित रहे।

१८५७ नेटालके सर्वोच्च न्यायालयका पुनर्गठन और आरोप योग्य मामलोंमें जूरीके द्वारा मुकदमेकी व्यवस्था। पीटरमैरित्सवर्गमें विधानपरिषदकी पहली बैठक।

१८५८ अमाटोंगा कबीलेके लोगोंको मजदूर बनानेके नेटालके प्रयत्न असफल। जावासे चीनी और मलायी मजदूर लाये गये। भारत-सरकारसे मजदूर लाने देनेकी प्रार्थना सफल।

१८५९ नेटालकी विधानपरिषदने भारतीय मजदूरोंको लानेके लिए कानून मंजूर किया।

१८६० नेटालके ईखके खेतोंमें काम करनेके लिए मद्राससे भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंके पहले जत्थेका दक्षिण आफ्रिकी भूमिपर आगमन।

१८६६ नेटालमें भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंकी संख्या ५,००० तक पहुँच गई।

१८६८ बसूटोलैंड ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया।

१८६९ फ्री स्टेटमें हीरेकी खानें मिलीं।

१८७० किम्बरलेमें हीरेकी खानें पाई गईं।
नेटालमें गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेनेवाले मजदूरोंको भूमि देनेके लिए १८७० का कानून २ स्वीकृत।
बसूटोलैंडका सम्राज्ञी-सरकार और फ्री स्टेटके बीच बँटवारा कर दिया गया।

१८७२ केप उपनिवेशमें पूर्ण उत्तरदायी शासनकी स्थापना।

१८७६ देशी मामलोंके आयोग (नेटिव अफ़ेयर्स कमिशन) ने कार्यपालिकाको देशी लोगोंपर अधिक शासनाधिकार प्रदान किया। प्रिटोरिया नगरकी नींव पड़ी।
रेलवे-निर्माण और बन्दरगाह सुधारके कार्योंके लिए भारतीय मजदूरोंको लाना फिर शुरू।

१८७७ ट्रान्सवालको ब्रिटिश शासनमें शामिल कर लिया गया।

१८७८ ट्रान्सवालसे ब्रिटिश सत्ताको हटवानेके प्रयत्नोंके लिए क्रूगर इंग्लैंड गये।

१८७९ ट्रान्सवालको शाही उपनिवेशका दर्जा दिया गया।
नामजद कार्यपालिका परिषद और विधानसभाकी व्यवस्था।
"अपने ही झंडेके नीचे संयुक्त दक्षिण आफ्रिका" का निर्माण करनेके उद्देश्यसे "आफ्रिकैंडर बांड" नामक संघकी स्थापना।

१८८०-१ ट्रान्सवालका स्वातन्त्र्य-संग्राम, या बोअर-युद्ध।

१८८१ प्रिटोरिया-समझौते द्वारा ट्रान्सवालको "सम्राज्ञी-सरकारकी प्रभु-सत्ताके अधीन पूर्ण स्वशासन" का आश्वासन।
भारतीय व्यापारियोंका नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रवेश।

१८८२ ट्रान्सवालमें पृथक् बस्तियों-सम्बन्धी आयोगका संगठन। देशी लोगोंको पृथक् बस्तियोंमें हटाना स्वीकार कर लिया गया, किन्तु इस निर्णयको अमलमें नहीं लाया गया।

१८८३ ट्रान्सवालके निर्वाचित अध्यक्ष क्रूगरकी प्रिटोरिया समझौतेमें संशोधन करानेके लिए लंदन-यात्रा।

१८८४ ब्रिटेन और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके बीच लंदनका समझौता। उसके द्वारा देशी लोगोंको छोड़कर शेष सबको गणराज्यमें प्रवेश, यात्रा तथा निवासकी स्वतन्त्रता और जो कर बर्गर्स (डच नागरिकों) पर नहीं लगाये जाते थे उनसे मुक्ति। व्यापारकी स्वतन्त्रता भी प्राप्त।

हाफमियर संसदके सदस्य चुने गये — ३२ सदस्योंके आफ्रिकैंडर दलके नेताके रूपमें।

नेटाल विधानपरिषदने उपनिवेशकी एशियाई आबादीको सफलतापूर्वक नियन्त्रणमें रखनेके सर्वोत्तम उपाय निकालनेके लिए आयोग नियुक्त करनेका निश्चय किया।

ट्रान्सवालकी जनताकी प्रतिबन्धक कानून बनानेकी माँग सम्राज्ञी-सरकारके सामने पेश कर दी गई।

१८८५ ट्रान्सवालमें एशियाइयोंके अधिकारोंपर प्रतिबन्ध लगानेवाला १८८५ का कानून ३ बना। यह कानून यूरोपीयोंकी इस माँगके कारण बनाया गया कि एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें रखा जाये। इसे बनानेके लिए सम्राज्ञी-सरकारकी अनुमति प्राप्त कर ली गई थी।
न्यायाधीश रैगकी अध्यक्षतामें नेटाल-सरकार द्वारा भारतीय प्रवासी आयोग (इंडियन इमिग्रेशन कमिशन) की नियुक्ति। आयोगके निष्कर्षोंसे प्रकट हुआ कि उपनिवेशके यूरोपीयोंका जबरदस्त लोकमत इस बातके खिलाफ था कि "भारतीय कृषि अथवा वाणिज्य-व्यापारमें उनके प्रतिद्वन्द्वी या बराबरीवाले बनकर रहें।"
बेकवानालैंड ब्रिटिश रक्षित राज्य घोषित। दक्षिणी क्षेत्रको सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेश बना दिया गया।

१८८६ बेकवानालैंडका कुछ हिस्सा केप उपनिवेशमें मिला दिया गया। ट्रान्सवालमें सोनेकी खानें पाई गईं।

भारतीयोंके खिलाफ नेटालके यूरोपीयोंके आरोपोंकी जाँच करनेके लिए आयोगकी नियुक्ति। ब्रिटिश सरकारने घोषणा की कि

१८८५ के कानून ३ के अर्थके अन्दर जो एशियाई-विरोधी कानून बनाये जायें उनका विरोध करनेका उसका इरादा नहीं है। परन्तु उसने व्यापारके लिए ट्रान्सवालमें बसनेका भारतीयोंका अधिकार स्वीकार किया।

१८८७ १८८५ के कानून ३ में संशोधन।

नेटाल-सरकारके अधीन रखे गये जूलूलैंडके एक हिस्सेपर ब्रिटिश प्रभुसत्ताकी घोषणा। केप उपनिवेशमें संसदीय मतदाता पंजीकरण अधिनियम (पार्लमेंटरी वोटर्स रजिस्ट्रेशन ऐक्ट) स्वीकृत।

पहले औपनिवेशिक सम्मेलनमें घनिष्ठतर राजनीतिक संघकी योजनाओंपर बहस करना नामंजूर।

जोहानिसबर्गका आविर्भाव।

१८८८ काफिरोंके वर्गमें शामिल किये जाने और ९ बजे रातके बाद सड़कोंपर चलने-फिरनेपर पाबन्दीके विरुद्ध ट्रान्सवाल सरकारके नाम भारतीयोंका प्रार्थनापत्र नामंजूर।

इस्माइल एंड कम्पनीके मामलेमें निर्णय दिया गया कि एशियाई लोग पृथक् बस्तियोंके अलावा और कहीं व्यापार नहीं कर सकते। झगड़ा पंच-फैसलेके लिए ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके सुपुर्द। पंचने अपने फैसलेमें मान्य किया कि सरकारको, अदालतें जैसी व्याख्या करें उसके अनुसार, १८८५ के कानून ३ का अमल करानेका अधिकार है।

१८८९ रोड्सने मेटाबेलेसे खानें चलानेकी रियायत प्राप्त की। मेटाबेलेका युद्ध और विद्रोह; रोडेशियापर विजयमें अन्त।

सम्राज्ञीके अधिकारपत्र द्वारा ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिका कम्पनीकी स्थापना।

१८९० केपमें रोड्सने अपना पहला मन्त्रिमंडल बनाया।

ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिका कम्पनीने माशोनालैंडपर अधिकार कर लिया।

१८९१ केप उपनिवेशमें मताधिकार और मतपत्र कानून बनाया गया। ट्रान्सवालमें परदेशियोंके राष्ट्रीय संघ (नेशनल यूनियन आफ दी एटलैंडर्स) का निर्माण।
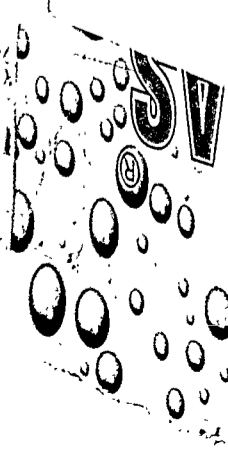
१८९३ फोक्सराट (लोकसभा) ने भारतीयोंके विरुद्ध १८८५ के कानून ३ को कार्यान्वित करानेके उपाय और साधन निकालनेका प्रस्ताव स्वीकार किया।

नेटालको उत्तरदायी शासन प्राप्त। सर जान राबिन्सनने नेटालका पहला मन्त्रिमंडल बनाया।

केप उपनिवेशमें देशी मजदूरों-सम्बन्धी आयोगने सिफारिश की कि प्रत्येक देशी पुरुषपर लगा हुआ विशेष कर ऐसे व्यक्तियोंसे वसूल न किया जाये, जो वर्षभर घरमें गैरहाजिर और कामपर हाजिर रहनेका प्रमाण दे सकें।

ट्रान्सवालमें खान-संघ (चेम्बर आफ माइन्स) ने देशी मजदूर आयोगके मातहत मजदूरों-सम्बन्धी एक विशेष संगठनकी स्थापना की।

१८९४ नेटालमें उत्तरदायी शासनके अधीन पहली सरकारने भारतीय मजदूरोंको लानेके लिए वार्षिक रूपमें दी जानेवाली आर्थिक सहायता बन्द करनेके लिए संसदकी स्वीकृति प्राप्त की।

नेटालमें मताधिकार कानून संशोधन विधेयक पेश।

ग्लेन-ग्रे अधिनियम (ऐक्ट) ने केप उपनिवेशको देशी पुरुषोंपर कर लगानेकी कानूनी स्वीकृति प्रदान की।

नेटाल द्वारा ट्रान्सवालके साथ समझौता।

विटवाटर्सरैंडमें सोने और हीरेकी खानें खोज ली गईं।

पोंडोलैंड केपके साथ मिला दिया गया।

स्वाज़ीलैंडको, देशी लोगोंके हितोंको सुरक्षित करके दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके संरक्षणमें सौंपा गया।

केपकी संसदने ईस्ट लंदन म्यूनिसिपैलिटीको अधिकार दिया कि वह भारतीयोंको शहरकी पैदल-पटरियोंपर चलनेके अधिकारसे वंचित कर दे।

१८९५ ट्रान्सवालने स्वाज़ीलैंडको संरक्षित राज्य बना लिया। ब्रिटिश बेचुआनालैंड केप उपनिवेशके साथ मिला दिया गया।

केपमें गवर्नर-जनरलके अधीन बृहत् परिषद (जनरल कौंसिल) की स्थापना।

नेटालमें १८९५ का १७वाँ कानून स्वीकृत।
ट्रान्सवालमें १८८५ के कानून ३ के अमलमें लाये जानेके प्रश्नकी जाँच करनेके लिए आयोगकी नियुक्ति।
जोहानिसवर्गपर जेमसनका हमला। ब्रिटिश उच्चायुक्तने प्रतिवाद प्रकाशित किया।

१८९६ नेटालमें १८९६ का मताधिकार-अपहरण कानून ८ पेश।
केपके प्रधानमन्त्री पदसे रोड्सका इस्तीफा।
ट्रान्सवालके देशी मजदूर आयोगने पोर्तुगीज पूर्वी आफ्रिकामें मजदूर भरती कार्यालय खोलनेका एकाधिकार प्राप्त कर लिया।
ट्रान्सवालमें १८८५ के कानून ३ पर आयोगकी रिपोर्ट फोक्सराट (लोकसभा) द्वारा स्वीकृत।

१८९७ कानून ३ से गोरों और गैर-गोरोंके बीच विवाह वर्जित।
नेटालमें चुनाव। एस्कम्बके स्थानपर बिन्स पदारूढ़।
नेटालमें १८९७ का प्रवासी पंजीकरण अधिनियम (इमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट) जारी।
१८९७ का विक्रेता परवाना अधिनियम १८ (डीलर्स लाइसेंसिंग ऐक्ट १८) स्वीकृत।
ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री स्टेटके बीच ब्लूमफांटीनका समझौता।
मिलनर केपमें उच्चायुक्त नियुक्त।
सम्राज्ञीकी हीरक-जयंती।
लंदनमें ब्रिटेन तथा उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंका पहला सम्मेलन।

१८९८ ब्लूमफांटीनमें ट्रान्सवाल तथा ब्रिटेनके प्रतिनिधियोंका सम्मेलन।
नेटाल कस्टम्स यूनियनमें सम्मिलित।
बांड दलके नेताके रूपमें श्राइनर केपके प्रधानमन्त्री बने। क्रूगर फिरसे अध्यक्ष निर्वाचित।
ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री स्टेटकी 'संघीय रैंड' की पहली बैठक।

१८९९ बोअर-युद्ध आरम्भ। ब्रिटिश प्रवक्ताओंने भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहारको युद्धका एक कारण बताया।
भारतसे ब्रिटिश फौजोंका डर्बनमें आगमन।

१९०० आरेंज फ्री स्टेटके ब्रिटिश क्षेत्रका नाम आरेंज रिवर कालोनी घोषित। ट्रान्सवाल ब्रिटिश शासनमें मिला लिया गया। २०,००० बोअर शरणार्थी स्त्रियों और बच्चोंकी ब्रिटिश कारागार शिविरोंमें मृत्यु। भूमि बन्दोबस्त आयोगकी रिपोर्ट प्रकाशित।

१९०१ जोहानिसबर्गमें म्यूनिसिपल शासन स्थापित।

१९०२ वेरीनिगिंग (फ्रेनेखन) की सन्धिसे बोअर-युद्धका अन्त।
रोड्सकी मृत्यु।
प्रिटोरियामें म्यूनिसिपल शासनकी स्थापना।
पोर्तुगीज पूर्वी आफ्रिकाकी सरकारने दक्षिण आफ्रिकामें मजदूरी करनेके लिए अपने क्षेत्रसे भरती किये जानेवाले हर देशी व्यक्तिके पीछे १३ शि० शुल्क देना स्वीकार किया।
ट्रान्सवाल और आरेंज रिवर उपनिवेशमें नई सरकारोंकी घोषणा।
चेम्बरलेनकी दक्षिण आफ्रिका यात्रा। सन्धिकी शर्तोंमें ढिलाई करनेकी बाबत बोअरोंकी दलीलें प्रिटोरिया और ब्लूमफांटीनमें नामंजूर कर दी गई।

१९०३ शान्ति रक्षा अध्यादेश (पीस प्रिज़र्वेशन आर्डिनेंस) से ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रवेशका नियमन।
ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन असोसिएशनकी स्थापना और उसके द्वारा एशियाई दफ्तरके कामके तरीकेके खिलाफ प्रार्थनापत्र।
ब्लूमफांटीनमें कस्टम्स यूनियनकी स्थापना।
सामान्य स्वार्थोंके विषयोंपर उच्चायुक्तको सलाह देनेके लिए ट्रान्सवाल और आरेंज रिवर उपनिवेशके गैर-सरकारी प्रतिनिधियोंके साथ आन्तर-औपनिवेशिक परिषदकी स्थापना।
ब्लूमफांटीन सम्मेलन द्वारा देशी मामलात आयोग (नेटिव अफ़ेयर्स कमिशन) की नियुक्ति।
ट्रान्सवाल विधानपरिषदने गैर-गोरे गिरमिटिया मजदूरोंके आकर बसनेके सम्बन्धमें प्रस्ताव स्वीकार किया।
ट्रान्सवालमें तीन पौंड सालाना कर १६ वर्षसे ऊपरके पुरुषों और १३ वर्षसे ऊपरकी स्त्रियोंपर लागू कर दिया गया।

१९०४ क्रूगरकी मृत्यु। जोहानिसबर्गमें प्लेग फैला।

लार्ड कर्ज़नका खरीता। उसमें बताया गया कि "नेटालका कटु उदाहरण" मौजूद होनेके कारण भारतमें ट्रान्सवालको मजदूर भेजनेका उत्साह नहीं है।

औपनिवेशिक कार्यालयने चीनी मजदूरोंको लानेका अध्यादेश (आर्डिनेंस) मंजूर कर लिया।

१९०५ दक्षिण आफ्रिकाके लिए स्वशासनकी माँगके हेतु स्मट्सकी ब्रिटेन-यात्रा। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री कैम्पबेल-बैनरमनसे वचन प्राप्त।

ट्रान्सवालमें हेटफ़ोक (लोकदल) का संगठन।

लिटल्टन विधान जारी किया गया।

१९०६ ट्रान्सवालमें शाही फरमानसे लिटल्टन विधान रद और उसे उत्तर-दायी शासन प्रदान। केप-सरकारका लार्ड सेलबोर्नसे अनुरोध कि दक्षिण आफ्रिकी राज्योंका राजनीतिक एकीकरण करनेके विषयमें विचार किया जाये।

एशियाई पंजीकरण अध्यादेश (एशियाटिक रजिस्ट्रेशन आर्डिनेंस) जारी किया गया। भविष्यमें एशियाइयोंको ट्रान्सवालमें न आने देनेका कानून मंजूर।

केप उपनिवेशमें १९०६ का प्रवासी अधिनियम (इमिग्रेशन ऐक्ट) स्वीकृत।

१९०७ जूलू विद्रोह।

आरेंज रिवर उपनिवेशको उत्तरदायी शासन दिया गया।

भारतीय मजदूरों-सम्बन्धी आयोगने भारतीय मजदूरोंको लानेकी सिफारिश की।

ट्रान्सवालमें आम चुनावोंके फलस्वरूप हेटफ़ोक सत्तारूढ़।

बोथा प्रधानमन्त्री बने। एशियाई (चीनी) मजदूर अध्यादेश (एशियाटिक चाइनीज़ लेबर आर्डिनेंस) का अन्त।

दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिक एकीकरणके सम्बन्धमें सेलबोर्नका ज्ञापन प्रकाशित।

लंदनमें प्रधानमन्त्रियोंका सम्मेलन।

१९०८ केपमें आम चुनावोंके फलस्वरूप मेरीमनके नेतृत्वमें दक्षिण आफ्रिकी दल (साउथ आफ्रिकन पार्टी) सत्तारूढ़।

डर्बनमें राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कानवेंशन) हुआ, जिसमें संघ (फेडरेशन) की अपेक्षा संयुक्त राज्य (यूनियन) के संविधानकी अधिकतर धाराएँ स्वीकार की गई।

स्वेच्छासे पंजीकरण करानेको वैध रूप देनेके लिए कानून ३६ स्वीकार। पंजीकरण कानून रद नहीं किया गया; इसलिए भारतीय नेताओं द्वारा सविनय अवज्ञा (सिविल डिस-ओबीडिएन्स) आन्दोलनका निश्चय।

आन्तर-औपनिवेशिक परिषद भंग।

हर्ट्ज़ागने ट्रान्सवालमें अंग्रेजी और डच भाषाओंका अनिवार्य उपयोग जारी कराया।

ज़ूलूलैंडका विद्रोह दबा दिया गया।

१९०९ राष्ट्रीय सम्मेलनने संयुक्त राज्य विधानके मसविदे (ड्राफ्ट ऐक्ट आफ यूनियन) के रूपमें एक रिपोर्ट तैयार की, जिसे ब्रिटिश संसदने स्वीकार कर लिया।

१९१० दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यका आविर्भाव। दक्षिण आफ्रिकी दलके नेता जनरल बोथाके अधीन संयुक्त राज्यके पहले मन्त्रि-मण्डलका निर्माण। हर्ट्ज़ाग और स्मट्स सम्मिलित।
भारतीयों द्वारा १९०८ के प्रवासी कानूनकी सविनय अवज्ञा।

१९११ दक्षिण आफ्रिकी सरकारने आजाद भारतीयोंके आगमन (फ्री इमिग्रेशन) पर प्रतिबन्ध लगाया।
पहली शाही मंत्रणा-परिषद जिसमें, बोथाके नेतृत्वमें, दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यके प्रतिनिधि शामिल हुए।
भारतमें गिरमिट-प्रथाका अन्त।

१९१२ हर्ट्ज़ाग बोथाके पक्षसे अलग हो गये। उन्होंने "दक्षिण आफ्रिका पहले, साम्राज्य बादमें" का नारा लेकर राष्ट्रीय दल (नेशनलिस्ट पार्टी) का संगठन किया।
वित्तीय सम्बन्ध जाँच आयोग।

१९१३ भूमि कानून स्वीकृत।

नेटालमें भारतीयोंका सत्याग्रह। नेटालकी सीमा पार करके ट्रान्सवालमें महान कूच।

आम हड़ताल।

सन् १९१३ का प्रवासी नियमन अधिनियम (इमिग्रैंट्स रेगुलेशन ऐक्ट) या १९१३ का वाईसवाँ कानून वना।

भारतीयोंको राहत देनेके कानून (इंडियन रिलीफ ऐक्ट) द्वारा तीन-पौंडी कर हटा दिया गया। भारतीयों द्वारा दक्षिण आफ्रिकी सरकारके सालोमन-आयोगका वहिष्कार।

स्मट्स-गांधी पत्र-व्यवहार। माँगें मंजूर हो जानेपर सत्याग्रह-संग्राम रोक दिया गया।

वित्तीय सम्वन्ध अधिनियम (१९१३ का कानून १०) स्वीकार। प्रवासी अधिनियम — १९१३ का तेरहवाँ कानून स्वीकृत।

१९१४ आम हड़ताल। स्मट्सने सिंडिकैलिस्ट नेताओंको निर्वासित करके गैर-कानूनी काम किया। हड़ताल भंग, असफल। स्मट्स-गांधी समझौता। गांधीजी दक्षिण आफ्रिकासे भारतके लिए रवाना।
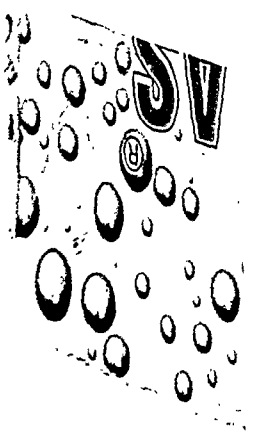
टिप्पणियाँ

अधिकारपत्र कानून, १८३३ (चार्टर ऐक्ट आफ १८३३) : यह कानून ब्रिटिश संसदके जाँच-आयोगके निष्कर्षोंके आधारपर बना था। इससे भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके व्यापारके अधिकार रद करके उसका कर्तव्य अपने प्रदेशके शासन-प्रबन्ध तक सीमित कर दिया गया था। १८५३ में इसे संशोधित करके दुहराया गया और व्यवस्था की गई कि किसी भी भारतीयको उसके धर्म, जन्मस्थान, वंश या रंगके आधारपर ईस्ट इंडिया कम्पनीकी किसी नौकरी, पद या स्थानसे वंचित नहीं किया जा सकेगा।

अब्दुल्ला, दादा : डर्बनकी प्रमुख भारतीय पेढ़ी दादा अब्दुल्ला एंड कम्पनीके मालिक, जिनके मुकदमेकी पैरवीके लिए गांधीजी शुरू-शुरूमें दक्षिण आफ्रिका गये थे।

अमतली : दक्षिणी रोडेशियाका एक जिला और नगर। एक बड़ी यूरोपीय बस्ती।

आदम, अब्दुल करीम हाजी : दादा अब्दुल्ला एंड कम्पनीके प्रबन्धक और साझी। भारतीय मताधिकार विधेयक (इंडियन फ्रैंचाइज बिल) का विरोध करनेके लिए १८९३ में डर्बनमें बनी पहली कमेटीके अध्यक्ष।

आयरिश होमरूल बिल : यह विधेयक ग्लैड्स्टनने १८८६ में ब्रिटिश संसदमें पेश किया था। यह एक बहुत नरम विधेयक था, जिसका मंशा आयरलैंडका प्रशासन आयरिश संसद द्वारा नियुक्त एक कार्यपालिकाको सौंपनेका था। परन्तु कर लगानेका अधिकार बहुत अंशोंमें ब्रिटिश संसदके अधीन ही रहने दिया गया था। इंग्लैंड और अल्स्टर दोनोंमें इसका घोर विरोध हुआ और ब्रिटिश लोकसभामें यह अस्वीकार कर दिया गया। १८८३ में, जब ग्लैड्स्टन प्रधानमन्त्री थे, उन्होंने दुबारा एक होमरूल बिल पेश किया, जो लोकसभामें तो स्वीकार हो गया, परन्तु लार्डसभामें भारी बहुमतसे गिर गया।

इस्माइल सुलेमानका मामला : यह एक ऐसा मामला था, जिसमें इस्माइल सुलेमान नामक एक 'अरब' व्यापारीको, १८८८ में, पृथक् बस्ती छोड़कर अन्यत्र व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया था।

जब आरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशको पंच नियुक्त किया गया, तो उन्होंने फैसला दिया कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यको इस सम्बन्धके कानून (१८८५ के तीसरे) का, देशकी अदालतें जैसी व्याख्या कर दें उस रूपमें, अमल करानेका पूरा अधिकार है। बादमें ट्रान्सवालकी सर्वोच्च अदालतने इस निर्णयको पलट दिया और फैसला किया कि सरकारको एशियाइयोंको परवाने न देनेका अधिकार नहीं है।

ईस्ट कोर्ट : डर्बनसे लगभग १५० मीलपर एक कस्बा।

ईस्ट लंदन : एक महत्त्वपूर्ण तटवर्ती नगर और केप उपनिवेशका बन्दर स्थान।

उस्मान, दादा : नेटालके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी। ये नेटाल भारतीय कांग्रेसके मन्त्री रहे थे और इन्होंने भारतीयोंके सत्याग्रह-संग्राममें भाग लिया था।

एलगिन, लार्ड (१८४९-१९१७) : भारतके वाइसराय, १८९४-१८९९। बादमें दक्षिण-आफ्रिकी युद्धके संचालनकी जाँच करनेवाले रायल कमिशनके अध्यक्ष। उपनिवेश-मन्त्री, १९०५-१९०८।

एशोवे : जूलूलैंड रिजर्वका प्रशासन केन्द्र।

एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन : इस संघकी स्थापना १८९१ में एडवर्ड मेटलैंडने की थी। १८९४ में गांधीजी इसके एजेंट बने। 'एसॉटरिक' शब्द किंचित् रहस्यवादका द्योतक है, जो उन लोगोंके लिए है जो ध्यान, भक्ति आदि द्वारा ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके रहस्यमय सिद्धान्तोंकी दीक्षा ग्रहण करते हैं।

एस्कम्ब, सर हैरी (१८३८-९९) : नेटालके सर्वोच्च न्यायालयके प्रमुख एडवोकेट। इन्होंने गांधीजीको नेटालके सर्वोच्च न्यायालयमें वकालतकी इजाजत देनेकी हिमायत की थी। १८९७ में नेटालके प्रधानमन्त्री।

ऐन्स्टे, टामस चिज़होम (१८१६-१८७३) : वकील और राजनीतिज्ञ; संसद-सदस्य १८४७-५२।

ऐलिन्सन, डा० टी० आर० : आरोग्यशास्त्र विषयके ग्रंथकार, जिनकी पुस्तकें गांधीजीको उपयोगी मालूम हुई थीं। जबतक सन्तति-निग्रहपर उदार विचारोंके कारण इनके विरुद्ध निन्दाका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया, तबतक ये लंदन अन्नाहारी मण्डलके सदस्य रहे। १९१४ में गांधीजीके फुप्फुस-रोगसे पीड़ित होनेपर इन्होंने उनकी सेवा-शुश्रूषा की थी।

कमरुद्दीन, मुहम्मद कासिम : जोहानिसबर्गके भारतीय व्यापारी और नेटाल भारतीय कांग्रेसके एक कर्मठ सदस्य।

कानून ३, १८८५ : ट्रान्सवालका एक कानून। इसके अनुसार "तथाकथित कुलियों, अरबों, मलायियों, और तुर्की साम्राज्यके मुसलमान प्रजाजनों"को अधिक समयतक नागरिकताके अधिकार पानेके अयोग्य ठहरा दिया गया था। उन्हें गणराज्यमें अचल सम्पत्ति खरीदनेका भी अधिकार नहीं था। बादमें, लोकसभाके १८८७ के प्रस्तावके अनुसार "कुलियों"को अपवाद रूप मान लिया गया और उन्हें जमीन-जायदाद खरीदनेकी इजाजत तो दी गई, परन्तु अस्वच्छताका बहाना बनाकर यह तय कर दिया गया कि वे निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और पृथक् बस्तियोंमें ही जमीन-जायदाद खरीद सकते हैं। १८९३ में लोकसभाने एक और प्रस्ताव पास करके तय किया कि सब एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहने और केवल वहीं व्यापार करनेके लिए बाध्य करना चाहिए। व्यापार करनेके लिए सरकारी दफ्तरमें नाम दर्ज (रजिस्टर) कराना और तीन पौंडका शुल्क अदा करना जरूरी कर दिया गया। यह कानून लंदन-समझौतेके विरुद्ध माना गया था।

किंग्जफर्ड, डा० ऐना : स्वास्थ्य-चिकित्सक। एक अन्नाहारी जिनका एक निबंध *परफेक्ट वे इन डाएट* (उत्तम आहार-योजना) के नामसे प्रकाशित हुआ था। बादमें इन्होंने *ऐड्रैसेज़ ऑन वेजिटेरियनिज़्म* तथा अन्य पुस्तकोंके लिखनेमें एडवर्ड मेटलैंडको योग दिया।

केन, विलियम स्प्रोस्टन (१८४२-१९०३) : चार बार ब्रिटिश संसदके सदस्य, भारतीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी संसद-उपसमितिके सदस्य और भारतको स्वायत्त शासन देनेके समर्थक। दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके हितोंमें बहुत दिलचस्पी रखते थे।

केनिंगटन : लंदनका एक उपनगर।

केप टाउन : दक्षिण आफ्रिकाका सबसे पहला नगर। केप प्रदेशकी राजधानी और संयुक्त राज्यके विधानमण्डलका केन्द्र-स्थान।

कैम्बेल, हेनरी : एडवोकेट और ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके मुख्य एजेंट। उनके लिए प्रार्थनापत्र लिखते और पेश करते थे।

गनी, अब्दुल : ट्रान्सवालके एक सबसे पुराने निवासी और जोहानिसबर्गकी मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन पेढ़ीके प्रबन्धक। दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके एक सबसे पहले परिचित। ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन (स्थापित, १९०३) के अध्यक्ष।

चार्ल्सटाउन : नेटालकी सीमापर एक कस्बा; डर्बनसे ३१८ मील।

चेम्बरलेन, जोजेफ़ (१८३६-१९१४) : ब्रिटेनके उपनिवेश-मन्त्री। १९०२ में दक्षिण आफ्रिकाका दौरा किया। इनका आठ वर्षोंका कार्यकाल क्रूगरके साथ वार्ताएँ भंग होने और उसके फलस्वरूप बोअर-युद्ध तथा वेरीनिजिंगकी सन्धि होनेके लिए उल्लेखनीय है। इन्होंने, लार्ड मिल्नरके साथ, ट्रान्सवाल व नेटालके युद्धोत्तर पुनर्निर्माणमें योग दिया। १९०३ में इस्तीफा।

जर्मिस्टन : ट्रान्सवालका मुख्य रेलवे स्टेशन।

जेतपुर : सौराष्ट्रमें एक रेलवे स्टेशन।

जोहानिसबर्ग : विटवाटर्सरैंड-क्षेत्रका मुख्य नगर। ट्रान्सवालमें सोनेकी खानोंका सबसे बड़ा क्षेत्र।

डंडी : डर्बनसे लगभग २५० मीलपर एक छोटा-सा कस्बा।

डर्बन : बन्दरस्थान, व्यापारिक राजधानी और नेटालका "मुखद्वार" जोहानिसबर्गसे ४९४ मील।

डेलागोआ-बे : बन्दरस्थान और व्यापारका केन्द्र। डर्बनसे २९६ मील उत्तर। पोर्तुगीज़ पूर्वी आफ्रिकाकी राजधानी। लोरेनको मार्क्विस नामसे भी प्रसिद्ध।

ढोला : काठियावाड़ (सौराष्ट्र) का एक रेलवे जंक्शन।

तैयबजी, बदरुद्दीन (१८४४-१९०६) : बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशनके कर्मठ सहायक और उसके वास्तविक अध्यक्ष। कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनके अध्यक्ष, १८८७। बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश, १८९५। दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहार विरोधी आन्दोलनके जोरदार समर्थक। बम्बई विधानपरिषदके नामजद सदस्य, १८८२। म्यूनिसिपल मताधिकार सम्बन्धी कानूनके पुरस्कर्ता।

दादा, हाजी मुहम्मद हाजी : प्रमुख व्यापारी और भारतीय समाजके नेता। १८९३ में मताधिकार विधेयकका विरोध करनेके सम्बन्धमें विचारके लिए

भारतीयोंकी जो पहली सभा हुई थी उसके अध्यक्ष। नेटाल भारतीय कांग्रेसके उपाध्यक्ष, १८९४-९९।

धंधुका : काठियावाड़ (सौराष्ट्र) का एक छोटा-सा कस्बा।

नाजर, मनसुखलाल हीरालाल (१८६२-१९०६) : प्रतिभाशाली भारतीय विद्यार्थी, जो दिसम्बर १८९६ में दक्षिण आफ्रिकामें वासके लिए गये। १८९७ में दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी ओरसे प्रचार करनेके लिए इंग्लैंड भेजे गये। नेटालके भारतीय आन्दोलन तथा सार्वजनिक जीवनमें इनका योग उल्लेखनीय है।

नोंदवेनी : जूलूलैंडकी एक बस्ती और विभाग। एक जमानेमें खानोंके केन्द्रके रूपमें ज्ञात था।

नौरोजी, दादाभाई (१८२५–१९१७) : भारतीय राजनीतिज्ञोंके अग्रणी। बहुधा "भारत राष्ट्रके पितामह" के रूपमें स्मरण किये जाते हैं। १८८६, १८९३ और १९०६ में तीन बार कांग्रेसके अध्यक्ष। कांग्रेसका लक्ष्य "स्वराज्य" बतानेवाले पहले व्यक्ति। १८९३ में ब्रिटिश संसदके सदस्य। संसद-सदस्य व कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी, लंदनके प्रमुख सदस्यकी हैसियतसे भारत और दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी बहुत सेवा की।

न्यूकैसिल : नेटालका कस्बा; कोयले, मका, ऊन और तम्बाकूकी उपजके लिए प्रसिद्ध।

पाइनटाउन : डर्बनसे १७ मीलपर एक छोटी-सी बस्ती।

पीटरमैरित्सबर्ग : नेटालकी राजधानी। संक्षेपमें पी० एम० बर्ग या मैरित्सबर्ग भी कहा जाता है। डर्बनसे ७१ मील। औपनिवेशिक कार्यालयका केन्द्र।

पोर्ट एलिजाबेथ : केप प्रदेशका दूसरे नम्बरका शहर और बन्दरस्थान।

प्रिटोरिया : संयुक्त राज्यकी राजधानी; डर्बनसे ५११ मील।

फासेट, हेनरी (१८३३-१८८४) : कैम्ब्रिजमें राजनीतिक अर्थ-व्यवस्थाके प्राध्यापक और राजनीतिज्ञ। भारतीय वित्त-व्यवस्था तथा आर्थिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें इन्होंने संसदमें बहुत काम किया।

फोक्सरस्ट : डर्बनसे ३०८ मीलपर नेटालका एक छोटा शहर।

बैनर्जी, सर सुरेन्द्रनाथ (१८४८–१९२५) : प्रथम श्रेणीके नरम दलीय नेता। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके शिष्टमण्डलके सदस्यकी हैसियतसे १८९०
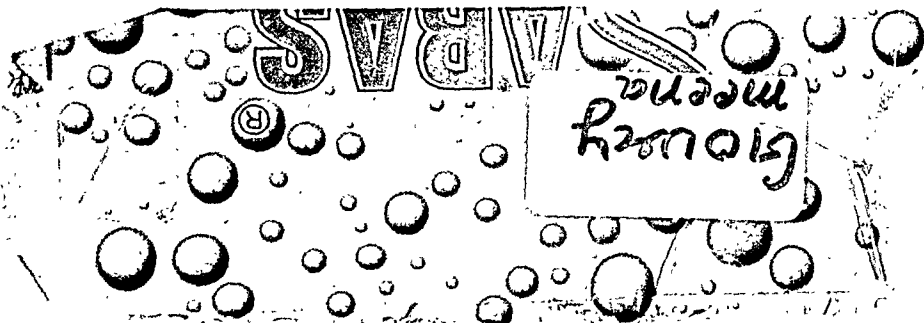
में ब्रिटेन गये थे। बंगालकी विधानपरिषदके सदस्य (१८९३-१९०१)। कलकत्तेके प्रमुख समाचारपत्र *बंगाली*के मालिक और सम्पादक। मांटफर्ड सुधारोंके कालमें वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषदके सदस्य। १८९५ और १९०२ में कांग्रेसके अध्यक्ष।

बर्डवुड, सर जार्ज क्रिस्टोफर मोल्सवर्थ (१८३२-१९१७) : भारतमें जन्मे; १८५४ में बम्बईके चिकित्सा-विभागमें रहे; बादमें ३० वर्षतक लंदनके इंडिया आफिसमें सेवा की। *रिपोर्ट आन द मिसलेनियस ओल्ड रेकर्ड्स आफ द इंडिया आफिस एंड द इंडस्ट्रियल आर्ट्स आफ इंडिया* (भारतीय कार्यालयके विविध प्राचीन कागज-पत्रों और भारतकी औद्योगिक कलाओं पर रिपोर्ट) के प्रणेता।

बर्न्स, जान (१८५८-१९४३) : ब्रिटिश संसदमें मजदूर-दलके विशिष्ट प्रतिनिधि (१८९७-१९१८)। १८८९ में लंदन जहाजघाटकी हड़तालके समय मजदूरोंका साथ देनेके कारण प्रसिद्ध हुए।

बार्बर्टन : ट्रान्सवालका एक कस्बा, प्रिटोरियासे २८३ मील।

बिन्स, सर हेनरी (१८३७-१८९९) : गिरमिटिया मजदूरों-सम्बन्धी इकरारनामेमें संशोधन करानेके लिए नेटाल सरकारने १८९४ में जो दो सदस्योंका आयोग भारत-सरकारके पास भेजा था उसके एक सदस्य। नेटाल विधानपरिषदमें असंगठित विरोधी सदस्योंके नेता। एस्कम्बके बाद नेटालके प्रधानमन्त्री।

बूथ, डाक्टर : सेंट आइदान मिशन, डर्बनके प्रमुख। भारतीयों द्वारा स्थापित एक छोटी-सी धर्मार्थ अस्पतालकी देखरेख करते थे। बोअर-युद्धके समय, १८९९ में, भारतीय आहत-सहायता दलके स्वयंसेवकोंको शिक्षा देनेमें मदद की थी।

बेल, सर हेनरी : एक प्रमुख वकील और नेटाल विधानसभाके विशिष्ट सदस्य। १९०४ और १९०९ में नेटालके प्रशासक (एडमिनिस्ट्रेटर) बनाये गये थे।

ब्लूमफांटीन : आरेंज फ्री स्टेटकी राजधानी और १९१० के बाद दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यका न्याय-केन्द्र। जोहानिसबर्ग से २५४ मील।

भावनगर : काठियावाड़का एक भूतपूर्व देशी राज्य। अब बम्बई राज्यमें मिल गया है।

मेटलैंड, एडवर्ड (१८२४–१८९७) : रहस्यवादी विषयोंके लेखक और अन्नाहारके उपासक। १८९१ में एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनकी स्थापना की। गांधीजीने इनके साथ पत्र-व्यवहार किया था और इनकी पुस्तकोंका उनके मनपर बहुत असर पड़ा था।

मेन, सर हेनरी समर (१८२२–१८८८) : प्रख्यात न्याय-शास्त्री, जिनकी लिखी पुस्तकोंमें *ऐंशट ला*, *अर्ली हिस्ट्री आफ इन्स्टिट्यूशन्स* और *विलेज कम्यूनिटीज़ इन द ईस्ट एंड वेस्ट* शामिल हैं। १८६२-६९ और १८७१ में इंडिया कौंसिलके सदस्य।

मेलमॉथ : जूलूलैंडकी एक बस्ती और एक विभाग।

मेहता, सर फीरोजशाह (१८४५-१९१५) : भारतीय नेता। बहुत दिनों तक बम्बईके सार्वजनिक जीवनका सूत्र-संचालन इनके ही हाथोंमें रहा। बम्बई प्रेसिडेंसी एसोसिएशनके एक संस्थापक और तीन बार बम्बई कारपोरेशनके अध्यक्ष। बम्बई विधानपरिषद और बादमें वाइसरायकी कार्यकारिणीके सदस्य। १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापना करनेवाले नेताओंमें से एक। १८९० और १९०९ में दो बार उसके अध्यक्ष निर्वाचित।

राबिन्सन, सर जान (१८३९-१९०३) : लंदनके औपनिवेशिक सम्मेलनमें नेटालके प्रतिनिधि, १८८७। नेटालके पहले प्रधानमन्त्री और उपनिवेश-सचिव, १८९३-९७।

रिचमंड : पीटरमैरित्सबर्गके पास एक कस्बा।

रिपन, लार्ड (१८२७-१९०९) : भारतके वाइसराय, १८८०-८४। उपनिवेश-मन्त्री १८९२ से १८९५ तक, जब उनके स्थानपर चेम्बरलेन नियुक्त हुए।

रुस्तमजी, पारसी : नेटालके एक दानी और लोक-सेवाकी भावनावाले भारतीय व्यापारी। पहले गांधीजीके सहकार्यकर्ता और घनिष्ठ मित्र, फिर उनके मुअक्किल। नेटाल भारतीय कांग्रेस और उसके कामके जोरदार समर्थक।

लंदन-समझौता : बोअरों और ब्रिटिशोंके बीच। २७ फरवरी, १८८४ को हस्ताक्षर। धारा १४ के द्वारा देशी लोगोंको छोड़कर शेष सबको
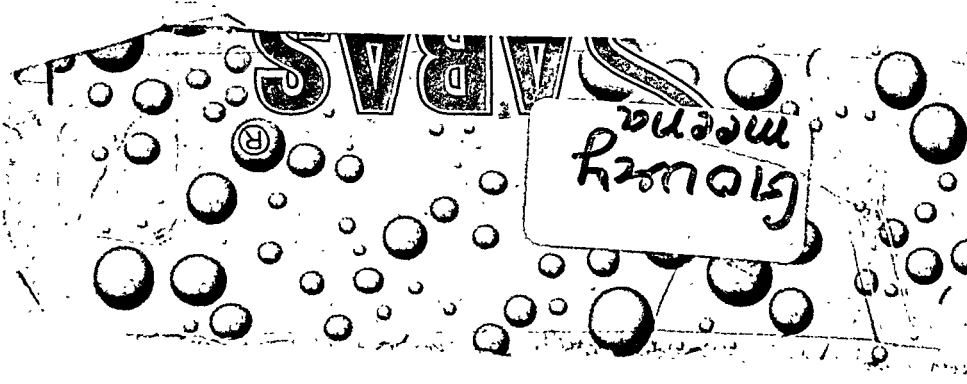
दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य (या ट्रान्सवाल) में प्रवेश, यात्रा, निवास, सम्पत्ति खरीदने और व्यापार करनेकी स्वतन्त्रताका आश्वासन। बोअर-सरकारने "देशी लोगों"का अर्थ यह लगानेका प्रयत्न किया कि उसमें भारतीय भी शामिल हैं; मगर ब्रिटिश सरकारने यह भाष्य स्वीकार नहीं किया।

लॉटन, एफ० ए० : डर्बनके वकील। भारतीयोंके कानूनी सलाहकार और वकील। अक्सर गांधीजीके साथ अदालतोंमें पैरवी करते थे।

वेडरबर्न, विलियम : बम्बई सिविल सर्विसके सदस्यकी हैसियतसे २५ वर्ष भारतमें रहे थे। अवसर प्राप्त करनेके बाद १९०० तक ब्रिटिश संसदके सदस्य। कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके अध्यक्ष, १८९३। कांग्रेसके अध्यक्ष, १९१०।

वेब, आलफ्रेड : ब्रिटिश संसदके सदस्य। *इंडिया* पत्रमें बहुधा दक्षिण आफ्रिका-वासी भारतीयोंके विषयमें लिखा करते थे। कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनके अध्यक्ष, १८९४। कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके सदस्य।

वेरुलम : डर्बनसे १९ मीलपर एक ऐतिहासिक वस्ती, जहाँ बहुत-से गिरमिट-मुक्त भारतीय बसे थे।

वेलिंगटन : केप उपनिवेशका एक शहर।

सिडनहम : डर्बनका एक उपनगर।

सैलिसबरी : दक्षिणी रोडेशियाकी राजधानी।

स्टैंगर : डर्बनके उत्तरमें एक ऐतिहासिक गाँव।

सोरठ : सौराष्ट्रका एक जिला।

हंटर, सर विलियम विल्सन (१८४०-१९००) : भारतमें २५ वर्षतक राजकीय सेवा की। *इंडियन एम्पायर* तथा अनेक पुस्तकें लिखीं। १४ खंडोंमें *इम्पीरियल गैज़ेटियर आफ इंडिया* का संकलन किया। वाइसरायकी परिषदके सदस्य (१८८१-८७)। भारतसे अवसर प्राप्त करनेके बाद कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके सदस्य बने और १८९० से भारतीय मामलोंपर *लंदन टाइम्स*में लिखते रहे।

हेबर, विशप रेजिनाल्ड (१७८३-१८२६) : कलकत्तेके विशप या बड़े पादरी। वहाँके विशप कॉलेजके संस्थापक। इन्होंने बहुत यात्रा करके भारतका परिचय प्राप्त किया था।

सांकेतिका